ॐ

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे

सुन्दरकाण्डम्

श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे सुन्दरकाण्डम्

श्री प्रभु के चरणकमलों में समर्पित:

श्री मनीष त्यागी
संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

विषय सूचिका

श्रीमद्रारामायण पारायणोपक्रमः 17

॥ प्रथमः सर्गः पहला सर्ग॥ 19

हनुमता समुद्रस्य लंघनं मैनाकेन तस्य सत्कारस्ततः सुरसायाः पराजयः सिंहिकाया वधं कृत्वा तस्य दक्षिणतटे गमनं तत्र तेन लङ्काशोभाया निरीक्षणम् – हनुमान जी के द्वारा समुद्र पार करना, मैनाक के द्वारा उनका सत्कार, सुरसा की पराजय तथा सिंहिका का वध करके उनका समुद्र के पार पहुँच कर लंका की शोभा का निरिक्षण 19

॥ द्वितीयः सर्गः दूसरा सर्ग ॥ 76

लङ्कापुर्या वर्णनं, तत्र प्रवेशविषये हनुमतो विचारो, लघुरूपधरस्य तस्य पुर्यां प्रवेशः, तदानीं चन्द्रोदयशोभाया वर्णनम् -लंकापुरी का वर्णन और उसमें प्रवेश करने के लिए हनुमान जी का विचार करना, तत्पश्चायत हनुमान जी का लघुरूप से लंका पुरी में प्रवेश तथा चंद्रोदय का वर्णन 76

॥तृतीयः सर्गः तीसरा सर्ग ॥ 93

लंकां लोक्य हनुमतो विस्मयऽतत्र प्रविशततस्य लंकयावरोधस्तत्प्रहारेण पीडितया तया तस्मै पुर्य्यां प्रवेष्टुंनुमतिदानम् – लंकापुरी का अवलोकन करके हनुमान जी का विस्मित होना, निशाचरी लंका का उन्हें प्रवेश करने से रोकना और हनुमान जी की मार से उन्हें लंकापुरी में प्रवेश की अनुमति देना 93

॥चतुर्थः सर्गः चौथा सर्ग॥ 108

हनुमतो लङ्कायां रावणस्यान्तःपुरे च प्रवेशः – हनुमान जी का लंकापुरी और उसके पश्च्यात रावण के अंतःपुर में प्रवेश 108

॥पंचम सर्गः पाँचवाँ सर्ग॥ 117

रावणान्तःपुरे प्रतिग्रहं सीताया अन्वेषणं कुर्वतो हनुमतस्तामदृष्ट्वा दुःखम् – हनुमान की का रावण के अंत:पुर में सीता जी को ढूँढना और उन्हें न देखकर दुखी होना 117

॥षष्ठम सर्गः छठा सर्ग ॥........ 127

हनुमता रावणस्यान्येषां च रक्षसां गृहेषु सीताया अनुसन्धानम् – हनुमान जी का रावण तथा अन्य राक्षसों के घरों में सीता जी की खोज करना 127

॥सप्तम सर्गः सातवाँ सर्ग ॥ 140

रावणभवनस्य पुष्पकविमानस्य च वर्णनम् – रावण के भवन और पुष्पक विमान का वर्णन........ 140

॥अष्टम सर्गः आठवाँ सर्ग॥........ 147

हनुमता पुनः पुष्पकस्य दर्शनम् – हनुमान जी का दुबारा पुष्पक विमान का दर्शन........ 147

॥ नवमः सर्गः नवाँ सर्ग ॥........ 151

रावणस्य भवनं पुष्पकविमानं सुन्दरनिवेशनं चावलोक्य हनुमता तत्र सुप्तानां सहस्रशः सुन्दरीणां समवलोकनम् – हनुमान जी का रावण के भवन, पुष्पक विमान और रावण के भवन में सोयी हुई सहस्त्रों सुंदर स्त्रियों का अवलोकन........ 151

॥ दशमः सर्गः दसवाँ सर्गः ॥ 174

अन्तःपुरे सुप्तं रावणं प्रगाढनिद्रानिमग्नास्तस्य स्त्रियश्च दृष्ट्वा मन्दोदरीं सीतां मत्वा हनुमतो हर्षः – हनुमान जी का अंत:पुर में गहरी नींद में

सोयी हुई स्त्रियों को देखना तथा मंदोदरी को सीता समझ कर प्रसन्न होना.. 174

॥ एकादशः सर्गः ग्यारहवाँ सर्ग ॥ 191

नासौ सीतेति निश्चित्य हनुमता पुनरन्तःपुरे पानभूमौ च सीताया अनुसन्धानं तन्मनसि धर्मलोपाशंका तस्याः स्वतो निवारणं च – यह निश्चय होने पर की सीताजी यहाँ नहीं है, हनुमान जी का पुन: अंत:पुर में और पान भूमि में सीताजी का अन्वेषण, उनके मन में धर्मलोप की आकांशा और स्वत: उसका निवारण... 191

॥ द्वादशः सर्गः बारहवाँ सर्गः ॥.. 204

सीतामरणशङ्कया हनुमतः शैथिल्यं पुनरुत्साहमवलम्ब्य स्थानान्तरेषु तेन तस्या अन्वेषणं कुत्रापि तामनवाप्य तस्य पुनश्चिन्ता च – सीता जी की मृतु की आकांशा से हनुमान जी का शिथिल होना होना, फिर उत्साह का आश्रय ले कर एनी स्थानों में उनकी खोज करना और पता नहीं लगने से उनका पुन: चिंतित होना 204

॥ त्रयोदशः सर्गः तेरहवाँ सर्ग॥.. 212

सीताविनाशाशंकया हनुमतश्चिन्ता, सीतानुपलब्धिसूचनादनर्थं सम्भाव्य हनुमतोऽपरावर्तनाय निश्चयः पुनरन्वेषणविचारश्च, अशोकवाटिकायामनुसन्धानविषये विविधं पर्यालोचनं च – सीता जी के विनाश की आशंका से हनुमान जी का चिंतित होना, सीता जी ने न मिलने की सूचना श्रीराम को न देने से अनर्थ की सम्भावना देखकर हनुमान जी का लौटने निश्चय करके पुन: खोजने का विचार करके अशोक वाटिका में ढूँढने के लिए विविध पक्षों पर विचार करना.... 212

॥ चतुर्दशः सर्गः चौदहवाँ सर्गः ॥ 232

अशोकवनिकायां प्रविश्य तस्याः शोभाया दर्शनमेकस्मिन्नशोके प्रच्छन्नीभूतेन हनुमता तत एव तस्या अनुसन्धानम् - हनुमान जी का अशोक वाटिका में प्रवेश कर उसकी शोभा देखना तथा अशोक वृक्ष पर छिपे रहकर सीता जी का अनुसन्धान करना........................ 232

॥ पञ्चदशः सर्गः पंद्रहवाँ सर्ग ॥ 248

वनसुषमां अवलोकयता हनुमता चैत्यप्रासादसंनिधौ दयनीयां सीतामालोक्येयमेव सेति तर्कणं तस्य प्रसन्नता च – वन की शोभा का अवलोकन करते हुए एक चैत्य प्रासाद के पास सीता जी का दयनीय अवस्था में दर्शन करके प्रसन्न होना.. 248

॥ षोडशः सर्गः सोलहवाँ सर्ग ॥ 265

सीतायाः शीलं सौन्दर्यं च मनसा प्रशस्य तां दुःखमग्नां निरीक्ष्य तदर्थं हनुमतोऽपि शोकः – हनुमान जी का सीता जी के शील और सौन्दर्य की मन ही मन सराहना करते हुए उन्हें कष्ट में देख कर स्वयं भी उनके लिए शोक करना.. 265

॥ सप्तदशः सर्गः सत्रहवाँ सर्ग ॥ 275

भीषणराक्षसीभिर्वृतायाः सीताया दर्शनेन हनुमतो हर्षः – भयंकर राक्षसियों से घिरी हुई सीताजी के दर्शन से हनुमान जी का हर्षित होना 275

॥ अष्टादशः सर्गः अठारहवाँ सर्ग ॥ 286

स्वकीयस्त्रीभिः परिवृतस्य रावणस्य अशोकवनिकायां आगमनं हनुमता तस्य दर्शनं च – अपनी स्त्रियों से घिरे हुए रावण का अशोक वाटिका में आगमन और हनुमान जी का उसे देखना............................... 286

॥ एकोनविंशः सर्गः उन्नीसवाँ सर्ग ॥.. 296

रावणं दृष्ट्वा दुःखभयचिन्तासु मग्नायाः सीताया अवस्था – रावण को देख कर दुःख, भय और चिंता में डूबी हुई सीता जी की अवस्था का वर्णन.. 296

॥ विंशः सर्गः बीसवाँ सर्ग ॥.. 304

रावणकर्तृकं सीतायाः प्रलोभनम् – रावण द्वारा श्री सीता जी को विविध प्रकार के प्रलोभन देना 304

॥एकविंशः सर्गः इक्कीसवाँ सर्ग॥.. 315

सीताकर्तृकं रावणस्य प्रबोधनं श्रीरामेण सह तुलनायां तस्य तुच्छतायाः प्रतिपादनम् – सीता जी द्वारा रावण को उत्तर में श्री राम की प्रशंसा और श्री राम के सामने रावण के तुच्छता का वर्णन 315

॥ द्वाविंशः सर्गः बाइसवाँ सर्ग॥ 326

रावणेन तस्याः कृते मासद्वयावधेः प्रदानं सीताकर्तृकं तस्य भर्त्सनं रावणस्य तां निर्भर्त्स्य राक्षसीनां नियन्त्रणे संस्थाप स्त्रिभिः सह स्वभवने गमनम् –रावण का सीता जी को दो माह के अवधि देना, सीता जी का रावण को फटकारना तथा रावण द्वारा सीता जी को धमकी देकर राक्षसियों को उन्हें नियंत्रण में रखने की आज्ञा देकर , स्त्रियों सहित पुन: अपने भवन के लिए प्रस्थान.. 326

॥त्रयोविंशः सर्गः तेइसवाँ सर्ग॥.. 341

राक्षसीभिः सीतायाः प्रबोधनम् - राक्षसियों द्वारा सीता जी समझाना341

॥ चतुर्विंशः सर्गः चौबीसवाँ सर्ग॥.. 348

सीतया रक्षसीनां वचसोऽनङ्गीकरणं, राक्षसीकर्तृकं तस्या भर्त्सनं च - सीता जी का राक्षसियों का वचन स्वीकार करने से इंकार तथा राक्षसियों द्वारा सीता जी को डराना – धमकाना।........................ 348

॥ पञ्चविंशः सर्गः पच्चीसवाँ सर्ग ॥... 362

राक्षसीवचोऽनङ्गीकृत्य शोकसन्तप्तायाः सीताया विलापः – राक्षसियों की बात मानने से इनकार करके शोक संतप्त सीताजी का विलाप करना... 362

॥षड्विंशः सर्गः छब्बीसवाँ अध्याय ॥... 369

सीतायाः करुणो विलापः, स्वप्रणपरित्यागनिश्चयश्च - सीता जी का विलाप तथा अपने प्राणों को त्याग देने का निश्चय........................ 369

॥सप्तविंशः सर्गः सत्ताईसवाँ सर्गः ॥... 384

त्रिजटायाः स्वप्नस्तत्र रक्षसां विनाशस्य श्रीराघवविजयस्य च सूचनम् - त्रिजटा द्वारा अपने स्वप्न का वर्णन, रावण के विनाश तथा श्री राम के विजय की सूचना.. 384

॥अष्टाविंशः सर्गः अठाईसवाँ सर्ग ॥... 399

विलपन्त्याः सीतायाः प्राणत्यागायोद्यमः – विलाप करती हुई सीता जी का प्राण त्याग करने लिए उद्यत होना.. 399

॥एकोनत्रिंशः सर्गः उनत्तीसवाँ सर्ग॥ 407

सीतायाः शुभशकुनानि -सीता जी द्वारा देखे गए शुभ शकुनों का वर्णन 407

॥त्रिंशः सर्गः तीसवाँ अध्याय ॥.. 411

सीतया स कर्तव्ये वार्तालापे हनुमतो विचारणा -सीता जी से वार्तालाप करने के विषय में हनुमान जी का सोच विचार करना 411

॥ एकत्रिंशः सर्गः इक्कत्तीसवाँ सर्ग ॥ 424

नुमता सीतां श्रावयतुं श्रीरामकथाया वर्णनम् - हनुमान जी द्वारा सीता जी को सुनाने के लिए श्री राम कथा का वर्णन 424

॥ द्वात्रिंशः सर्गः बत्तीसवाँ सर्गः ॥.. 430

सीताया वितर्कः -हनुमान जी के विषय में सीता में सीता जी का सोच विचार 430

॥त्रयस्त्रिंशः सर्गः तैंतीसवाँ सर्ग ॥.. 435

आत्मानं परिचाययन्त्या सीतया स्ववनागमनापहरणयोर्वृत्तान्तस्य वर्णनम् – सीताजी का हनुमान को परिचय देते हुए, वनगमन और अपहरण का वृतांत बताना 435

॥चतुस्त्रिंशः सर्गः चौंतीसवाँ सर्गः ॥ 444

हनुमति सीताया सन्देहः, स्वत एव तस्य समाधानं च सीताया आदेशेन हनुमता श्रीरामगुणानां वर्णनम् - सीता जी का हनुमान के प्रति संदेह तथा उसका समाधान तथा हनुमान जी द्वारा श्री रामजी के गुणों का वर्णन.. 444

॥पञ्चत्रिंशः सर्गः पैंतीसवाँ सर्गः ॥ 456

सीतया पृष्टेन हनुमता श्रीरामस्य शारीरिकलक्षणानां गुणानां च वर्णनं नरवानरमैत्री प्रसंग श्रावयित्वा सीताया मनसि स्वकीयविश्वासस्योत्पदनं च – सीता जी के पूछने पर श्री हनुमान जी का श्री राम और लक्ष्मण जी के शारीरिक चिन्हों का वर्णन करना तथा श्री राम सुग्रीव मैत्री का वृतांत सुना कर सीता जी को विश्वास दिलाना 456

॥षटत्रिंशः सर्गः छतीसवाँ सर्ग॥ 483

हनुमता सीतायै मुद्रिकाया अर्पणं कदा श्रीराघवो मामुद्धरिष्यतीति सौत्सुक्यं सीतायाः प्रश्नो हनुमता श्रीरामस्य सीताविषयकमनुरागं

वर्णयित्वा सीतायाः सान्त्वनं च – हनुमान जी का सीता जी को श्रीराम की मुद्रिका देना, सीताजी का उत्सुक होकर यह पूछना कि श्रीराम मेरा उद्धार कब करेंगे तथा हनुमान जी का श्री राम के सीताविषयक प्रेम का वर्णन करके उन्हें सांत्वना देना.. 483

॥सप्तत्रिंशः सर्गः सैंतीसवाँ सर्ग ॥.. 498

श्रीरामस्य शीघ्रं आनयनाय हनुमन्तं प्रति सीताया आग्रहो; हुमताऽऽत्मना सह चलितुं सीतां प्रत्यनुनयः; सीताया तस्यानङ्गीकरणं च - सीता जी का श्रीराम को शीघ्र ले आने का आग्रह, हनुमान जी का माता सीता को अपनी पीठ पर ले जाकर श्री राम से मिलवाने का प्रस्ताव तथा सीता जी का विभिन्न कारणों को उद्धृत करते हुआ उस प्रस्ताव को अस्वीकार करना 498

॥अष्टात्रिंशः सर्गः अड़तीसवाँ सर्ग ॥ 518

सीताया प्रत्यभिज्ञानतया चित्रकूटे घटितस्य काकप्रसंगस्य श्रावणं श्रीरामस्य शीघ्रमानयनयाग्रहकरणं हनुमते चूडामणेः समर्पणं च - सीता जी पहचान स्वरुप चित्रकूट पर्वत पर घटित हुए एक कौए के प्रसंग का वर्णन, हनुमान जी को चूड़ामणि देना तथा श्री राम को शीघ्र बुला लाने करने का अनुरोध.. 518

॥ एकोनचत्वारिंशः सर्गः उन्तालिसवाँ सर्ग ॥................................. 540

चूडामणिमादाय यान्तं हनुमन्तं प्रति सीतया श्रीरामप्रभृतीनुत्सायितुमाग्रहकरणं समुद्रतरणे संशयानायाः सीताया हनुमता वानराणां पराक्रमं वर्णयित्वाऽऽश्वासनम् – चूड़ामणि लेकर जाते हुए हनुमान जी से माता सीता का श्री राम और लक्ष्मण को उत्साहित करने लिए उपदेश, सेना द्वारा समुद्र उल्लंघन के विषय में

शंका तथा हनुमान जी द्वारा वानरों का पराक्रम बता कर सीता जी को सांत्वना देना.. 540

॥ चत्वारिंशः सर्गः चालीसवाँ सर्ग: ॥ 556

श्रीरामस्य कृते सीतया पुनः सन्देशस्य दानं तामाश्वास्य हनुमत उत्तरदिशायां प्रस्थानम् - सीता जी का श्री राम के प्रति पुन: सन्देश तथा हनुमान जी उन्हें आश्वासन देकर उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान 556

॥ एकचत्वारिंशः सर्गः इकतालिसवाँ सर्ग॥..................................... 564

हनुमता प्रमदावनस्य विध्वंसः - हनुमान जी के द्वारा प्रमादवन अर्थात अशोक वाटिका का विध्वंस.. 564

॥ द्विचत्वारिंशः सर्गः बयालिसवाँ सर्ग॥ 572

राक्षसीभ्यो वनविध्वंसवार्तामाकर्ण्य रावणेन किंकराणां प्रेषणं; हनुमता तेषां संहारश्च - राक्षसियों द्वारा अशोकवन के विध्वंस की रावण को सूचना, रावण का किंकर नामधारी राक्षसों को भेजना तथा हनुमान जी द्वारा उनका संहार.. 572

॥त्रिचत्वारिंशः सर्गः तिरालिसवाँ सर्ग॥ 585

हनुमता चैत्यप्रासादस्य विध्वंसस्तद् रक्षकाणां वधश्च –हनुमान जी द्वारा चैत्य प्रासाद का विध्वंस तथा उसके रक्षकों का वध 585

॥चतुश्चत्वारिंशः सर्गः चवालिसवाँ सर्ग ॥... 593

प्रहस्तपुत्रस्य जम्बुमालिनो वधः – हनुमान जी द्वारा प्रहस्त पुत्र जम्बुमाली का वध 593

॥ पञ्चचत्वारिंशः सर्गः पैंतालिसवाँ सर्ग॥ 600

मन्त्रिणः सप्तपुत्राणां वधः – हनुमान जी द्वारा रावण के सात मन्त्रीपुत्रों का वध 600

॥षट्चत्वारिंशः सर्गः छियालिसवाँ सर्ग॥ 606

रावणस्य पंचसेनापतीनां वधः – हनुमान जी द्वारा रावण के पांच सेनापतियो का वध 606

॥ सप्तचत्वारिंशः सर्गः सैंतालिसवाँ सर्ग॥ 618

रावणेरक्षस्य पराक्रमे वधश्च -युद्ध क्षेत्र में रावण पुत्र अक्षय कुमार का पराक्रम तथा हनुमान जी द्वारा उसका वध 618

॥अष्टचत्वारिंशः सर्गः अड़तालिसवाँ सर्ग ॥ 632

इन्द्रजिद्धनुमतोर्युद्धमिन्द्रजिद्दिव्यास्त्रबन्धनबद्धस्य हनुमतो रावणस्य राजसभायां गमनम् – इन्द्रजीत और हनुमान जी का युद्ध तथा ब्रहामस्त्र की मर्यादा रखते हुए हनुमान जी का उसमें बंध कर रावण की राजसभा में आगमन 632

॥ एकोनपञ्चाशः सर्गः उनचासवाँ सर्ग ॥ 652

रावणस्य प्रभावशालिरूपमवलोक्य हनुमतो मनसि नैकविधानां विचाराणामुद्रेकः – रावण के प्रभावशाली रूप को देख कर हनुमान जी का उसके विषय में विचार करना 652

॥ पञ्चाशः सर्गः पचासवाँ सर्ग॥ 659

रावणकर्तृकः प्रहस्तद्वारको हनुमन्तं प्रति लङ्कायामागमनप्रयोजनस्य प्रश्नः; हनुमता रामदूतत्वेनात्मनः परिचयदानम् – रावण की आज्ञा से प्रहस्त द्वारा हनुमान जी के लंका आगमन का कारण पूछना और हनुमान जी का श्री राम और सुग्रीव के दूत के रूप में अपना परिचय देना 659

॥एकपञ्चाशः सर्गः इक्यावनवाँ सर्ग॥ 666

श्रीरामप्रभावं वर्णयता हनुमता रावणस्य प्रबोधनम् – हनुमान जी का श्री राम के प्रभाव का वर्णन करते हुए रावण को समझाना और सीता जी को लौटा देने का आग्रह 666

॥ द्विपञ्चाशः सर्गः बावनवाँ सर्ग॥ 680

तवधानौचित्यं प्रतिपाद्य विभीषणेन तस्य कृते दण्डान्तरविधानाय रावणं प्रति प्रार्थनं; रावणेन तदनुरोधस्य - विभीषण जी द्वारा दूत के वध को अनुचित बताते हुए कोई अन्य दंड देने के लिए रावण से प्रार्थना तथा रावण द्वारा उसका अनुमोदन 680

॥त्रिपञ्चाशः सर्गः तिरेपनवाँ सर्ग॥ 690

हनुमत्पृच्छं प्रदीप्य राक्षसैस्तस्य नगरे परिचारणम् – राक्षसों का हनुमान की की पूँछ में आग लगाकर उन्हें नगर में घुमाना 690

॥चतुःपञ्चाशः सर्गः चौवनवाँ सर्ग॥ 703

लङ्काया दहनं रक्षसां विलापश्च – हनुमान जी द्वारा लंका दहन का अद्भुत पराक्रम और राक्षसों का विलाप 703

॥ पञ्चपञ्चाशः सर्गः पचपनवाँ सर्ग॥ 718

सीताविनाशाशङ्कया हनुमतश्चिन्ता तस्या निवारणं च -सीता जी की कुशलता के लिए हनुमान जी की चिंता तथा उसका निवारण........ 718

॥षट्पञ्चाशः सर्गः छप्पनवाँ सर्ग ॥ 730

पुनः सीता समालोक्य हनुमतो लङ्कातो निवर्तनं तेन समुद्रस्य लंघनं च – हनुमान जी का पुन: सीता माता से मिलकर लौटना तथा समुद का उल्लंघन 730

॥सप्तपञ्चाशः सर्गः सत्तावनवाँ सर्ग॥ 741

समुद्रल्लङ्घ्य हनुमतो जाम्बवदङ्गदप्रभृतिभिः सुहृद्भिः सह समागमः – हनुमान जी का समुद्र तो लांघ कर अंगद आदि सुहृदयों से मिलना 741

॥अष्टपञ्चाशः सर्गः अठ्ठावनवाँ सर्ग ॥ 756

जाम्बवता ष्टेन स्वकीय लङ्कायात्रासंबन्धि संपूर्णवृत्तस्य श्रावणम् – जाम्बवान के पूछने पर हनुमान जी का अपनी लंका यात्रा का वृतांत बताना 756

॥एकोनषष्टितमः सर्गः उन्सठवाँ सर्ग॥ 803

सीतादुरवस्थां वर्णयित्वा हनुमता लङ्कामाक्रमितुं वानराणामुत्तेजनम् – हनुमान जी द्वारा सीताजी की दुरावस्था बताकर वानरों को लंका पर आक्रमण करने के लिए उत्तेजित करना 803

॥ षष्टितमः सर्गः साठवाँ सर्ग॥ 815

लङ्कां जित्वा सीताया आनयनार्थमगदस्योत्साहसमन्वितो विचारो जाम्बवता तस्य निवारणं च – अंगद द्वारा लंका को जीतकर सीताजी को लंका से ले आने का उत्साह् पूर्ण विचार ठाट जाम्बवान द्वारा उसका निवारण 815

॥एकषष्टितमः सर्गः इकसठवाँ सर्ग॥ 820

मधुवनं गत्वा तत्रत्यानां मधूनां फलानां च वानरैर्यथेष्टमुपभोगो वनरक्षकस्य भुवि विकर्षणं च – वानरों द्वारा मधुवन में जाकर वहां के मधु और फलों का यथाइच्छा उपभोग कर वन राक्षसों को घसीटना 820

॥ द्विषष्टितमः सर्गः बासठवाँ सर्ग॥ 829

वानरैर्मधुवनरक्षकाणां दधिमुखस्य च पराभवः सभृत्यस्य दधिमुखस्य सुग्रीवपार्श्वे गमनं च – वानरों द्वारा मधुवन के रक्षसो और दधिमुख की पराजय तथा दधिमुख का सेवकों सहित सुग्रीव के पास जाना....... 829

॥त्रिषष्टितमः सर्गः तिरेसठवाँ सर्ग ॥.. 841

दधिमुखान् मधुवनविध्वंस वार्तां आकर्ण्य सुग्रीवस्य हनुमदादीनां साफल्यविषयेऽनुमानम् – दधिमुख से मधुवन के विध्वंस का समाचार सुनकर सुग्रीव का हनुमान आदि वानरों की सफलता के विषय में अनुमान.. 841

॥चतुःषष्टितमः सर्गः चौंसठवाँ सर्ग ॥ 851

दधिमुखतः सुग्रीवसन्देशमाकर्ण्य अंगदहमदादीनां वानराणां किष्किन्धायां गमनं; हनुमता श्रीरामं प्रणम्य सीतादर्शन समाचारस्य निवेदनं च – दधिमुख से सुग्रीव का सन्देश सुनकर अंगद हनुमान आदि वानरों का किष्किन्धा में पहुंचना और हनुमान जी का श्रीराम को प्रणाम करके सीताजी के दर्शन का समाचार बताना................... 851

॥ पञ्चषष्टितमः सर्गः पैंसठवाँ सर्ग ॥ 864

हनुमता श्रीरामं प्रति सीतावृत्तान्तस्य निवेदनम् – हनुमान जी का श्रीराम को सीता जी का समाचार सुनाना... 864

॥षट्षष्टितमः सर्गः छियासठवाँ सर्ग॥.. 873

चूडामणिं दृष्ट्वा सीतावृत्तमुपलभ्य च श्रीरामस्य सीताकृते विलापः– चूड़ामणि को देखकर और सीताजी का समाचार प्राप्त कर श्रीराम का उनके लिए विलाप.. 873

॥सप्तषष्टितमः सर्गः सडसठवाँ सर्ग॥ 878

हनुमता श्रीरामं प्रति सीतासन्देशस्य श्रावणम् – हनुमान जी का भगवान् श्रीराम को सीता का सन्देश सुनाना 878

॥अष्टषष्टितमः सर्गः अडसठवाँ सर्ग॥ 889

सीतायाः सन्देशस्य स्वकर्तृकतन्निवारणस्य च वृत्तान्तस्य हनुमता वर्णनम् – हनुमान जी का सीता के संदेह और हनुमान जी के द्वारा उसके निवारण का वृतांत बताना 889

ॐ
॥श्री हरि॥

श्रीमद्रारामायण पारायणोपक्रमः

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
पारुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकि तम् ॥१॥

वाल्मीकिमुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः।
शृयवराम कथानादं को न याति परां गतिम् ॥२॥

यः पिबन्सततं रामचरितामृतसागरम् ।
अतृप्तस्तं मुनि वन्दे प्राचेतसमकल्मषम् ॥३॥

गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम् ।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥४॥

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम् ॥ ५ ॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥६॥

उलुङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलील यः शोकवह्नि जनकात्मजायाः।
आदाय तेनैव ददाह लङ्का नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥ ७॥

प्राञ्चनेयमतिपाटलाननं काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम् ।
पारिजाततरुमूलवासिनं भावयामि पवमाननन्दनम् ॥ ८ ॥

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तक कृतमस्तकाञ्जलिम्।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुति नमत राक्षसान्तकम् ॥ ६ ॥

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥ १० ॥

तदुपगतसमाससन्धियोगं सममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।
रघुवरचरितं मुनिप्रणीत दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥ ११ ॥

श्रीराघवं दशरथात्मजमप्रमेयं सीतापति रघुकुलान्वयरत्नदोपम् ।
आजानुबाहुमरविन्ददलायताक्षं राम निशाचरविनाशकरं नमामि
॥१२॥

वैदेहीसहित सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्येपुष्पकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम् ।
अग्रे वाचयति प्रमञ्चनसुते तत्वं मुनिभ्यः परं व्याख्यान्तं
भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥१३॥

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ प्रथमः सर्गः पहला सर्ग॥

हनुमता समुद्रस्य लंघनं मैनाकेन तस्य सत्कारस्ततः सुरसायाः पराजयः सिंहिकाया वधं कृत्वा तस्य दक्षिणतटे गमनं तत्र तेन लङ्काशोभाया निरीक्षणम् – हनुमान जी के द्वारा समुद्र पार करना, मैनाक के द्वारा उनका सत्कार, सुरसा की पराजय तथा सिंहिका का वध करके उनका समुद्र के पार पहुँच कर लंका की शोभा का निरिक्षण

ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्षणः ।
इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि ॥ १ ॥

तदनन्तर शत्रुदमनकर्ता हनुमान जी, सीता जी की खोज करने के लिये, आकाश के उस मार्ग से, जहाँ चारण गण चला करते हैं, जाने को तैयार हुए ॥१॥

दुष्करं निष्प्रतिद्वन्द्वं चिकीर्षन् कर्म वानरः ।
समुदग्रशीरोग्रीवो गवां पतिरिवाबभौ ॥ २ ॥

इस प्रकार के दुष्कर कर्म करने की इच्छा करने के पश्च्यात, सिर और गर्दन उठा कर, वृषभ की तरह, प्रतिद्वन्द्वी रहित अथवा विघ्न-बाधा रहित, हनुमान जी शोभायमान हुए। ॥२॥

अथ वैडूर्यवर्णेषु शाद्वलेषु महाबलः ।
धीरः सलिलकल्पेषु विचचार यथासुखम् ॥ ३ ॥

फिर वीर और धीर स्वाभाव वाले हनुमान जी, समुद्र जल के तरह अथवा पन्ने की तरह हरे रंग की घास के ऊपर, यथासुख विचरने लगे। ॥३॥

द्विजान् वित्रासयन् धीमानुरसा पादपान् हरन् ।
मृगांश्च सुबहून् निघ्नन् प्रवृद्ध इव केसरी ॥ ४ ॥

उस समय बुद्धिमान हनुमान जी, पक्षियों को त्रस्त करते, अपनी छाती की टक्कर से अनेक वृक्षों को उखाड़ते, और बहुत से मृगों को कुचलते हुए बडे भयंकर सिंह जैसे प्रतीत होते थे। ॥४॥

नीललोहितमाञ्जिष्ठपत्रवर्णैः सितासितैः ।
स्वभावसिद्धैर्विमलैर्धातुभिः समलंकृतम् ॥ ५ ॥

कामरूपिभिराविष्टमभीक्ष्णं सपरिच्छदैः ।
यक्षकिंनरगन्धर्वैर्देवकल्पैश्च पन्नगैः ॥ ६॥

स तस्य गिरिवर्यस्य तले नागवरायुते ।
तिष्ठते कपिवरस्तस्य ह्रदे नाग इवाबभौ ॥ ७ ॥

उस पर्वत का जो तलप्रदेश था, वह पहाड़ों में स्वभाव से ही उत्पन्न होने वाली नीली, लाल, सुर्ख और कमल के रंग की तथा सफेद एवं काली रंग की, रंग बिरंगी स्वभावसिद्ध धातुओं से अलंकृत था। उस पर्वत पर विविध भांति के आभूषणों और वस्त्रों को धारण किए हुए और अपने अपने परिवारों सहित देवताओं की तरह काम रूपी यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और सर्पों द्वारा सेवित तथा उत्तम जाति के हाथियों से व्याप्त, उस महेन्द्र पर्वत की तलहटी में, वानरश्रेष्ठ हनुमान जी, जलाशय में हाथी की तरह शोभायमान हुए। ॥५-७॥

स सूर्याय महेन्द्राय पवनाय स्वयम्भुवे ।
भूतेभ्यश्चाञ्जलिं कृत्वा चकार गमने मतिम् ॥ ८ ॥

हनुमान जी ने सूर्य , इन्द्र, वायु, ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं को नमस्कार कर के वहाँ से प्रस्थान करने की इच्छा की। ॥८॥

अञ्जलिं प्राङ्मुखं कुर्वन् पवनायात्मयोनये ।
ततो हि ववृधे गन्तुं दक्षिणो दक्षिणां दिशम् ॥ ९ ॥

तदनन्तर वह पूर्व मुख होकर, हाथ जोड़ अपने पिता पवनदेव को प्रणाम किया और दक्षिण दिशा की ओर जाने को अग्रसर हुए। ॥९॥

प्लवगप्रवरैर्दृष्टः प्लवने कृतनिश्चयः ।
ववृधे रामवृद्ध्यर्थं समुद्र इव पर्वसु ॥ १० ॥

वानरश्रेष्ठों ने देखा कि, श्रीरामचन्द्र जी के कार्य को सिद्ध करने के लिए, समुद्र लांघने का निश्चय किये हुए हनुमान जी का शरीर, ऐसे बढ़ने लगा जैसे पूर्णिमा के दिन समुद्र बढ़ता है। ॥१०॥

निष्प्रमाणशरीरः सन् लिलङ्घयिषुरर्णवम् ।
बाहुभ्यां पीडयामास चरणाभ्यां च पर्वतम् ॥ ११ ॥

स चचालाचलश्चाशु मुहूर्तं कपिपीडितः ।
तरूणां पुष्पिताग्राणां सर्वं पुष्पमशातयत् ॥ १२ ॥

हनुमान जी ने समुद्र पार करने के लिए अपना शरीर विशाल रूप से बढ़ाया और अपनी दोनों भुजाओं और चरणों से पर्वत को ऐसा दबाया कि दबाने के एक मुहर्त के अन्दर अचल पर्वत चलायमान हो गया और उसके ऊपर जो पुष्पित वृक्ष थे, उन वृक्षों के सभी फूल झड़ कर गिर पड़े ॥११-१२॥

तेन पादपमुक्तेन पुष्पौघेण सुगन्धिना ।
सर्वतः संवृतः शैलो बभौ पुष्पमयो यथा ॥ १३ ॥

वृक्षों से झड़े हुए सुगन्धयुक्त फूलों के ढेर से वह पर्वत ढक गया और ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो वह समस्त पर्वत फूलों का ही है ॥१३॥

तेन चोत्तमवीर्येण पीड्यमानः स पर्वतः ।
सलिलं सम्प्रसुस्राव मदमत्त इव द्विपः ॥ १४ ॥

जब महाबलशाली कपिप्रवर हनुमान जी ने उस पर्वत को दबाया, तब उसमे से अनेकों जल की धारें निकल पड़ीं। वह धारें ऐसी प्रतीत होती थीं, मानों किसी मतवाले हाथी के शरीर से मद बह रहा हो॥१४॥

पीड्यमानस्तु बलिना महेन्द्रस्तेन पर्वतः ।
रीतिर्निर्वर्तयामास काञ्चनाञ्जनराजतीः ॥ १५ ॥

बलवान हनुमान जी के दबाने से उस महेन्द्राचल पर्वत के चारों ओर धातुओं के बहने के कारण, वह पर्वत ऐसा प्रतीत होता था मानों पिघलाए हुए सोने और चांदी की रेखाएँ खिंची हों अथवा, पीली, काली और सफेद लकीरें खिंच रहो हों। ॥१५॥

मुमोच च शिलाः शैलो विशालाः समनःशिलाः ।
मध्यमेनार्चिषा जुष्टो धूमराजीरिवानलः ॥ १६ ॥

क्षुब्ध होकर वह पर्वत बड़ी बड़ी शिलाएं गिराने लगा और उस समय ऐसा दिखाई देने लगा मानों बीच में तो आग जल रही हो और चारों ओर से धुआं निकल रहा हो॥१६॥

गिरिणा पीड्यमानेन पीड्यमानानि सर्वतः।
गुहाविष्टानि सत्त्वानि विनेदुर्विकृतैः स्वरैः ॥ १७ ॥

हनुमान जी के दबाने से उस पर्वत की गुफाओं में रहने वाले जीव जन्तु जोर जोर से चिल्लाने लगे ॥१७॥

स महान् सत्त्वसन्नादः शैलपीडानिमित्तजः ।
पृथिवीं पूरयामास दिशश्च उपवनानि च ॥ १८ ॥

पर्वत के दबने के कारण उन जीव जन्तुओं का ऐसा भयंकर नाद हुआ कि, उससे संपूर्ण पृथिवी, दिशा, और जंगल व्याप्त हो गए ॥१८॥

शिरोभिः पृथुभिर्नागा व्यक्तस्वस्तिकलक्षणैः ।
वमन्तः पावकं घोरं ददंशुर्दशनैः शिलाः ॥ १९॥

स्वस्तिक चिन्हों से चिन्हित फनधारी बड़े बड़े सर्प, जो उस पर्वत में रहा करते थे, क्रुद्ध हुए और मुख से भयंकर भाग उगलते हुए, शिलाओं को अपने दांतों से काटने लगे ॥१९॥

तास्तदा सविषैर्दष्टाः कुपितैस्तैर्महाशिलाः ।

जज्वलुः पावकोद्दीप्ता बिभिदुश्च सहस्रधा ॥ २० ॥

क्रुद्ध हो कर विषधरों द्वारा दांतों से काटी हुई बड़ी बड़ी शिलाएँ जलने लगी और उनके हज़ारों टुकड़े हो गये ॥२०॥

यानि त्वौषधजालानि तस्मिञ्जातानि पर्वते ।
विषघ्नान्यपि नागानां न शेकुः शमितुं विषम् ॥ २१ ॥

यद्यपि उस पर्वत पर सर्पविषनाशक अनेक जड़ी बूटियां विद्यमान थीं, तब भी वह उस विष को शान्त करने मे असफल रहीं ॥२१॥

भिद्यतेऽयं गिरिर्भूतैरिति मत्वा तपस्विनः ।
त्रस्ता विद्याधरास्तस्मादुत्पेतुः स्त्रीगणैः सह ॥ २२ ॥

जब हनुमानजी ने पर्वत को दबाया, तो उस पर्वत पर बसने वाले तपस्वी और विद्याधर जन घबरा कर अपनी अपनी स्त्रियों को साथ लेकर वहाँ से चल दिये ॥२२॥

पानभूमिगतं हित्वा हैममासवभाजनम् ।
पात्राणि च महार्हाणि करकांश्च हिरण्मयान् ॥ २३ ॥

उस समय भय के कारण वह मदपान के आसन, सोने की बैठकी और बड़े बड़े मूल्यवान सुवर्णपान, सुवर्ण पात्र इत्यादि वहीं छोड़ कर चल दिये ॥२३॥

लेह्यान् उच्चावचान् भक्ष्यान् मांसानि विविधानि च ।
आर्षभाणि च चर्माणि खड्गांश्च कनकत्सरून् ॥ २४ ॥

चटनी आदि विविध पदार्थ और खाने के योग्य तरह तरह के मांस, सांबर के चमड़े को बनी ढालें तथा सोने के मूठ की तलवारें जहां की तहां छोड़, वह सभी जान बचा कर, आकाशमार्ग से चल पड़े ॥२४॥

कृतकण्ठगुणाः क्षीबा रक्तमाल्यानुलेपनाः ।
रक्ताक्षाः पुष्कराक्षाश्च गगनं प्रतिपेदिरे ॥ २५ ॥

गले में सुन्दर पुष्पहारों को पहने तथा शरीर में उत्तम अंगराग लगाये अरुण एवं कमल नेत्रों से युक्त विद्याधरों ने आकाश में जा कर दम लिया।॥२५॥

हारनूपुरकेयूरपारिहार्यधराः स्त्रियः ।
विस्मिताः सस्मितास्तस्थुराकाशे रमणैः सह ॥ २६ ॥

इनकी स्त्रियां, जो हार, नपुर, और कंगनों से अपना शरीर सजाये हुए थीं, अत्यन्त आश्चर्यचकित हुई औए अपने अपने पतियों के पास जा कर, आकाश में खड़ी हो गयीं ॥२६॥

दर्शयन्तो महाविद्यां विद्याधरमहर्षयः ।
विस्मितास्तस्थुराकाशे वीक्षांचक्रुश्च पर्वतम् ॥ २७ ॥

वे विद्याधर और महर्षिगण अणिमा आदि अष्ट महाविद्याओं को दिखलाते, आकाश में खड़े होकर पर्वत की तरफ देखने लगे ॥२७॥

शुश्रुवुश्च तदा शब्दमृषीणां भावितात्मनाम् ।
चारणानां च सिद्धानां स्थितानां विमलेऽम्बरे ॥ २८ ॥
एष पर्वतसंकाशो हनूमान् मारुतात्मजः ।
तितीर्षति महावेगः समुद्रं वरुणालयम् ॥ २९ ॥

वह निर्मल आकाशस्थित विशुद्धमना महात्मा ऋषियों को यह कहते सुन रहे थे कि, देखो यह पर्वताकार शरीर वाले पवनपुत्र हनुमान बड़ी तेज़ी से समुद्र के पार जाना चाहते हैं ॥ २८-२९॥

रामार्थं वानरार्थं च चिकीर्षन् कर्म दुष्करम् ।
समुद्रस्य परं पारं दुष्प्रापं प्राप्तुमिच्छति ॥ ३० ॥

यह वीर वानर हनुमान जी, श्रीरामचन्द्र जी का कार्यसिद्ध करने और इन वानरों के प्राण बचाने के लिये, दुष्प्राप्य समुद्र के उस पार जाने की इच्छा कर, एक दुष्कर कार्य करना चाहते हैं ॥३०॥

इति विद्याधराः वाचः श्रुत्वा तेषां तपस्विनाम् ।
तमप्रमेयं दद्दशुः पर्वते वानरर्षभम् ॥ ३१ ॥

उन तपस्वियों की कही हुई इन बातों को सुन, विद्याधर जन उस पर्वत पर स्थित अप्रेमय बलशाली हनुमान जी को देखने लगे ॥३१॥

दुधुवे च स रोमाणि चकम्पे चानलोपमः ।

ननाद च महानादं सुमहानिव तोयदः ॥ ३२ ॥

उस समय अग्नि की तरह, पवनपुत्र हनुमान जी ने अपने शरीर के रोमों को फुला, पर्वताकार अपने शरीर को हिलाया और महामेघ की तरह महानाद कर के वह गरजे ॥३२॥

आनुपूर्व्या च वृत्तं तल्लाङ्गूलं रोमभिश्चितम् ।
उत्पतिष्यन् विचिक्षेप पक्षिराज इवोरगम् ॥ ३३ ॥

अपनी चढ़ाव उतार दार गोल और रुएं दार पूँछ को हनुमान जी ने ऐसे झटकारा जैसे गरुड़ सांप को झटकारता है ॥३३॥

तस्य लाङ्गूलमाविद्धमतिवेगस्य पृष्ठतः ।
ददृशे गरुडेनेव ह्रियमाणो महोरगः ॥ ३४ ॥

इनकी पीठ पर हिलती हुई इनकी पूँछ, गरुड द्वारा पकड़े हुए अजगर सांप की तरह हिलती हुई दिखाई देती थी। ॥३४॥

बाहू संस्तम्भयामास महापरिघसंनिभौ ।
आससाद कपिः कट्यां चरणौ संचुकोच च ॥ ३५ ॥

हनुमान जी ने कूदने के समय अपने परिघ के आकार वाली दोनों भुजाओं को जमा कर, कमर पर दोनों पैरों का बल दिया और पैरों को सिकोड़ लिया ॥३५॥

संहृत्य च भुजौ श्रीमान् तथैव च शिरोधराम् ।
तेजः सत्त्वं तथा वीर्यमाविवेश स वीर्यवान् ॥ ३६ ॥

उन्होंने अपने हाथों, सिर और होठों को भी सिकोड़ा । तदनन्तर अपने तेज, बल और पराक्रम को सँभाल कर उन्होंने दूर से जाने के रास्ते को देखा ॥३६॥

मार्गमालोकयन् दूरादूर्ध्वप्रणिहितेक्षणः ।
रुरोध हृदये प्राणानाकाशमवलोकयन् ॥ ३७ ॥

पद्भ्यां दृढमवस्थानं कृत्वा स कपिकुञ्जरः ।
निकुञ्च्य कर्णौ हनुमानुत्पतिष्यन् महाबलः ॥ ३८ ॥

उछलने के समय हनुमान जी ने ऊपर की ओर आकाश को देखकर, दम साधा और जमीन पर अपने पैर जमा कर, दोनों कानों को सिकोड़ा ॥ ३७-३८॥

वानरान् वानरश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत् ।
यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः ॥ ३९॥

गच्छेत् तद्वद् गमिष्यामि लङ्कां रावणपालिताम् ।
नहि द्रक्ष्यामि यदि तां लङ्कायां जनकात्मजाम् ॥ ४०॥

अनेनैव हि वेगेन गमिष्यामि सुरालयम् ।
यदि वा त्रिदिवे सीतां न द्रक्ष्यामि कृतश्रमः ॥ ४१ ॥
बद्ध्वा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम् ।
सर्वथा कृतकार्योऽहमेष्यामि सह सीतया ॥ ४२ ॥

आनयिष्यामि वा लङ्कां समुत्पाट्य सरावणाम् ।
एवमुक्त्वा तु हनुमान् वानरान् वानरोत्तमः ॥ ४३॥

वह कपियों में उत्तम हनुमान वानरों से बोले कि, जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी के छोड़े हुए बाण हवा की गति से जाते हैं, उसी प्रकार मैं रावण पालित लंका में चला जाऊँगा। यदि जनकनन्दिनी मुझे वहाँ न मिलीं, तो इसी वेग से मैं सीधा स्वर्ग को चला जाऊँगा। यदि वहाँ भी प्रयत्न करने पर सीता जी नहीं मिलीं, तो मैं राक्षस राज रावण को बांध कर यहाँ ले आऊंगा । या तो मैं इस प्रकार अपना मनोरथ सफल हो जाने पर सीता सहित लौटूंगा, नहीं तो रावण सहित लंका को ही उखाड़ कर ही ले आऊँगा । कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने वानरों के उत्साह वर्धन के लिए इस प्रकार कहा ॥ ३९- ४३॥

उत्पपाताथ वेगेन वेगवानविचारयन् ।
सुपर्णमिव चात्मानं मेने स कपिकुञ्जरः ॥ ४४॥

मार्ग के विघ्नों की कुछ भी परवाह न करते हुए, वेगवान हनुमान जी अत्यन्त वेग से कूदे और उस समय अपने को गरुड़ के तुल्य समझा ॥४४॥

समुत्पतति वेगात् तु वेगात् ते नगरोहिणः ।
संहृत्य विटपान् सर्वान् समुत्पेतुः समन्ततः ॥ ४५॥

उस समय हनुमान जी के छलांग भरते ही, उस पहाड़ के पेड़, पत्ते और डालियां चारों ओर से हनुमान जी के पीछे बड़े वेग से चले ॥४५॥

स मत्तकोयष्टिभकान् पादपान् पुष्पशालिनः ।
उद्वहनुरुवेगेन जगाम विमलेऽम्बरे ॥ ४६॥

हनुमान जी पक्षियों से युक्त और पुष्पित वृक्षों को अपनी जांघों के वेग से अपने साथ लिये हुए विमल आकाश में चले गए ॥४६॥

उरुवेगोत्थिता वृक्षा मुहूर्तं कपिमन्वयुः ।
प्रस्थितं दीर्घमध्वानं स्वबन्धुमिव बान्धवाः ॥ ४७॥

जांघों के वेग से उड़े हुए वह पेड़, कुछ ही देर तक हनुमान जी के पोछे पीछे गये। इसके पश्च्यात जिस प्रकार दूर देश की यात्रा करने वाले बंधु के पीछे उसके भाईबंध कुछ दूर तक जाकर लौट आते हैं, उसी प्रकार यह वृक्ष भी हनुमान जी को थोड़ी दूर पहुँचा कर वापस लौट आए ॥४७॥

तमूरुवेगोन्मथिताः सालाश्चान्ये नगोत्तमाः ।
अनुजग्मुर्हनूमन्तं सैन्या इव महीपतिम् ॥ ४८॥

हनुमान जी की जांघों के वेग से उखड़े हुए साल श्रादि के बड़े बड़े पेड़ उनके पीछे वैसे ही चले जाते थे, जैसे राजा के पीछे पीछे सेना चलती है ॥४८॥

सुपुष्पिताग्रैर्बहुभिः पादपैरन्वितः कपिः ।
हनुमान् पर्वताकारो बभूवाद्भुतदर्शनः ॥ ४९॥

उस समय अनेक फूले हुए वृक्षों द्वारा आकाश में स्थित पर्वताकार हनुमान जी का अद्भुत रूप दिखाई पड़ा ॥४९॥

सारवन्तोऽथ ये वृक्षा न्यमज्जल्लवणाम्भसि ।
भयादिव महेन्द्रस्य पर्वता वरुणालये ॥ ५०॥

हनुमान जी के पीछे उड़ने वाले वृक्षों में से जो भारी पेड़ थे, वह समुद्र में गिर कर वैसे ही डूब गये जैसे इन्द्र के भय से पहाड़ समुद्र में डूबे थे ॥५०॥

स नानाकुसुमैः कीर्णः कपिः साङ्कुरकोरकैः ।
शुशुभे मेघसंकाशः खद्योतैरिव पर्वतः ॥ ५१॥

उन पेड़ों के फूलों, अंकुरों और कलियों से उन मेघ के समान कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ऐसे शोभायमान हो रहे थे, जैसे कि जुगुनुओं से कोई पर्वत शोभायमान होता है। ॥५१॥

विमुक्तास्तस्य वेगेन मुक्त्वा पुष्पाणि ते द्रुमाः ।
अवशीर्यन्त सलिले निवृत्ताः सुहृदो यथा ॥ ५२॥

हनुमान जी के वेग से छूट कर, वह वृक्ष अपने फूलों को गिरा कर और तितर बितर हो कर समुद्र के जल में उसी प्रकार गिरे, जिस प्रकार किसी अपने बंधुजन को पहुंचा कर, सुहृद लोग तितर बितर हो जाते हैं ॥५२॥

लघुत्वेनोपपन्नं तद् विचित्रं सागरेऽपतत् ।
द्रुमाणां विविधं पुष्पं कपिवायुसमीरितम् । ॥ ५३॥

हनुमान जी के वायु वेग से उत्पन्न पवन द्वारा प्रेरित वृक्षों के विविध प्रकार के पुष्प, हल्के होने के कारण समुद्र में विचित्र रीति से गिर कर शोभित होते थे ॥५३॥

ताराचितं इवाकाशं प्रबभौ स महार्णवः ।
पुष्पौघेण सुगन्धेन नानावर्णेन वानरः ॥ ५४॥

बभौ मेघ इवोद्यन् वै विद्युद्गणविभूषितः ।
तस्य वेगसमुद्भूतैः पुष्पैस्तोयमदृश्यत ॥ ५५॥

ताराभिरिव रामाभिरुदिताभिरिवाम्बरम् ।
तस्याम्बरगतौ बाहू ददृशाते प्रसारितौ ॥ ५६॥

उन फूलों के गिरने से समुद्र, सहस्रों तारों से शोभित आकाश की तरह प्रतीत होता था। सुगन्धयुक्त और रंग विरंगे पुष्पों से कपिश्रेष्ठ हनुमान ऐसे शाभित हुए जैसे बिजली की रेखाओं से आच्छादित आकाश स्थित मेघ शोभित होता है। जिस प्रकार आकाश मण्डल, उदित हुए सुन्दर तारागण के गुच्छों से सज जाता है। उसी प्रकार समुद्र का जल हनुमान जी के वेग से उड़ कर गिरे हुए पुष्पों से शोभित होने लगा। उस समय हनुमान जी के हाथ आकाश में ऐसे प्रतीत होते थे ॥५४-५६॥

पर्वताग्राद् विनिष्क्रान्तौ पञ्चास्याविव पन्नगौ ।
पिबन्निव बभौ चापि सोर्मिजालं महार्णवम् ॥ ५७॥

मानों पर्वत के शिखर से पांच सिरों वाले दो सांप निकल रहे हों। आकाश में जाते समय हनुमान जी जब नोचे को मुख करते थे, तब ऐसा जान पड़ता था कि, मानो तरंगों से युक्त समुद्र को पी डालना चाहते है ॥५७॥

पिपासुरिव चाकाशं ददृशे स महाकपिः ।
तस्य विद्युत्प्रभाकारे वायुमार्गानुसारिणः ॥ ५८॥

और जब वह ऊपर को मुख उठा कर चलते हैं तब ऐसा दिखाई पड़ता है मानों वह आकाश को पी जाना चाहते हैं। वायुमार्ग से जाते हुए हनुमान जी के बिजली की तरह चमकते हुए ॥५८॥

नयने विप्रकाशेते पर्वतस्थाविवानलौ ।
पिङ्गे पिङ्गाक्षमुख्यस्य बृहती परिमण्डले ॥ ५९॥

दोनों नेत्र ऐसे दिखाई पड़ते थे जैसे पर्वत पर दोनो ओर से दावानल लगा हो। उनको पीली पीली और बड़ी बड़ी ॥५९॥

चक्षुषी सम्प्रकाशेते चन्द्रसूर्याविव स्थितौ ।
मुखं नासिकया तस्य ताम्रया ताम्रमाबभौ ॥ ६०॥

आँखें चन्द्रमा और सूर्य के समान चमक रही थीं। लाल नाक और हनुमान जी का लाल लाल मुखमण्डल ॥६०॥

सन्ध्यया समभिस्पृष्टं यथा तत्सूर्यमण्डलम् ।
लाङ्गूलं च समाविद्धं प्लवमानस्य शोभते ॥ ६१ ॥

अंबरे वायुपुत्रस्य शक्रध्वज इवोच्छ्रितम् ।
लाङ्गूलचक्रो हनुमान् शुक्लदंष्ट्रोऽनिलात्मजः ॥ ६२ ॥

सन्ध्याकालीन सूर्यमण्डल की तरह शोभायमान हो रहा था। आकाश मार्ग से जाते समय हनुमान जी की हिलती हुई पूँछ ऐसी शोभायमान हो रही थी, जैसे आकाश में इन्द्रध्वज हो। फिर जब कभी वे अपनी पूंछ को मण्डलाकार कर लेते थे, तब मुख के सफेद दांतों के साथ उनकी छवि ऐसी दिखाई देती थी ॥६१-६२॥

व्यरोचत महाप्राज्ञः परिवेषीव भास्करः ।
स्फिग्देशेनातिताम्रेण रराज स महाकपिः ॥ ६३॥

महता दारितेनेव गिरिर्गैरिकधातुना ।
तस्य वानरसिंहस्य प्लवमानस्य सागरम् ॥ ६४॥

जैसी सूर्य में मण्डल पड़ने से सूर्य की छवि दिखाई देती है। उनकी कमर का पिछला भाग अत्यधिक लाल होने के कारण ऐसा जान पड़ता था, मानों पर्वत में गेरू की खान खुली पड़ी दो। वानर सिंह हनुमान जी के समुद्र लांघने के समय। ॥६३-६४॥

कक्षान्तरगतो वायुः जीमूत इव गर्जति ।
खे यथा निपतत्युल्का उत्तरान्ताद् विनिःसृता ॥ ६५॥

उनकी दोनों बगलों में से वायु के निकलने का ऐसा शब्द होता था जैसा कि, मेघ के गर्जने से होता है। उस समय वेगवान कपि ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे उत्तर दिशा से एक बड़ा अग्नि का गोला दूसरे एक छोटे गोले के साथ दक्षिण की ओर चला जाता हो। ॥६५॥

दृश्यते सानुबन्धा च तथा स कपिकुञ्जरः ।
पतत्पतङ्गसंकाशो व्यायतः शुशुभे कपिः ॥ ६६॥

प्रवृद्ध इव मातङ्गः कक्ष्यया बद्ध्यमानया ।

उपरिष्टाच्छरीरेण च्छायया चावगाढया ॥ ६७॥

सागरे मारुताविष्टा नौरिवासीत् तदा कपिः ।
यं यं देशं समुद्रस्य जगाम स महाकपिः ॥ ६८॥

तब जाते हुए सूर्य की तरह बड़े आकार वाले कपिश्रेष्ठ हनुमान जी अपनी पूँछ को लपेटे हुए, कमर में रस्सा बंधे हुए महागज की तरह शोभायमान होने लगे। आकाश में उड़ते हुए हनुमान जी के बड़े शरीर और समुद्र के जल में पड़ी हुई उनकी छाया दोनों मिलकर ऐसी शोभा दे रहे थे, जैसी वायु के झोंको से कांपती हुई नौका शोभा देती है। हनुमान जी समुद्र के जिस भाग में पहुंचते ॥६६-६८॥

स तु तस्याङ्गवेगेन सोन्माद इव लक्ष्यते ।
सागरस्योर्मिजालानां उरसा शैलवर्ष्मणाम् ॥ ६९॥

समुद्र का वह भाग खलबलाता हुआ प्रतीत होता था। वह पर्वत के समान अपने वक्षस्थत से समुद्र की लहरों को ढकेलते हुए चले जाते थे ॥६९॥

अभिघ्नंस्तु महावेगः पुप्लुवे स महाकपिः ।
कपिवातश्च बलवान् मेघवातश्च निर्गतः ॥ ७०॥

सागरं भीमनिर्ह्रादं कम्पयामासतुर्भृशम् ।
विकर्षनूर्मिजालानि बृहन्ति लवणाम्भसि ॥ ७१॥

पुप्लुवे कपिशार्दूलो विकिरन्निव रोदसी ।
मेरुमन्दरसंकाशानुद्गतान् सुमहार्णवे ॥ ७२॥

अत्यक्रामन्महावेगस्तरङ्गान् गणयन्निव ।
तस्य वेगसमुद्घुष्टं जलं सजलदं तदा ॥ ७३॥

एक तो हनुमान जी के वेग से जाने के कारण उत्पन्न वायु और दूसरा मेघों से उत्पन्न हुआ वायु-दोनों ही उस महागर्जन करते हुए समुद्र को मुग्ध कर रहे थे। इस प्रकार क्षीर समुद्र की लहरों को चीरते हनुमान जी मानों आकाश और भूमि को अलग करते हुए चलते थे। इसी प्रकार मेरु और मन्दराचल पर्वत की तरह ऊँची ऊँची समुद्र की लहरों को लांघते हुए वह ऐसे उड़े चले जाते थे, मानों वह तरङ्गों को गिनते हुए जाते हों। उस समय कपि के तेजी के साथ जाने के कारण उड़ा हुया समुद्र का जल ॥७०-७३॥

अंबरस्थं विबभ्राजे शरदभ्रमिवाततम् ।
तिमिनक्रझषाः कूर्मा दृश्यन्ते विवृतास्तदा ॥ ७४॥

और मेघ दोनों आकाश में ऐसे शोभायमान होते थे जैसे शरद ऋतु कालीन मेघ शोभायमान होते हैं। समुद्र में रहने वाले तिमि जाति के मत्स्य, मगर, अन्य प्रकार के मत्स्य तथा कछुवे जल के ऊपर दिखाई देते थे अर्थात जल के ऊपर निकल आये थे ॥७४॥

वस्त्रापकर्षणेनेव शरीराणि शरीरिणाम् ।

प्लवमाणं समीक्ष्याथ भुजङ्गाः सागरंगमाः ॥ ७५॥

व्योम्नि तं कपिशार्दूलं सुपर्णमिव मेनिरे ।
दशयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता ॥ ७६॥

वह जल जन्तु ऐसे प्रतीत होते थे जैसे मनुष्य का शरीर कपड़ा उतार लेने पर देख पड़ता है । समुद्र में रहने वाले सर्पों ने हनुमान जी को आकाश में उड़ते देख जाकर यह समझा कि, गरुड़ जी उड़ते हुए चले जाते हैं। दस योजन चौड़ी और तीस योजन लंबी ॥७५-७६॥

छाया वानरसिंहस्य जवे चारुतराभवत् ।
श्वेताभ्रघनराजीव वायुपुत्रानुगामिनी ॥ ७७॥

तस्य सा शुशुभे छाया पतिता लवणाम्भसि ।
शुशुभे स महातेजा महाकायो महाकपिः ॥ ७८॥

हनुमान जी के शरीर की छाया समुद्र जल में अत्यन्त शोभायमान प्रतीत होती थी। पवननन्दन हनुमान जी के शरीर की अनुगामिनी छाया, समुद्र के जल में पड़ने से सफेद रंग के बड़े बादल की तरह सुन्दर दिखाई पड़ती थी। वह महातेजस्वी और विशाल काय महाकपि ॥७७-७८॥

वायुमार्गे निरालम्बे पक्षवानिव पर्वतः ।
येनासौ याति बलवान् वेगेन कपिकुञ्जरः ॥ ७९॥

आकाश में अवलंब रहित होकर, पंख वाले पर्वत की तरह सुभोभित हुए। वानरोत्तम बलवान हनुमान जी जिस मार्ग से बड़े वेग से जा कर रहे थे, ॥ ७९ ॥

तेन मार्गेण सहसा द्रोणाकृत इवार्णवः ।
आपाते पक्षिसङ्घानां पक्षिराज इव व्रजन् ॥ ८०॥

वह समुद्र का मार्ग मानों नाव जैसा मालूम पड़ता था। आकाश में गमन करते हुए हनुमान जी गरुड़ की तरह प्रतीत होते थे॥८०॥

हनुमान् मेघजालानि प्रकर्षन् मारुतो यथा ।
प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः ॥ ८१॥

हनुमान जी वायु की तरह मेघ समूह को चीरते फाड़ते चले जाते थे। कभी तो वे बादल के भीतर छिप जाते थे और कभी वह बादल के बाहर प्रकट हो जाते थे ॥८१॥

प्रच्छन्नस्य प्रकाशश्च चन्द्रमा इव दृश्यते ।
पाण्डुरारुणवर्णानि नीलमाञ्जिष्ठकानि च ॥ ८२ ॥

जब वह बादल के बाहर प्रकट होते तब वह घटा से निकले हुए चन्द्रमा की तरह दिखाई पड़ते थे। सफेद, नीले, लाल और सुर्ख रंग के॥८२॥

कपिनाकृष्यमाणानि महाभ्राणि चकाशिरे ।
प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा प्लवङ्गं त्वरितं तदा । ॥ ८३॥

बड़े बड़े बादल, कपिप्रवर हनुमान जी से खींचे जाकर, ऐसे जान पड़ते थे, मानों वह पवन के द्वारा चालित हो रहे हों। हनुमान जी को बड़ी तेज़ी से समुद्र लांघते देख कर ॥८३॥

ववृषुः पुष्पवर्षाणि देवगन्धर्वचारणाः ।
तताप न हि तं सूर्यः प्लवन्तं वानरेश्वरम् । ॥ ८४॥

देवताओं, गन्धर्वों, और चारणों ने उन पर फूलों की वर्षा की। सूर्यनारायण ने भी समुद्र लांघते समय हनुमान जी को अपनी किरणों से सन्तप्त नहीं किया ॥८४॥

सिषेवे च तदा वायू रामकार्यार्थसिद्धये ।
ऋषयस्तुष्टुवुश्चैनं प्लवमानं विहायसा ॥ ८५॥

और पवनदेव ने भी, श्रीरामचन्द्र जी के कार्य की सिद्धि के लिये, जाते हुए हनुमान जी का श्रम हरने के लिये, शीतल होकर, मन्द गति से संचार किया। आकाश मार्ग से जाते हुए हनुमान जी की ऋषियों ने स्तुति की ॥८५॥

जगुश्च देवगन्धर्वाः प्रशंसन्तो वनौकसम् ।

नागाश्च तुष्टुवुर्यक्षा रक्षांसि विविधानि च ॥ ८६॥

महाबली हनुमान जी की देवता और गन्धर्व भी प्रशंसा कर रहे थे। विविध यक्ष, राक्षस और नाग सन्तुष्ट होकर ॥८६ ॥

प्रेक्ष्य सर्वे कपिवरं सहसा विगतक्लमम् ।
तस्मिन् प्लवगशार्दूले प्लवमाने हनूमति ॥ ८७॥

आकाश में कपिश्रेष्ठ हनुमान को सहसा श्रमरहित जाते देख कर, प्रशंसा कर रहे थे । जिस समय हनुमान जी समुद्र के पार जाने लगे ॥८७॥

इक्ष्वाकुकुलमानार्थी चिन्तयामास सागरः ।
साहाय्यं वानरेन्द्रस्य यदि नाहं हनूमतः ॥ ८८॥

करिष्यामि भविष्यामि सर्ववाच्यो विवक्षताम् ।
अहमिक्ष्वाकुनाथेन सगरेण विवर्द्धितः ॥ ८९॥

तब समुद्र ईक्षवाकु कुलोद्भव श्रीरघुनाथ जी का सम्मान करने की कामना से सोचने लगा कि, यदि इस समय मैं वानरश्रेष्ठ हनुमान जी की सहायता न करूँगा तो मैं सब प्रकार से निंदनीय समझा जाऊँगा। क्योंकि मेरा विस्तार करने वाले तो ईक्षवाकु कुल के नाथ महाराज सगर ही थे ॥८८-८९॥

इक्ष्वाकुसचिवश्चायं तन्नार्हत्यवसादितुम् ।

तथा मया विधातव्यं विश्रमेत यथा कपिः ॥ ९०॥

यह हनुमान जी ईक्ष्वाकु कुलोद्भव श्रीरामचन्द्र जी के मंत्री हैं। इनको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होना चाहिये। अतः मुझे ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे हनुमान जी को विश्राम मिले ॥९०॥

शेषं च मयि विश्रान्तः सुखी सोऽतितरिष्यति ।
इति कृत्वा मतिं साध्वीं समुद्रश्छन्नमम्भसि ॥ ९१॥

हिरण्यनाभं मैनाकमुवाच गिरिसत्तमम् ।
त्वमिहासुरसङ्घानां पातालतलवासिनाम् ॥ ९२॥

देवराज्ञा गिरिश्रेष्ठ परिषः सनिवेशितः ।
त्वमेषां ज्ञातवीर्याणां पुनरेवोत्पतिष्यताम् ॥ ९३॥

मेरे द्वारा यह विश्राम कर समुद्र का शेष भाग सुखपूर्वक पार जाएँ। इस प्रकार अपने मन में साधु संकल्प का निश्चय कर समुद्र के जल से ढके हुए और सुवर्ण की चोटी वाले गिरवर मैनाक पर्वत से बोले- हे 'मैनाक! पातालवासी असुरों को रोकने के लिये, इन्द्र ने तुमको यहाँ एक परिध की तरह स्थापित कर रक्खा है। इन्द्र को इन दैत्यों का पराक्रम मालूम है। जिससे वह पुनः ऊपर नहीं आ पाते ॥९१-९३॥

पातालस्याप्रमेयस्य द्वारं आवृत्य तिष्ठसि ।
तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव शक्तिस्ते शैल वर्धितुम् ॥ ९४॥

तस्मात् संचोदयामि त्वामुत्तिष्ठ गिरिसत्तम ।
स एष कपिशार्दूलस्त्वामुपर्येति वीर्यवान् ॥ ९५॥

इसी से तुम असीम पाताल का द्वार रोके रहते हो । हे मैनाक! तुम सीधे तिरछे, ऊपर नीचे जैसे चाहो वैसे घट बढ़ सकते हो। अत: हे पर्वतोत्तम! मैं तुमसे कहता हूँ कि, तुम उठो, देखा यह बलवान हनुमान जी तुम्हारे ऊपर पहुँचने ही वाले हैं ॥९३-९५॥

हनूमान् रामकार्यार्थी भीमकर्मा खमाप्लुतः ।
अस्य साह्यं मया कार्यमिक्ष्वाकुकुलवर्तिनः ॥ ९६॥

श्रीरामचन्द्र जी का काम करने के लिये, भयंकर कर्म करने वाले, हनुमान जी आकाशमार्ग से जा रहे हैं। मैं इक्ष्वाकु वंशियों का हितैषी हूँ । अतएव मेरा यह कर्तव्य है कि, मैं हनुमान जी की कुछ सहायता करूँ ॥९६॥

श्रमं च प्लवगेन्द्रस्य समीक्ष्योत्थातुमर्हसि ।
हिरण्यनाभो मैनाको निशम्य लवणाम्भसः ॥ ९७॥

तुम हनुमान जी के श्रम की ओर देख कर जल के ऊपर उठो । क्षीर समुद्र के यह वचन सुनकर सोने की चोटी युक्त मैनाक ॥९७॥

उत्पपात जलात् तूर्णं महाद्रुमलतावृतः ।

स सागरजलं भित्त्वा बभूवात्युच्छ्रितस्तदा ॥९८॥

बड़े बड़े वृक्षों और लतायों से युक्त, जल के ऊपर तुरन्त निकल आया। उस समय वह सागर के जल को चीर कर वैसे ही ऊपर की ओर उठा था ॥९८॥

यथा जलधरं भित्त्वा दीप्तरश्मिर्दिवाकरः ।
स महात्मा मुहूर्तेन पर्वतः सलिलावृतः ॥ ९९॥

दर्शयामास शृङ्गाणि सागरेण नियोजितः ।
शातकुम्भमयैः शृङ्गैः सकिन्नरमहोरगैः ॥ १००॥

जैसे मेघों को चीर कर चमकते हुए सूर्यदेव उदित होते हैं। इस प्रकार समुद्र जल से ढके हुए उन महात्मा मैनाक पर्वत ने, समुद्र का कहना मान, एक मुहूर्त में, अपने वह शिखर पानी के ऊपर निकाल दिये जो सुवर्णमय और किन्नरों तथा बड़े बड़े उरगों द्वारा सेवित थे ॥९९-१००॥

आदित्यशतसङ्काशः सोऽभवगिरिसत्तमः ।
तप्तजाम्बूनदैः शृङ्गैः पर्वतस्य समुत्थितैः ॥ १०१॥

वह शिखर उदयकालीन प्रकाशमान सूर्य की तरह थे और आकाश को स्पर्श करते थे। उस पर्वत के तपे हुए सोने जैसी आभा वाले शिखरों के जल के ऊपर निकलने से ॥१०१॥

आकाशं शस्त्रसंकाशमभवत् काञ्चनप्रभम् ।
जातरूपमयैः श‍ृङ्गैर्भ्राजमानैमहाप्रभैः ॥ १०२॥

आदित्यशतसंकाशः सोऽभवद् गिरिसत्तमः ।
तमुत्थितमसङ्गेन हनुमानग्रतः स्थितम् ॥ १०३॥

मध्ये लवणतोयस्य विघ्नोऽयमिति निश्चितः ।
स तमुच्छ्रितमत्यर्थं महावेगो महाकपिः ॥ १०४॥

नीला आकाश सुवर्णमय प्रतीत होने गया। उस समय वह अपनी अत्यन्त प्रकाश युक्त सुनहरे शिखरों की प्रभा से शोभायमान हुआ। उस समय सौ सूर्य की तरह चमकते हुए उस पर्वतश्रेष्ठ मैनाक की शोभा हुई। बिना विलंब किये समुद्र से निकल, आगे खड़े हुए तथा क्षीर समुद्र के बीच स्थित मैनाक पर्वत को देख, हनुमान जी ने अपने मन में यह निश्चित किया कि, यह एक विघ्न उपस्थित हुधा है। तब उस अत्यन्त ऊँचे उठे हुए मैनाक को हनुमान जी ने बड़े ज़ोर से ॥ १०२-१०४॥

उरसा पातयामास जीमूतमिव मारुतः ।
स तदासातितस्तेन कपिना पर्वतोत्तमः ॥ १०५॥

अपनी छाती की ठोकर से वैसे ही हटा दिया जैसे पवनदेव, बादलों को हटा देते हैं । जब हनुमान जी ने उस गिरिश्रेष्ठ को हटा दिया या नीचे बैठा दिया ॥१०५॥

बुद्ध्वा तस्य हरेर्वेगं जहर्ष च ननाद च ।
तमाकाशगतं वीरमाकाशे समुपस्थितः ॥ १०६॥

प्रीतो हृष्टमना वाक्यमब्रवीत् पर्वतः कपिम् ।
मानुषं धारयन् रूपमात्मनः शिखरे स्थितः ॥ १०७॥

तब मैनाक, हनुमान जी के वेग का अनुभव कर, प्रसन्न हुआ और गर्जा । मैनाक पर्वत फिर आकाश की ओर उठा और आकाश में स्थित वीर हनुमान जी से, प्रसन्न हो बड़ी प्रीति के साथ मनुष्य का रूप धारण कर तथा अपने शिखर पर खड़े होकर बोला ॥१०६-१०७॥

दुष्करं कृतवान् कर्म त्वमिदं वानरोत्तम ।
निपत्य मम शृङ्गेपु विश्रमख यथासुखम् ॥ १०८ ॥

हे वानरोत्तम ! यह तुम बड़ा ही कठिन काम करने को उद्यत हुए हो। अतः तुम मेरे ऊपर कुछ देर ठहर कर विश्राम कर लो। इसके पश्च्यात तुम सुख पूर्वक आगे चले जाना ॥१०८॥

राघवस्य कुले जातैरुदधिः परिवर्धितः ।
स त्वां रामहिते युक्तं प्रत्यर्चयति सागरः ॥ १०९ ॥

इस समुद्र की वृद्धि श्रीरामचन्द्र जी के पूर्वपुरुषों द्वारा की गई है और तुम श्रीरामचन्द्र जी के हित साधन में तत्पर हो, अत: यह समुद्र आपना आतिथ्य सत्कार करना चाहता है ॥१०९॥

कृते च प्रतिकर्तव्यं एष धर्मः सनातनः ।
सोऽयं त्वत्प्रतिकारार्थी त्वत्तः सम्मानमर्हति ॥ ११०॥

क्योंकि सनातन काल से धर्म यही है की उपकार करने वाले का प्रत्युपकार करना चाहिए। अत: यह श्रीरामचन्द्र जी का प्रत्युपकार करना चाहता है। अत: तुम्हे भी समुद्र के सम्मान की रक्षा करनी चाहिये ॥११०॥

त्वन्निमित्तमनेनाहं बहुमानात्प्रचोदितः ।
योजनानां शतं चापि कपिरेष खमाप्लुतः ॥ १११॥

तुम्हारा सत्कार करने के लिये समुद्र ने मेरा बहुत सा सम्मान कर मुझे यहाँ भेजा है। उन्होंने मुझसे कहा है कि, देखो यह कपि सौ योजन जाने के लिये आकाश में उड़े हैं ॥१११॥

तव सानुषु विश्रान्तः शेषं प्रक्रमतामिति ।
तिष्ठ त्वं हरिशार्दूल मयि विश्रम्य गम्यताम् ॥ ११२ ॥

अतः हनुमान जी तुम्हारे शिखर पर विश्राम कर शेष मार्ग को पूरा करें। सो हे कपिशार्दूल ! तुम यहाँ ठहर कर विश्राम करो। विश्राम करने के पश्च्यात आगे चले जाना ॥११२॥

तदिदं गन्धवत् स्वादु कन्दमूलफलं बहु ।
तदास्वाद्य हरि श्रेष्ठ विश्रान्तोऽथ गमिष्यसि ॥ ११३॥

हे कपिश्रेष्ठ ! मेरे वृक्षों से स्वादिष्ट और सुगन्ध युक्त बहुत से कन्दमूल फलों को खा कर विश्राम कर लो। कल सवेरे तुम चले जाना ॥११३॥

अस्माकमपि सम्बन्धः कपिमुख्य त्वयास्ति वै ।
प्रख्यातस्त्रिषु लोकेषु महागुणपरिग्रहः ॥ ११४॥

हे कपियों में प्रधान ! मेरा भी तुम्हारे साथ कुछ सम्बन्ध है, जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। तुम महागुण के ग्रहण करने वाले हो अर्थात् बड़े गुणी हो ॥११४॥

वेगवन्तः प्लवन्तो ये प्लवगा मारुतात्मज ।
तेषां मुख्यतमं मन्ये त्वामहं कपिकुञ्जर ॥ ११५॥

हे पवननन्दन ! इस लोक में जितने कूदने वाले वेगवान वानर हैं, हे कपीश्वर ! उन सब में, मैं तुमको मुख्य समझता हूँ ॥११५॥

अतिथिः किल पूजार्हः प्राकृतोऽपि विजानता ॥
धर्मं जिज्ञासमानेन किं पुनर्यादृशो महान् ॥ ११६॥

धर्म जिज्ञासुओं के लिये तो एक साधारण अतिथि भी पूज्य है, फिर आप के समान गुणी अतिथि का सत्कार करना तो मेरे लिये सर्वथा उचित ही है ॥११६॥

त्वं हि देववरिष्ठस्य मारुतस्य महात्मनः ॥
पुत्रस्तस्यैव वेगेन सदृशः कपिकुञ्जर ॥ ११७ ॥

फिर तुम देवताओं में श्रेष्ठ महात्मा पवनदेव के पुत्र हो। हे कपिकुञ्जर ! वेग में भी तुम अपने पिता के समान ही हो ॥११७॥

पूजिते त्वयि धर्मज्ञे पूजां प्राप्नोति मारुतः ।
तस्मात् त्वं पूजनीयो मे शृणु चाप्यत्र कारणम् ॥ ११८॥

हे धर्मज्ञ ! तुम्हारी पूजा करने से मानों पवनदेव का ही पूजन हो जाएगा। अतः तुम मेरे पूज्य हो। इसके अतिरिक और भी एक कारण तुम्हारे पूज्य होने का है। उसे भी तुम सुन लो ॥११८॥

पूर्वं कृतयुगे तात पर्वताः पक्षिणोऽभवन् ।
ते हि जग्मुर्दिशः सर्वा गरुडा इव वेगिनः ॥ ११९॥

हे तात ! प्राचीन काल में सत्ययुग में सभी पहाड़ों के पंख हुआ करते थे। वे पंखधारी पहाड़ गरुड़ जी की तरह बड़े वेग से चारों ओर उड़ा करते थे ॥११९॥

ततस्तेषु प्रयातेषु देवसङ्घाः सहर्षिभिः ।
भूतानि च भयं जग्मुः तेषां पतनशङ्कया ॥ १२०॥

पर्वतों को उड़ते देख, देवता, ऋषि तथा अन्य समस्त प्राणी उनके अपने ऊपर गिरने की शंका से डर गये ॥१२०॥

ततः क्रुद्धः सहस्राक्षः पर्वतानां शतक्रतुः ।
पक्षांश्चिच्छेद वज्रेण ततः शतसहस्रशः ॥ १२१॥

तब हज़ार नेत्रों वाले इन्द्र ने कुपित होकर, अपने वज्र से से इधर उधर घूमने वाले हजारों पहाड़ों के पंख काट डाले ॥१२१॥

स मामुपगतः क्रुद्धो वज्रमुद्यम्य देवराट् ।
ततोऽहं सहसा क्षिप्तः श्वसनेन महात्मना ॥ १२२॥

जब देवराज इन्द्र वज्र उठा कर मेरी ओर आये, तब महात्मा पवनदेव ने मुझको सहसा उठा कर फेंक दिया ॥१२२॥

अस्मिँल्लवणतोये च प्रक्षिप्तः प्लवगोत्तम ।
गुप्तपक्षः समग्रश्च तव पित्राभिरक्षितः ॥ १२३॥

हे वानरोत्तम ! मुझे उन्होंने इस क्षीर समुद्र में उठा कर फेंक दिया। इस प्रकार तुम्हारे पिता पवनदेव ने मेरे समस्त पंखों की रक्षा की थी ॥१२३॥

ततोऽहं मानयामि त्वां मान्योऽसि मम मारुते ।
त्वया ममैष सम्बन्धः कपिमुख्य महागुणः ॥ १२४॥

हे पवननन्दन ! तुम्हारे साथ मेरा यही सम्बन्ध है। तुम एक तो मेरे पूज्य पवनदेव के पुत्र हो दूसरे कपियों में मुख्य और बड़े गुणवान होने के कारण मेरे मान्य हो, अतः मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ ॥१२४॥

अस्मिन्नेवंगते कार्ये सागरस्य ममैव च ।
प्रीतिं प्रीतमनाः कर्तुं त्वमर्हसि महामते ॥ १२५॥

हे महाकपे ! तुम्हारे ऐसा करने पर मेरी और सागर की प्रीति और भी बढ़ेगी अथवा तुम्हारे ऐसा करने पर मैं और समुद्र अत्यंत प्रसन्न होंगे, अतः हे महाकपे! तुम मेरा आतिथ्य ग्रहण कर मुझे प्रसन्न करो ॥१२५॥

श्रमं मोक्षय पूजां च गृहाण हरिसत्तम ।
प्रीतिं च मम मान्यस्य प्रीतोऽस्मि तव दर्शनात् ॥ १२६॥

हे कपिसत्तम! तुम अपना श्रम दूर कर, मेरा आतिथ्य ग्रहण कर मुझे प्रसन्न करो। तुम्हें देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है ॥१२६॥

एवमुक्तः कपिश्रेष्ठः तं नगोत्तममब्रवीत् ।
प्रीतोऽस्मि कृतमातिथ्यं मन्युरेषोऽपनीयताम् ॥ १२७ ॥

जब मैनाक ने इस प्रकार कहा तब कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने गिरिश्रेष्ठ मैनाक से कहा-मैं आपके आतिथ्य से प्रसन्न हूँ। आप ने मेरा सत्कार किया, अब आप अपने मन में किसी प्रकार का खेद न करें ॥१२७॥

त्वरते कार्यकालो मे अहश्चाप्यतिवर्तते ।
प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहान्तरा ॥ १२८ ॥

एक तो मुझे कार्य करने की जल्दी है। दूसरे समय भी बहुत हो चुका है। तीसरे मैंने वानरों के सामने यह प्रतिज्ञा भी की है कि, मैं बीच में कहीं रुकूँगा नहीं ॥१२८॥

इत्युक्त्वा पाणिना शैलमालभ्य हरिपुङ्गवः ।
जगामाकाशमाविश्य वीर्यवान् प्रहसन्निव ॥ १२९॥

यह कह कर कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने मैनाक को हाथ से छू कर पराक्रमी हनुमान हँसते हुए आकाश में उड़ गए ॥१२९॥

स पर्वतसमुद्राभ्यां बहुमानादवेक्षितः ।
पूजितश्चोपपन्नाभिराशीर्भिरभिनन्दितः ॥ १३०॥

तब तो समुद्र और मैनाक पर्वत ने हनुमान जी को बड़ी प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा, उनको आशीर्वाद दिया तथा उनका अभिनन्दन किया ॥१३०॥

अथोर्ध्वं दूरमागत्य हित्वा शैलमहार्णवौ ।
पितुः पन्थानमासाद्य जगाम विमलेऽम्बरे ॥ १३१॥

इसके पश्च्यात हनुमान जी, मैनाक पर्वत तथा समुद्र को छोड़कर बहुत ऊँचे विमल आकाश में जाकर पवन के मार्ग से उड़ कर जाने लगे ॥१३१॥

भूयश्चोर्ध्वं गतिं प्राप्य गिरिं तमवलोकयन् ।
वायुसूनुर्निरालम्बो जगाम कपिकुञ्जरः ॥ १३२॥

हनुमान जी ने आकाश में पहुँच मैनाक की ओर देखा और फिर वह पवननन्दन बिना किसी सहारे के विमल आकाश में उड़ चले ॥१३२॥

द्वितीयं हनुमतो दृष्ट्वा कर्म सुदुष्करम् ।
प्रशशंसुः सुराः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ १३३॥

हनुमान जी का यह दूसरा दुष्कर कार्य देख, सब देवता, सिद्ध और महर्षि गण उनकी प्रशंसा करने लगे ॥१३३॥

देवताश्चाभवन् हृष्टास्तत्रस्थास्तस्य कर्मणा ।
काञ्चनस्य सुनाभस्य सहस्राक्षश्च वासवः ॥ १३४॥

उस समय वहाँ जो देवता उपस्थित थे वह तथा सहस्र नेत्र इन्द्र सोने की छोटी वाले मैनाक पर्वत के इस कार्य से उसके ऊपर बहुत प्रसन्न हुए ॥१३४॥

उवाच वचनं धीमान् परितोषात् सगद्गदम् ।
सुनाभं पर्वतश्रेष्ठं स्वयमेव शचीपतिः ॥ १३५॥

शचीपति देवराज इन्द्र स्वयं सुवर्ण श्रृंग वाले पर्वतश्रेष्ठ मैनाक से प्रसन्न हो, गदगद वाणी से बोले ॥१३५॥

हिरण्यनाभ शैलेन्द्र परितुष्टोऽस्मि ते भृशम् ।
अभयं ते प्रयच्छामि गच्छ सौम्य यथासुखम् ॥ १३६॥

हे सुवर्ण शिखरों वाले शैलेन्द्र ! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हुआ। मैं तुझको अभयवर देता हूँ। अब तुम जहाँ चाहे वहां सुख पूर्वक रह सकते हो ॥१३६॥

साह्यं कृतं ते सुमहद् विश्रान्तस्य हनूमतः ।
क्रमतो योजनशतं निर्भयस्य भये सति ॥ १३७॥

हे सौम्य! भय रहते हुए भी पराक्रमी हनुमान जी को निभीक होकर सौ योजन समुद्र के पार जाते देख, तथा उनको बीच में विश्राम करने का अवसर देकर तुमने उनकी बड़ी सहायता की है ॥१३७॥

रामस्यैष हितायैव याति दाशरथेः कपिः ।
सत्क्रियां कुर्वता शक्त्या तोषितोऽस्मि दृढं त्वया ॥ १३८॥

यह हनुमान जी, श्रीरामचन्द्र जी के दूत बन कर जा रहे हैं। इनका तुमने जो सत्कार किया, इससे मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ ॥१३८॥

ततः प्रहर्षमलभद् विपुलं पर्वतोत्तमः ।
देवतानां पतिं दृष्ट्वा परितुष्टं शतक्रतुम् ॥ १३९॥

तब तो गिरिश्रेठ मैनाक, देवराज इन्द्र को अपने ऊपर प्रसन्न देखकर, बहुत प्रसन्न हुआ ॥१३९॥

स वै दत्तवरः शैलो बभूवावस्थितस्तदा ।
हनुमांश्च मुहूर्तेन व्यतिचक्राम सागरम् ॥ १४०॥

इन्द्र से अभयदान प्राप्त कर, मैनाक सुस्थिर हुआ। उधर हनुमान जी भी मैनाक अधिकृत समुद्र के भाग को मुहुर्त मात्र में पार कर गये ॥१४०॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
अब्रुवन् सूर्यसंकाशां सुरसां नागमातरम् ॥ १४१॥

तब देवताओं, गन्धर्वा, सिद्धों और महषियों ने सूर्य के समान प्रकाश वाली नागों की माता सुरसा से कहा ॥१४१॥

अयं वातात्मजः श्रीमान् प्लवते सागरोपरि ।
हनुमान् नाम तस्य त्वं मुहूर्तं विघ्नमाचर ॥ १४२॥

पवननन्दन हनुमान जी समुद्र के पार जाने के लिये आकाश मार्ग से चले जा रहे हैं । अतः तुम उनके गमन में एक मुहर्त्त के लिये विघ्न डालो ॥१४२॥

राक्षसं रूपमास्थाय सुघोरं पर्वतोपमम् ।
दंष्ट्राकरालं पिङ्गाक्षं वक्त्रं कृत्वा नभःस्पृशम् ॥ १४३॥

तुम अति भयंकर पर्वत के समान बड़ा राक्षस का रूप धर कर पीले नेत्रों सहित भयंकर दांतों से युक्त अपना मुख बना कर इतनी बढ़ो कि आकाश को छू लो ॥१४३॥

बलमिच्छामहे ज्ञातुं भूयश्चास्य पराक्रमम् ।
त्वां विजेष्यत्युपायेन विषादं वा गमिष्यति ॥ १४४॥

क्योंकि हम सब हनुमान जी के बल और पराकम को परीक्षा लेना चाहते हैं। या तो हनुमान तुमको किसी उपाय से जीत लेंगे अथवा दुःखी हो कर चले जायेंगे ॥१४४ ॥

एवमुक्ता तु सा देवी दैवतैरभिसत्कृता ।
समुद्रमध्ये सुरसा बिभ्रती राक्षसं वपुः ॥ १४५॥

जब देवताओं ने सुरसा से आदर पूर्वक इस प्रकार कहा, तब सुरसा राक्षसी का रूप धर कर समुद्र के बीच जा खड़ी हुई ॥१४५॥

विकृतं च विरूपं च सर्वस्य च भयावहम् ।
प्लवमानं हनूमन्तमावृत्येदमुवाच ह ॥ १४६॥

उस समय का सुरसा का रूप ऐसा विकट और भयंकर था कि, उसे देखकर सभी को डर लगता था। सुरसा, समुद्र के पार जाते हुए हनुमान जी का रास्ता रोक कर उनसे कहने लगी ॥१५६॥

मम भक्ष्यः प्रदिष्टस्त्वमीश्वरैर्वानरर्षभ ।
अहं त्वां भक्षयिष्यामि प्रविशेदं ममाननम् ॥ १४७ ॥

हे वानरश्रेष्ठ ! देवताओं ने तुझको मेरा भक्ष्य बनाया है। इसलिये मैं तुझको खा जाऊँगी। आ तू अब मेरे मुख में प्रवेश कर ॥१४७॥

एवमुक्तः सुरसया प्रहृष्टवदनोऽब्रवीत् ।
प्रहृष्टवदनः श्रीमान्सुरसां वाक्यमब्रवीत् ॥ १४८ ॥

सुरसा के इस प्रकार कहने पर हनुमान जी ने प्रसन्न हो कर सुरसा से कहा ॥१४८॥

रामो दाशरथिर्नाम प्रविष्टो दण्डकावनम् ।

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया ॥ १४९॥

दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी अपने भाई लक्ष्मण और भार्या सीता के साथ दण्डकारण्य में आए ॥१४९॥

अन्यकार्यविषक्तस्य बद्धवैरस्य राक्षसैः ।
तस्य सीता हृता भार्या रावणेन यशस्विनी ॥ १५०॥

और कारणान्तर से उनसे और राक्षसों से परस्पर शत्रुता हो गयी। इससे रावण उनकी तपस्विनी भार्या सीता को हर कर ले गया ॥१५०॥

तस्याः सकाशं दूतोऽहं गमिष्ये रामशासनात् ।
कर्तुमर्हसि रामस्य साह्यं विषयवासिनी ॥ १५१॥

श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा से मैं सीता जी के पास दूत बन कर जा रहा हूँ। तुम श्रीरामचन्द्र जी के राज्य में बसने वाली हो, अतः तुम्हें तो मेरी सहायता करनी चाहिये। ॥१५१॥

अथवा मैथिलीं दृष्ट्वा रामं चाक्लिष्टकारिणम् ।
आगमिष्यामि ते वक्त्रं सत्यं प्रतिशृणोमि ते ॥ १५२॥

अथवा जब मैं सीता को देख कर अक्लिष्ट कर्मा श्रीरामचन्द्र जी को उनका समाचार दे दूंगा तब मैं तुम्हारे मुख में आकर प्रवेश करूंगा। मैं यह तुमसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ। ॥१५२॥

एवमुक्ता हनुमता सुरसा कामरूपिणी ।
तं प्रयान्तं समुद्विक्ष्य सुरसा वाक्यमब्रवीत् ॥ १५३॥

जय हनुमान जी ने इस प्रकार उससे कहा, तब वह कामरूपिणी सुरसा हनुमान जी को जाते देख कर, उनसे बोली ॥१५३॥

बलं जिज्ञासमाना सा नागमाता हनूमतः ॥ १५४ ॥
हनूमानातिवर्तेन्मां कश्चिदेष वरो मम

हे हनुमान ! मुझको ब्रह्मा जी ने यह वर दे रखा है कि, मेरे आगे से कोई जीता जागता नहीं जा सकता ॥१५४॥

प्रविश्य वदनं मेऽद्य गन्तव्यं वानरोत्तम ।
वर एष पुरा दत्तो मम धात्रेति सत्वरा ॥ १५५ ॥

हे वानरोत्तम! पहले तुम मेरे मुख में प्रवेश करो, फिर तुरन्त चले जाना। विधाता ने मुझे पूर्वकाल में यही वरदान दिया है॥१५५॥

व्यादाय विपुलं वक्त्रं स्थिता सा मारुतेः पुरः ।
एवमुक्तः सुरसया क्रुद्धो वानरपुंगवः ॥ १५६ ॥

यह कह कर नागमाता सुरसा, अपना बड़ा भारी मुख फैलाकर हनुमान जी के सामने खड़ी हो गयी। सुरसा के ऐसे वचन सुनकर कपिश्रेष्ठ हनुमान जी क्रुद्ध हुए तथा ॥१५६॥

अब्रवीत् कुरु वै वक्त्रं येन मां विषहिष्यसि ।
इत्युक्त्वा सुरसां क्रुद्धो दशयोजनमायताम् ॥ १५७ ॥

हनुमान जी ने उससे कहा कि, तुम अपना मुख उतना बड़ा फैलाओ जिसमें मैं समा सकूँ। यह सुन सुरसा ने क्रुद्ध हो अपना मुख दस योजन फैलाया ॥१५७॥

दशयोजनविस्तारो बभूव हनूमानभवत् ।
तं दृष्ट्वा मेघसंकाशं दशयोजनमायतम् ॥ १५८ ॥

तब हनुमान जी ने भी अपना शरीर दस योजन का कर लिया। तब हनुमान जी के शरीर को मेघ के समान दस योजन लंबा देख कर ॥१५८॥

चकार सुरसाप्यास्यं विंशद् योजनमायतम् ।
ततः परं हनूमांस्तु क्रुद्धस्त्रिंशत् योजनमायतः ॥ १५९ ॥

सुरसा ने अपना मुख बीस योजन का कर लिया। तब हनुमान जी ने अपना शरीर तीस योजन लंबा कर लिया ॥१५६॥

चकार सुरसा वक्त्रं चत्वारिंशत् तथोच्छ्रितम् ।
बभूव हनुमान् वीरः पञ्चाशद् योजनाच्छ्रितः ॥ १६० ॥

तब सुरसा ने अपना मुख चालीस योजन चौड़ा कर लिया। इस पर हनुमान जी ने अपना शरीर पचास योजन चौड़ा कर लिया ॥१६०॥

चकार सुरसा वक्त्रं षष्टिं योजनमुच्छ्रितम् ।
तदैव हनुमान् वीरः सप्ततिं योजनोच्छ्रितः ॥ १६१॥

इस पर जब सुरसा ने अपना मुख साठ योजन चौड़ा किया, तब हनुमान जी सत्तर योजन के हो गये ॥१६१॥

चकार सुरसा वक्त्रं अशीतिः योजनोच्छ्रितम् ।
हनुमाननलप्रख्यो नवतिं योजनोच्छ्रितः ॥ १६२ ॥

यह देख कर जब सुरसा ने अपना मुख अस्सी योजन का कर लिया, तब हनुमान जी बृहदाकार पर्वत की तरह नब्जे योजन लंबे हो गये ॥१६२॥

चकार सुरसा वक्त्रं शतयोजनमायतम् ।
तद्दृष्ट्वा व्यादितं त्वास्यं वायुपुत्रः स बुद्धिमान् ॥ १६३ ॥

दीर्घजिह्वं सुरसया सुभीमं नरकोपमम् ।
स संक्षिप्यात्मनः कायं जीमूत इव मारुतिः ॥ १६४ ॥

तस्मिन् मुहूर्ते हनुमान् बभूवाङ्गुष्ठमात्रकः ।
सोऽभिपद्याथ तद्वक्त्रं निष्पत्य च महाबलः ॥ १६५ ॥

इस पर जब सुरसा ने अपना मुख सौ योजन फैलाया; तब बुद्धिमान वायुनन्दन हनुमान जी ने उसके उस सौ योजन फैले हुए बड़ी जिह्वा से युक्त, भयङ्कर और नरक की तरह मुख को देख, मेघ को तरह अपने शरीर को समेटा और वे तत्क्षण अंगूठे के बरावर छोटे शरीर वाले हो गये। इसके पश्च्यात वह महाबली उसके मुख में प्रवेश कर तुरन्त बाहर निकल आये ॥१६३-१६५॥

अन्तरिक्षे स्थितः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ।
प्रविष्टोऽस्मि हि ते वक्त्रं दाक्षायणि नमोऽस्तु ते ॥ १६६॥

और आकाश में खड़े होकर हँसते हुए यह बोले हे दाक्षायणी! तुम्हे नमस्कार है। मैं तुम्हारे मुख में प्रवेश कर चुका हूँ ॥१६६॥

गमिष्ये यत्र वैदेही सत्यश्चासीद् वरस्तव ।
तं दृष्वा वदनान्मुक्तं चन्द्रं राहुमुखादिव ॥ १६७॥

तुम्हारा वरदान सत्य हो गया। अब मैं वहां जाता है, जहां सीता जी हैं। राहु के मुख से चन्द्रमा के समान, हनुमान जी को अपने मुख से निकला हुआ देख कर ॥१६७॥

अब्रवीत् सुरसा देवी स्वेन रूपेण वानरम् ।
अर्थसिद्ध्यै हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम् ॥ १६८॥

सुरसा अपना रूप धारण कर हनुमान जी से बोली-हे कपिश्रेष्ठ! तुम अपना कार्य सिद्ध करने के लिये जहाँ सुखपूर्वक जाना चाहो वहाँ जा सकते हो ॥१६८॥

समानय त्वं वैदेहीं राघवेण महात्मना ।
तत् तृतीयं हनुमतो दृष्ट्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ १६९॥

और महात्मा श्रीरामचन्द्र जी से सीता को लाकर मिला दो। हनुमान जी का यह तीसरा दुष्कर कर्म देख कर ॥ १६६॥

साधु साध्विति भूतानि प्रशशंसुस्तदा हरिम् ।
स सागरमनाधृष्यमभ्येत्य वरुणालयम् ॥ १७०॥

जगामाकाशमाविश्य वेगेन गरुडोपमः ।
सेविते वारिधाराभिः पतगैश्च निषेविते ॥ १७१॥

"साधु साधु" कह कर सब लोग हनुमान जी की प्रशंसा करने लगे। इसके पश्च्यात हनुमान जी वरुणालय समुद्र के ऊपर, आकाशमार्ग से गरुड़ की तरह अत्यंत शीघ्र वेग से जाने लगे। वह आकाशमार्ग जलधारा से युक्त पक्षियों से सेवित था ॥१७०-१७१॥

चरिते कैशिकाचार्यैरैरावतनिषेविते ।
सिंहकुञ्जरशार्दूलपतगोरगवाहनैः ॥ १७२॥

विमानैः संपतद्भिश्च विमलैः समलङ्कृते ।
वज्राशनिसमस्पर्शैः पावकैरिव शोभिते ॥ १७३॥

तुम्बुरु आदि विद्याधरों से सेवित, ऐरावत सहित, सिंह, गजेन्द्र, शार्दूल, पक्षी और सर्प आदि वाहनों से युक्त निर्मल विमानों से भूषित, वन के तुल्य स्पर्श वाले अग्नि तुल्य ॥१७२-१७३॥

कृतपुण्यैर्महाभागैः स्वर्गजिद्भिरधिष्ठिते ।
वहता हव्यमत्यन्त सेविते चित्रभानुना ॥ १७४॥
ग्रहनक्षत्रचन्द्रार्कतारागणविभूषिते ।
महर्षिगणगन्धर्वनागयक्षसमाकुले ॥ १७५॥

विविक्ते विमले विश्वे विश्वावसुनिषेविते ।
देवराजगजाक्रान्ते चन्द्रसूर्यपथे शिवे ॥ १७६॥

पुण्यात्मा महाभाग स्वर्ग को जीतने वालों से शामित, सदा ही हव्य को लिये हुए अग्नि, ग्रह, सूर्य और तारागण से सेवित; महर्षि, गन्धर्व, नाग और यक्षों से पूर्ण, एकान्त, विमल, विशाल और विश्वावसु गन्धर्व से सेवित, इन्द्र के ऐरावत गज से रौंदा हुआ; चन्द्रमा और सूर्य का सुन्दर मार्ग ॥१७४- १७६॥

वितानेजीवलोकस्य वितते ब्रह्मनिर्मिते ।
बहुशः सेविते वीरैर्विद्याधरगणैर्वृते ॥ १७७॥

जीवलोक के वितान अर्थात मंडप रूपी इस स्वच्छ मार्ग को ब्रह्मा जी ने बनाया है। इस मार्ग का सेवन अनेक वीर और श्रेष्ठ विद्याधर गण किया करते हैं ॥१७७॥

जगाम वायुमार्गे तु गरुत्मानिव मारुतिः ।
हनुमान मेघजालानि प्रकर्षन् मारुतो यथा ॥ १७८ ॥

ऐसे वायुमार्ग से पवनकुमार हनुमान जी गरुड़ जी की तरह बड़ी तेजी के साथ, उड़े चले जाते थे। जाते हुए वह मेघों को चीरते हुए चले जाते थे ॥१७८॥

कालागुरुसवर्णानि रक्तपीतसितानि च ।
कपिना कृष्यमाणानि महाभ्राणि चकाशिरे ॥ १७९ ॥

काले, अगर की तरह लाल, पीले और सफेद रंग के बड़े बड़े बादल कपिश्रेष्ठ हनुमान जी द्वारा खींचे जाकर अत्यन्त शोभा को प्राप्त होते थे ॥१७९॥

प्रविशनभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः ।
प्रावृषीन्दुरिवाभाति निष्पतन् प्रविशंस्तदा ॥ १८० ॥

प्रदृश्यमानः सर्वत्र हनुमान् मारुतात्मजः ।
भेजेऽम्बरं निरालम्बं पक्षयुक्त इवाद्रिराट् ॥ १८१ ॥

हनुमान जी कभी तो, मेघों के पीछे छिप जाते और कभी बाहर निकल आते थे। उनके बारम्बार मेघों में छिपने और निकलने से वह वर्षा कालीन मेघ चन्द्रमा की तरह सर्वत्र दिखाई देते थे। हनुमान जी पंख लटकाये पर्वतश्रेष्ठ की तरह निराधार मार्ग में दिखाई देते थे ॥१८०-१८१॥

प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा सिंहिका नाम राक्षसी ।
मनसा चिन्तयामास प्रवृद्धा कामरूपिणी ॥ १८२ ॥

इनको आकाश-मार्ग से जाते देख सिंहिका नाम की राक्षसी, जो समुद्र में रहती थी और जो बहुत बूढ़ी हो चुकी थी तथा जो इच्छानुसार तरह तरह के रूप धारण कर सकती थी अपने मन में विचारने लगी कि॥१८२॥

अद्य दीर्घस्य कालस्य भविष्याम्यहमाशिता ।
इदं हि मे महासत्त्वं चिरस्य वशमागतम् ॥ १८३ ॥

आहा आज मुझे बहुत दिनों बाद भोजन मिलेगा। क्योंकि आज यह विशालकाय जीव वहुत दिनों बाद मेरे हाथ लगा है ॥१८३॥

इति संचिन्त्य मनसा छायामस्य समाक्षिपत् ।
छायायां गृह्यमाणायां चिन्तयामास वानरः ॥ १८४ ॥

इस प्रकार विचार कर सिंहिका ने हनुमान जी की परछाई पकड़ी। परछाई पकडे जाने पर हनुमान जी विचारने लगे ॥१८४॥

समाक्षिप्तोऽस्मि सहसा पङ्गूकृतपराक्रमः ।
प्रतिलोमेन वातेन महानौरिव सागरे ॥ १८५॥

अचानक पकड़ जाने से मेरा पराक्रम शिथिल हो गया है। इस समय मेरी दशा तो समुद्र में पड़ी और प्रतिकूल वायु से रुकी हुई बड़ी नाव की तरह हो रही है ॥१८५॥

तिर्यग् ऊर्ध्वमधश्चैव वीक्षमाणस्तदा कपिः ।
ददर्श स महत्सत्त्वमुत्थितं लवणाम्भसि ॥ १८६ ॥

इस प्रकार सोच कर हनुमान जी आगे पीछे, ऊपर नीचे देखने लगे। तब उन्होंने देखा कि, क्षीर समुद्र में कोई एक बड़ा भारी जन्तु बैठा हुआ है ॥१८६॥

तद् दृष्ट्वा चिन्तयामास मारुतिर्विकृताननाम् ।
कपिराज्ञा यथाख्यातं सत्त्वमद्भुतदर्शनम् ॥ १८७ ॥

छायाग्राहि महावीर्यं तदिदं नात्र संशयः ।
स तां बुद्ध्वार्थतत्त्वेन सिंहिकां मतिमान् कपिः ॥ १८८ ॥

व्यवर्धत महाकायः प्रावृषीव बलाहकः ।
तस्य सा कायमुद्वीक्ष्य वर्धमानं महाकपेः ॥ १८९ ॥

उस विकराल मुख वाले जन्तु को देख जब हनुमानजी ने अपने मन में विचार किया, तब इन्हें कपिराज सुग्रीव की बात याद आई और उन्होंने निश्चय किया कि, अद्भुत सूरत वाला और छाया पकड़ने वाला महाबलशाली जीव निस्सन्देह यही है। इस प्रकार उसके कर्म को देख, बुद्धिमान हनुमान जी उस सिंहिका को पहचान कर वर्षा काल के बादल की तरह बढे। जब सिंहिका ने हनुमान के शरीर को बढ़ता हुआ देखा ॥ १८७-१८९॥

वक्त्रं प्रसारयामास पातालान्तरसंनिभम् ।
घनराजीव गर्जन्ती वानरं समभिद्रवत् ॥ १९०॥

तब उसने पाताल की तरह अपना मुख फैलाया और वह बादल की तरह गर्जती हुई हनुमान जी की ओर दौड़ी ॥१९०॥

स ददर्श ततस्तस्या विवृतं सुमहन्मुखम् ।
कायमात्रं च मेधावी मर्माणि च महाकपिः ॥ १९१ ॥

तब हनुमान जी ने भी उसके भयंकर और विशाल मुख को और उसके शरीर की लंबाई चौड़ाई तथा शरीर के मर्मस्थलों को भली भौति देखा भाला ॥१९१॥

स तस्या विकृते वक्त्रे वज्रसंहननः कपिः ।
संक्षिप्य मुहुरात्मानं निष्पपात महाकपिः ॥ १९२ ॥

महाबली और वज्र के समान दृढ़ शरीर वाले हनुमान जी ने, अपना शरीर अत्यन्त छोटा कर लिया और वह उसके बड़े मुख में घुस गये। ॥१९२॥

आस्ये तस्या निमज्जन्तं ददृशुः सिद्धचारणाः ।
ग्रस्यमानं यथा चन्द्रं पूर्णं पर्वणि राहुणा ॥ १९३ ॥

उस समय सिद्धों और चारणों ने हनुमान जी को सिंहिका के मुख में गिरते हुए देखा। जिस प्रकार पूर्णिमा का चन्द्रमा राहु से ग्रसा जाता है, उसी प्रकार हनुमान जी भी सिंहिका द्वारा ग्रसे गये ॥१९३॥

ततस्तस्या नखैस्तीक्ष्णैः मर्माण्युत्कृत्य वानरः ।
उत्पपाताथ वेगेन मनःसम्पातविक्रमः ॥ १९४ ॥

हनुमान जी ने सिंहिका के मुख में जाकर, अपने पैने नखों से उसके मर्मस्थल चीर फाड़ डाले और मन के समान शीघ्र वेग से वह वहां से निकल कर, फिर ऊपर चले गये ॥१९४॥

तां तु दिष्ट्या च धृत्या च दाक्षिण्येन निपात्य च ।
कपिप्रवरो वेगेन ववृधे पुनरात्मवान् ॥ १९५॥

इस प्रकार से हनुमान जी ने उसे दूर हो से देख कर, धैर्य और चतुराई से मार गिराया। तदनन्तर उन्होंने पुनः अपना शरीर पूर्ववत् बड़ा कर लिया ॥१९५॥

हृतहृत्सा हनुमता पपात विधुराम्भसि ।
तां हतां वानरेणाशु पतितां वीक्ष्य सिंहिकाम् ॥ १९६॥

वह राक्षसी हृदय के फट जाने से आर्त हो, समुद्र के जल में दब गयी। हनुमान जी द्वारा सहसा ही मार कर गिराई गयी सिंहिका को देख कर ॥१९६॥

भूतान्याकाशचारीणि तमूचुः प्लवगोत्तमम् ।
भीममद्य कृतं कर्म महत्सत्त्वं त्वया हतम् ॥ १९७॥

आकाशचारी प्राणियों ने हनुमान जी ने कहा । इस बड़े जन्तु को मारकर आज तुमने बड़ा भयंकर कार्य कर डाला ॥१९७॥

साधयार्थमभिप्रेतंमरिष्टं प्लवतां वर ।
यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव ॥ १९८॥

धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति ।
स तैः सम्पूजितः पूज्यः प्रतिपन्नप्रयोजनैः ॥ १९९॥

अब तुम निर्विघ्न होकर अपना अपना कार्य सिद्ध करो। हे वानरेन्द्र ! तुम्हारी तरह जिसमें, धीरता, सूक्ष्मदृष्टि, बुद्धि और चतुराई यह चार गुण होते हैं, वह कभी किसी काम के करने में नहीं घबराता। यह चारों गुण तुममें मौजूद हैं। पूज्य हनुमान जी उन प्राणियों से पूजित और अपने कार्य की सिद्धि के विषय में निश्चित से हो ॥१९८-१९९॥

जगामाकाशमाविश्य पन्नगाशनवत् कपिः ।
प्राप्तभूयिष्ठपारस्तु सर्वतः परिलोकयन् ॥ २००॥

गरुड़ की तरह बड़े वेग से आकाश में उड़ने लगे और समुद्र के दूसरे तट के निकट पहुँच चारों ओर देखने लगे ॥२००॥

योजनानां शतस्यान्ते वनराजिं ददर्श सः ।
ददर्श च पतन्नेव विविधद्रुमभूषितम् ॥ २०१॥

तब उन्हें वहाँ से सौ योजन के फासले पर बड़ा भारी एक जंगल दिखाई पड़ा। जाते जाते उन्होंने विविध वृक्षों से भूषित ॥२०१॥

द्वीपं शाखामृगश्रेष्ठो मलयोपवनानि च ।
सागरं सागरानूपान् सागरानूपजान् द्रुमान् ॥ २०२ ॥

द्वीप और मलयागिरि के उपवनों को देखा । उन्होंने सागर और सागर का तट और सागरतट पर लगे हुए पेड़ों को ॥२०२॥

सागरस्य च पत्नीनां मुखान्यपि विलोकयत् ।
स महामेघसंकाशं समीक्ष्यात्मानमात्मवान् ॥ २०३॥

निरुन्धन्तमिवाकाशं चकार मतिमान् मतिम् ।
कायवृद्धिं प्रवेगं च मम दृष्ट्वैव राक्षसाः ॥ २०४॥

तथा सागर की पत्नी अर्थात् नदियों को और नदियों के और समुद्र के संगमस्थानों को भी देखा। बुद्धिमान् हनुमान जी ने महामेघ के समान अपने शरीर को जो आकाश को ढके हुए था, देख कर अपने मन में विचारा कि, मेरा यह बड़ा शरीर और मेरा वेग देख कर राक्षस लोग ॥२०३-२०४॥

मयि कौतूहलं कुर्युरिति मेने महामतिः ।
ततः शरीरं संक्षिप्य तन्महीधरसंनिभम् ॥ २०५॥

पुनः प्रकृतिमापेदे वीतमोह इवात्मवान् ।
तद्रूपमतिसंक्षिप्य हनुमान् प्रकृतौ स्थितः
त्रीन् क्रमानिव विक्रम्य बलिवीर्यहरो हरिः ॥ २०६॥

मुझे एक खेल की वस्तु समझेंगे। यह विचार कर उन्होंने अपने पर्वताकार शरीर को अति छोटा कर लिया। उन्होंने काम मोह आदि विहीन जीवन मुक्त योगी की तरह पुनः अपना लघुरूप जो सदा बना रहता था, वैसे ही धारण कर लिया जैसे भगवान् वामन ने बलि को छलने के समय अपने शरीर को बढ़ा कर, पुनः छोटा कर लिया था ॥२०५-२०६॥

स चारुनानाविधरूपधारी परं समासाद्य समुद्रतीरम् ।
परैरशक्यः प्रतिपन्नरूपः समीक्षितात्मा समवेक्षितार्थः ॥ २०७॥

विविध मनोहर रूप धारण करने वाले हनुमान जी ने दूसरे द्वारा न पार जाने योग्य समुद्र के पार पहुँच कर, और आगे के कर्तव्य का

भली भांति विचार कर, अपना कार्य सिद्ध करने के लिये अत्यन्त छोटा रूप धारण किया ॥२०७॥

ततः स लम्बस्य गिरेः समृद्धे विचित्रकूटे निपपात कूटे ।
सकेतकोद्दालकनारिकेले महाभ्रकूटप्रतिमो महात्मा ॥ २०८॥

तदनन्तर समुद्रतट से हनुमान जी लम्ब नामक पर्वत के ऊपर गये। उस लम्ब पर्वत पर केतकी, उद्दालक, नारियल आदि के अनेक फले फूले वृक्ष लगे हुए थे। इस पर्वत के शिखर भी बड़े सुन्दर थे। उन्हीं सुन्दर शिखरों में से एक शिखर पर हनुमान जी जा कर ठहरे ॥२०८॥

ततस्तु संप्राप्य समुद्रतीरं समीक्ष्य लङ्कां गिरिवर्यमूर्ध्नि ।
कपिस्तु तस्मिन् निपपात पर्वते विधूय रूपं व्यथयन् मृगद्विजान्
॥२०९॥

हनुमान जी, समुद्र तीरवर्ती त्रिकूटपर्वत के शिखर पर बसी हुई लंका को देख कर और अपने पूर्वरूप को त्याग कर तथा वहाँ के पशुपक्षियों को डराते हुए, लम्ब गिरि नामक पर्वत पर उतरे ॥२०९॥

स सागरं दानवपन्नगायुतं बलेन विक्रम्य महोर्मिमालिनम् ।
निपत्य तीरे च महोदधेस्तदा दर्श लङ्काममरावतीमिव ॥२१०॥

दानवों और सर्पो से व्याप्त और महा तरंगो से युक्त महासागर को अपने बल पराक्रम से लांघ कर और उसके तट पर पहुँच कर, अमरावती के समान लङ्कापुरी को हनुमान जी ने देखा ॥२१०॥

॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का प्रथम सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ द्वितीयः सर्गः दूसरा सर्ग ॥

लङ्कापुर्या वर्णनं, तत्र प्रवेशविषये हनुमतो विचारो, लघुरूपधरस्य तस्य पुर्यां प्रवेशः, तदानीं चन्द्रोदयशोभाया वर्णनम् -लंकापुरी का वर्णन और उसमें प्रवेश करने के लिए हनुमान जी का विचार करना, तत्पश्चायत हनुमान जी का लघुरूप से लंका पुरी में प्रवेश तथा चंद्रोदय का वर्णन

स सागरमनाधृष्यं अतिक्रम्य महाबलः ।
त्रिकूटशिखरे लङ्कां स्थितः स्वस्थो ददर्श ह ॥ १ ॥

अपने बल पराक्रम से महाबली हनुमान जी ने अपार समुद्र को लांघ कर और सावधान होकर, त्रिकूटपर्वत पर बसी हुई लंका पुरी को देखा ॥१॥

ततः पादपमुक्तेन पुष्पवर्षेण वीर्यवान् ।
अभिवृष्टस्ततस्तत्र बभौ पुष्पमयो हरिः ॥ २ ॥

उस पर्वत पर जो फूले हुए वृक्ष थे, वह पवन के वेग से हिलने लगे। उनके हिलने से फूल टूट टूट कर नीचे गिरने लगे, उन वृक्षों की पुष्प वर्षा से वीर्यवान हनुमान जी मानों पुष्पमय हो गये ॥२॥

योजनानां शतं श्रीमांस्तीर्त्वाप्युत्तमविक्रमः ।
अनिःश्वसन् कपिस्तत्र न ग्लानिमधिगच्छति ॥ ३॥

शोभावान् एवं अमित विक्रमशाली हनुमान जी इतने चौड़े अर्थात १०० योजन के समुद्र को फांद गए, किन्तु न तो उन्होंने बीच में कहीं दम लिया और न ही उनके मन में ग्लानि ही उत्पन्न हुई ॥३॥

शतान्यहं योजनानां क्रमेयं सुबहून्यपि ।
किं पुनः सागरस्यान्तं सङ्ख्यातं शतयोजनम् ॥ ४॥

हनुमान जी मन ही मन कहने लगे कि, इस शत योजन मर्यादा वाले समुद्र की तो बात ही क्या है। मैं तो अन्य बहुत से सैकड़ों योजन मर्यादा वाले समुद्रों को पार कर सकता हूँ ॥४॥

स तु वीर्यवतां श्रेष्ठः प्लवतामपि चोत्तमः ।
जगाम वेगवांल्लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम् ॥ ५॥

इस प्रकार मन ही मन सोचते विचारते श्रेष्ठ वीर्यवान्, कपियों में मुख्य, महावेगवान हनुमान जी समुद्र को फांद कर लंका में चले गये ॥५॥

शाद्वलानि च नीलानि गन्धवन्ति वनानि च ।
मधुमन्ति च मध्येन जगाम नगवन्ति च ॥ ६॥

शैलांश्च तरुसंछन्नान् वनराजीश्च पुष्पिताः ।
अभिचक्राम तेजस्वी हनुमान् प्लवगर्षभः ॥ ७॥

वानरोत्तम तेजस्वी हनुमान जी, रास्ते में हरी हरी घासों और सुगन्ध युक्त मधु से भरे और सुन्दर वृक्षों से शोभित वनो और वृक्षों से आच्छादित पर्वतों और पुष्पित वृक्षों से पूर्ण वनों में से हो कर जा रहे थे॥६-७॥

स तस्मिन्नचले तिष्ठन् वनान्युपवनानि च ।
स नगाग्रे स्थितां लङ्कां ददर्श पवनात्मजः ॥ ८॥

जव पवननन्दन हनुमान जी ने उस पहाड़ पर खड़े हो कर देखा, तब उन्हें वन उपवन तथा पर्वतशिखर पर बसी हुई लंका दिखाई पड़ी ॥८॥

सरलान् कर्णिकारांश्च खर्जूरांश्च सुपुष्पितान् ।
प्रियालान् मुचुलिन्दांश्च कुटजान् केतकानपि ॥ ९॥

वनों में उन्हें देवदारु, कर्णिकार, पुष्पित खजूर, चिरौंजी, खिन्नी, माया, केतकी, ॥९॥

प्रियङ्गून् गन्धपूर्णांश्च नीपान् सप्तच्छदांस्तथा ।
असनान् कोविदारांश्च करवीरांश्च पुष्पितान् ॥ १०॥

सुगन्धित प्रियंगु, कदम्ब, शतावरी, असन, कोविदार और फूले हुए करवीर के वृक्ष दिखाई पड़े ॥१०॥

पुष्पभारनिबद्धांश्च तथा मुकुलितानपि ।
पादपान् विहगाकीर्णान् पवनाधूतमस्तकान् ॥ ११॥

इन वृक्षों में से बहुत से तो फूलों से लदे थे और बहुतों में कलियां लगी हुई थीं। उन पर झंड के झुंड पक्षी बैठे हुए थे। उन वृक्षों को फुनगियां पवन के चलने से हिल रही थीं ॥११॥

हंसकारण्डवाकीर्णा वापीः पद्मोत्पलायुताः ।
आक्रीडान् विविधान् रम्यान् विविधांश्च जलाशयान् ॥ १२ ॥

वहां बावलियां भी थीं, जिनमें हंस और जलमुर्ग खेल रहे थे और कमल तथा कुमुदनी के फूल खिल रहे थे। वहां पर राजाओं के विहार करने की रमणीक तरह तरह की वाटिकाएँ थीं, जिनके भीतर विविध आकार प्रकार के जल के कुण्ड बने हुए थे ॥१२॥

सन्ततान् विविधैर्वृक्षैः सर्वर्तुफलपुष्पितैः ।
उद्यानानि च रम्याणि ददर्श कपिकुञ्जरः ॥ १३॥

सब ऋतुओं में फलने फूलने वाले अनेक प्रकार के वृक्षों से युक्त वहाँ रमणीक वाटिकाएँ भी हनुमान जी ने देखीं ॥१३॥

समासाद्य च लक्ष्मीवांल्लङ्कां रावणपालिताम् ।
परिघाभिः सपद्माभिः सोत्पलाभिरलंकृताम् ॥ १४॥

शोभायुक्त, हनुमान जी अब रावणपालित लंका के समीप पहुँचे। लंका पुरी फूले कमलों तथा कुमुदनी से युक्त गहरी खाई से घिरी हुई थी॥१४॥

सीतापहरणात् तेन रावणेन सुरक्षिताम् ।
समन्ताद् विचरद्भिश्च राक्षसैरुग्रधन्वभिः ॥ १५॥

जब से रावण सीता को हर कर लाया था, तब से लंका की विशेष रूप से निगरानी करने के लिये कामरूपी राक्षस लंका के चारों ओर घूम घूम कर पहरा दिया करते थे। हनुमान जी ने इन पहरेदारों को भी देखा ॥१५॥

काञ्चनेनावृतां रम्यां प्राकारेण महापुरीम् ।
गृहैश्च ग्रहसंकाशैः शारदाम्बुदसंनिभैः ॥ १६॥

लंकापुरी के चारो ओर बड़ा सुन्दर सोने का परकोटा बना हुआ था। उसके भीतर शरद कालीन मेघों के समान सफेद और पहाड़ों की तरह ऊँचे ऊँचे अनेक मकान बने हुए थे ॥१६॥

पाण्डुराभिः प्रतोलीभिरुच्चाभिरभिसंवृताम् ।
अट्टालकशताकीर्णां पताकाध्वजशोभिताम् ॥ १७॥

लंका में सफेद रंग की हुई पक्की और साफ सुथरी गलियाँ थीं। सैकड़ों अटारीदार मकान थे और जगह जगह ध्वजा पताकाएँ फहरा रही थीं ॥१७॥

तोरणैः काञ्चनैर्दिव्यैर्लतापङ्क्तिविराजितैः ।
ददर्श हनुमांल्लङ्कां देवो देवपुरीमिव ॥ १८॥

वहाँ चमचमाती हुई सोने की लताकार रेखाएं जैसी रंग बिरंगी बंधनवार दिखाई देती थीं। हनुमान जी ने देवताओं की अरावती पुरी की तरह सुन्दर सजी हुई लंका की शोभा देखी ॥१८॥

गिरिमूर्ध्नि स्थितां लङ्कां पाण्डुरैर्भवनैः शुभैः ।
ददर्श स कपि श्रीमान् पुरीमाकाशगामिव ॥ १९॥

शोभायुक्त हनुमान जी ने त्रिकूटाचल पर्वत पर बसी हुई असंख्य सफेद रंग के सुन्दर मनोहर भवनों से युक्त आकाश रूपी लंकापुरी को देखा अथवा लंका ऐसी जान पड़ती थी मानों अन्तरिक्ष में बसी हो ॥१९॥

पालितां राक्षसेन्द्रेण निर्मितां विश्वकर्मणा ।
प्लवमानामिवाकाशे ददर्श हनुमान् कपिः ॥ २० ॥

लंकापुरी का शासन रावण के हाथ में था और विश्वकर्मा ने इस पुरी को बनाया था। हनुमान जी ने देखा कि, उसके भीतर जो ऊँचे ऊँचे भवन खड़े थे, उनको देखने से ऐसा प्रतीत होता था, मानों वह पुरी आकाश में उड़ी जाती हो ॥२०॥

वप्रप्राकारजघनां विपुलाम्बुवनाम्बराम् ।
शतघ्नीशूलकेशान्तामट्टालकावतंसकाम् ॥ २१ ॥

लंका के परकोटे की दीवारें तो लंका रूपिणी स्त्री की मानों जांघें हैं, उसके चारों ओर जो वन और समुद्र था, वह मानों उसके पहनने के वस्त्र थे। शतघ्नी (तोप) और त्रिशुल मानों उसके मस्तक के केश थे और उसकी जो अटरियाँ थीं, वह मानों उसके कानों के कर्णफूल थे॥२१॥

मनसेव कृतां लङ्कां निर्मितां विश्वकर्मणा ।
द्वारमुत्तरमासाद्य चिन्तयामास वानरः ॥ २२॥

इस प्रकार की लंकापुरी को विश्वकर्मा ने बड़े मन से अर्थात् परिश्रम पूर्वक बनाया था। जब हनुमान जी लंका के उत्तर दिशा वाले फाटक पर पहुंचे, तब वह मन ही मन कहने लगे ॥२२॥

कैलासनिलयप्रख्यमालिखन्तमिवाम्बरम् ।
ध्रियमाणमिवाकाशमुच्छ्रितैर्भवनोत्तमैः ॥ २३ ॥

लंका के उत्तर का फाटक भी कैलाश के सदृश्य आकाश स्पर्शी था। ऐसा लगता था, मानों उसके ऊँचे ऊँचे मकान आकाश को सहारा देने वाले खंभे हैं। अथवा वह ऊँचे मकान आकाश को धारण किये हुए हैं ॥२३॥

संपूर्णा राक्षसैर्घोरैर्नागैर्भोगवतीमिव ।
अचिन्त्यां सुकृतां स्पष्टां कुबेराध्युषितां पुरा ॥ २४ ॥

हनुमान जी कहने लगे कि, जिस प्रकार भगवती पुरी नागों से भरी है, उसी प्रकार यह लंका राक्षसों से भरी हुई है ॥२४॥

तस्याश्च महतीं गुप्तिं सागरं च निरीक्ष्य सः ।
रावणं च रिपुं घोरं चिन्तयामास वानरः ॥ २५॥

हनुमान जी ने देखा कि, लंका की उचित प्रकार से रक्षा तो समुद्र ही कर रहा है। साथ ही हनुमान जी ने यह भी सोचा कि, रावण भी एक महाभयंकर शत्रु है ॥२५॥

आगत्यापीह हरयो भविष्यन्ति निरर्थकाः ।
नहि युद्धेन वै लङ्का शक्या जेतुं सुरैरपि ॥ २६॥

यदि वानरगण यहां किसी प्रकार आ भी पहुंचे, तो भी उनका यहाँ आना व्यर्थ हो जाएगा। क्योंकि इस लंका को जीतने की शक्ति तो देवताओं और दैत्यों में भी नहीं है ॥२६॥

इमां त्वविषमां दुर्गां लङ्कां रावणपालिताम् ।
प्राप्यापि सुमहाबाहुः किं करिष्यति राघवः ॥ २७॥

रावणपालित इस विकट दुर्गम लंका में श्रीरामचन्द्र जी यदि आ भी गये तो, वह कर ही क्या सकेंगे ॥२७॥

अवकाशे न साम्नस्तु राक्षसेष्वभिगम्यते ।
न दानस्य न भेदस्य नैव युद्धस्य दृश्यते ॥ २८॥

मेरी समझ में तो राक्षसगण, खुशामद से काबू में आने वाले तो हैं नहीं। इन लोगों को लालच दिखला कर या इनमें फूट डाल कर अथवा इनसे युद्ध करके भी, इनसे पार नहीं पाया जा सकता ॥२८॥

चतुर्णामेव हि गतिर्वानराणां तरस्विनाम् ।
वालिपुत्रस्य नीलस्य मम राज्ञश्च धीमतः ॥ २९॥

हमारी सेना में चार ही ऐसे जन हैं जो यहाँ आ सकते हैं। एक तो अंगद, दूसरे नील, तीसरा मैं और चौथे बुद्धिमान वानर राज सुग्रीव ॥२९॥

यावज्जानामि वैदेहीं यदि जीवति वा न वा ।
तत्रैव चिन्तयिष्यामि दृष्ट्वा तां जनकात्मजाम् ॥ ३० ॥

अत: अब सब से पहले तो यह जान लेना है कि, जानकी जी जीवित भी हैं कि नहीं। मैं पहले तो जानकी जी को देख लेने पर पीछे अन्य बातों की चिन्ता करूँगा ॥३०॥

ततः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः ।
गिरिः शृङ्गे स्थितस्तस्मिन् रामस्याभ्युदयं ततः ॥ ३१ ॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जो के हित में रत, कविश्रेष्ठ हनुमान जी पर्वत के शिखर पर बैठे हुए मुहूर्त भर तक मन ही मन सोचते रहे ॥३१॥

अनेन रूपेण मया न शक्या रक्षसां पुरी ।
प्रवेष्टुं राक्षसैर्गुप्ता क्रूरैर्बलसमन्वितैः ॥ ३२॥

उन्होंने सोचा कि, बलवान तथा क्रूर स्वभाव राक्षसों द्वारा रक्षित लंका में मैं अपने इस रूप से प्रवेश नहीं कर सकता ॥३२॥

उग्रहौजसो महावीर्या बलवन्तश्च राक्षसाः ।
वञ्चनीया मया सर्वे जानकीं परिमार्गता ॥ ३३॥

अत: मुझे, जानकी जी का पता लगाने के लिये इन महाबली और महापराक्रमी राक्षसों को धोखा देना ही उचित है ॥३३॥

लक्ष्यालक्ष्येण रूपेण रात्रौ लङ्कापुरी मया ।
प्राप्तकालं प्रवेष्टुं मे कृत्यं साधयितुं महत् ॥ ३४॥

मुझे रात के समय ऐसे रूप से जिसे कोई न देख सके, लंका में घुसना उचित है। क्योंकि इतना बड़ा कार्य ऐसा किये बिना पूरा नहीं होगा ॥३४॥

तां पुरीं तादृशीं दृष्ट्वा दुराधर्षां सुरासुरैः ।
हनुमांश्चिन्तयामास विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः ॥ ३५॥

केनोपायेन पश्येयं मैथिलीं जनकात्मजाम् ।
अदृष्टो राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ॥ ३६॥

इस प्रकार हनुमान जी सुर और असुरों से दुराधर्ष उस लंका पुरी को बराबर देखने लगे और बार बार लंबी सांसे लेकर यह सोचते थे कि, किस उपाय से जनकनन्दिनी जानकी की तो मैं देख लूँ और उस दुरात्मा राक्षसराज रावण की दृष्टि से बचा रहूँ ॥३५-३६॥

न विनश्येत् कथं कार्यं रामस्य विदितात्मनः ।
एकामेकस्तु पश्येयं रहिते जनकात्मजाम् ॥ ३७॥

तीनों लोकों में प्रसिद्ध श्रीरामचन्द्र जी का कार्य किस प्रकार करूँ जिससे कार्य बिगड़े नहीं। मैं तो अकेला एकान्त में अकेली जानकी को देखना चाहता हूँ ॥३७॥

भूताश्चार्था विनश्यन्ति देशकालविरोधिताः ।
विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ॥ ३८॥

देश और काल के प्रतिकूल कार्य करने वाला और कातर दूत बने बनाये कार्य को उसी प्रकार नष्ट कर डालता है, जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को नष्ट कर देता है ॥३८॥

अर्थानर्थान्तरे बुद्धिः निश्चितापि न शोभते ।
घातयन्तीह कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ॥ ३९॥

कर्तव्याकर्त्तव्य के विषय में निश्चित कर लेने पर भी, ऐसे दूतों के कारण कार्य की सिद्धि नहीं होती। क्योंकि वह अपनी बुद्धिमानी के अभिमान में बने बनाए कार्यों को बिगाड़ डालते हैं॥३९॥

न विनश्येत् कथं कार्यं वैक्लव्यं न कथं भवेत् ।
लङ्घनं च समुद्रस्य कथं नु न भवेत् वृथा ॥ ४० ॥

अतः अब किस उपाय से मैं काम लूँ, जिससे न तो कार्य ही बिगड़े, और न मुझमें कातरता ही आए। प्रत्युत मेरा समुद्र फांदना वृथा भी न हो ॥४०॥

मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य विदितात्मनः ।
भवेद् व्यर्थमिदं कार्यं रावणानर्थमिच्छतः ॥ ४१ ॥

त्रिभुवन विख्यात श्रीरामचन्द्र जी रावण को दण्ड देना चाहते हैं, अतः यदि राक्षसों ने मुझे देख लिया तो श्रीरामचन्द्र जी का यह कार्य बिगड़ जायगा ॥४१॥

नहि शक्यं क्वचित् स्थातुमविज्ञातेन राक्षसैः ।
अपि राक्षसरूपेण किमुतान्येन केनचित् ॥ ४२॥

राक्षसों से छिप कर यहां कोई भी नहीं रह सकता । यहाँ तक कि राक्षसों का अथवा अन्य किसी का रूप धारण करने से भी राक्षसों से छुटकारा नहीं हो सकता ॥४२॥

वायुरप्यत्र नाज्ञातश्चरेदिति मतिर्मम ।
नह्यत्राविदितं किंचिद् रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥ ४३॥

मैं तो समझता हूँ कि, वायु भी यहाँ पर गुप्त रूप से नहीं यह सकती। क्योंकि बलवान राक्षसों से कोई बात छिपी नहीं रह सकती ॥४३॥

इहाहं यदि तिष्ठामि स्वेन रूपेण संवृतः ।
विनाशमुपायास्यामि भर्तुरर्थश्च हास्यति ॥ ४४॥

यदि मैं अपने असली रूप में यहाँ रुका भी रहूँ तो केवल स्वामी कार्य ही नष्ट नही होगा, अपितु मैं भी मारा जाऊँगा ॥४४॥

तदहं स्वेन रूपेण रजन्यां ह्रस्वतां गतः ।
लङ्कामभिपतिष्यामि राघवस्यार्थसिद्धये ॥ ४५॥

अतः मैं अपने शरीर को बहुत ही छोटा बना कर, श्रीरामचन्द्र जो के काम के लिये रात के समय लंका में जाऊँगा ॥४५॥

रावणस्य पुरीं रात्रौ प्रविश्य सुदुरासदाम् ।
प्रविश्य भवनं सर्वं द्रक्ष्यामि जनकात्मजाम् ॥ ४६॥

इस अत्यन्त दुर्धर्ष रावण की राजधानी लंका पुरी में रात के समय घुस कर प्रत्येक घर में जा कर, सीताजी की खोज करूंगा ॥४६॥

इति निश्चित्य हनुमान् सूर्यस्यास्तमयं कपिः ।
आचकाङ्क्षे तदा वीरो वैदेह्या दर्शनोत्सुकः ॥ ४७॥

इस प्रकार अपने मन में निश्चय कर जानकी जी को देखने के लिये उत्सुक वीर हनुमान जी, सूर्यास्त की प्रतीक्षा करने लगे ॥४७॥

सूर्ये चास्तं गते रात्रौ देहं संक्षिप्य मारुतिः ।
वृषदंशकमात्रोऽथ सन् बभूवाद्भुतदर्शनः ॥ ४८॥

जब सूर्य अस्ताचलगामी हुए, तब हनुमान जी ने अपने शरीर को बिल्ली के समान छोटा और देखने में विस्मयोत्पादक बना लिया ॥४८॥

प्रदोषकाले हनुमांस्तूर्णमुत्पत्य वीर्यवान् ।
प्रविवेश पुरीं रम्यां प्रविभक्तमहापथाम् ॥ ४९॥

वीर्यवान हनुमान जी तुरन्त परकोटा फांद कर, उस रमणीय और सुन्दर राजमार्गों से युक्त, लंकापुरी में घुस गये ॥४९॥

प्रासादमालाविततां स्तम्भैः काञ्चनसंनिभैः ।
शातकुम्भनिभैर्जालैगन्धर्वनगरोपमाम् ॥ ५०॥

हनुमान जी ने लंका के भीतर जाकर देखा कि, बड़े बड़े भवनों की श्रेणियों से और अनेक सुवर्णमय खंभों से तथा सोने के झरोखों से लंका पुरी गन्धर्व नगरी की तरह सजी हुई है ॥५०॥

सप्तभौमाष्टभौमैश्च स ददर्श महापुरीम् ।
तलैः स्फटिकसंकीर्णैः कार्तस्वरविभूषितैः ॥ ५१॥

सात, आठ मंजिल के भवनों से और स्फटिक से पूर्ण तथा सुवर्ण भूषित अनेक स्थानों से वह राक्षसों की निवासस्थली लंका पुरी अत्यन्त शोभायुक्त दिखाई पड़ती थी॥५१॥

वैदूर्यमणिचित्रैश्च मुक्ताजालविभूषितैः ।
तैस्तैः शुशुभिरे तानि भवनान्यत्र रक्षसाम् ॥ ५२॥

राक्षसों के घरों के फर्श वैदूर्य मणियों के जड़ाव और मोतियों की झालरों से शोभित थे ॥५२॥

काञ्चनानि विचित्राणि तोरणानि च रक्षसाम् ।
लङ्कां उद्योतयामासुः सर्वतः समलंकृताम् ॥ ५३॥

राक्षसों के घर के तोरणद्वार, जो सुवर्णनिर्मित और रंग, बिरंगे बने हुए थे, चारों ओर से विभूषित हो लङ्का की शोभा बढ़ा रहे थे॥५३॥

अचिन्त्यां अद्भुताकारां दृष्ट्वा लङ्कां महाकपिः ।
आसीद् विषण्णो हृष्टश्च वैदेह्या दर्शनोत्सुकः ॥ ५४॥

जानकी जी के दर्शन के लिये उत्सुक महाकपि हनुमान जी इस प्रकार की अचिन्तनीय और आश्चर्यजनक बनावट की लंका पुरी को देखकर, पहले तो हर्षित हुए, फिर उदास हो गये ॥५४॥

स पाण्डुराविद्धविमानमालिनीं महार्हजाम्बूनदजालतोरणाम् ।
यशस्विनीं रावणबाहुपालितां क्षपाचरैर्भीमबलैः सुपालिताम् ॥५५॥

हनुमान जी ने देखा कि, रावण द्वारा रक्षित, प्रसिद्ध लंका नगरी, श्रेणीबद्ध सफेद अट्टालिकाओं से, महामूल्यवान् सुवर्णमय झरोखों

और तारणद्वारों से अलंकृत है और अत्यन्त बलिष्ट राक्षसों की सेना चारों ओर से उसकी रखवाली कर रही है॥५५॥

चन्द्रोऽपि साचिव्यमिवास्य कुर्वंस्तारागणैर्मध्यगतो विराजन् ।
ज्योत्स्नावितानेन वितत्य लोकानुत्तिष्ठतेऽनेकसहस्ररश्मिः ॥ ५६॥

उस समय मानों वायुपुत्र की सहायता करने के लिये अनेक किरणों वाला चन्द्रमा, ताराओं के साथ, चांदनी छिटकाता हुआ, आकाश में आ विराजा ॥५६॥

शङ्खप्रभं क्षीरमृणालवर्णमुद्गच्छमानं व्यवभासमानम् ।
ददर्श चन्द्रं स कपिप्रवीरः पोप्लूयमानं सरसीव हंसम् ॥ ५७॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने देखा कि, सरोवर में जिस प्रकार हंस उछल कूद मचाते हैं, उसी प्रकार दूध अथवा मृणाल वर्ण, शंख की तरह चन्द्रमा भी आकाश में उदय हो कर ऊपर को उठ रहा है ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वितायः सर्गः ॥ २॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का दूसरा सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥तृतीय: सर्गः तीसरा सर्ग ॥

लंकां लोक्य हनुमतो विस्मयऽतत्र प्रविशततस्य लंकयावरोधस्तत्प्रहारेण पीडितया तया तस्मै पुर्य्यां प्रवेष्टुंनुमतिदानम् – लंकापुरी का अवलोकन करके हनुमान जी का विस्मित होना, निशाचरी लंका का उन्हें प्रवेश करने से रोकना और हनुमान जी की मार से उन्हें लंकापुरी में प्रवेश की अनुमति देना

स लम्बशिखरे लम्बे लम्बतोयदसंनिभे ।
सत्त्वमास्थाय मेधावी हनुमान् मारुतात्मजः ॥ १ ॥

निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः ।
रम्यकाननतोयाढ्यां पुरीं रावणपालिताम् ॥ २ ॥

बुद्धिमान तथा महावलीन कपिश्रेष्ठ पवननन्दन हनुमान जी ने धैर्य धारण कर महामेघ की तरह लम्ब नामक पर्वत के उच्च शिखर पर स्थित, लंका पुरी में रात के समय प्रवेश किया। वह रावण की लंका

पुरी उपवनों तथा स्वादिष्ट जल वाले कूप, तालाब, बावली से पूर्ण थी॥१-२॥

शारदाम्बुधरप्रख्यैर्भवनैरुपशोभिताम् ।
सागरोपमनिर्घोषां सागरानिलसेविताम् ॥ ३ ॥

वह शरद कालीन बादलों की तरह सफेद भवनों से सुशोभित थी। उसमें सदा समुद्र का गर्जन सुनाई देता था और वहां समुद्री पवन सदा बहा करता था ॥३॥

सुपुष्टबलसंपुष्टां यथैव विटपावतीम् ।
चारुतोरणनिर्यूहां पाण्डुरद्वारतोरणाम् ॥ ४ ॥

विटपावती नगरी की तरह लंका पुरी को भी रखवाली के लिये परम हृष्ट पुष्ट राक्षसी सेना पुरी के चारों ओर नियत थी। उसके तोरणद्वारों पर मदमत्त हाथी झूमा करते थे। सफेद रंग के उसके तोरणद्वार थे॥४॥

भुजगाचरितां गुप्तां शुभां भोगवतीमिव ।
तां सविद्युद्घनाकीर्णां ज्योतिर्गणनिषेविताम् ॥ ५ ॥

वह सब ओर से सर्पों द्वारा रक्षित सर्पों की भोगवतीपुरी की तरह सुरक्षित थी। वह दामिनी युक्त बादलों से घिरी और ताराओं से शोभित थी॥५॥

चण्डमारुतनिर्ह्रादां यथा चाप्यमरावतीम् ।
शातकुम्भेन महता प्राकारेणाभिसंवृताम् ॥ ६ ॥

इन्द्र की अमरावती की तरह लंका पुरी भी प्रचण्ड वायु से नादित हुआ करती थी। उसके चारों ओर बड़ा ऊँचा और लंबा चौड़ा सोने की दीवारों का परकोटा खिंचा हुआ था॥६॥

किंकिणीजालघोषाभिः पताकाभिरलंकृताम् ।
आसाद्य सहसा हृष्टः प्राकारमभिपेदिवान् ॥ ७ ॥

उसमें छोटी छोटी घंटियों के जाल जगह जगह बने हुए थे, जिनकी घंटियां सदा बजा करती थीं । जगह जगह पताकाएँ फहरा रही थीं। उस लंकापुरी के परकोटे की दीवार पर हनुमान जी प्रसन्नता पूर्वक सहसा कूद कर चढ़ गये ॥७॥

विस्मयाविष्टहृदयः पुरीमालोक्य सर्वतः ।
जाम्बूनदमयैर्द्वारैर्वैदूर्यकृतवेदिकैः ॥ ८ ॥

उस परकोटे पर से उन्होंने उस पुरी को चारों ओर से देखा और देख कर वे विस्मित हुए। क्योंकि उन्होंने देखा कि, उस पुरी के भवनों के सभी दरवाजे सोने के थे और पन्ने के चबूतरे बने हुए थे॥८॥

वज्रस्फाटिकमुक्ताभिर्मणिकुट्टिमभूषितैः ।
तप्तहाटकनिर्यूहै राजतामलपाण्डुरैः ॥ ९ ॥

उस पुरी के भवनों की दीवारें हीरा,स्फटिक, मोती तथा अन्य मणियों की बनी हुई थीं। उनका ऊपरी भाग सुवर्ण और चांदी का बना हुआ था ॥९॥

वैदूर्यकृतसोपानैः स्फाटिकान्तरपांसुभिः ।
चारुसञ्जवनोपेतैः खमिवोत्पतितैः शुभैः ॥ १० ॥

भवनों में जाने के लिए जो सीढ़ियां थीं, वे पन्नों की थी और द्वारों के भीतर का समस्त फर्श भी पन्नों से जड़ा हुआ था। उन द्वारों के ऊपर जो कमरे बने थे, वे बहुत ही मनोहर थे। वे इतने ऊँचे थे कि, ऐसा लगता था कि, वह आकाश से बातें कर रहे हैं॥१०॥

क्रौञ्चबर्हिणसंघुष्टै राजहंसनिषेवितैः ।
तूर्याभरणनिर्घोषैः सर्वतः प्रतिनादिताम् ॥ ११ ॥

भवनों के द्वारों पर क्रौंच, मोर आदि पक्षी सुहावनी बोलियाँ बोल रहे थे। राजहंस अलग ही वहाँ की शोभा बढ़ा रहे थे। सर्वत्र नगाड़ों और आभूषणों के शब्द सुनाई पड़ते थे ॥११॥

वस्वोकसाराप्रतिमां समीक्ष्य नगरीं ततः ।
खमिवोत्पतितां लङ्कां जहर्ष हनुमान् कपिः ॥ १२ ॥

इस प्रकार समृद्धशालिनी और आकाशस्पर्शिनी अलका पुरी की तरह उस लंका पुरी को देख कर, हनुमान जी अत्यंत प्रसन्न हुए ॥१२॥

तां समीक्ष्य पुरीं लङ्कां राक्षसाधिपतेः शुभाम् ।
अनुत्तमामृद्धिमतीं चिन्तयामास वीर्यवान् ॥ १३ ॥

रावण की उस सुन्दर ऋद्धमती लंका पुरी को देख, बलवान हनुमान जी अपने मन में कहने लगे ॥१३॥

नेयमन्येन नगरी शक्या धर्षयितुं बलात् ।
रक्षिता रावणबलैः उद्यतायुधपाणिभिः ॥ १४ ॥

अन्य किसी की तो सामर्थ्य नहीं, जो इस लंका को जीत सके। क्योंकि रावण के सैनिक हाथों में आयुध ले कर इस नगरी की रक्षा करने में सदा तत्पर रहते हैं ॥१४॥

कुमुदाङ्गदयोर्वापि सुषेणस्य महाकपेः ।
प्रसिद्धेयं भवेद् भूमिर्मैन्दद्विविदयोरपि ॥ १५ ॥

विवस्वतस्तनूजस्य हरेश्च कुशपर्वणः ।
ऋक्षस्य कपिमुख्यस्य मम चैव गतिर्भवेत् ॥ १६ ॥

परन्तु कुमुद, अंगद, महाकपि सुषेण, मैन्द, द्विविद, सूर्यपुत्र सुग्रीव और कुश जैसे लोमधारी रीछों में श्रेष्ठ जाम्बवान और मैं बस यह लोग ही यहां आ सकते हैं ॥१५-१६॥

समीक्ष्य च महाबाहू राघवस्य पराक्रमम् ।
लक्ष्मणस्य च विक्रान्तमभवत् प्रीतिमान् कपिः ॥ १७ ॥

इस प्रकार सोच विचार कर, जब हनुमान जी ने श्रीरामचन्द्र के पराक्रम और लक्ष्मण के विक्रम को ओर दृष्टि डाली, तब वह प्रसन्न हो गये ॥१७॥

तां रत्नवसनोपेतां गोष्ठागारावतंसिकाम् ।
यन्त्रागारस्तनीमृद्धां प्रमदामिव भूषिताम् ॥ १८ ॥

लंका, मणि रूपी वस्त्रों से और गौशाला अथवा हयशाला रूपी कर्णभूषणों से और प्रायुधों के गृह रूपी स्तनों से, अलंकृत स्त्री की तरह, जान पड़ती थी ॥१८॥

तां नष्टतिमिरां दीपैर्भास्वरैश्च महागृहैः ।
नगरीं राक्षसेन्द्रस्य स ददर्श महाकपिः ॥ १९ ॥

अनेक प्रकार के रत्नों से प्रकाशित भवनों में जो दीपक जल रहे थे, उनसे वहाँ पर अंधकार नाम मात्र को भी नहीं था। ऐसी राक्षसराज रावण की लंकापुरी को, महाकपि हनुमान जी ने देखा ॥१९॥

अथ सा हरिशार्दूलं प्रविशन्तं महाकपिम् ।
नगरी स्वेन रूपेण ददर्श पवनात्मजम् ॥ २० ॥

इतने में कपिश्रेष्ठ महाबली हनुमान जी को लंका पुरी में प्रवेश करते समय, उस पुरी की अधिष्ठात्री देवी ने देख लिया ॥२०॥

सा तं हरिवरं दृष्ट्वा लङ्का रावणपालिता ।
स्वयमेवोत्थिता तत्र विकृताननदर्शना ॥ २१ ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान जी को देख कर वह महाविकराल मुखवाली एवं कामरूपिणी लंका की अधिष्ठात्री देवी स्वयं ही उठ आई ॥२१॥

पुरस्तात् तस्य वीरस्य वायुसूनोरतिष्ठत ।
मुञ्चमाना महानादमब्रवीत् पवनात्मजम् ॥ २२ ॥

वह देवी, हनुमान जी की राह रोक उनके सामने जा खड़ी हुई और भयंकर नाद करती हुई पवनपुत्र से बोली ॥२२॥

कस्त्वं केन च कार्येण इह प्राप्तो वनालय ।
कथयस्वेह यत् तत्त्वं यावत् प्राणा धरन्ति ते ॥ २३ ॥

अरे बनवासी बंदर! तू कौन है? और यहाँ क्यों आया है यदि तुझे अपने प्राण प्यारे हो तो ठीक ठीक बतला ॥२३॥

न शक्यं खल्वियं लङ्का प्रवेष्टुं वानर त्वया ।
रक्षिता रावणबलैरभिगुप्ता समन्ततः ॥ २४ ॥

हे वानर ! निश्चय ही तुझमें यह सामर्थ्य नहीं कि, तू लंका में घुस सके। क्योंकि रावण की सेना इसकी चारों ओर से रखवाली किया करती है ॥२४॥

अथ तामब्रवीद् वीरो हनूमानग्रतः स्थिताम् ।
कथयिष्यामि तत् तत्त्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसे ॥ २५ ॥

सामने खड़ी हुई उस लंका से वीर हनुमान जी ने कहा-तू मुझसे जो कुछ पूछ रही है, वह मैं सब ठीक ठीक बतलाऊँगा ॥२५॥

का त्वं विरूपनयना पुरद्वारेऽवतिष्ठसे ।
किमर्थं चापि मां क्रोधान्निर्भर्त्सयसि दारुणे ॥ २६ ॥

परन्तु पहले तो तू यह बता कि तू कौन है, जो इस नगरद्वार पर विकराल नेत्र किये खड़ी है और क्यों मेरा मार्ग रोक कर मुझे डांट रही है ॥२६॥

हनुमद्वचनं श्रुत्वा लङ्का सा कामरूपिणी ।
उवाच वचनं क्रुद्धा परुषं पवनात्मजम् ॥ २७ ॥

हनुमान जी के ये वचन सुन, वह कामरूपिणी लंका की अदिष्ठात्री देवी, क्रुद्ध होकर हनुमान जी से कठोर वचन बोली ॥२७॥

अहं राक्षसराजस्य रावणस्य महात्मनः ।
आज्ञा प्रतीक्षा दुर्धर्षा रक्षामि नगरीमिमाम् ॥ २८ ॥

मैं महाबलवान राक्षसराज रावण की आज्ञानुवर्तिनी दुर्घषा लंका नगरी की अधिष्ठात्री देवी हूँ और इस पुरी की मैं रक्षा किया करती हूँ ॥२८॥

न शक्यं मामवज्ञाय प्रवेष्टुं नगरीमिमाम् ।
अद्य प्राणैः परित्यक्तः स्वप्स्यसे निहतो मया ॥ २९ ॥

मेरी अवहेला करके तू इस नगरी के भीतर नहीं घुस सकता। यदि तू मेरी अवहेला करेगा तो याद रखना तू मुझसे मारा जाकर, अभी भूमि पर पड़ा हुआ दिखाई देगा ॥२९॥

अहं हि नगरी लङ्का स्वयमेव प्लवङ्गम ।
सर्वतः परिरक्षामि अतस्ते कथितं मया ॥ ३० ॥

हे वानर मैं स्वयं लंका हूँ और मैं चारों ओर से इसकी रखवाली किया करती हूँ । इसी कारण मैंने तुझे रोका है ॥३०॥

लङ्काया वचनं श्रुत्वा हनुमान् मारुतात्मजः ।

यत्नवान् स हरिश्रेष्ठः स्थितः शैल इवापरः ॥ ३१ ॥

बुद्धिमान और उपयोगी पवननन्दन हनुमान जी लंका की यह बातें सुन, उसे परास्त करने के लिये उसके सामने पर्वत की तरह अचल भाव से खड़े हो गये ॥३१॥

स तां स्त्रीरूपविकृतां दृष्ट्वा वानरपुङ्गवः ।
आबभाषेऽथ मेधावी सत्त्ववान् प्लवगर्षभः ॥ ३२ ॥

वानरश्रेष्ठ, बुद्धिमान एवं बलवान हनुमान जी उस विकटाकार रूप धारिणी लंका देवी से बोले ॥३२॥

द्रक्ष्यामि नगरीं लङ्कां साट्टप्राकारतोरणाम् ।
इत्यर्थमिह सम्प्राप्तः परं कौतूहलं हि मे ॥ ३३ ॥

वनान्युपवनानीह लङ्कायाः काननानि च ।
सर्वतो गृहमुख्यानि द्रष्टुमागमनं हि मे ॥ ३४ ॥

हे लंके! मैं इस नगरी की अटारियां, प्राकार, तोरण, वन, उपवन, तथा प्रधान प्रधान भवनों को देखना चाहता हूँ और इसीलिये मैं यहां आया हूँ। मुझे लङ्कापुरी को देखने का बड़ा कुतूहल है॥३३-३४॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लङ्का सा कामरूपिणी ।
भूय एव पुर्नवाक्यं बभाषे परुषाक्षरम् ॥ ३५ ॥

उस कामरूपिणी लंका देवी ने हनुमान जी के ये वचन सुन, फिर हनुमान जी से कठोर वचन कहे ॥३५॥

मामनिर्जित्य दुर्बुद्धे राक्षसेश्वरपालिताम् ।
न शक्यं ह्यद्य ते द्रष्टुं पुरीयं वानराधम ॥ ३६ ॥

हे दुर्बुद्धे ! हे वानराधम ! इस राक्षेश्वर रावण द्वारा रक्षित लंकापुरी को, मुझे हराये बिना अब तू नहीं देख सकता ॥३६॥

ततः स हरिशार्दूलः तामुवाच निशाचरीम् ।
दृष्ट्वा पुरीमिमां भद्रे पुनर्यास्ये यथागतम् ॥ ३७ ॥

तदनन्तर कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने उस निशाचरी से कहा-हे भद्रे मैं एक बार इस लंका पुरी को देखकर, जहाँ से आया हूँ, वहीं लौट कर चला जाऊँगा ॥३७॥

ततः कृत्वा महानादं सा वै लङ्का भयंकरम् ।
तलेन वानरश्रेष्ठं ताडयामास वेगिता ॥ ३८ ॥

तब उस लंका देवी ने बड़ी ज़ोर से भयंकर नाद कर, हनुमान जी के कसकर एक थप्पड़ मारा ॥३८॥

ततः स हरिशार्दूलो लङ्कया ताडितो भृशम् ।

ननाद सुमहानादं वीर्यवान् मारुतात्मजः ॥ ३९ ॥

लंका देवी के हाथ से ज़ोर का थप्पड़ खाकर, बलवान पवनपुत्र ने महानाद किया ॥३९॥

ततः संवर्तयामास वामहस्तस्य सोऽङ्गुलीः ।
मुष्टिनाभिजघानैनां हनूमान् क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४० ॥

और बाये हाथ की अंगुलियाँ मोड़ और मुट्ठी बाँध हनुमान जी ने क्रुद्ध हो, लंका के एक घूँसा मारा ॥४०॥

स्त्री चेति मन्यमानेन नातिक्रोधः स्वयं कृतः ।
सा तु तेन प्रहारेण विह्वलाङ्गी निशाचरी । ॥ ४१ ॥

पपात सहसा भूमौ विकृताननदर्शना ।
ततस्तु हनुमान् वीरस्तां दृष्ट्वा विनिपातिताम् ॥ ४२ ॥

उस पर भी लंका को स्त्री समझ हनुमान जी ने बहुत क्रोध नहीं किया था, किन्तु वह राक्षसी लंका उतने ही प्रहार से विकल ओर लोटपोट हो जमीन पर गिर पड़ी और उसका मुख और भी अधिक विकराल हो गया। उसको जमीन पर छटपटाते देख, बुद्धिमान एवं तेजस्वी हनुमान जी को ॥४१-४२॥

कृपां चकार तेजस्वी मन्यमानः स्त्रियं च ताम् ।

ततो वै भृशमुद्विग्ना लङ्का सा गद्गदाक्षरम् ॥ ४३ ॥

उवाचागर्वितं वाक्यं हनुमन्तं प्लवङ्गमम् ।
प्रसीद सुमहाबाहो त्रायस्व हरिसत्तम ॥ ४४ ॥

उसे स्त्री समझ उस पर बड़ी दया आयी। तदनन्तर अत्यन्त विकल वह लंका देवी, गदगद वाणी से अभिमान रहित हो कपिवर हनुमान जी से बोली। हे कपिश्रेष्ठ महाबाहू! तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो और मुझे बचाओ ॥४३-४४॥

समये सौम्य तिष्ठन्ति सत्त्ववन्तो महाबलाः ।
अहं तु नगरी लङ्का स्वयमेव प्लवङ्गम ॥ ४५ ॥

क्योंकि जो धैर्यवान् और महाबली पुरुष होते हैं, वह स्त्री का वध नहीं करते। हे वानर! मैं ही लङ्का नगरी की अधिष्ठात्री देवी हूँ॥४५॥

निर्जिताऽहं त्वया वीर विक्रमेण महाबल ।
इदं च तथ्यं शृणु मे ब्रुवन्त्या वै हरीश्वर ॥ ४६ ॥

अत: हे महाबली! तुमने मुझे अपने पराक्रम से जीत लिया। महाकपीश्वर ! मैं जो अब यथार्थ वृत्तान्त कहती हूँ, उसे तुम सुनो ॥४६॥

स्वयं स्वयम्भुवा दत्तं वरदानं यथा मम ।
यदा त्वां वानरः कश्चिद् विक्रमाद् वशमानयेत् ॥ ४७ ॥

ब्रह्मा जी ने प्राचीनकाल में मुझको यह वरदान दिया था कि, जब तुझको कोई वानर परास्त कर देगा ॥४७॥

तदा त्वया हि विज्ञेयं रक्षसां भयमागतम् ।
स हि मे समयः सौम्य प्राप्तोऽद्य तव दर्शनात् ॥ ४८ ॥

तब तू जान लेना कि,अब राक्षसों के ऊपर विपत्ति आ पहुंची। अत: हे सौम्य! तुम्हारे दर्शन से आज वह मेरा समय आ गया है ॥४८॥

स्वयम्भूविहितः सत्यो न तस्यास्ति व्यतिक्रमः ।
सीतानिमित्तं राज्ञस्तु रावणस्य दुरात्मनः ।
राक्षसां चैव सर्वेषां विनाशः समुपागतः ॥ ४९ ॥

क्योंकि ब्रह्मा की कही बात सत्य है, उसमें रत्ती भर भी अन्तर नहीं पड़ सकता। देखो, सीताजी के कारण इस दुष्ट रावण का तथा अन्य समस्त राक्षसों का विनाशकाल आ पहुँचा ॥४९॥

तत् प्रविश्य हरिश्रेष्ठ पुरीं रावणपालिताम् ।
विधत्स्व सर्वकार्याणि यानि यानीह वाञ्छसि ॥ ५० ॥

सो हे कपिश्रेष्ठ ! तुम अब रावण द्वारा पालित इस लंका पुरी में प्रवेश कर तुम जो भी करना चाहते हो, करो ॥५०॥

प्रविश्य शापोपहतां हरीश्वरः पुरीं शुभां राक्षसमुख्यपालिताम् ।
यदृच्छया त्वं जनकात्मजां सतीं विमार्ग सर्वत्र गतो यथासुखम् ॥५१
॥

हे कपीश्वर! इस शापोपहत, रावणपालित एवं सुन्दर लंका पुरी में मनमाना प्रवेश कर, तुम सर्वत्र ढूंढ कर, सती सीता जी का पता लगाओ ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का तीसरा सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥चतुर्थः सर्गः चौथा सर्ग॥

हनुमतो लङ्कायां रावणस्यान्तःपुरे च प्रवेशः – हनुमान जी का लंकापुरी और उसके पश्च्यात रावण के अंत:पुर में प्रवेश

स निर्जित्य पुरीं लङ्कां श्रेष्ठां तां कामरूपिणीम् ।
विक्रमेण महातेजा हनूमान् कपिसत्तमः ॥ १ ॥

अद्वारेण महावीर्यः प्राकारमवपुप्लुवे ।
निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः ॥ २ ॥

महाबली, महाबाहु, महातेजस्, वानरश्रेष्ठ हनुमान जी ने, लंकापुरी की कामरूपिणी अधिष्ठात्री देवी को अपने पराक्रम से जीत कर द्वार से न जा कर, परकोटे की दीवार फांद कर लंका में प्रवेश किया कर गए ॥१-२॥

प्रविश्य नगरीं लङ्कां कपिराजहितंकरः ।
चक्रेऽथ पादं सव्यं च शत्रूणां स तु मूर्धनि ॥ ३ ॥

कपिराज सुग्रीव के हितैषी हनुमान जी ने लंका पुरी में प्रवेश करते ही शत्रु के सिर पर अपना बायाँ पैर रखा ॥३॥

प्रविष्टः सत्त्वसम्पन्नो निशायां मारुतात्मजः ।
स महापथमास्थाय मुक्तपुष्पविराजितम् ॥ ४ ॥

इस प्रकार महापराकर्मी पवनपुत्र हनुमान जी रात के समय लंका पुरी में प्रवेश कर, खिले हुए पुष्पों से सुशोभित राजमार्ग पर गमन करने लगे ॥४॥

ततस्तु तां पुरीं लङ्कां रम्यामभिययौ कपिः ।
हसितोत्कृष्टनिनदैः तूर्यघोषपुरस्कृतैः ॥ ५ ॥

उस समय रमणीक लंका पुरी में जाते समय हनुमान जी ने लोगों के हँसने का शब्द तथा नगाड़ों के बजने का शब्द सुना ॥५॥

वज्राङ्कुशनिकाशैश्च वज्रजालविभूषितैः ।
गृहमेधैः पुरी रम्या बभासे द्यौरिवाम्बुदैः ॥ ६ ॥

हनुमान जी ने लंका में अनेक प्रकार के घर देखे । उन घरों में कोई वन के आकार का, कोई अंकुश के आकार का बना हुआ था। उनमें हीरे जडित झरोखे बने हुए थे। उन मेघ सदृश घरों से उस

रमणीयपुरी की शोभा ऐसी हो रही थी, जैसी शोभा मेघों से आकाश की हुआ करती है ॥६॥

प्रजज्वाल तदा लङ्का रक्षोगणगृहैः शुभै ।
सिताभ्रसदृशैश्चित्रैः पद्मस्वस्तिकसंस्थितैः ॥ ७ ॥

राक्षसों के सुन्दर गृहों से उस समय लंका पुरी खूब दमक रही थी। उन घरों में से किसी की बनावट कमलाकार, किसी की स्वस्तिकाकार थी। ॥७॥

वर्धमानगृहैश्चापि सर्वतः सुविभूषितैः ।
तां चित्रमाल्याभरणां कपिराजहितंकरः ॥ ८ ॥

लंकापुरी सभी ओर से वर्द्धमान संज्ञक श्रादि गृहों से शोभायमान थी। उन घरों में जगह जगह फूलों की मालाएँ शोभा के लिये लटकायी गयी थी। सुग्रीव के हितैषी हनुमान इन घरों की सजावट देखते हुए चले जाते थे ॥८॥

राघवार्थे चरञ्श्रीमान् ददर्श च ननन्द च ।
भवनाद् भवनं गच्छन् ददर्श कपिकुञ्जरः ॥ ९ ॥

विविधाकृतिरूपाणि भवनानि ततस्ततः ।
शुश्राव रुचिरं गीतं त्रिस्थानस्वरभूषितम् ॥ १० ॥

श्रीरामचन्द्र का कार्य पूरा करने के लिये, हनुमान जी लंका पुरी का अन्वेषण करते हुए प्रसन्न होते थे और जानकी जी को खोजने के लिये एक घर से दूसरे घर में जाते हुए, विविध आकार और प्रकार के घरों को देखते थे। उन भवनों में सुन्दर गाने का शब्द सुन पड़ता था। वह गान वक्षस्थल, कंठ और मस्तक से निकले हुए मन्द्र, मध्य और तार नामक स्वरों से युक्त था ॥९-१०॥

स्त्रीणां मदनविद्धानां दिवि चाप्सरसामिव ।
शुश्राव काञ्चीनिनदं नूपुराणां च निःस्वनम् ॥ ११ ॥

सोपाननिनदांश्चापि भवनेषु महात्मनाम् ।
अस्फोटितनिनादांश्च क्ष्वेडितांश्च ततस्ततः ॥ १२ ॥

स्वर्गवासिनी अप्सरायों की तरह काम से उन्मत्त हुई स्त्रियों के बिछुवे और करधनी को झंकार, जो स्त्रियों के सीढ़ियों पर चढ़ने उतरने से होती थी हनुमान जी बलवान् राक्षसों के घरों में सुनते जाते थे। कहीं तालियां बजाने और सिंहतुल्य दहाड़ने का शब्द भी सुनाई पड़ता था ॥११-१२॥

शुश्राव जपतां तत्र मन्त्रान् रक्षोगृहेषु वै ।
स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान् ददर्श सः ॥ १३ ॥

हनुमान जी ने राक्षसों के भवनों में जप करने वाले राक्षसों द्वारा उच्चारित मंत्रों को सुना और स्वाध्यायनिरत राक्षसों को भी देखा ॥१३॥

रावणस्तवसंयुक्तान् गर्जतो राक्षसानपि ।
राजमार्गं समावृत्य स्थितं रक्षोगणं महत् ॥ १४ ॥

अनेक राक्षसों को रावण की प्रशंसा करते और गर्जते हुए देखा। राजमार्ग को घेरे हुए राक्षसों का एक बड़ा दल खड़ा हुआ था॥१४॥

ददर्श मध्यमे गुल्मे राक्षसस्य चरान् बहून् ।
दीक्षिताञ्जटिलान् मुण्डान् गोजिनाम्बरवाससः ॥ १५ ॥

नगर के बीच में सैनिकों की जो छावनी थी, उसमें हनुमान जी ने अनेक जासूसों को देखा! इनके अतिरिक्त वहाँ पर बहुत से गृहस्थ जटाधारी, मुडिया, बैल का चमड़ा वस्त्र की तरह ओढ़े हुए ॥१५॥

दर्भमुष्टिप्रहरणानग्निकुण्डायुधांस्तथा ।
कूटमुद्गरपाणींश्च दण्डायुधधरानपि ॥ १६ ॥

कुश के मूठे से प्रहार करने वाले, मंत्रों द्वारा अग्नि से कृत्या उत्पन्न करने वाले, कटीले मुगदर धारण करने वाले, डंडाधारी ॥१६॥

एकाक्षानेककर्णांश्च लम्बोदरपयोधरान् ।
करालान् भुग्नवक्त्रांश्च विकटान् वामनांस्तथा ॥ १७ ॥

एक आँख वाले, अनेक कानों वाले, छाती पर लंबे लटकते हुए स्तनों वाले, देखने में भयंकर, टेढ़े मुख वाले, विकट रूप धारी, बौने ॥१७॥

धन्विनः खड्गिनश्चैव शतघ्नीमुसलायुधान् ।
परिघोत्तमहस्तांश्च विचित्रकवचोज्ज्वलान् ॥ १८ ॥

धनुषधारी, खडगधारी, शतघ्नी और मूसलधारी, परिघ को हाथ में लिये हुए और विचित्र चमकते हुए कवच पहने हुए राक्षसों को भी हनुमान जी ने देखा ॥१८॥

नातिस्थूलान् नातिकृशान् नातिदीर्घातिह्रस्वकान् ।
नातिगौरान् नातिकृष्णान्नातिकुब्जान्न वामनान् ॥ १९ ॥

वहाँ ऐसे भी सैनिक राक्षस थे, जो न तो मोटे और न दुबले थे; न लंबे और न ठिगने ही थे। न बहुत गोरे और न बहुत काले थे, न कुबड़े और न बौने ही थे ॥ १९॥

विरूपान् बहुरूपांश्च सुरूपांश्च सुवर्चसः ।
ध्वजिनः पताकिनश्चैव ददर्श विविधायुधान् ॥ २० ॥

बदसूरत भी थे, अनेक रूपधारी थे, खूबसूरत थे और तेजस्वी भी थे। कहीं कहीं बजाधारी, पताकाधारी, अनेक आयुधों को धारण करने वाले सैनिक राक्षस भी थे ॥२०॥

शक्तिवृक्षायुधांश्चैव पट्टिशाशनिधारिणः ।
क्षेपणीपाशहस्तांश्च ददर्श स महाकपिः ॥ २१ ॥

उनमें अनेक ऐसे राक्षसों को हनुमान जी ने देखा जो शक्ति, वृक्ष, पटा, वज्र, गुलेल और पाश धारण किये हुए थे ॥२१॥

स्रग्विणस्त्वनुलिप्तांश्च वराभरणभूषितान् ।
नानावेषसमायुक्तान् यथास्वैरचरान् बहून् ॥ २२ ॥

सभी राक्षस माला धारण किये हुए, चंदन लगाये हुए और उत्तम गहने और वस्त्र पहने हुए थे। अनेक प्रकार के वेश धारी राक्षसों को स्वतंत्र विहार करते हुए हनुमान जी ने देखा ॥२२॥

तीक्ष्णशूलधरांश्चैव वज्रिणश्च महाबलान् ।
शतसाहस्रमव्यग्रमारक्षं मध्यमं कपिः ॥ २३ ॥

छावनी के मध्य भाग में एक लाख बलवान और सावधान राक्षस सैनिकों को हाथों में पैने त्रिशूल और वज्र लिये हुए हनुमान जी ने देखा ॥२३॥

रक्षोऽधिपतिनिर्दिष्टं ददर्शान्तः पुराग्रतः ।
स तदा तद् गृहं दृष्ट्वा महाहाटकतोरणम् ॥ २४ ॥

राक्षसेन्द्रस्य विख्यातंमद्रिमूर्ध्नि प्रतिष्ठितम् ।
पुण्डरीकावतंसाभिः परिघाभिः समावृतम् ॥ २५ ॥

फिर जब हनुमान जी रावण के रनिवास में पहुंचे, तब वहाँ देखा कि, रावण की आज्ञा से रनिवास के सामने भी राक्षस सैनिक रखवाली

कर रहे हैं। तदनन्तर हनुमान जी ने पर्वत के शिखर पर स्थित और प्रसिद्ध रावण का भवन देखा। इस भवन का तोरण द्वार सुवर्ण का बना हुआ था और इस भवन के चारों ओर जल से भरी और कमलों से शोभित खाई थी ॥२४-२५॥

प्राकारावृतमत्यन्तं ददर्श स महाकपिः ।
त्रिविष्टपनिभं दिव्यं दिव्यनादविनादितम् ॥ २६॥

खाई के बाद एक बड़ा ऊंचा परकोटा था। हनुमान जी ने रावण के भवन को स्वर्ग की तरह सुन्दर देखा। उस भवन में दिव्य वाद्य यंत्र बज रहे था ॥२६॥

वाजिह्रेषितसंघुष्टं नादितं भूषणैस्तदा ।
रथैर्यानैर्विमानैश्च तथा हयगजैः शुभैः ॥ २७ ॥

भवन के द्वार पर घोड़े हिन हिना रहे थे, और वह जो आभूषण धारण किये हुए थे, उनकी झंकार भी हो रही थी। इनके अतिरिक्त विविध प्रकार के रथ आदि सवारियां, विमान, और अच्छी नस्ल के हाथी और घोड़े भी मौजूद थे ॥२७॥

वारणैश्च चतुर्दन्तैः श्वेताभ्रनिचयोपमैः ।
भूषितै रुचिरद्वारं मत्तैश्च मृगपक्षिभिः ॥ २८ ॥

भवन के द्वार की शोभा बढ़ाने के लिये सफेद बादल जैसे चार दांतों वाले बड़े डीलडौल के सफेद हाथी और अनेक प्रकार के मृग और पक्षी भी थे ॥२८॥

रक्षितं सुमहावीर्यैर्यातुधानैः सहस्रशः ।
राक्षसाधिपतेर्गुप्तमाविवेश गृहं कपिः ॥ २९॥

जिस राजभवन की रक्षा के लिये हज़ारों महाबली और पराक्रमी राक्षस नियुक्त थे, उसके भीतर हनुमान जी ने प्रवेश किया ॥२९॥

स होमजाम्बूनदचक्रवालं महार्हमुक्तामणिभूषितान्तम् ।
परार्ध्यकालागरुचन्दनार्हं स रावणान्तःपुरमाविवेश ॥ ३० ॥

रावण के भवन का परकोटा विशुद्ध उत्तम सवर्ण का बना हुआ था और उसमें यथास्थान बड़े बड़े मूल्यवान मोती और मणियों के नग जड़े हुए थे। रावण का अन्तःपुर सदा चन्दन, गुग्गुल आदि सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित रहता था। ऐसे राज भवन में हनुमान जी ने प्रवेश किया ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का चौथा सर्ग: पूरा हुआ ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥पंचम सर्गः पाँचवाँ सर्ग॥

रावणान्तःपुरे प्रतिग्रहं सीताया अन्वेषणं कुर्वतो हनुमतस्तामदृष्ट्वा दुःखम् – हनुमान की का रावण के अंत:पुर में सीता जी को ढूँढना और उन्हें न देखकर दुखी होना

ततः स मध्यं गतमंशुमन्तं ज्योत्स्नावितानं मुहुरुद्वमन्तम् ।
ददर्श धीमान् दिवि भानुमन्तं गोष्ठे वृषं मत्तमिव भ्रमन्तम् ॥ १ ॥

तदांतर श्री हनुमान जी ने देखा की जिस प्रकार गौशाला में गायों के झुण्ड के बीच सांड मतवाला होकर होकर विचरता है। उसी प्रकार पृथ्वी के ऊपर अपनी चांदनी का मंडप सजाये चंद्रमा आकाश के मध्य भाग में तारों के बीच विचरण कर रहे हैं। ॥१॥

लोकस्य पापानि विनाशयन्तं महोदधिं चापि समेधयन्तम् ।
भूतानि सर्वाणि विराजयन्तं ददर्श शीतांशुमथाभियान्तम् ॥ २ ॥

वह शीतलता प्रदान करने वाले चंद्रदेव जगत के पाप ताप का नाश कर रहे हैं, महासागर में ज्वर उत्पन्न कर रहे हैं, समस्त प्राणियों में नई ऊर्जा और शक्ति का संचार कर रहे हैं और आकाश में धीरे धीरे ऊपर की ओर उठ रहे हैं। ॥२॥

या भाति लक्ष्मीर्भुवि मन्दरस्था तथा प्रदोषेषु च सागरस्था ।
तथैव तोयेषु च पुष्करस्थाररराज सा चारुनिशाकरस्था ॥ ३ ॥

पृथ्वी पर मन्द्राचल में, संध्या के समय महासागर में और जल के अन्दर कमलों में जो लक्ष्मी जिस प्रकार सुशोभित होती है, वही उसी प्रकार वह लक्ष्मी मनोहर चंद्रमा में सुशोभित हो रही थी । ॥३॥

हंसो यथा राजतपञ्जरस्थः सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः ।
वीरो यथा गर्वितकुञ्जरस्थश्चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाम्बरस्थः ॥ ४ ॥

जिस प्रकार चांदी के पिजरे में हंस, मन्द्राचल की गुफाओं में सिंह तथा मदमत्त हाथी की पीठ पर वीर पुरुष शोभा पाते हैं, उसी प्रकार आकाश में चंद्रदेव सुशोभित हो रहे थे। ॥४॥

स्थितः ककुद्मानिव तीक्ष्णशृङ्गो महाचलः श्वेत इवोर्ध्वशृङ्गः ।
हस्तीव जाम्बूनदबद्धशृङ्गो रराज चन्द्रः परिपूर्णशृङ्गः ॥ ५ ॥

जिस प्रकार खड़ा हुआ ऊंचे सींगों वाला बैल शोभा पाता है। जिस प्रकार ऊपर को उठे शिखर वाला महान श्वेत वर्ण पर्वत शोभा पाता

है और जिस प्रकार स्वर्ण मंडित दाँतों वाला हाथी सुशोभित होता है, वैसे ही मृग के शिखर रुपी चिन्ह से युक्त परिपूर्ण चन्द्रमा शोभित हो रहे थे। ॥५॥

विनष्टशीताम्बुतुषारपङ्को महाग्रहग्राहविनष्टपङ्कः ।
प्रकाशलक्ष्म्याश्रयनिर्मलाङ्को रराज चन्द्रो भगवानञ्शशाङ्कः ॥ ६ ॥

जिनके शीतल जल और हिमरुपी दलदल से संसर्ग का दोष दूर नष्ट हो गया हो, सूर्य की किरणों को ग्रहण करने के कारण जिन्होंने अपने अन्धकार रुपी दलदल को भी नष्ट कर दिया है तथा प्रकाश रुपी लक्ष्मी का आश्रयस्थान होने के कारण जिनकी कालिमा भी निर्मल प्रतीत होती है, वह शशांक चंद्रदेव आकाश में सुशोभित हो रहे थे। ॥६॥

शिलातलं प्राप्य यथा मृगेन्द्रो महारणं प्राप्य यथा गजेन्द्रः ।
राज्यं समासाद्य यथा नरेन्द्रस्तथा प्रकाशो विरराज चन्द्रः ॥ ७ ॥

जैसे गुफा के बाहर बैठा हुआ सिंह शोभा प्राप्त करता है, जैसे विशाल वन में पहुँच कर हाथी सुशोभित होता है तथा जैसे राज्य पा कर राजा सुशोभित होता है, उसी प्रकार निर्मल प्रकाश से युक्त होकर चंद्रदेव सुशोभित हो रहे थे। ॥७॥

प्रकाशचन्द्रोदयनष्टदोषः प्रवृद्धरक्षःपिशिताशदोषः ।

रामाभिरामेरितचित्तदोषः स्वर्गप्रकाशो भगवान् प्रदोषः ॥ ८ ॥

प्रकाश युक्त चंद्रमा के उदय से जिसका अन्धकार नष्ट हो गया हो, जिसमें राक्षसों के जीव हिंसा और मांस भक्षण रुपी दोष बढ़ गए हैं तथा रमणियों के प्रणय कलह निर्वृत हो गए हों, वह अत्यंत सुखदायक प्रदोष काल सुख का प्रकाश करने लगा। ॥८॥

तन्त्रीस्वराः कर्णसुखाः प्रवृत्ताः स्वपन्ति नार्यः पतिभिः सुवृत्ताः ।
नक्तञ्चराश्चापि तथा प्रवृत्ता विहर्तुमत्यद्भुतरौद्रवृत्ताः ॥ ९ ॥

वीणा के कानों को प्रिय लगने वाले शब्द झंकृत हो रहे थे। सदाचारिणी स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ विश्राम कर रही थी तथा अत्यंत अद्भुत और भयंकर शील स्वाभाव वाले निशाचर अर्द्ध रात्रि में विहार कर रहे थे। ॥९॥

मत्तप्रमत्तानि समाकुलानि रथाश्वभद्रासनसङ्कुलानि ।
वीरश्रिया चापि समाकुलानि ददर्श धीमान् स कपिः कुलानि ॥१०॥

हनुमान जी ने लंका में अनेकों घर देखे जिनमे से कुछ में ऐश्वर्य से मदमस्त निशाचर निवास कर रहे थे, कुछ में मदिरापान से मतवाले हुए राक्षस भरे हुए थे, अनेकों घर रथ घोड़े आदि वाहनों और भद्रासनों से संपन्न थे तथा अनेकों वीर लक्ष्मी से भरे हुए दिखाई देते थे। ॥१०॥

परस्परं चाधिकमाक्षिपन्ति भुजांश्च पीनानधिनिक्षिपन्ति ।
मत्तप्रलापानधिविक्षिपन्ति मत्तानि चान्योन्यमधिक्षिपन्ति ॥ ११ ॥

राक्षस गण आपस में एक दुसरे पर व्यंगता पूर्वक अत्यधिक दोषारोपण करते थे, अपनी मोटी मोटी भुजाओं को हिलाते और चलाते थे । पागलों जैसी बहकी बहकी बातें करते थे और मदिरा से उन्मत्त होकर एक दूसरे को अप्रिय वचन बोलते थे । ॥११॥

रक्षांसि वक्षांसि च विक्षिपन्ति गात्राणि कान्तासु च विक्षिपन्ति ।
रूपाणि चित्राणि च विक्षिपन्ति दृढानि चापानि च विक्षिपन्ति ॥१२ ॥

वह मतवाले राक्षस अपनी बात बात पर अपनी छाती पीटते थे, अपने हाथ पैर इत्यादि अपनी स्त्रियों पर रख देते थे। सुन्दर चित्रों का निर्माण करते थे और सुदृढ़ धनुषों को कान तक खींचते थे। ॥१२॥

ददर्श कान्ताश्च समालभन्त्यथापरास्तत्र पुनः स्वपन्त्यः ।
सुरूपवक्त्राश्च तता हसन्त्यः क्रुद्धाः पराश्चापिविनिःश्वसन्त्यः ॥१३॥

हनुमान जी ने यह भी देखा की नायिकाएँ अपने अंगों मे चन्दन का अनुलेपन करती हैं। कुछ वहीँ सोती हैं, कुछ सुन्दर मुख और रूपवान युवतियां हंसती हैं तथा अन्य प्रणय कलह से कुपित होकर लम्बी सांसे खींच रही हैं।॥१३॥

महागजैश्चापि तथा नदद्भिः सुपूजितैश्चापि तथा सुसद्भिः ।
रराज वीरैश्च विनःश्वसद्भिर्ह्रदा भुजङ्गैरिव निःश्वसद्भिः ॥१४॥

चिंघाड़ते हुए हाथियों, अत्यंत सामानित श्रेष्ठ सभासदों तथा लम्बी सांसे छोड़ने वाले वीरों के कारण वह लंका पुरी फुफकारते हुए सर्पों से युक्त सरोवरों के सामान शोभा पा रही थी ।॥१४॥

बुद्धिप्रधानान् रुचिराभिधानान्संश्रद्धधानाञ्जगतः प्रधानान् ।
नानाविधानान् रुचिराभिधानान्ददर्श तस्यां पुरि यातुधानान् ॥१५॥

हनुमान जी उस लंका पुरी में बहुत से उत्तम बुद्धि वाले, सुन्दर वाक् कौशल वाले, सम्यक श्रद्धा वाले ,अनेक प्रकार के रूप रंग वाले और मनोहर नामों वाले विश्व विख्यात राक्षस देखे ।॥१५॥

ननन्द दृष्ट्वा स च तान् सुरूपान् नानागुणानात्मगुणानुरूपान् ।
विद्योतमानान् स च तान् सुरूपान् ददर्श कांश्चिच्च पुनर्विरूपान् ॥
१६॥

वह सुन्दर रूप वाले, अनेक प्रकार से गुणों से संपन्न, अपने गुण के अनुकूल व्यवहार करने वाले तथा तेजस्वी थे। उन्हें देख कर हनुमान जी अत्यंत प्रसन्न ही हुए, उन्होंने अनेकों राक्षसों को सुन्दर रूप से संपन्न देखा और अनेकों को कुरूप भी पाया । ॥१६॥

ततो वरार्हाः सुविशुद्धभावास्तेषां स्त्रियस्तत्र महानुभावाः ।

प्रियेषु पानेषु च सक्तभावा ददर्श तारा इव सुस्वभावाः ॥ १७॥

इसके पश्चात् उन्होंने सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण करने योग्य सुन्दरी राक्षस रमणियों को देखा, जिनका भाव अत्यंत विशुद्ध था तथा वह अत्यंत प्रभावशालिनी थी। उनका मन प्रियतम में तथा मधुपान में आसक्त था और वह तारों के सामान कान्तिमयी और सुन्दर स्वाभाव वाली थीं ॥१७॥

स्त्रियो ज्वलन्तीस्त्रयोपगूढा निशीथकाले रमणोपगूढाः ।
ददर्शकाश्चित् प्रमदोपगूढा यथा विहंगा विहगोपगूढाः ॥ १८ ॥

हनुमान जी की दृष्टि में कुछ ऐसी स्त्रियाँ भी आयीं, जो अपने रूप सौन्दर्य से प्रकाशित हो रही थीं। वह सुस्ती से अर्द्ध रात्रि के समय अपने प्रियतम के आलिंगन पाश में इस प्रकार बंधी हुई थीं जैसे पक्षिणी पक्षी के द्वारा आलिंगित होती है। वह सभी आन्नद में मग्न थीं॥१८॥

अन्याः पुनर्हर्म्यतलोपविष्टास्तत्र प्रियाङ्केषु सुखोपविष्टाः ।
भर्तुः परा धर्मपरा निविष्टा ददर्श धीमान् मदनोपविष्टाः ॥ १९ ॥

दूसरी अन्य महलों की छतों पर बैठी थीं । वह पति की सेवा में तत्पर रहने वाली, धर्मपरायणा, विवाहिता और काम भावना से भावित थीं। हनुमान जी ने उन सभी को अपने प्रियतम के अंक में सुखपूर्वक बैठे देखा। ॥१९॥

अप्रावृत्ताः काञ्चनराजिवर्णाः काश्चित्पराध्यास्तपनीयवर्णाः ।
पुनश्च काश्चिच्छशलक्ष्मवर्णाः कान्तप्रहीणा रुचिराङ्गवर्णाः ॥ २०॥

कितनी की कामिनियाँ स्वर्ण रेखा के सामान कांतिमय दिखाई देती थीं । उन्होंने अपनी ओढनी उतर दी थी। कितनी ही उत्तम युवतियां स्वर्ण के समान रंग वाली थीं तथा कितनी ही पति वियोगिनी स्त्रियाँ चंद्रमा ने सामान श्वेत वर्ण की दिखाई देती थीं । उनकी अंगकांती अत्यंत सुन्दर थी। ॥२०॥

ततः प्रियान् प्राप्य मनोऽभिरामान्
सुप्रीतियुक्ताः सुमनोऽभिरामाः।
गृहेषु हृष्टाः परमाभिरामा
हरिप्रवीरः स ददर्श रामाः ॥ २१॥

इसके पश्च्यात वानरों के प्रमुख वीर श्री हनुमान जी ने विभिन्न गृहों में ऐसी परम सुन्दर रमणियों का अवलोकन किया जो मनोभिराम प्रियतम का संयोग पाकर अत्यंत प्रसन्न हो रहीं थीं। फूलों के हार से विभोषित होने के कारण उनकी रमणीयता और भी बढ़ गयी थी और वह सभी हर्ष से प्रसन्न दिखाई देती थी। ॥२१॥

चन्द्रप्रकाशाश्च हि वक्त्रमाला वक्राः सुपक्ष्माश्च सुनेत्रमालाः ।
विभूषणानां च ददर्श मालाः शतह्रदानामिव चारुमालाः ॥ २२॥

श्री हनुमान जी ने चंद्रमा के सामान प्रकाशमान मुखों की पंक्तियाँ, सुन्दर पलकों वाले तिरछे नेत्रों की पंक्तियाँ और चमचमाती ही विद्युत् रेखाओं के समान आभूषणों की भी मनोहर पंक्तियाँ देखीं। ॥२२॥

न त्वेव सीतां परमाभिजातां पथि स्थिते राजकुले प्रजाताम् ।
लतां प्रफुल्लामिव साधुजातां ददर्श तन्वीं मनसाभिजाताम् ॥ २३॥

परन्तु जो परमात्मा के मानसिक संकल्प से धर्ममार्ग पर स्थिर रहने वाले राजकुल में प्रकट हुई थीं, जिनका प्रादुर्भाव परम ऐश्वर्य की प्रप्ति कराने वाला है, जो अत्यंत सुन्दर रूप में उत्पन्न हुई, प्रफुल्लित लता के सामान शोभा पातीं थीं, उन कृशांगी माता सीता को उन्होंने कहाँ कही नहीं देखा ॥२३॥

सनातने वर्त्मनि संनिविष्टां रामेक्षणीं तां मदनाभिविष्टाम् ।
भर्तुर्मनः श्रीमदनुप्रविष्टां स्त्रीभ्यः पराभ्यश्च सदा विशिष्टाम् ॥ २४॥

उष्णार्दितां सानुसृतास्रकण्ठीं पुरा वरार्होत्तमनिष्ककण्ठीम् ।
सुजातपक्ष्मामभिरक्तकण्ठीं वने प्रनृत्तामिव नीलकण्ठीम् ॥२५॥

अव्यक्तरेखामिव चन्द्रलेखां पांसुप्रदिग्धामिव हेमरेखाम् ।
क्षतप्ररूढामिव वर्णरेखां वायुप्रभिन्नामिव मेघरेखाम् ॥ २६॥

सीतामपश्यन्मनुजेश्वरस्य रामस्य पत्नीं वदतां वरस्य ।

बभूव दुःखोपहतश्चिरस्य प्लवङ्गमो मन्द इवाचिरस्य ॥ २७॥

जो सदा सनातन मार्ग पर स्थित रहने वाली, श्रीराम पर ही दृष्टि रखने वाली, श्री राम के प्रेम से परिपूर्ण, अपने पति के तेजस्वी मन में बसी हुई तथा दूसरी सभी स्त्रियों से सदा ही श्रेष्ठ थीं, जिन्हें विरह्जनित ताप सदा पीड़ा देता रहता था, जिनके नेत्रों से निरंतर आसुओं की झड़ी लगी रहती थीं, संयोग काल मे जिनका कंठ श्रेष्ठ और बहुमूल्य पदक से बिभूषित रहा करता था, जिनकी पलकें बहुत ही सुन्दर थीं और कंठस्वर अत्यंत मधुर था तथा जो वन में नृत्य करनेवाली मयूरी के सामान मनोहर लगतीं थीं, जो मेघ आदित से आच्छादित होने के कारण अव्यक्त रेखा वाली चन्द्र लेका के सामान धूलि धूसर स्वर्ण रेखा जैसी प्रतीत होती थीं, बाण के आघात से उत्पन्न हुई रेखा के सामान दिखाई देती थीं तथा बादलों की रेखा जैसी दृष्टिगोचर होती थीं। वक्ताओं में श्रेष्ठ नरेश्वर श्री राम चन्द्र जी की पत्नी उन सीता जी को बहुत देर तक ढूँढने पर भी जब हनुमान जी देख न सके तब वह अत्यंत दुखी होकर शिथिल हो गए ॥२४-२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का पाँचवा सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥षष्ठम सर्गः छठा सर्ग ॥

हनुमता रावणस्यान्येषां च रक्षसां गृहेषु सीताया अनुसन्धानम् – हनुमान जी का रावण तथा अन्य राक्षसों के घरों में सीता जी की खोज करना

स निकामं विमानेषु विषण्णः कामरूपधृक् ।
विचचार कपिर्लङ्कां लाघवेन समन्वितः ॥ १ ॥

यथाइच्छा रूप धारण किये हुए कपिश्रेष्ठ हनुमान, विषादित होकर, जल्दी जल्दी अटारियों पर चढ़ चढ़ कर, लङ्कापुरी में विचरने लगे ॥१॥

आससादाथ लक्ष्मीवान् राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ।
प्राकारेणार्कवर्णेन भास्वरेणाभिसंवृतम् ॥ २ ॥

वह राक्षसराज रावण के भवन के समीप पहुँचे। वह राजभवन सूर्य के समान चमकीले परकोटे से घिरा हुआ था ॥२॥

रक्षितं राक्षसैर्भीमैः सिंहैरिव महद् वनम् ।
समीक्षमाणो भवनं चकाशे कपिकुञ्जरः ॥ ३ ॥

जिस प्रकार सिंहों से कोई महावन रक्षित होता है, उसी प्रकार वह राजभवन बड़े बड़े राक्षसों से रक्षित था। उस राजभवन की बनावट और सजावट देखकर हनुमान जी प्रसन्न हो गए ॥३॥

रूप्यकोपहितैश्चित्रैर्तोरणैर्हेमभूषणैः ।
विचित्राभिश्च कक्ष्याभिद्वरैश्च रुचिरैर्वृतम् ॥ ४ ॥

उस राजभवन का तोरणद्वार चांदी का था और चांदी के ऊपर सोने का काम किया गया था। उस भवन की डयोढ़ियाँ अनेक प्रकार की बनी हुई थी। वहां की भूमि और दरवाजे विविध प्रकार के बने थे। वह देखने में सुन्दर और भवन की शोभा बढ़ाने वाले थे ॥४॥

गजास्थितैर्महामात्रैः शूरैश्च विगतश्रमैः ।
उपस्थितमसंहार्यैर्हयैः स्यन्दनयायिभिः ॥ ५ ॥

वहाँ पर श्रमरहित अथवा सहसा न थकने वाले शूरवीर हाथियों पर चढ़े हुए महावत मौजूद थे। अत्यंत वेगवान, जिनका वेग कोई रोक न सके, ऐसे रथों में जाते जाने वाले घोड़े भी वहां उपस्थित थे॥५॥

सिंहव्याघ्रतनुत्राणैर्दान्तकाञ्चनराजतीः ।
घोषवद्भिर्विचित्रैश्च सदा विचरितं रथैः ॥ ६ ॥

सिंह और व्याघ्र के चर्म को धारण किये हुए; सोने, चांदी, और हाथी दांत की प्रतिमाओं से सुसज्जित तथा गम्भीर शब्द करने वाले विचित्र रथ, भवन के चारों ओर रक्षा के लिये घूमा करते थे ॥६॥

बहुरत्नासमाकीर्णं परार्ध्यासनभूषितम् ।
महारथसमावापं महारथमहासनम् ॥ ७ ॥

वहाँ पर विविध प्रकार के श्रेष्ठ अनेक रत्न जडित मूढे, कुर्सी आदि रखे हुए थे। वहाँ पर बड़े बड़े महारथियों के रहने के मकान बने हुए थे और वहां सदा महारथियों का सिंहनाद हुआ करता था। अर्थात राजभवन के पहरे पर बड़े बड़े महारथी नियुक्त थे ॥७॥

दृश्यैश्च परमोदारैः तैस्तैश्च मृगपक्षिभिः ।
विविधैर्बहुसाहस्रैः परिपूर्णं समन्ततः ॥ ८ ॥

वह राजभवन बड़े बड़े डीलडौल के हजारों देखने योग्य पक्षियों और मृगों से भरा हुआ था ॥८॥

विनीतैरन्तपालैश्च रक्षोभिश्च सुरक्षितम् ।
मुख्याभिश्च वरस्त्रीभिः परिपूर्णं समन्ततः ॥ ९ ॥

विनीत वाहन रक्षक, राक्षसों द्वारा उस राजभवन की रखवाली की जाती थी और मुख्य मुख्य सुन्दर स्त्रियां उस राजभवन में सर्वत्र दिखाई देती थी । ॥९॥

मुदितप्रमदारत्नं राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ।
वराभरणसंह्लादैः समुद्रस्वननिःस्वनम् ॥ १० ॥

प्रसन्नवदना स्त्री रक्षकों के सुन्दर आभूषणों की मधुर झनकार से रावण का राजभवन समुद्र की तरह सदा शब्दायमान रहा करता था ॥१०॥

तद् राजगुणसम्पन्नं मुख्यैश्च वरचन्दनैः ।
महाजनसमाकीर्णं सिंहैरिव महद् वनम् ॥ ११ ॥

वह सुगन्धित धूपादि मुख्य मुख्य राजोपचार सामग्रियों से परिपूर्ण था। जिस प्रकार महावन में सिंह रहता है, उसी प्रकार उस भवन में मुख्य मुख्य राक्षस रहा करते थे ॥११॥

भेरीमृदङ्गाभिरुतं शङ्खघोषविनादितम् ।
नित्यार्चितं पर्वसुतं पूजितं राक्षसैः सदा ॥ १२ ॥

यह भेरी, मृदंग, और शंख के शब्दों से प्रतिध्वनित हुआ करता था तथा उस भवन में नित्य अर्चन और पर्व दिवसों में राक्षसों द्वारा हवनादि भी हुआ करते थे ॥१२॥

समुद्रमिव गम्भीरं समुद्रसमनिःस्वनम् ।
महात्मनो महद् वेश्म महारत्नपरिच्छदम् ॥ १३ ॥

महारत्नोसमाकीर्णं ददर्श स महाकपिः ।
विराजमानं वपुषा गजाश्वरथसंकुलम् ॥ १४ ॥

कभी कभी रावण के डर से राजभवन समुद्र की तरह गम्भीर और निःशब्द बना रहता था। अर्थात् वहाँ कोलाहल नहीं होता था। उत्तम सामग्री से तथा भरे हुए उत्तम रत्नों से सुभोभित, रावण के विशाल राजभवन को हनुमान जी ने देखा। उस भवन में जहां तहां गज, अश्व और रथ मौजूद थे ॥१३-१४॥

लङ्काभरणमित्येव सोऽमन्यत महाकपिः ।
चचार हनुमांस्तत्र रावणस्य समीपतः ॥ १५ ॥

हनुमान जी ने उस राजभवन को लंका पुरी का भूषण समझा । अब वह उस स्थान पर गये, जहां रावण सो रहा था ॥१५॥

गृहाद् गृहं राक्षसानामुद्यानानि च सर्वशः ।
वीक्षमाणोऽप्यसन्त्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः ॥ १६ ॥

हनुमान जो राक्षसों के एक घर से दूसरे घर में तथा उनके उद्यानों में घूम घूम कर, सीताजी को ढूंढ रहे थे। यद्यपि वह रूप बदल कर घूम रहे थे, तब भी उनको किसी प्रकार का भय नहीं था। वह भवनों में घूम फिर रहे थे॥१६॥

अवप्लुत्य महावेगः प्रहस्तस्य निवेशनम् ।

ततोऽन्यत् पुप्लुवे वेश्म महापार्श्वस्य वीर्यवान् ॥ १७ ॥

महावेगवान हनुमान जी कूद कर प्रहस्त के भवन में घुसे। वहाँ से कूद कर, महाबली महापर्व के घर में गये। ॥१७॥

अथ मेघप्रतीकाशं कुम्भकर्णनिवेशनम् ।
विभीषणस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ॥ १८ ॥

इसके पश्च्यात वह कुम्भकर्ण के मेघ के सदृश्य विशाल भवन में गये और वहाँ से छलांग मार वह विभीषण के घर पर पहुँचे ॥ १८ ॥

महोदरस्य च तथा विरूपाक्षस्य चैव हि ।
विद्युज्जिह्वस्य भवनं विद्युन्मालेस्तथैव च ॥ १९ ॥

वज्रदंष्ट्रस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ।
शुकस्य च महावेगः सारणस्य च धीमतः ॥ २० ॥

तदनन्तर क्रमशः उन्होंने महोदर, विरूपाक्ष, विद्युजिह्व, विद्युन्माली,वज्रदंष्ट, महावेगवान शुक और बुद्धिमान सारण के घरों की तलाशी ली ॥१९-२०॥

तथा चेन्द्रजितो वेश्म जगाम हरियूथपः ।
जम्बुमालेः सुमालेश्च जगाम हरिसत्तमः ॥ २१ ॥

इसके पश्च्यात वानरयूथपति हनुमान जी इन्द्रजीत-मेघनाद के घर में गये। वहां से वह जम्बुमाली, सुमाली के भवनों में गये ॥२१॥

रश्मिकेतोश्च भवनं सूर्यशत्रोस्तथैव च ।
वज्रकायस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ॥ २२ ॥

हनुमान जी ने रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु और वज्रकाय के घरों में जाकर सीता को ढूँढा ॥२२॥

धूम्राक्षस्याथ च सम्पातेर्भवनं मारुतात्मजः ।
विद्युद्रूपस्य भीमस्य घनस्य विघनस्य च ॥ २३ ॥

पवननन्दन हनुमान जी ने धूम्राक्ष, सम्पात, विद्युद्रप, भीम, घन और विधन के घरों को खंगाला ॥२३॥

शुकनासस्य चक्रस्य शठस्य विकटस्य च ।
ह्रस्वकर्णस्य दंष्ट्रस्य लोमशस्य च रक्षसः ॥ २४ ॥

फिर शुकनास, वक्र, शठ, विकट. हस्वकर्ण, दंष्ट्र, रोमश राक्षस के घरों को देखा ॥२४॥

युद्धोन्मत्तस्य मत्तस्य ध्वजग्रीवस्य सादिनः ।
विद्युज्जिह्वद्विजिह्वानां तथा हस्तिमुखस्य च ॥ २५ ॥

फिर वह युद्धोन्मत्त. मत्त, ध्वजग्रीव, विद्युजिह्व, इन्द्रजिह्व और हस्तिमुख नामक राक्षसों के घरों में गये ॥२५॥

करालस्य पिशाचस्य शोणिताक्षस्य चैव हि ।
प्लवमानः क्रमेणैव हनुमान् मारुतात्मजः ॥ २६ ॥

फिर कराल, पिशाच, शोणिताक्ष के घरों में पवननन्दन हनुमान जी क्रमशः गये ॥२६॥

तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महायशाः ।
तेषां ऋद्धिमतामृद्धिं ददर्श स महाकपिः ॥ २७ ॥

इन सभी बड़े भवनों में जा जा कर, इन राक्षसों की समृद्धि शालीनता हनुमान जी ने देखी ॥२७॥

सर्वेषां समतिक्रम्य भवनानि समन्ततः ।
आससादाथ लक्ष्मीवान् राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥ २८ ॥

इन सब भवनों में होते हुए अत्यंत यशस्वी हनुमान जी, प्रतापी राक्षसराज रावण के भवन में पहुँच ॥२८॥

रावणस्योपशायिन्यो ददर्श हरिसत्तमः ।
विचरन् हरिशार्दूलो राक्षसीर्विकृतेक्षणाः ॥ २९ ॥

हनुमान जी ने वहां जा कर देखा कि, रावण सो रहा है। राजभवन में घूमते हुए हनुमान जी ने बड़ी भयंकर सूरत वाली राक्षसियों को रावण के शयनगृह की रक्षा करते हुए देखा ॥२९॥

शूलमुद्गरहस्तांश्च शक्तितोमरधारिणः ।
ददर्श विविधान्गुल्मान् तस्य रक्षःपतेर्गृहे ॥ ३० ॥

वह हाथों में त्रिशूल, मुगदर, शक्ति, तोमर लिये हुए थी। हनुमान जी ने रावण के घर में विविध सूरत शक्ल के और विविध आकार के आयुधों को लिये हुए राक्षसियों के दलों को देखा ॥३०॥

राक्षसांश्च महाकायान् नानाप्रहरणोद्यतान् ।
रक्ताञ्श्वेतान् सितांश्चापि हरींश्चापि महाजवान् ॥ ३१ ॥

कुलीनान् रूपसंपन्नान् गजान् परगजारुजान् ।
शिक्षितान् गजशिक्षायामैरावतसमान् युधि ॥ ३२ ॥

निहन्तॄन् परसैन्यानां गृहे तस्मिन् ददर्श सः ।
क्षरतश्च यथा मेघान् स्रवतश्च यथा गिरीन् ॥ ३३ ॥

मेघस्तनितनिर्घोषान् दुर्धर्षान् समरे परैः ।
सहस्रं वाहिनीस्तत्र जाम्बूनदपरिष्कृताः ॥ ३४ ॥

ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने ।
शिबिका विविधाकाराः स कपिर्मारुतात्मजः ॥ ३५ ॥

इन पहरेवालियों के अतिरिक्त वहाँ पर विशालकाय और शस्त्रधारण किये हुए राक्षस भी थे और लाल और सफेद रंग के घोड़े भी बँधे हुए थे। कुलीन और सुन्दर हाथियों को, जो शत्रु के हाथियों को मारने वाले, शिक्षित, रण में ऐरावत के तुल्य, शत्रु सैन्य का नाश करने वाले, मेघों की तरह मद को चुआने वाले अथवा झरने की तरह मद की धारा को बहाने वाले, मेघों की तरह चिंगहाड़ने वाले, युद्ध में शत्रु से दुर्धर्ष थे, देखे तथा कलावत के सामान से सजी हुई घुड़सवार सेना भो हनुमानजी ने राक्षस राज रावण के घर में देखी। पवननन्दन हनुमान जी ने विविध प्रकार की पालकियां भी देखी ॥३१-३५॥

हेमजालैरविच्छिन्नास्तरुणादित्यसंनिभाः ।
लतागृहाणि चित्राणि चित्रशालागृहाणि च ॥ ३६ ॥

क्रीडागृहाणि चान्यानि दारुपर्वतकानि च ।
कामस्य गृहकं रम्यं दिवागृहकमेव च ॥ ३७ ॥

ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने ।
स मन्दरसमप्रख्यं मयूरस्थानसंकुलम् ॥ ३८ ॥

यह पालकियों सुवर्ण की जालियों से भूषित, मध्यान्ह के सूर्य की तरह चमचमाती थीं। अनेक चित्र विचित्र लतागृह, चित्र शालाएँ, क्रीडागृह, काठ के पहाड़, रतिगृह और दिन में विहार करने के गृह हनुमान जी ने राक्षसेन्द्र रावण के भवन में देखें। उस भवन में एक स्थान मन्दराचल की तरह विशाल था, जिस पर मोरों के रहने के स्थान बने हुए थे ॥३६-३८॥

ध्वजयष्टिभिराकीर्णं ददर्श भवनोत्तमम् ।
अनन्तरत्ननिचयं निधिजालं समन्तत ॥ ३९ ॥

और वहां ध्वजाएँ फहरा रही थीं। कहीं पर रत्नों के ढेर लगे हुए थे और कहीं पर विविध प्रकार का द्रव्य एकत्र था, ऐसा सर्वश्रेष्ठ भवन हनुमान जी ने देखा ॥३९॥

धीरनिष्ठितकर्माङ्गं गृहं भूतपतेरिव ।
अर्चिर्भिश्चापि रत्नानां तेजसा रावणस्य च ॥ ४० ॥

विरराज च तद् वेश्म रश्मिमानिव रश्मिभिः ।
जाम्बूनदमयान्येव शयनान्यासनानि च ॥ ४१ ॥

भाजनानि च मुख्यानि ददर्श हरियूथपः ।
मध्वासवकृतक्लेदं मणिभाजनसङ्कुलम् ॥ ४२ ॥

वहाँ पर निर्भीक, स्थिरचित्त राक्षस उन निधियों की रक्षा कर रहे थे। उस घर को शोभा ऐसो हो रही थी, जैसी कि, यक्ष राज कुबेर के घर की होती है। रत्नों के प्रकाश और रावण के तेज से वह भवन ऐसा शोभित हो रहा था, जैसे सूर्य अपनी किरणों से शोभित होते हैं। वहाँ पर हनुमान जी ने जरी के काम वाले उत्तमोत्तम बिस्तरे तथा आसन और चांदी के स्वच्छ बरतन देखें। मद्य व आसव से वह घर तर था अर्थात् उस घर में मदिरा और आस्वों का कीचड हो रहा था और जगह जगह मणियों के बने मद पात्र ढेर के ढेर इकट्ठे किये हुए ये ॥ ४०- ४२॥

मनोरममसम्बाधं कुबेरभवनं यथा
नूपुराणां च घोषेण काञ्चीनां निःस्वनेन च ।
मृदङ्गतलनिर्घोषैर्घोषवद्भिर्विनादितम् ॥ ४३ ॥

उस घर में सभी वस्तुएँ मनोहर और यधास्थान नियम से रखी हुई थीं। वह घर कुबेर भवन की तरह रमणीक था। कहीं नूपुरों की खनक, कहीं करधनियों की झनकार, कहीं मृदंग की गमक और कहीं ताल सुनाई पड़ता था। इस प्रकार के विविध शब्दों से वह घर नादित था ॥४३॥

प्रासादसंघातयुतं स्त्रीरत्नशतसंकुलम् ।
सुव्यूढकक्ष्यं हनुमान् प्रविवेश महागृहम् ॥ ४४ ॥

भवन में अनेक अटारियां बनी हुई थी, जिनमें सैकड़ों सुन्दर स्त्रियाँ भरी पड़ी थीं। उस भवन की ड्योढ़ियां बड़ी मजबूत बनी हुई थीं। ऐसे उस विशाल भवन में हनुमान जी गये ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का छठवां सर्ग पूर्ण हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥सप्तम सर्गः सातवाँ सर्ग ॥

रावणभवनस्य पुष्पकविमानस्य च वर्णनम् – रावण के भवन और पुष्पक विमान का वर्णन

स वेश्मजालं बलवान् ददर्श व्यासक्तवैदूर्यसुवर्णजालम् ।
यथा महत् प्रावृषि मेघजालं विद्युत्पिनद्धं सविहङ्गजालम् ॥१॥

बलवान हनुमान जी उन घरों के समूहों को देखते चले जाते थे, जिनमें पन्ने और सोने के झरोखे बने हुए थे। उन घरों की वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसी शोभा वर्षाकालीन मेघों की बिजली और बकपंक्ति से होती है ॥ १॥

निवेशनानां विविधाश्च शालाः प्रधानशङ्खायुधचापशालाः ।
मनोहराश्चापि पुनर्विशाला ददर्श वेश्माद्रिषु चन्द्रशालाः ॥ २ ॥

उस विशाल भवन के भीतर रहने, बैठने, सोने आदि के लिये विविध दालान कोठे बने हुए थे। उनमें शंखों, शस्त्रों और धनुषों के रखने के कमरे बने हुए थे। उन पर्वताकार भवन समूहों के ऊपर बनी हुई अटारियों को जिनको चन्द्रशाला भी कहते हैं, हनुमान जी ने देखा ॥२॥

गृहाणि नानावसुराजितानि देवासुरैश्चापि सुपूजितानि ।
सर्वैश्च दोषैः परिवर्जितानि कपिर्ददर्श स्वबलार्जितानि ॥ ३ ॥

विविध प्रकार के द्रव्यों से परिपूर्ण, क्या देवता, क्या असुर सब के द्वारा पूजित अर्थात् क्या देवता और क्या असुर सभी इनमें रहने को लालायित रहते थे, समस्त दोषों से रहित और रावण के निज भुजबल से सम्पादित इन भवनों को हनुमान जी ने देखा ॥३॥

तानि प्रयत्नाभिसमाहितानि मयेन साक्षादिव निर्मितानि ।
महीतले सर्वगुणोत्तराणि ददर्श लङ्काधिपतेर्गृहाणि ॥ ४ ॥

बड़े प्रयत्न और सावधानी से मानों साक्षात् मय नाम के दैत्य द्वारा निर्मित और इस भूमंडल पर सब प्रकार से श्रेष्ठ, रावण के इन भवनों को हनुमान जी ने देखा ॥४॥

ततो ददर्शोच्छ्रितमेघरूपं मनोहरं काञ्चनचारुरूपम् ।
रक्षोधिपस्यात्मबलानुरूपं गृहोत्तमं ह्यप्रतिरूपरूपम् ॥ ५ ॥

यह अत्यन्त ऊँचे मेघाकार, मनोहर, सोने के बने, राक्षसराज रावण के बल के अनुरूप और अनुपम उत्तम भवन थे ॥५॥

महीतले स्वर्गमिव प्रकीर्णं श्रिया ज्वलन्तं बहुरत्नकीर्णम् ।
नानातरूणां कुसुमावकीर्णं गिरेरिवाग्रं रजसाऽवकीर्णम् ॥ ६ ॥

ये भवन मानों पृथिवी पर उतरे हुए स्वर्ग के समान कान्तिमान और विविध प्रकार के बहुत से रत्नों से भरे हुए थे। इन विविध प्रकार के रत्नों से भरे होने के कारण, वह घर पुष्पों और पुष्पपराग से पूर्ण पर्वतशिखर जैसे जान दिखाई थे॥६॥

नारीप्रवेकैरिव दीप्यमानं तडिद्भिरम्भोधरमर्च्यमानम् ।
हंसप्रवेकैरिव वाह्यमानं श्रिया युतं खे सुकृतां विमानम् ॥ ७ ॥

राक्षसराज रावण का वह राजभवन श्रेष्ठ सुन्दरियों से ऐसा प्रकाशमान हो रहा था, जैसे बिजलियों से मेघ की घटा प्रकाशित होती है। अथवा पुण्यावान् जन का हंसयुक्त आकाशचारी विमान शोभायमान होता है ॥७॥

यथा नगाग्रं बहुधातुचित्रं यथा नभश्च ग्रहचन्द्रचित्रम् ।
ददर्श युक्तीकृतचारुमेघचित्रं विमानं बहुरत्नचित्रम् ॥ ८ ॥

जैसे अनेक धातुओं से रंग बिरंगे पर्वतशिखर की शोभा होती है अथवा जैसे चन्द्रमा और ग्रहों से भूषित आकाश और जैसे नाना रंगों

से युक्त मेघों की घटा शोभित जान पड़ती है, वैसे ही रत्नजटित रावण का विचित्र पुष्पक नामक विमान हनुमान जी ने देखा॥८॥

मही कृता पर्वतराजिपूर्णा शैलाः कृता वृक्षवितानपूर्णाः ।
वृक्षाः कृताः पुष्पवितानपूर्णाः पुष्पं कृतं केसरपत्रपूर्णम् ॥ ९ ॥

इस विमान में अनेक जनों के बैठने की जो जगह थी वह विचित्र चित्रकारी से चित्रित थी। उसमें नकली बैठकें, पर्वतों पर बनायी गयी थीं। उन पर्वतों के ऊपर नकली वृक्षों की छाया बनाई गयी थी। वे वृक्ष खिले हुए फूलों से लदे हुए थे और उन पुष्पों से पराग झड़ा करता था ॥९॥

कृतानि वेश्मानि च पाण्डुराणि तथा सुपुष्पाण्यपि पुष्कराणि ।
पुनश्च पद्मानि सकेसराणि वनानि चित्राणि सरोवराणि ॥ १० ॥

उस विमान में सफेद रंग के बहुत से घर भी बने हुए थे। उन घरों में सुन्दर पुष्पयुक्त पुष्करिणी भी थीं। उन पुष्करिणियों में पराग सहित कमल के फूल खिल रहे थे। उन घरों में ऐसी चित्रकारियां की गयी थीं जो सराहने योग्य थीं, तथा जो उपवन बनाये गये थे, वह भी देखते ही बन पड़ते थे ॥१०॥

पुष्पाह्वयं नाम विराजमानं रत्नप्रभाभिश्च विघूर्णमानम् ।
वेश्मोत्तमानामपि चोच्चमानं महाकपिस्तत्र महाविमानम् ॥ ११ ॥

हनुमान जी ने वहाँ ऐसा बड़ा पुष्पक नामक विमान देखा, जो रत्नों की प्रभा से दमक रहा था और ऊँचे में ऊँचे भवनों से भी बढ़ कर ऊँचा था ॥११॥

कृताश्च वैदूर्यमया विहङ्गा रूप्यप्रवालैश्च तथा विहङ्गाः ।
चित्राश्च नानावसुभिर्भुजङ्गा जात्यानुरूपास्तुरगाः शुभाङ्गाः ॥१२॥

उस विमान में पन्नों के, चांदी के और मूंगों के पक्षी और रंग विरंगी धातुओं के बने हुए सर्प तथा उत्तम जाति के उत्तम अंगों वाले घोड़े भी बनाये गये थे॥१२॥

प्रवालजाम्बूनदपुष्पपक्षाः सलीलमावर्जितजिह्मपक्षाः ।
कामस्य साक्षादिव भान्ति पक्षाः कृता विहङ्गाः सुमुखाः सुपक्षाः
॥१३॥

पक्षियों के परों पर मूंगे और सोने के फूल बने हुए थे। वह पक्षी अपने आप अपने पंखों को समेटते और पसारते थे। उन पक्षियों के पर तथा चोंचे बड़ी सुन्दर थीं। पंख तो उनके कामदेव के पंखों की तरह सुन्दर थे ॥१३॥

नियुज्यमानाश्च गजाः सुहस्ताः सकेसराश्चोत्पलपत्रहस्ताः ।
बभूव देवी च कृता सुहस्ता लक्ष्मीस्तथा पद्मिनि पद्महस्ता ॥१४॥

इनके अतिरिक्त कमलयुक्त तालाब में, कमल के फूल को हाथ में लिये लक्ष्मी जी और उनका अभिषेक करने में नियुक्त सुन्दर सूंड वाले हाथी, जिनकी सूड़ों में केसर सहित कमल के पुष्प थे, बने हुए थे ॥१४॥

इतीव तद्गृहमभिगम्य शोभनं सविस्मयो नगमिव चारुकन्दरम्।
पुनश्च तत्परमसुगन्धि सुन्दरं हिमात्यये नगमिव चारुकन्दरम् ॥१५॥

हनुमान जी विस्मय युक्त होकर सुन्दर कन्दरा की तरह शोभित स्थानों से युक्त उस भवन में गये। फिर यह भवन वसन्त ऋतु होने के कारण सुगंधित खोकर युक्त वृक्ष की तरह सुवासित हो रहा था ॥१५॥

ततः स तां कपिरभिपत्य पूजितां
चरन् पुरीं दशमुखबाहुपालिताम् ।
अदृश्य तां जनकसुतां सुपूजितां
सुदुःखितां पतिगुणवेगनिर्जिताम् ॥१६ ॥

हनुमान जी उस दसमुख रावण की भुजाओं से रक्षित, लंका पुरी में घूमे फिरे । किन्तु सुपूजिता, एवं पति के गुणों पर मुग्धा जानकी जो उनको दिखलाई न पड़ी। अतः वह अत्यन्त दुःखी हुए ॥१६॥

ततस्तदा बहुविधभावितात्मनः
कृतात्मनो जनकसुतां सुवर्त्मनः ।

अपश्यतोऽभवदतिदुःखितं मनः
सुचक्षुषः प्रविचरतो महात्मनः ॥ १७ ॥

तब अनेक चिन्ताओं से युक्त, सुन्दर नीति-मार्ग-वर्ती, एक बार देखने से ही वस्तु का यथार्थ तक जान लेने वाले, धैर्यवान हनुमान जी, अनेक प्रयत्न करने पर भी और बहुत खोजने पर भी, जब सीता को न देख सके, तब वह दुःखी हुए ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का सातवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥अष्टम सर्गः आठवाँ सर्ग॥

हनुमता पुनः पुष्पकस्य दर्शनम् – हनुमान जी का दुबारा पुष्पक विमान का दर्शन

स तस्य मध्ये भवनस्य संस्थितो महद्विमानं मणिरत्नचित्रितम् ।
प्रतप्तजाम्बूनदजालकृत्रिमं ददर्श वीरः पवनात्मजः कपिः ॥ १ ॥

रावण के राजभवन में रखे हुए पुष्पक विमान को, जिसमें बढ़िया सुवर्ण के बने झरोखे थे और जिसमें जगह जगह रंग बिरंगे बहुत से रत्न जड़े हुए थे, पवननन्दन वीर हनुमान ने देखा ॥१॥

तदप्रमेयप्रतिकारकृत्रिमं कृतं स्वयं साध्विति विश्वकर्मणा ।
दिवं गतं वायुपथप्रतिष्ठितं व्यराजतादित्यपथस्य लक्ष्म तत् ॥ २ ॥

वह अनुपम सुन्दरता युक्त था, उसमें कृत्रिम प्रतिमाएँ थीं। उसे विश्वकर्मा ने स्वयं ही बहुत सुन्दर बनाया था। वह आकाश में चलने में प्रसिद्ध था और सूर्य के पथ का एक प्रसिद्ध चिन्ह सा था।॥२॥

न तत्र किंचिन्न कृतं प्रयत्नतो न तत्र किंचिन्न महार्घरत्नवत् ।
न ते विशेषा नियताः सुरेष्वपि न तत्र किंचिन्न महाविशेषवत् ॥३॥

उस विमान में ऐसी कोई वस्तु न थी जो परिश्रम पूर्वक न बनाई गयो हो और उसका कोई भाग ऐसा नहीं था जो मूल्यवान रत्नों से न बनाया गया हो । उसका एक भी भाग ऐसा नहीं था जिसमें कुछ न कुछ विशेषता नहीं थी। पुष्पक में जैसी कारीगरी की गयी थी, वैसी कारीगरी देवताओं के विमानों में भी देखने में नहीं आती थी॥३॥

तपः समाधानपराक्रमार्जितं मनःसमाधानविचारचारिणम् ।
अनेकसंस्थानविशेषनिर्मितं ततस्ततस्तुल्यविशेषनिर्मितम् ॥ ४ ॥

रावण ने एकाग्रचित्त होकर तप करके जो बल प्राप्त किया था उसी के बल पर उसने यह पुष्पक विमान प्राप्त किया था। वह विमान संकल्प मात्र ही से यथेच्छ स्थान में पहुँचा देता था। इसमें बहुत सी बैठकें विशेष रूप से बनायी गयी थीं। इसी से वह उस विमान के अनुरूप विशेष प्रकार की भी थीं ॥४॥

मनः समाधाय तु शीघ्रगामिनं दुरावरं मारुततुल्यगामिनम् ।
महात्मनां पुण्यकृतां महर्द्धिनां यशस्विनामग्र्यमुदामिवालयम् ॥५॥

अपने स्वामी को इच्छा के अनुसार अभीष्ट स्थान पर तुरन्त पहुँच जाता था। इसकी चाल वायु की तरह बड़ी तेज थी। चाल में इसको

कोई रोक नहीं सकता था। महात्मा, पुण्यात्मा बड़े समृद्धशाली और यशस्वी लोगों के लिये तो यह मानों आनन्द का घर ही था ॥५॥

विशेषमालम्ब्य विशेषसंस्थितं विचित्रकूटं बहुकूटमण्डितम् ।
मनोऽभिरामं शरदिन्दुनिर्मलं विचित्रकूटं शिखरं गिरेर्यथा ॥ ६ ॥

यह विमान विशेष विशेष चालों के अनुसार, आकाश में घूमता था। उसमें विविध प्रकार को अनेक वस्तुएँ भरी थीं। उसमें बहुत से कमरे थे। अतिशय मनोरम, शरदकालोन चन्द्रमा की तरह निर्मल, विचित्र शिखरों से भूषित, तथा विचित्र शिखर से युक्त पर्वत की तरह वह जान पड़ता था ॥६॥

वहन्ति यत् कुण्डलशोभितानना महाशना व्योमचरा निशाचराः ।
विवृत्तविध्वस्तविशाललोचना महाजवा भूतगणाः सहस्रशः ॥७॥

इस विमान को चलाने वाले विशालकाय आकाशचारी निशाचर थे। उनके मुख कुण्डलों से सुशोभित था। गोल, टेढ़े और विशाल नेत्रों वाले तथा महावेगवान हजारों भूतगण थे ॥७॥

वसन्तपुष्पोत्करचारुदर्शनं वसन्तमासादपि चारुदर्शनम् ।
स पुष्पकं तत्र विमानमुत्तमं ददर्श तद् वानरवीरसत्तमः ॥ ८ ॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान जी ने वसन्त कालीन पुष्पों के ढेर से युक्त और वसन्तऋतु से भी अधिक सुन्दर देखने योग्य, श्रेष्ठ पुष्पक विमान देखा ॥८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का आठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ नवमः सर्गः नवाँ सर्ग ॥

रावणस्य भवनं पुष्पकविमानं सुन्दरनिवेशनं चावलोक्य हनुमता तत्र सुप्तानां सहस्रशः सुन्दरीणां समवलोकनम् – हनुमान जी का रावण के भवन, पुष्पक विमान और रावण के भवन में सोयी हुई सहस्त्रों सुंदर स्त्रियों का अवलोकन

तस्यालयवरिष्ठस्य मध्ये विपुलमायतम् ।
ददर्श भवनश्रेष्ठं हनुमान् मारुतात्मजः ॥ १ ॥

उस उत्तम राजभवन के भीतर एक स्वच्छ साफ और लंबा चौड़ा एक भवन पवननन्दन हनुमान जी ने देखा ॥१॥

अर्द्धयोजनविस्तीर्णमायतं योजनं महत् ।
भवनं राक्षसेन्द्रस्य बहुप्रासादसङ्कुलम् ॥ २ ॥

रावण के भवन की चौड़ाई आधे योजन की और लंबाई एक योजन की थी । उसमें बहुत सी अटारियां थीं ॥२॥

मार्गमाणस्तु वैदेहीं सीतामायतलोचनाम् ।
सर्वतः परिचक्राम हनुमानरिसूदनः ॥ ३ ॥

शत्रुहन्ता हनुमान जी विशाल नेत्र वाली सीता को ढूंढते हुए उस भवन में सर्वत्र घूमे ॥३॥

उत्तमं राक्षसावासं हनुमानवलोकयन् ।
आससादाथ लक्ष्मीवान् राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥ ४ ॥

हनुमान जी राक्षसों के उत्तम गृहों को देखते हुए, रावण के राजभवन में पहुँचे ॥४॥

चतुर्विषाणैर्द्विरदैस्त्रिविषाणैस्तथैव च ।
परिक्षिप्तमसम्बाधं रक्ष्यमाणमुदायुधैः ॥ ५ ॥

वह राजभवन चार और तीन दांतों वाले हाथियों से व्याप्त था। हथियार हाथ में लिये राक्षस सदा इसकी रखवाली किया करते थे॥५॥

राक्षसीभिश्च पत्नीभी रावणस्य निवेशनम् ।
आहृताभिश्च विक्रम्य राजकन्याभिरावृतम् ॥ ६ ॥

वहां अनेक सुन्दरी राक्षसी जो रावण को पत्नी थीं तथा अनेक राजकन्याएँ जिनको रावण जबरदस्ती छीन लाया था, उस भवन में कैद थीं ॥६॥

तन्नक्रमकराकीर्णं तिमिंगिलझषाकुलम् ।
वायुवेगसमाधूतं पन्नगैरिव सागरम् ॥ ७ ॥

वह भवन मानों नागों, तिमिङ्गल-मत्स्यों के समूह और सर्पों से परिपूर्ण, वायु के वेग से उफनाते हुए समुद्र की तरह जान पड़ता था॥७॥

या हि वैश्रवणे लक्ष्मीर्या चन्द्रे हरिवाहने ।
सा रावणगृहे रमा नित्यमेवानपायिनी ॥ ८ ॥

कुबेर, चन्द्रमा व इन्द्र के भवन में जैसी शोभा दिखाई पड़ती है, वैसी ही नाशरहित अथवा सदैव बनी रहने वाली शोभा रावण के भवन की भी सदा बनी रहती थी ॥८॥

या च राज्ञः कुबेरस्य यमस्य वरुणस्य च ।
तादृशी तद्विशिष्टा वा ऋद्धी रक्षोगृहेष्विह ॥ ९ ॥

राजा कुबेर, यम और वरुण के घर में जितना धन रहता है, रावण के घर में उतना ही अथवा उससे भी अधिक था॥९॥

तस्य हर्म्यस्य मध्यस्थवेश्म चान्यत् सुनिर्मितम् ।

बहुनिर्यूहसंयुक्तं ददर्श पवनात्मजः ॥ १० ॥

उस भवन के बीच में एक और सुन्दर भवन बना हुआ था, जिसमें मतवाले हाथी के प्रकार के अनेक स्थान बने हुए थे, उन्हें हनुमान जी ने देखा ॥१०॥

ब्रह्मणोऽर्थे कृतं दिव्यं दिवि यद् विश्वकर्मणा ।
विमानं पुष्पकं नाम सर्वरत्नविभूषितम् ॥ ११ ॥

परेण तपसा लेभे यत् कुबेरः पितामहात् ।
कुबेरमोजसा जित्वा लेभे तद् राक्षसेश्वरः ॥ १२ ॥

स्वर्ग में विश्वकर्मा ने जिस दिव्य एवं सर्वरत्न विभूषित पुष्पक विमान को बनाया और जो कुबेर ने बड़ी तपस्या करने के बाद ब्रह्मा जी से प्राप्त हुआ था, उस विमान को अपने बाहुबल से कुबेर को जीत, रावण ने छीन लिया था ॥११-१२॥

ईहामृगसमायुक्तैः कार्तस्वरहिरण्मयैः ।
सुकृतैराचितं स्तम्भैः प्रदीप्तमिव च श्रिया ॥ १३ ॥

सोने चांदी के काम से युक्त मृगों वनजन्तुओं के आकार के खिलौनों से भरा हुआ, सुडौल खम्बों से और अपनी शोभा से वह चमचमा रहा था ॥१३॥

मेरुमन्दरसंकाशैरुल्लिखद्भिरिवाम्बरम् ।
कूटागारैः शुभागारैः सर्वतः समलंकृतम् ॥ १४ ॥

वह सुमेरु और मन्दराचल पर्वत की तरह आकाश स्पर्शी था तथा सुन्दर बने हुए तहखानों से भूषित था ॥१४॥

ज्वलनार्कप्रतीकाशैः सुकृतं विश्वकर्मणा ।
हेमसोपानयुक्तं च चारुप्रवरवेदिकम् ॥ १५ ॥

वह अग्नि और सूर्य के सदृश्य प्रकाशमान था तथा विश्वकर्मा ने उसे बहुत अच्छी तरह बनाया था। उसमें सोने की सीढ़ियाँ और मनोहर चबूतरे बने हुए थे ॥१५॥

जालवातायनैर्युक्तं काञ्चनैः स्फाटिकैरपि ।
इन्द्रनीलमहानीलमणिप्रवरवेदिकम् ॥ १६ ॥

विद्रुमेण विचित्रेण मणिभिश्च महाधनैः ।
निस्तुलाभिश्च मुक्ताभिस्तलेनाभिविराजितम् ॥ १७ ॥

हवा व रोशनी के लिये उसमें सोने और स्फटिक के झरोखे अथवा खिड़कियाँ बनी हुई थीं। उसका कोई कोई भाग इन्द्रनील और महानील मणियों की वेदिकाओं से सुशोभित था और कहीं कहीं उसमें नाना प्रकार के मूंगे, महामूल्य मणि और गोल मोती जड़े थे।

उसका फर्श अति उत्तम सफेद अस्तरकारी की हुई जैसा जान पड़ता था ॥१६-१७॥

चन्दनेन च रक्तेन तपनीयनिभेन च ।
सुपुण्यगन्धिना युक्तमादित्यतरुणोपमम् ॥ १८ ॥

उसका काई भाग सफेद चन्दन से और कोई भाग लाल चन्दन से और कोई भाग सोने के समान अत्यन्त पवित्र गन्धयुक्त काष्ठ से बना था। उसकी चमक मध्यान्ह के सूर्य की तरह प्रतीत होती थी॥१८॥

कूटागारैर्वराकारैर्विविधैः समलंकृतम् ।
विमानं पुष्पकं दिव्यं आरुरोह महाकपिः । ॥ १९ ॥

वह पुष्पक विमान उत्तम प्रकार के विविध गुप्तगृहों से भूषित था। हनुमान जी उस उत्तम पुष्पक विमान पर चढ़ गये ॥१९॥

तत्रस्थः सर्वतो गन्धं पानभक्ष्यान्नसम्भवम् ।
दिव्यं सम्मूर्च्छितं जिघ्रन् रूपवन्तमिवानिलम् ॥ २० ॥

यहाँ चारों ओर से पान और भक्ष्य पदार्थों की दिव्य सुगन्ध आने लगी। उसे उन्होंने सूंघा, वह सुगन्धि बड़ी उत्तम थी। मानों वहाँ के सर्वत्र व्याप्त वायु ने साक्षात् गन्ध का रूप ही धारण कर लिया था।॥ २०॥

स गन्धस्तं महासत्त्वं बन्धुर्बन्धुमिवोत्तमम् ।

इत एहीत्युवाचेव तत्र यत्र स रावणः ॥ २१ ॥

एक भाई जिस प्रकार अपने दूसरे भाई को बुलाये, उसी प्रकार वह गन्ध मानों हनुमान को वहां बुलाने लगा जहाँ रावण था ॥२१॥

ततस्तां प्रस्थितः शालां ददर्श महतीं शुभाम् ।
रावणस्य महाकान्तां कान्तामिव वरस्त्रियम् ॥ २२ ॥

वहां जाते हुए हनुमान जी ने वह विशाल शाला देखी, जो रावण को उत्तम स्त्री की तरह प्यारी थी ॥२२॥

मणिसोपानविकृतां हेमजालविराजिताम् ।
स्फाटिकैरावृततलां दन्तान्तरितरूपिकाम् ॥ २३ ॥

मुक्तावज्रप्रवालैश्च रूप्यचामीकरैरपि ।
विभूषितां मणिस्तम्भैः सुबहुस्तम्भभूषिताम् ॥ २४ ॥

वह शाला अत्यन्त रमणीक, अत्यन्त स्वच्छ मणियों की सीढ़ियों से सुशोभित और सोने की बनी जालियों से युक्त थी। स्फटिक मणियां उसके फर्श में जड़ी थीं, उस पर हाथी दांत की कारीगरी की गयी थी, उसमें जहां तहां चित्र सजाये गये थे और मोती, हीरा, मूंगा, रूपा, सुवर्ण से वह युक्त थी। वह अनेक मणि के खम्भों
से विभूषित थी ॥२३-२४॥

समैर्ऋजुभिरत्युच्चैः समन्तात् सुविभूषितैः ।
स्तम्भैः पक्षैरिवात्युच्चैर्दिवं सम्प्रस्थितामिव ॥ २५ ॥

इन खंभों में प्राय: सभी खंभे समान, सीधे और ऊँचे थे। ऐसे खंभे उस शाला के चारों ओर बने हुए थे। उन पंख जैसे अत्यन्त ऊँचे खम्भों से मानो वह भवन आकाश के समान उड़ा चला जाता था॥२५॥

महत्या कुथयाऽऽस्तीर्णां पृथिवीलक्षणाङ्कया ।
पृथिवीमिव विस्तीर्णां सराष्ट्रगृहशालिनीम् ॥ २६ ॥

उसमें भूमि को तरह चौरस चौकोन विचित्र फर्श, जिसमें हीरा आदि मणियां जड़ी हुई थीं। यह केवल रावण की शयन शाला ही नहीं थी, बल्कि राज्यों और घरों से शोभित दूसरी लंबी चौड़ी पृथिवी के ही समान थी॥२६॥

नादितां मत्तविहगैर्दिव्यगन्धाधिवासिताम् ।
परार्घ्यास्तरणोपेतां रक्षोऽधिपनिषेविताम् ॥ २७ ॥

वह मतवाले पक्षियों की कुंज से कूजित, और दिव्य सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित थी। वहाँ पर मूल्यवान बिछौने पर रावण सो रहा था ॥२७॥

धूम्रामगुरुधूपेन विमलां हंसपाण्डुराम् ।
पत्रपुष्पोपहारेण कल्माषीमिव सुप्रभाम् ॥ २८ ॥

वह शयनशाला अगर के श्वेत वर्ण के धुंए से श्वेत वर्ण के हंस की तरह सफेद रंग जैसी दिखाई पड़ती थी। वह पुष्पों और पत्रों की सजावट से सब मनोरथों को पूरा करने वाली वसिष्ठ की शबला गौ की तरह सुन्दर प्रभायुक्त ॥२८॥

मनसो मोदजननीं वर्णस्यापि प्रसाधिनीम् ।
तां शोकनाशिनीं दिव्यां श्रियः सञ्जननीमिव ॥ २९ ॥

हृदय को आनन्दित करने वाली, शरीर के रंग को सुन्दर बनाने वाली, समस्त शोकों से दूर भगाने वाली और दिव्य शोभा को उत्पन्न करने वाली थीं ॥२९॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थैस्तु पञ्च पञ्चभिरुत्तमैः ।
तर्पयामास मातेव तदा रावणपालिता ॥ ३० ॥

उस समय हनुमान जी की आँख, ज्ञान, नाक आदि पांचों ज्ञानेन्द्रियों, रूपादि पांचों उत्तम विषयों ने, माता की तरह रावण को शयनशाला ने तृप्त कर दिया ॥३०॥

स्वर्गोऽयं देवलोकोऽयमिन्द्रस्यापि पुरी भवेत् ।
सिद्धिर्वेयं परा हि स्यादित्यमन्यत मारुतिः ॥ ३१ ॥

उस समय हनुमान जी ने मन में समझा कि, यह शयनशाला नहीं, किन्तु यह साक्षात् स्वर्ग है, देवलोक है, इन्द्र की अमरावती पुरी हैं अथवा कोई अष्ट सिद्धि है ॥३१॥

प्रध्यायत इवापश्यत् प्रदीपांस्तत्र काञ्चनान् ।
धूर्तानिव महाधूर्तैर्देवनेन पराजितान् ॥ ३२ ॥

वहाँ पर सोने के दिए ऐसे स्थिर जल रहे थे, मानों महा प्रवञ्चकों से जुए में हारे हुए धूर्त लोग बैठे शोक मना रहे हों। ॥३२॥

दीपानां च प्रकाशेन तेजसा रावणस्य च ।
अर्चिर्भिर्भूषणानां च प्रदीप्तेत्यभ्यमन्यत ॥ ३३॥

उस समय दीपों के उजियाले से, रावण के तेज से और भूषणों को चमक से, वह घर दमक रहा था ॥३३॥

ततोऽपश्यत् कुथासीनं नानावर्णाम्बरस्रजम् ।
सहस्रं वरनारीणां नानावेषविभूषितम् ॥ ३४ ॥

फिर हनुमान जी ने देखा कि रात हो जाने से विविध प्रकार के वस्त्रों और फूलमालाओं से सजी, सहस्त्रों सुन्दरी स्त्रियाँ तरह तरह के श्रृंगार किये हुए उत्तम बिछौनों पर पड़ी सो रही हैं ॥३४॥

परिवृत्तेऽर्धरात्रे तु पाननिद्रावशंगतम् ।

क्रीडित्वोपरतं रात्रौ सुष्वाप बलवत् तदा ॥ ३५ ॥

आधी रात ढल जाने पर थे सभी सुन्दरियां, मदपान के कारण नींद के वशीभूत होकर और विहार से निवृत्त होकर सो रही हैं ॥३५॥

तत् प्रसुप्तं विरुरुचे निःशब्दान्तरभूषितम् ।
निःशब्दहंसभ्रमरं यथा पद्मवनं महत् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार सभी के सो जाने से और बिछुवे पायजेब आदि की झंकार का शब्द बंद हो जाने के रावण की वह शयनशाला भ्रमरों के गुंजार और हंसों की ध्वनि से रहित, बड़े भारी कमलवन की तरह शोभायमान हो रही थी ॥३६॥

तासां संवृतदान्तानि मीलिताक्षीणि मारुतिः ।
अपश्यत् पद्मगन्धीनि वदनानि सुयोषिताम् ॥ ३७ ॥

तदनन्तर हनुमान जी ने परम सुन्दर स्त्रियों के बंद नेत्र, बंद बत्तीसी और कमल की सुगन्धि से युक्त बदनमण्डल देखें ॥ ३७॥

प्रबुद्धानीव पद्मानि तासां भूत्वा क्षपाक्षये ।
पुनः संवृतपत्राणि रात्राविव बभुस्तदा ॥ ३८ ॥

उन स्त्रियों के ऐसे मुखमण्डल रात व्यतीत होने पर कमल के फूलों को तरह प्रफुल्लित हो कर, फिर रात होने पर मुकुलित कमल की तरह, बड़े सुन्दर जान पड़ते थे। अथवा हनुमान जी ने विचारा कि,

उन स्त्रियों के मुख और कमल समान हैं। क्योंकि जिस प्रकार दिन में कमल खिल जाते हैं वैसे हो ये मुख भी खिल रहे हैं और रात्रि में जैसे वह कली के रूप में हो जाते हैं वैसे ही ये भी बंद हो रहे हैं। गन्ध में भी ये दोनों समान ही हैं। अतः इन स्त्रियों के मुखमण्डल और कमल में कुछ भी अन्तर नहीं है ॥३८॥

इमानि मुखपद्मानि नियतं मत्तषट्पदाः ।
अम्बुजानीव फुल्लानि प्रार्थयन्ति पुनः पुनः ॥ ३९ ॥

फिर मतवाले भौरे खिले हुए कमल की तरह हो, इन समस्त मुखकमलों की सदा अभिलाषा किया करते हैं ॥३९॥

इति वामन्यत श्रीमानुपपत्त्या महाकपिः ।
मेने हि गुणतस्तानि समानि सलिलोद्भवैः ॥ ४० ॥

इस प्रकार सोच विचार कर हनुमान जी ने उन सुन्दरियों के मुखकमलों को और जलोत्पन्न कमलपुष्प को सादृश्य माना ॥४०॥

सा तस्य शुशुभे शाला ताभिः स्त्रीभिर्विराजिता ।
शारदीव प्रसन्ना द्यौस्ताराभिरभिशोभिता ॥ ४१ ॥

रावण को शयनशाला, इन सभी स्त्रियों के समूह से शरदकाल के तारों से परिपूर्ण निर्मल आकाश की तरह शोभायमान हो रही थी॥४१॥

स च ताभिः परिवृतः शुशुभे राक्षसाधिपः ।
यथा ह्युडुपतिः श्रीमांस्ताराभिरिव संवृतः ॥ ४२ ॥

उसी प्रकार रावण स्वयं भी उन स्त्रियों के बीच रहने से तारागण युक्त चन्द्रमा की तरह सुशोभित हो रहा था ॥४२॥

याश्च्यवन्तेऽम्बरात् ताराः पुण्यशेषसमावृताः ।
इमास्ताः सङ्गताः कृत्स्ना इति मेने हरिस्तदा ॥ ४३ ॥

ऐसा लगता था मानो जो तारा पुण्यक्षीण हाने पर प्रकाश से गिरता है, वह सभी तारे स्त्रीरूप हो कर रावण के पास इक्कठे हुए हैं ॥४३॥

ताराणामिव सुव्यक्तं महतीनां शुभार्चिषाम् ।
प्रभावर्णप्रसादाश्च विरेजुस्तत्र योषिताम् ॥ ४४ ॥

क्योंकि सुन्दर प्रकाश युक्त और विशाल तारों की ही तरह उन स्त्रियों की चमक, रूप और प्रसन्नता दिखाई पड़ती थी ॥४४॥

व्यावृत्तकचपीनस्रक्प्रकीर्णवरभूषणाः ।
पानव्यायामकालेषु निद्रापहतचेतसः ॥ ४५ ॥

उनमें से बहुत सी स्त्रियों के बाल और फूलों के हार टेढ़े मेढ़े हो गये थे और बढ़िया बढ़िया गहने बिखरे हुए थे। क्योंकि मद्यपान करने

और गाने नाचने के परिश्रम से थक कर वह सब निद्रा के वशीभूत हो गयी थीं ॥४५॥

व्यावृत्ततिलकाः काश्चित् काश्चिदुद्भ्रान्तनूपुराः ।
पार्श्वे गलितहाराश्च काश्चित् परमयोषितः ॥ ४६ ॥

उनमें अनेकों के माथे के तिलक मिट गये थे, अनेकों के नूपुर उल्टे सीधे हो गये थे और कितनी ही स्त्रियों के टूटे हुए हार उनके पास पड़े हुए थे ॥४६॥

मुक्ताहारावृताश्चान्याः काश्चित् प्रस्रस्तवाससः ।
व्याविद्धरशनादामाः किशोर्य इव वाहिताः ॥ ४७ ॥

किसी किसी के मोतियों के हार टूट गये थे, किसी के कपड़े उसके शरीर से ढीले हो खिसक पड़े थे, किसी की करधनी कमर से नीचे खसक पड़ी थी। वे स्त्रियों थकी हुई और बोझ उतारी हुई घोड़ियों की तरह अपने गहनों को इधर उधर डाल कर शयन कर रही थीं ॥४७॥

अकुण्डलधराश्चान्या विच्छिन्नमृदितस्रजः ।
गजेन्द्रमृदिताः फुल्ला लता इव महावने ॥ ४८ ॥

अनेकों के कानों के कुण्डल गिर पड़े थे, बहुतों की मालाएँ टूट गयी थीं और रगड़ खा गयी थीं-मानों हाथियों से दी हुई पुष्पित लता महावन में पड़ी हो ॥४८॥

चन्द्रांशुकिरणाभाश्च हाराः कासांचिदुद्गताः ।
हंसा इव बभुः सुप्ताः स्तनमध्येषु योषिताम् ॥ ४९ ॥

किसी किसी के चन्द्रमा की किरणों की तरह सफेद मोती के हार टूट कर स्तनों के बीच में जा ऐसी शोभा दे रहे थे, मानों हंस सोते हों ॥४९॥

अपरासां च वैदूर्याः कादम्बा इव पक्षिणः ।
हेमसूत्राणि चान्यासां चक्रवाका इवाभवन् ॥ ५० ॥

अन्य स्त्रियों के पन्नों के हार स्तनों के बीच में जल काक की तरह शोभा दे रहे थे और अन्य स्त्रियों के सोने के हार सिमट कर स्तनों के बीच चकवा चकवी की तरह जान पड़ते थे॥५०॥

हंसकारण्डवोपेताश्चक्रवाकोपशोभिताः ।
आपगा इव ता रेजुर्जघनैः पुलिनैरिव ॥ ५१ ॥

इसलिये वह सभी स्त्रियाँ हंस पक्षियों सहित और चकवाकों से शोभित नदियों की तरह तट समान जंघाओं से शोभायमान हो रही थीं ॥५१॥

किङ्किणीजालसङ्काशास्ता हेमविपुलाम्बुजाः ।
भावग्राहा यशस्तीराः सुप्ता नद्य इवाबभुः ॥ ५२ ॥

उन स्त्रियों के किङ्किणियों के समूह, सवर्ण कमल की तरह जान पड़ते थे। उनकी विलास भावनाएं ग्राह के तुल्य थीं। उनके विविध गुण तट के समान थे। वे सोती हुई स्त्रियाँ इस प्रकार नदी की तरह शोभायमान जान पड़ती थीं ॥५२॥

मृदुष्वङ्गेषु कासांचित् कुचाग्रेषु च संस्थिताः ।
बभूवुर्भूषणानीव शुभा भूषणराजयः ॥ ५३॥

किसी किसी स्त्री के सुकोमल अंगों में और किसी किसी के स्तनों के अग्रभाग में, आभूषणों की खरोंच भी भौरे की तरह शोभा दे रही थी ॥५३॥

अंशुकान्ताश्च कासांचिन्मुखमारुतकम्पिताः ।
उपर्युपरि वक्त्राणां व्याधूयन्ते पुनः पुनः ॥ ५४ ॥

किसी किसी स्त्री के वस्त्र के अंचल उसके मुख पर लटक रहे थे और मुख से निकली हुई श्वास से हिल हिल कर अति शोभा दे रहे थे।॥५४॥

ताः पताका इवोद्धूताः पत्नीनां रुचिरप्रभाः ।
ननावर्णसुवर्णानां वक्त्रमूलेषु रेजिरे ॥ ५५ ॥

वह रंग बिरंगे जरी के वस्त्र जो बहुत चमक रहे थे, जब श्वास के पवन से हिलते थे, तब वह पताका की तरह फहराते हुए शोभायमान जान पड़ते थे ॥५५॥

वल्गुश्चात्र कासांचित् कुण्डलानि शुभार्चिषाम् ।
मुखमारुतसंकम्पैर्मन्दं मन्दं सुयोषिताम् ॥ ५६ ॥

किसी किसी के कानों के कुण्डल मुख के पवन से धीरे धीरे हिलने लगते थे ॥५६॥

शर्करासवगन्धः स प्रकृत्या सुरभिः सुखः ।
तासां वदननिःश्वासः सिषेवे रावणं तदा ॥ ५७॥

उन स्त्रियों की स्वाभाविक सुगन्धियुक्त एवं स्पर्श करने से सुखदायी, मुख से निकली हुई साँसों का पवन, शर्करासव नामक मद्य से और भी अधिक सुगन्धित हो, रावण को सुख उपजा रहा था ॥५७॥

रावणाननशङ्काश्च काश्चिद् रावणयोषितः ।
मुखानि स्म सपत्नीनामुपाजिघ्रन् पुनः पुनः ॥ ५८ ॥

रावण की कोई कोई स्त्री अपनी सौत के मुख को, रावण के मुख के भ्रम से, बार बार सूंघ रही थी ॥५८॥

अत्यर्थं सक्तमनसो रावणे ता वरस्त्रियः ।
अस्वतन्त्राः सपत्नीनां प्रियमेवाचरंस्तदा ॥ ५९॥

वह स्त्रियाँ भी जो रावण में अत्यंत आसक्त थीं, मद के नशे में अपनी सौतों के साथ प्रीतियुक्त व्यवहार कर रही थीं ॥५९॥

बाहूनुपनिधायान्याः पारिहार्यविभूषितान् ।
अंशुकानि च रम्याणि प्रमदास्तत्र शिश्यिरे ॥ ६० ॥

कोई काई स्त्रियाँ अपने कानों से अलंकृत भुजाओं को और सुन्दर वस्त्रों को सिर के नोचे तकिया के स्थान पर रख सो रही थी ॥६०॥

अन्या वक्षसि चान्यस्यास्तस्याः काश्चित् पुनर्भुजम् ।
अपरा त्वङ्कमन्यस्यास्तस्याश्चाप्यपरा कुचौ ॥ ६१ ॥

ऊरुपार्श्वकटीपृष्ठमन्योन्यस्य समाश्रिताः ।
परस्परनिविष्टाङ्ग्यो मदस्नेहवशानुगाः ॥ ६२ ॥

अन्योन्यस्यांगसंस्पर्शात् प्रीयमाणाः सुमध्यमाः ।
एकीकृतभुजाः सर्वाः सुषुपुस्तत्र योषितः ॥ ६३ ॥

एक स्त्री दूसरी स्त्री की छाती पर हाथ रखे हुए थी, कोई आपस में एक दूसरे को भुजा को अपना अपना तकिया बनाये हुए थी, कोई किसी की गोदी में पड़ी थी और कोई एक दूसरे के वक्षःस्थल को

अपना अपना तकिया बनाये हुए थीं और कोई किसी की जांघ, कमर और बगल से कोई किसी की पीठ से लिपट कर तथा परस्पर अंग स्पर्श से अति प्रसन्न हो, भुजा से भुजा मिला कर, मदिरा के नशे में चूर, बड़े प्रेम से सो रही थी॥६१-६३॥

अन्योन्यभुजसूत्रेण स्त्रीमाला ग्रथिता हि सा ।
मालेव ग्रथिता सूत्रे शुशुभे मत्तषट्पदा ॥ ६४॥

परस्पर एक दूसरे की भुजा रूपी सूत से गुधी हुई वह स्त्रियों की माला ऐसी शोभा दे रही थी, मानों डोरे में गुथी हुई पुष्पमाला भ्रमरों से युक्त हो शोभायमान होती हो ॥६४॥

लतानां माधवे मासि फुल्लानां वायुसेवनात् ।
अन्योन्यमालाग्रथितं संसक्तकुसुमोच्चयम् ॥ ६५ ॥

वैशाख मास में फूली हुई बेलों के फूल के ढेर वायु के कारण एकत्र हुए ऐसे जान पड़ते थे, मानों माला की तरह एक सूत्र में गुथे हों॥६५॥

प्रतिवेष्टितसुस्कन्धमन्योन्यभ्रमराकुलम् ।
आसीद् वनमिवोद्धूतं स्त्रीवनं रावणस्य तत् ॥ ६६ ॥

रावण की स्त्रियों का वह समूह एक वन की तरह सुशोभित था। उस वन में फूली हुई वृक्षों की डालियां केशरूपी भ्रमरों से भूषित हो, वायुवेग से परस्पर लिपटी हुई सी मालूम पड़ती थीं ॥६६॥

उचितेष्वपि सुव्यक्तं न तासां योषितां तदा ।
विवेकः शक्य आधातुं भूषणांगाम्बरस्रजाम् ॥ ६७॥

यद्यपि स्त्रियों के समस्त आभूषण उचित रीति से यथास्थानों पर थे, तथापि उनके परस्पर लिपटने से यह स्थिर करना कठिन था कि, इनमें कौन सा गहना है, कौन सी पुष्पमाला है अथवा उनका कौन सा अंग है ॥६७॥

रावणे सुखसंविष्टे ताः स्त्रियो विविधप्रभाः ।
ज्वलन्तः काञ्चना दीपाः प्रेक्षन्तो निमिषा इव ॥ ६८ ॥

रावण को इस समय निद्रावश देख, वहां के वह जलते हुए सोने के दीपक मानों एकटक उन स्त्रियों को जो विविध प्रकार के श्रृंगार किये हुए थीं, देख रहे थी ॥६८॥

राजर्षिपितृदैत्यानां गन्धर्वाणां च योषितः ।
राक्षसां चाभवन् कन्यास्तस्य कामवशंगताः ॥ ६९ ॥

उन स्त्रियों में कोई कोई तो राजर्षियों को, कोई कोई ब्राह्मणों की, कोई कोई दैत्यों की, कोई कोई गन्धर्वो की स्त्रियाँ थीं और कोई अन्य

राक्षसों को कन्याएँ थी, जिन्हें रावण ने अपनी प्रणयिनी बनाया था अथवा उनको ब्याहा था ॥६९॥

युद्धकामेन ताः सर्वा रावणेन हृताः स्त्रियः ।
समदा मदनेनैव मोहिताः काश्चिदागताः ॥ ७०॥

उनमें से किसी किसी को रावण युद्ध में उनके पिताओं को हराकर छीन लाया था और कोई अन्य मदमाती युवतियां काम से सतायी स्वयं ही रावण के साथ चली आयी थीं ॥७०॥

न तत्र काश्चित् प्रमदाः प्रसह्य वीर्योपपन्नेन गुणेन लब्धाः ।
न चान्यकामापि न चान्यपूर्वाविना वरार्हां जनकात्मजां तु ॥७१॥

यद्यपि रावण अत्यंत पराक्रमी था; तब भी वह जबरदस्ती किसी स्त्री को हरकर नहीं लाया था, किन्तु सम्मान योग्य जानकी को छोड़, अन्य बहुत सी स्त्रियां रावण के सौन्दर्यादि गुणों पर मुग्ध हो स्वयं ही उसके साथ चली आयी थीं। इनमें ऐसी भी कोई स्त्री नहीं थी जो दूसरे को प्यार करती हों अथवा अन्य किसी पुरुष के साथ उसका संयोग हुआ हो। अथवा हनुमान जी ने वहाँ जितनी स्त्रियाँ देखीं वह सभी रावण को पति समझने वाली स्त्रियाँ थीं। उनमें अकुलीन कुलटा एक भी नहीं थी ॥७१॥

न चाकुलीना न च हीनरूपा
नादक्षिणा नानुपचारयुक्ता ।

भार्याभवत् तस्य न हीनसत्त्वा
न चापि कान्तस्य न कामनीया ॥७२॥

उन स्त्रियों में कोई स्त्री कुलहीन, कुरूप, फूहड,श्रृंगार रहित और अशक्त नहीं थी। उनमें ऐसी एक भी नहीं थी, जिसको रावण न चाहता हो ॥७२॥

बभूव बुद्धिस्तु हरीश्वरस्य
यदीदृशी राघवधर्मपत्नी ।
इमा महाराक्षसराजभार्याः
सुजातमस्येति हि साधुबुद्धेः ॥ ७३ ॥

उस समय साधुबुद्धि हनुमान जी ने अपने मन में सोचा कि, जिस प्रकार रावण की यह स्त्रियाँ अपने पति में अनुरागवती हैं, उसी प्रकार यदि श्रीरामचन्द्र जी की धर्मपत्नी सीता भी श्रीरामचन्द्र में अभी तक अनुरागवती बनी रहती तो कितना मंगल होता अर्थात यदि रावण शीघ्र ही उन्हें श्रीराम के सेवा में समर्पित कर देता तो यह उसके लिए परम कल्याणकारी होता ॥७३॥

पुनश्च सोऽचिन्तयदात्तरूपो
ध्रुवं विशिष्टा गुणतो हि सीता ।
अथायमस्यां कृतवान् महात्मा
लङ्केश्वरः कष्टमनार्यकर्म ॥७४॥

फिर हनुमान जी ने सोचा की निश्चय ही सीता गुणों की दृष्टि से इन सबकी अपेक्षा बहुत ही बढ़ चढ़ कर हैं। इस महाबली लंकापति ने मायामय रूप धारण कर के सीता को धोखा देकर इनके प्रति यह अपहरण रूप अत्यंत कष्ट प्रद नीच कर्म किया है ॥७४

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का नवां सर्ग पूरा हुआ ॥

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ दशमः सर्गः दसवाँ सर्गः ॥

अन्तःपुरे सुप्तं रावणं प्रगाढनिद्रानिमग्नास्तस्य स्त्रियश्च दृष्ट्वा मन्दोदरीं सीतां मत्वा हनुमतो हर्षः – हनुमान जी का अंत:पुर में गहरी नींद में सोयी हुई स्त्रियों को देखना तथा मंदोदरी को सीता समझ कर प्रसन्न होना

तत्र दिव्योपमं मुख्यं स्फाटिकं रत्नभूषितम् ।
अवेक्षमाणो हनुमान् ददर्श शयनासनम् ॥ १ ॥

तदनन्तर हनुमान जी ने उस शयनशाला में चारों ओर देखते देखते एक स्थान पर विविध-रत्न-विभूषित, स्फटिक मणि की बनी एक दिव्य वेदी देखी जिस पर पलंग बिछाया गया था ॥१॥

दान्तकाञ्चनचित्राङ्गैर्वैदूर्यैश्च वरासनैः ।
महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः ॥ २ ॥

वहां नीलम के बने हुए श्रेष्ठ आसन बिछे हुए थे जिन पर हाथीदांत और सोने से चित्रकारी की गयी थी और जगह जगह पन्ने जड़े हुए थे। उन मूल्यवान आसनों पर बहुमूल्य और कोमल बिछौने बिछे थे ॥२॥

तस्य चैकतमे देशे दिव्यमालोपशोभितम् ।
ददर्श पाण्डुरं छत्रं ताराधिपतिसन्निभम् ॥ ३ ॥

उस शयनशाला में एक विशेष स्थान पर सफेद रंग का, चन्द्रमा की तरह चमचमाता, एक छत्र रखा था। वह छत्र दिव्यपुष्पों की माला से भूषित था ॥३॥

जातरूपपरिक्षिप्तं चित्रभानुसमप्रभम् ।
अशोकमालाविततं ददर्श परमासनम् ॥ ४ ॥

वहाँ सवर्ण का बना हुआ, स्वर्ण जडित होने के कारण सूर्य के समान चमकता हुआ, अशोक पुष्पों की माला से अलंकृत वह पलंग हनुमान जी ने देखा ॥४॥

वालव्यजनहस्ताभिर्वीज्यमानं समन्ततः ।
गन्धैश्च विविधैर्जुष्टं वरधूपेन धूपितम् ॥ ५ ॥

उस पलंग के आसपास सुन्दर पुतलियाँ हाथों में चॅवर, लेकर हवा कर रही थीं, वहाँ पर विविध प्रकार के इत्र रखे हुए थे और उत्तम

सुंगन्धि की धूप जल रही थी, जिससे वह स्थान सुवासित हो रहा था ॥५॥

परमास्तरणास्तीर्णमाविकाजिनसंवृतम् ।
दामभिर्वरमाल्यानां समन्तादुपशोभितम् ॥ ६ ॥

उस पर कोमल भेड़ की खाल मडी हुई थी और उत्तम बिछौने उस पर बिछे हुए थे। उसके चारों ओर फूलों के हार लटक रहे थे॥६॥

तस्मिञ्जीमूतसंकाशं प्रदीप्तोज्ज्वलकुण्डलम् ।
लोहिताक्षं महाबाहुं महारजतवाससम् ॥ ७ ॥

उस पलंग पर काले मेघ की तरह काले रंग का, कानों में उत्तम और चमकते हुए कुण्डल पहिने हुए, लाल लाल नेत्रों वाले, बड़ी भुजाओं वाले, दिव्य सुनहरे वस्त्रों से अलंकृत ॥७॥

लोहितेनानुलिप्ताङ्गं चन्दनेन सुगन्धिना ।
सन्ध्यारक्तमिवाकाशे तोयदं सतडिद्गुणम् ॥ ८ ॥

समस्त शरीर में लाल चन्दन लगाये, दामिनी सहित सन्ध्या कालीन लाल बादल की तरह शोभा धारण किये हुए, ॥८॥

वृतमाभरणैर्दिव्यैः सुरूपं कामरूपिणम् ।
सवृक्षवनगुल्माढ्यं प्रसुप्तमिव मन्दरम् ॥ ९ ॥

अति दिव्य आभूषण धारण किये हुए, सुस्वरूप, कामरूपी रावण उस पर सोते हुए, ऐसा प्रतीत होता था, मानों विविध प्रकार की लताओं और झाड़ियों से पूर्ण मन्दराचल पर्वत पड़ा सो रहा हो ॥९॥

क्रीडित्वोपरतं रात्रौ वराभरणभूषितम् ।
प्रियं राक्षसकन्यानां राक्षसानां सुखावहम् ॥ १० ॥

रावण रात को विहार करते करते थका हुआ, मदिरापान किये हुए था। वह राक्षस-कन्याओं को प्रिय था और राक्षसों को सुख देने वाला था ॥१०॥

पीत्वाप्युपरतं चापि ददर्श स महाकपिः ।
भास्वरे शयने वीरं प्रसुप्तं राक्षसाधिपम् ॥ ११॥

मदिरापान एवं स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करके तृप्त हो सुवर्ण के चमचमाते पलंग पर शयन किये हुए वीर राक्षसराज रावण को हनुमान जी ने देखा ॥११॥

निःश्वसन्तं यथा नागं रावणं वानरोत्तमः ।
आसाद्य परमोद्विग्नः सोपासर्पत् सुभीतवत् ॥ १२ ॥

अथारोहणमासाद्य वेदिकान्तरमाश्रितः ।
क्षीबं राक्षसशार्दूलं प्रेक्षते स्म महाकपिः ॥ १३ ॥

उस समय सोता हुआ हुआ रावण श्वास छोड़ता हुआ फुफकारते हुए सर्प के समान प्रतीत होता था। उसके पास पहुँच कर महाकपि हनुमान रावण को देखकर अत्यंत उद्विग्न होकर डरे हुए मनुष्य की तरह सहसा जगह से कुछ दूर हट गए और सीढ़ी की आड़ में एक दूसरी वेदी पर खड़े हो गये और वहाँ से उस मतवाले राक्षसराज को वह देखने लगे ॥१२-१३॥

शुशुभे राक्षसेन्द्रस्य स्वपतः शयनं शुभम् ।
गन्धहस्तिनि संविष्टे यथा प्रस्रवणं महत् ॥ १४ ॥

सोते हुए रावण का पलंग ऐसा शोभायमान हो रहा था, जैसे वह पहाड़ी झरना, जिसके निकट मदमत्त हाथी सोता हो शोभायमान होता है ॥१४॥

काञ्चनाङ्गदसन्नद्धौ ददर्श स महात्मनः ।
विक्षिप्तौ राक्षसेन्द्रस्य भुजाविन्द्रध्वजोपमौ ॥ १५ ॥

रावण की दोनों भुजाएँ जो बाजूबंदों से अलंकृत थीं और जिनको पसार कर यह सो रहा था, इन्द्रध्वज की तरह प्रतीत होती थीं ॥१५॥

ऐरावतविषाणाग्रैरापीडनकृतव्रणौ ।
वज्रोल्लिखितपीनांसौ विष्णुचक्रपरिक्षतौ ॥ १६ ॥

उसकी दोनों भुजाओं पर ऐरावत के दांतों के आघात के चिन्ह हो गये थे। उसके मांसल कंधों पर वज्र लगने के निगान थे। भगवान् विष्णु के सुदर्शन चक्र से आघात लगने के भी उसकी दानों भुजाओं पर निशान बने हुए थे॥१६॥

पीनौ समसुजातांसौ संगतौ बलसंयुतौ ।
सुलक्षणनखाङ्गुष्ठौ स्वङ्गुलीयकलक्षितौ ॥ १७ ॥

दोनों लगी भुजाएँ मोटी और शरीर के अनुरूप एवं बलयुक्त थी। उसकी अंगुलियों और अंगठे के सुलक्षण युक्त नख थे और अंगुलियां सुन्दर अंगूठियों से भूषित थीं ॥१७॥

संहतौ परिघाकारौ वृत्तौ करिकरोपमौ ।
विक्षिप्तौ शयने शुभ्रे पञ्चशीर्षाविवोरगौ ॥ १८ ॥

रावण की भुजाएँ मोटी, परिघ के आकार वाली, हाथी की सूंड की तरह उतार चढ़ाव वाली और पलंग पर फैली हुई ऐसी प्रतीत होती थीं मानों पांच फन वाले सर्प हो ॥ १८ ॥

शशक्षतजकल्पेन सुशीतेन सुगन्धिना ।
चन्दनेन परार्ध्येन स्वनुलिप्तौ स्वलङ्कृतौ ॥ १९ ॥

खरगोश के रक्त की तरह लाल, सुगंधित, शीतल एवं उत्तम चन्दन तथा अन्य सुगंधित पदार्थों से लिप्त वे दोनों भुजाएँ आभूषणों से अलंकृत थीं ॥१९॥

उत्तमस्त्रीविमृदितौ गन्धोत्तमनिषेवितौ ।
यक्षपन्नगगन्धर्वदेवदानवराविणौ ॥ २० ॥

सुन्दरी स्त्रियों के आलिंगन से मर्दित, अत्यन्त सुगन्धित द्रव्यों से सेवित, यक्ष, नाग, गन्धर्व, देव और दानवों को रुला देने वाली ॥२०॥

ददर्श स कपिस्तत्र बाहू शयनसंस्थितौ ।
मन्दरस्यान्तरे सुप्तौ महाही रुषिताविव ॥ २१॥

और बिछौने पर फैली हुई दोनों भुजाओं को हनुमान जी ने देखा। उस समय वह दोनों भुजाएँ ऐसी जान पड़ती थीं, मानों मन्दराचल पर्वत की तलहेटी में दो क्रुद्ध सर्प सो रहे हों ॥२१॥

ताभ्यां स परिपूर्णाभ्यामुभाभ्यां राक्षसेश्वरः ।
शुशुभेऽचलसंकाशः शृंगाभ्यामिव मन्दरः ॥ २२ ॥

उन दोनों भुजाओं से युक्त रावण, दो शिखरों से शोभित मन्दराचल की तरह शोभायमान हो रहा था ॥२२॥

चूतपुन्नागसुरभिर्बकुलोत्तमसंयुतः ।
मृष्टान्नरससंयुक्तः पानगन्धपुरःसरः ॥ २३ ॥

तस्य राक्षसराजस्य निश्चक्राम महामुखात् ।
शयानस्य विनिःश्वासः पूरयन्निव तद् गृहम् ॥ २४ ॥

राक्षसराजरावण के महामुख से निकली हुई सांसे, जो आम, नागकेसर और मौलसिरी के पुष्पों की सुगन्धि से सुवासित थीं, तथा जिनमें षडस युक्त अन्न तथा मधुपान की गन्ध मिश्रित थी, उस सम्पूर्ण शयन शाला को सुवासित कर रहीं थीं ॥२३-२४॥

मुक्तामणिविचित्रेण काञ्चनेन विराजिता ।
मकुटेनापवृत्तेन कुण्डलोज्ज्वलिताननम् ॥ २५ ॥

विचित्र मोती और मणियों के जड़ाउ सोने के मुकुट से, जो सोते समय अपने स्थान से कुछ खिसक गया था, तथा कुण्डलों से रावण का मुख उद्भासित हो रहा था ॥२५॥

रक्तचन्दनदिग्धेन तथा हारेण शोभिना ।
पीनायतविशालेन वक्षसाभिविराजिता ॥ २६ ॥

उसका मांसल और चौड़ा वक्षस्थल लाल चन्दन और सुन्दर हार से अलंकृत था ॥२६॥

पाण्डुरेणापविद्धेन क्षौमेण क्षतजेक्षणम् ।
महार्हेण सुसंवीतं पीतेनोत्तमवाससा ॥ २७ ॥

वह सफेद रेशमी धोती पहने हुए था और पीले रंग की बहुमूल्य रेशमी चादर ओढ़े हुए था ॥२७॥

माषराशिप्रतीकाशं निश्वसन्तं भुजङ्गवत् ।
गाङ्गे महति तोयान्ते प्रसुप्तमिव कुञ्जरम् ॥ २८ ॥

रावण स्वच्छ स्थान में रखे हुए उड़द के ढेर के समान प्रतीत हो रहा था तथा सांप की फुफकार की तरह सांस लेता हुआ, उस उज्जवल पलंग पर पड़ा ऐसे सो रहा था जैसे गंगा जी के गहरे जल में हाथो सो रहा हो ॥२८॥

चतुर्भिः काञ्चनैर्दीपैर्दीप्यमानं चतुर्दिशम् ।
प्रकाशीकृतसर्वाङ्गं मेघं विद्युद्गणैरिव ॥ २९ ॥

उसके चारों ओर चार सोने के दीपक जल रहे थे। उन दीपकों के प्रकाश से उसके शरीर के समस्त अंग वैसे ही प्रकाशित हो रहे थे, जैसे बिजलियों से बादल प्रकाशित होते हैं ॥२९॥

पादमूलगताश्चापि ददर्श सुमहात्मनः ।
पत्नीः स प्रियभार्यस्य तस्य रक्षःपतेर्गृहे ॥ ३० ॥

हनुमान जी ने देखा कि, उस राक्षसराज रावण की शयन शाला के बीच में पत्नीप्रिय रावण के चरणों के आसपास उसकी पत्नियाँ सो रहीं हैं ॥३०॥

शशिप्रकाशवदना वरकुण्डलभूषणाः ।
अम्लानमाल्याभरणा ददर्श हरियूथपः ॥ ३१॥

हनुमान जी ने देखा कि उन स्त्रियों के मुखमण्डल, चन्द्रमा की तरह प्रकाशमान थे। उनके कानों में श्रेष्ठ कुण्डल उनकी शोभा बढ़ा रहे थे और उनके गलों में ताजे फूलों की मालाएँ पड़ी थीं ॥३१॥

नृत्यवादित्रकुशला राक्षसेन्द्रभुजाङ्कगाः ।
वराभरणधारिण्यो निषण्णा ददृशे कपिः ॥ ३२ ॥

हनुमान जी ने देखा कि, वह सभी स्त्रियां जो रावण की भुजाओं के बीच तथा गोद में पड़ी थी नाचने गाने में निपुण थीं और उत्तम गहने पहने हुए सो रही थीं ॥३२॥

वज्रवैडूर्यगर्भाणि श्रवणान्तेषु योषिताम् ।
ददर्श तापनीयानि कुण्डलान्यङ्गदानि च ॥ ३३ ॥

उनके कानों में सोने के तथा हीरों पन्नो के जड़ाऊ कर्णफूल लटक रहे थे। हनुमान जी ने देखा कि, वह स्त्रियां भुजाओं में जो बाजूबंद

पहने हुए थीं, भुजाओं का तकिया लगाने से वह भी कानों के पास कुण्डलों के साथ शोभायमान हो रहे थे ॥३३॥

तासां चन्द्रोपमैर्वक्त्रैः शुभैर्ललितकुण्डलैः ।
विरराज विमानं तन्नभस्तारागणैरिव ॥ ३४ ॥

उन स्त्रियों के चन्द्रमा के समान मुखों और सुन्दर कुण्डलों से वह स्थान ऐसा शोभायमान हो रहा था जैसे तारों से आकाश की शोभा होती है ॥३४॥

मदव्यायामखिन्नास्ता राक्षसेन्द्रस्य योषितः ।
तेषु तेष्ववकाशेषु प्रसुप्तास्तनुमध्यमाः ॥ ३५ ॥

मदिरा के नशे से तथा नाचने गाने के परिश्रम से अत्यन्त थक कर जहाँ जिसे जो जगह मिली वह वहीं पडी सो रही थी ॥३५॥

अङ्गहारैस्तथैवान्या कोमलैर्नृत्यशालिनी ।
विन्यस्तशुभसर्वाङ्गी प्रसुप्ता वरवर्णिनी ॥ ३६ ॥

विधाता ने जिसके सरे अंगों को सुन्दर एवं विशेष शोभा से संपन्न बनाया था ऐसी मनोहर कोमलांगी कामिनी निद्रावस्था में अपने कोमल हाथों को हिला डुला रही थी, जिसको देखने से ऐसा प्रतीत होता था, मानों वह हाव भाव दिखा कर नाच रही हो ॥३६॥

काचिद् वीणां परिष्वज्य प्रसुप्ता सम्प्रकाशते ।
महानदीप्रकीर्णेव नलिनी पोतमाश्रिता ॥ ३७ ॥

कोई स्त्री वीणा को अपनो छाती से लिपटा कर सो जाने से ऐसी जान पड़ती थी, मानों नदी की धार में डूबती हुई कमलिनी सौभाग्यवश किसी नाव से जा लिपटी हो ॥३७॥

अन्या कक्षगतेनैव मड्डुकेनासितेक्षणा ।
प्रसुप्ता भामिनी भाति बालपुत्रेव वत्सला ॥ ३८ ॥

कमल के समान नेत्र वाली कोई स्त्री मण्डूक नामक वाद्य विशेष को गोद में दबा कर वैसे ही सो रही थी, जैसे कोई स्त्री बालक को गोद में दबा कर सो रही हो ॥३८॥

पटहं चारुसर्वाङ्गी न्यस्त शेते शुभस्तनी ।
चिरस्य रमणं लब्ध्वा परिष्वज्येव कामिनी ॥ ३९ ॥

कोई सर्वांग सुंदरी और शुभस्तनी तबला बजाते बजाते के उसी पर झुक कर सो रही थी। मानों कोई स्त्री बहुत दिनों बाद अपने पति को पा कर उससे लिपट गयी हो ॥३९॥

काचिद् वीणां परिष्वज्य सुप्ता कमललोचना ।
रहः प्रियतमं गृह्य सकामेव हि कामिनी ॥ ४० ॥

कोई कमल लोचनी वीणा को पकड़ कर, सो रही थी, मानों कोई कामिनी एकान्त में कामातुर हो जाने पर अपने प्यारे को पकड़ रही हो॥४०॥

विपञ्चीं परिगृह्यान्या नियता नृत्यशालिनी ।
निद्रावशमनुप्राप्ता सहकान्तेव भामिनी ॥ ४१॥

नियमपूर्वक नृत्यकला से सुशोभित होनेवाली एक अन्य स्त्री वीणा को पकड़ कर ऐसे सो रही थी मानों अपने पति के साथ सो रही हो ॥४१॥

अन्या कनकसङ्काशैर्मृदुपीनैर्मनोरमैः ।
मृदङ्गं परिविद्ध्याङ्गैः प्रसुप्ता मत्तलोचना ॥ ४२ ॥

कोई अन्य मदमाते नयनों वाली अपने सुवर्ण सदृश्य, कोमल, मांसल और सुन्दर अंगों से मृदंग को दबाये नयन बंद कर सो रही थी ॥४२॥

भुजपाशान्तरस्थेन कक्षगेन कृशोदरी ।
पणवेन सहानिन्द्या सुप्ता मदकृतश्रमा ॥ ४३ ॥

एक कृशोदरी रति के श्रम से थक कर अपनी भुजाओं में ढोलक को दबाये सो रही थी ॥४३॥

डिण्डिमं परिगृह्यान्या तथैवासक्तडिण्डिमा ।
प्रसुप्ता तरुणं वत्समुपगुह्येव भामिनी ॥ ४४ ॥

कोई डमरूप्रिय स्त्री, डमरू को छाती से चिपटाये ऐसे सो रसी थी, जैसे बालवत्सा कामिनी अपने बच्चे को ह्रदय से लगाए हुए सो रही हो ॥५४॥

काचिदाडम्बरं नारी भुजसम्भोगपीडितम् ।
कृत्वा कमलपत्राक्षी प्रसुप्ता मदमोहिता ॥ ४५ ॥

कोई कमलनयनी मदिरा के नशे में बेहोश होकर आडम्बर नाम के वाद्य बाजे को भुजाओं में दबाये पड़ी सो रही थी ॥४५॥

कलशीमपविध्यान्या प्रसुप्ता भाति भामिनी ।
वसन्ते पुष्पशबला मालेव परिमार्जिता ॥ ४६ ॥

एक युवती जल के कलश से ही लिपट कर सो गयी थी। कलश के जल से वह तर हो गयी थी। इससे उसकी ऐसी प्रतीत होती थी, मानों वसन्त काल में फूलों की माला को ताजा रखने के लिये, उस पर जल छिड़का गया हो॥४६॥

पाणिभ्यां च कुचौ काचित् सुवर्णकलशोपमौ ।
उपगूह्याबला सुप्ता निद्राबलपराजिता ॥ ४७ ॥

निद्रा के वश से कोई अबला अपने दोनों हाथों से सोने के कलश की तरह अपने दोनो कुचों को ढक कर सो रही थी ॥४७॥

अन्या कमलपत्राक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना ।
अन्यामालिङ्ग्य सुश्रोणीं प्रसुप्ता मदविह्वला ॥ ४८ ॥

एक पूर्णचन्द्राननी, कमलनयनी, एक दूसरी सुन्दर नितम्ब वाली स्त्री को चिपटाये हुए नशे से विव्हल होकर सो रही थी ॥४८॥

आतोद्यानि विचित्राणि परिष्वज्य वरस्त्रियः ।
निपीड्य च कुचैः सुप्ताः कामिन्यः कामुकानिव ॥ ४९ ॥

इसी प्रकार अन्य स्त्रियाँ भी अनेक प्रकार के वाद्यों को अपने स्तनों से दबाये सो रही थीं। मानो कामोपुरुषों से वह अपने कुचों को मर्दन कराती हुई पड़ी हुई थीं ॥४९॥

तासामेकान्तविन्यस्ते शयानां शयने शुभे ।
ददर्श रूपसंपन्नामथ तां स कपिः स्त्रियम् ॥ ५० ॥

अन्त में हनुमान जी ने देखा कि अलग एक सुन्दर शय्या पर अपूर्व रूप यौवनशालिनी एक स्त्री पड़ी सो रही है ॥५०॥

मुक्तामणिसमायुक्तैः भूषणैः सुविभूषिताम् ।
विभूषयन्तीमिव च स्वश्रिया भवनोत्तमम् ॥ ५१॥

मणियों और मोतियों के जड़ाऊ विविध प्रकार के आभूषणों के पहने हुए वह स्त्री अपने सौन्दर्य से मानों उस उत्तम भवन को अलंकृत कर रही थी ॥५१॥

गौरीं कनकवर्णाभामिष्टामन्तःपुरेश्वरीम् ।
कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयानां चारुरूपिणीम्
स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मजः । ॥ ५२ ॥

तर्कयामास सीतेति रूपयौवनसम्पदा ।
हर्षेण महता युक्तो ननन्द हरियूथपः ॥ ५३ ॥

उसके शरीर का रंग गौर था और सुवर्ण की तरह उसके शरीर की कान्ति थी। वह सारे अंत:पुर की स्वामिनी, रावण की प्रियतमा और परम रूपवती मन्दोदरी थी । महाबाहु पवन नन्दन हनुमान जी ने उस सर्वाभरण भूषित, मन्दोदरी की सुन्दरता और यौवन को देख उसे सीता समझा और इससे उनका आनंद उत्तरोत्तर बढ़ता गया ॥५२-५३॥

आस्फोटयामास चुचुम्ब पुच्छं ननन्द चिक्रीड जगौ जगाम ।
स्तम्भानरोहन्निपपात भूमौ निदर्शयन् स्वां प्रकृतिं कपीनाम् ॥ ५४ ॥

वानरी प्रकृति को दिखलाते हुए हनुमान जी मारे हर्ष के पूँछ को झटकारने और चूमने लगे। वह खंभे पर बार बार चढ़ जाते और वहाँ से नीचे भूमि पर कूदने लगते ।॥ ५४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे दशमः सर्गः ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का दसवाँ सर्ग पूरा हुआ

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ एकादशः सर्गः ग्यारहवाँ सर्ग ॥

नासौ सीतेति निश्चित्य हनुमता पुनरन्तःपुरे पानभूमौ च सीताया अनुसन्धानं तन्मनसि धर्मलोपाशंका तस्याः स्वतो निवारणं च – यह निश्चय होने पर की सीताजी यहाँ नहीं है, हनुमान जी का पुन: अंत:पुर में और पान भूमि में सीताजी का अन्वेषण, उनके मन में धर्मलोप की आकांशा और स्वत: उसका निवारण

अवधूय च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा ।
जगाम चापरां चिन्तां सीतां प्रति महाकपिः ॥ १ ॥

हनुमान जी ने जो पहले निश्चय किया था, कुछ ही देर बाद वह बदल गया। वह स्थिर हो कर बैठ गये और सीता जी के विषय में फिर सोचने लगे ॥१॥

न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी ।
न भोक्तुं नाप्यलङ्कर्तुं न पानमुपसेवितुम् ॥ २ ॥

वह मन ही मन कहने लगे कि, सीता पतिव्रता होकर, श्रीराम के वियोग में न तो सो ही सकती हैं, न खा सकती हैं, न अपना श्रृंगार कर सकती हैं और न मदिरा पान ही कर सकती हैं ॥२॥

नान्यं नरमुपस्थातुं सुराणामपि चेश्वरम् ।
न हि रामसमः कश्चिद् विद्यते त्रिदशेष्वपि ॥ ३ ॥

अन्य पुरुष का तो कहना ही ही क्या, वह देवताओं के राजा इन्द्रः को भी अपना पति नहीं समझ सकती। क्योंकि श्रीरामचन्द्र जी के समान देवताओं में भी कोई नहीं है।॥३॥

अन्येयमिति निश्चित्य भूयस्तत्र चचार सः ।
क्रीडितेनापराः क्लान्ता गीतेन च तथापराः ॥ ४ ॥

नृत्तेन चापराः क्लान्ताः पानविप्रहतास्तथा ।
मुरजेषु मृदङ्गेषु पीठिकासु च संस्थिताः ॥ ५ ॥

अत: यह कोई और ही स्त्री है इस प्रकार अपने मन में निश्चित करके, कपिश्रेष्ठ हनुमान जी सीता जी के दर्शन की अभिलाषा किये हुए पुनः रावण की मधुशाला में विचरने लगे। वहां उन्होंने देखा कि, कोई स्त्री क्रीडा से, कई गाने से और कोई नाचते नाचते थक कर और कोई नशे में चूर हो कर, मुरज, मृदंग, चोलिका का सहारा लेकर सो रही हैं ॥४-५॥

तथाऽऽस्तरणमुख्येषु संविष्टाश्चापराः स्त्रियः ।
अङ्गनानां सहस्रेण भूषितेन विभूषणैः ॥ ६ ॥

कोई सुन्दर बिस्तरे पर यथानियम सो रही थी। वहाँ पर हजारों स्त्रियाँ भूषणों से सजी सजाई पड़ी सो रही थीं ॥६॥

रूपसंलापशीलेन युक्तगीतार्थभाषिणा ।
देशकालाभियुक्तेन युक्तवाक्याभिधायिना ॥ ७ ॥

रताधिकेन संयुक्तां ददर्श हरियूथपः ।
तासां मध्ये महाबाहुः शुशुभे राक्षसेश्वरः ॥ ८ ॥

हनुमान जी ने देखा कि, उनमें से कोई स्त्री तो अपने रूप का बखान करने में कोई गान का अर्थ समझा समझा कर, कोई देश कालानुसार वार्तालाप करते करते, कोई उचित बचन बोलते बोलते और कोई रतिक्रीड़ा में रत हो, सोयी हुई थी। उनके बीच में पड़ा सोता हुआ महाबाहु रावण ऐमा शोभायमान हो रहा था ॥७-८॥

गोष्ठे महति मुख्यानां गवां मध्ये यथा वृषः ।
स राक्षसेन्द्रः शुशुभे ताभिः परिवृतः स्वयम् ॥ ९ ॥

जैसे किसी बड़ी गोष्ठ में, गौओं के बीच सांड़ शोभायमान होता है। स्वयं राक्षसेन्द्र रावण उन स्त्रियों के बीच उसी प्रकार शोभायमान हो रहा था ॥९॥

करेणुभिर्यथारण्ये परिकीर्णो महाद्विपः ।
सर्वकामैरुपेतां च पानभूमिं महात्मनः ॥ १० ॥

जिस प्रकार किसी वन में हथिनियों के बीच महाराज शोभित होता है। रावण की मधुशाला सम्पूर्ण मनोवांछित भोगों से संपन्न थी ॥१०॥

ददर्श कपिशार्दूलस्तस्य रक्षःपतेर्गृहे ।
मृगाणां महिषाणां च वराहाणां च भागशः ॥ ११ ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने, रावण की उस मधुशाला में हिरनों का, भैसों का और शूकर का मांस, अलग अलग रखा हुआ देखा ॥११॥

तत्र न्यस्तानि मांसानि पानभूमौ ददर्श सः ।
रौक्मेषु च विशालेषु भाजनेष्वप्यभक्षितान् ॥ १२॥

ददर्श कपिशार्दूलो मयूरान् कुक्कुटांस्तथा ।
वराहवाध्रीणसकान् दधिसौवर्चलायुतान् ॥ १३ ॥

शल्यान् मृगमयूरांश्च हनुमानन्ववैक्षत ।
कृकलान् विविधांश्छागाञ्छशकानर्धभक्षितान् ॥ १४ ॥

हनुमान जी ने उस मधु शाला में सोने के पात्रों में रखे हुए आधे खाये हुए, मुरगों और मोरों के मांस देखे। शूकर, जंगली बकरे, सेही, हिरन, मोर सभी के मांस वहाँ दही और नमक से लपेटे हुए हनुमान जी ने

देखे। विविध प्रकार से बनाया हुआ तीतर और चकोर पक्षी के मांस वहाँ दिखाई दे रहे थे ॥१२-१४॥

महिषानेकशल्यांश्च मेषांश्च कृतनिष्ठितान् ।
लेह्यानुच्चावचान् पेयान् भोज्यान्युच्चावचानि च ॥ १५ ॥

भैसों, एकशल्य मत्स्यों और बकरों के भली भांति पकाये हुए मांस वहां रखे थे। इनके अतिरिक अन्य विविध प्रकार के चाटने, खाने, पीने के पदार्थ भी वहाँ रखे थे ॥१५॥

तथाऽम्ललवणोत्तंसैर्विविधै रागखाण्डवैः ।
महानूपुरकेयूरैरपविद्धैर्महाधनैः ॥ १६ ॥

इनमें बहुत से तो चटपटे, खट्टे और नमकीन पदार्थों से मिश्रित थे। फिर सफेद सरसों के बनाये हुए षड्स पदार्थ भी थे। किसी किसी पीने के पात्र में बहुमूल्य हार, नूपुर और बाजूबंद भी पड़े हुए थे ॥१६॥

पानभाजनविक्षिप्तैः फलैश्च विविधैरपि ।
कृतपुष्पोपहारा भूरधिकां पुष्यति श्रियम् ॥ १७॥

और कहीं प्यालों में अनेक प्रकार के फल रखे थे। उस मधुशाला में इधर उधर पड़े हुए फूल वहां की अत्यन्त शोमा बढ़ा रहे थे ॥१७॥

तत्र तत्र च विन्यस्तैः सुश्लिष्टशयनासनैः ।
पानभूमिर्विना वह्निं प्रदीप्तेवोपलक्ष्यते ॥ १८॥

यत्र तत्र सुदृढ़ शय्याओं और सुन्दर स्वर्णमय सिहंसनो से सुशोभित होने वाली वह मधुशाला अग्नि के बिना ही अग्नि की तरह चमक रही थी॥१८॥

बहुप्रकारैर्विविधैर्वरसंस्कारसंस्कृतैः ।
मांसैः कुशलसंयुक्तैः पानभूमिगतैः पृथक् ॥ १९ ॥

बहुत से और विविध प्रकार के निपुण बावर्चियों द्वारा अच्छे प्रकार से पकाये हुए मांस मधुशाला में अलग अलग रखे हुए थे ॥१९॥

दिव्याः प्रसन्ना विविधाः सुराः कृतसुरा अपि ।
शर्करासवमाध्वीकाः पुष्पासवफलासवाः ॥ २० ॥

मांसों के अतिरिक्त वारुणी जाति की मदिरा तथा अन्य विविध प्रकार की साफ और कृत्रिम मदिरायें भी वहाँ रखी हुई थी। चीनी की, शहद की, फूलों की और फलों से खींची हुई शराब भी वहाँ रखी हुई थीं ॥२०॥

वासचूर्णैश्च विविधैर्मृष्टास्तैस्तैः पृथक् पृथक् ।
सन्तता शुशुभे भूमिर्माल्यैश्च बहुसंस्थितैः ॥ २१ ॥

हिरण्मयैश्च कलशैः भाजनैः स्फाटिकैरपि ।
जाम्बूनदमयैश्चान्यैः करकैरभिसंवृता ॥ २२ ॥

अनेक प्रकार के साफ किये हुए सुगन्धित मसालों से बनांये हुए मांस और मदिराएँ वहाँ अलग अलग रखी थीं। वह मधुशाला फूलों के ढेरों से, सुवर्ण के कलशों से, स्फटिक के पात्रों से और सोने के करवे से परिपूर्ण थी ॥२१- २२॥

राजतेषु च कुम्भेषु जाम्बूनदमयेषु च ।
पानश्रेष्ठां तदा भूरि कपिस्तत्र ददर्श सः ॥ २३॥

हनुमान जी ने देखा कि, कहीं चाँदी के और कहीं सोने के बड़े बड़े पात्रों में श्रेष्ठ पेय पदार्थ रखे हुए थे ॥२३॥

सोऽपश्यच्छातकुम्भानि सीधोर्मणिमयानि च ।
तानि तानि च पूर्णानि भाजनानि महाकपिः ॥ २४ ॥

हनुमान जी ने और भी देखा कि, सुवर्ण मणि और चांदी के पात्रों में मदिरा भरी हुई है ॥२४॥

क्वचिदर्धावशेषाणि क्वचित् पीतान्यशेषतः ।
क्वचिन्नैव प्रपीतानि पानानि स ददर्श ह ॥ २५॥

हनुमान जी ने देखा कि, उनमें कई तो आधे खाली थे, कोई बिल्कुल खाली थे और कोई जैसे के तैसे लबालब भरे हुए थे ॥२५॥

क्वचिद् भक्ष्यांश्च विविधान् क्वचित्पानानि भागशः ।
क्वचिदर्धावशेषाणि पश्यन् वै विचचार ह ॥ २६ ॥

किसी स्थान में विविध प्रकार की भोजन सामग्री और पीने योग्य मदिरा सजा कर रखी हुई थी। कहीं पर भक्ष्य पदार्थ आधे खाये हुए पड़े थे। इन सभी वस्तुओं को देखते भालते हनुमान जी वहाँ सर्वत्र विचर रहे थे ॥२६॥

कचित्तभिन्नैः करकैः कचिदालोलितैर्वरैः ।
कचित्सम्पृक्तमाल्यानि सूलानि च फलानि च ॥ २७॥

कहीं पर टूटे करवे और कहीं पर खाली घड़े लुढ़क रहे थे। कहीं पर फूलों की मालाओं, मूलों और फलों का मिलन हो रहा था। ॥२७॥

शयनान्यत्र नारीणां शून्यानि बहुधा पुनः ।
परस्परं समाश्लिष्य काश्चित् सुप्तावरांगनाः ॥ २८॥

कहीं स्त्रियों की सेजे सूनी पड़ी थीं और कोई स्त्रियां आपस में आलिंगन किए हुए सो रही थीं ॥२८॥

काश्चिच्च वस्त्रमन्यस्या अपहृत्योपगुह्य च ।

उपगम्याबला सुप्ता निद्राबलपराजिता ॥ २९ ॥

कहीं पर कोई स्त्री निद्रा के बल से पराजित हुई दूसरी स्त्री की सेज पर जाकर, उसके वस्त्र छीन कर, उससे अपने शरीर को ढक कर सो रही थी।॥२९॥

तासामुच्छ्वासवातेन वस्त्रं माल्यं च गात्रजम् ।
नात्यर्थं स्पन्दते चित्रं प्राप्य मन्दमिवानिलम् ॥ ३० ॥

उनकी साँसों की वायु से शरीर के विविध प्रकार वस्त्र और मालाएँ धीरे धीरे हिल रही थीं; मानों वह मन्द पवन के चलने से हिल रही हों ॥३०॥

चन्दनस्य च शीतस्य सीधोर्मधुरसस्य च ।
विविधस्य च माल्यस्य धूपस्य विविधस्य च ॥ ३१ ॥

बहुधा मारुतस्तस्य गन्धं विविधमुद्वहन् ।
स्नानानां चन्दनानां च धूपानां चैव मूर्छितः ॥ ३२ ॥

प्रववौ सुरभिर्गन्धो विमाने पुष्पके तदा ।
श्यामा बदातास्तत्रान्याः काश्चित्कृष्णा वराङ्गनाः ॥३३॥

काश्चित् काञ्चनवर्णाङ्ग्यः प्रमदा राक्षसालये ।
तासां निद्रावशत्वाच्च मदनेन विमूर्छितम् ॥ ३४॥

शीतल चन्दन, मदिरा, मधुरस, विविध प्रकार की मालाएँ और विविध प्रकार की धूपों का गंध लिये हुए पवन बह रहा था। अनेक प्रकार के चन्दनों के इत्रों को और सुगन्धित पदार्थों की बनी धूप की सुगन्धि उड़ाता हुआ पवन उस समय पुष्पकविमान में व्याप्त हो रहा था। हनुमान जी ने रावण के अंत:पुर में अनेक स्त्रियाँ देखीं, जिनमें कोई सांवली, कोई काली और कोई स्वर्ण वर्ण की थी। वह सभी निद्रा के वश में होकर सो रही थीं ॥३१-३४॥

पद्मिनीनां प्रसुप्तानां रूपमासीद् यथैव हि ।
एवं सर्वमशेषेण रावणान्तःपुरं कपिः ॥ ३५॥

उस रात में उनका सौन्दर्य मुरझाई हुई कमलिनी की तरह हो रहा था। इस प्रकार हनुमान जी ने, रावण के अंत:पुर का भली प्रकार से अवलोकन किया ॥३५॥

ददर्श स महातेजा न ददर्श च जानकीम् ।
निरीक्षमाणश्च ततस्ताः स्त्रियः स महाकपिः ॥ ३६॥

हनुमान जी ने यह सब तो देखा, किन्तु जानकी जी का दर्शन उनको नहीं हुआ। हनुमान जी उन सभी स्त्रियों को देखने से ॥ ३६॥

जगाम महतीं शङ्कां धर्मसाध्वसशङ्कितः ।
परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम् । ॥ ३७ ॥

बहुत चिन्तित हुए, क्योंकि परस्त्रियों को रात में सोते समय देखने से उनको अपने धर्म के नष्ट होने की आशंका उत्पन्न हो गयी ॥ ३७॥

इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति ।
न हि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी । ॥ ३८॥

वह मन ही मन कहने लगे कि मेरा यह सोती हुई पराई स्त्रियों को देखने का कर्म अवश्य ही मेरे धर्म को नष्ट कर देगा। आज तक कभी भी मेरी दृष्टि पराई स्त्रियों पर नहीं पड़ी ॥३८॥

अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः ।
तस्य प्रादुरभूच्चिन्ता पुनरन्या मनस्विनः ॥ ३९ ॥

किन्तु आज मुझे परस्त्री गामी रावण का भी दर्शन हुआ है। इस प्रकार चिन्ता करते करते हनुमान जी के मन में एक दूसरा विचार आया ॥३९॥

निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चयदर्शिनी ।
कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः ॥ ४०॥

न तु मे मनसा किञ्चिद् वैकृत्यमुपजायते ।
मनो हि हेतुः सर्वेषां इन्द्रियाणां प्रवर्तने ॥ ४१ ॥

शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ।

नान्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम् ॥ ४२ ॥

उनके मन में स्थिरता और निश्चय पूर्वक यह विचार आया कि, यद्यपि मैंने इन स्त्रियों को सुशुप्त अवस्था में देखाहै , तथापि मेरे मन में तिल भर भी विकार उत्पन्न नहीं हुआ। फिर मन ही तो पाप और पुण्य करने वाली सभी इन्द्रियों का प्रेरक है। वह मन मेरे वश में है अत: मुझे सोती हुई पराई स्त्रियों के देखने का पाप नहीं लग सकता। फिर अन्यत्र मैं सीता को ढूंढता तो भी कहाँ ढूंढता।॥४०-४२॥

स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सदा सम्परिमार्गणे ।
यस्य सत्त्वस्य या योनिस्तस्यां तत्परिमार्गते ॥ ४३ ॥

स्त्रियाँ तो स्त्रियों में ही ढूंढी जाती हैं। जिस प्राणी की जो जाति होती है, वह प्राणी उसी जाति में खोजा जाता है। ॥४३॥

न शक्यं प्रमदा नष्टा मृगीषु परिमार्गितुम् ।
तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया ॥ ४४ ॥

खोयी हुई स्त्री हिरनियों के समूह में नहीं खोजी जाती। अतः मैंने शुद्धमन से जानकी को खोजते हुए ॥४४॥

रावणान्तःपुरं सर्वं दृश्यते न च जानकी ।
देवगन्धर्वकन्याश्च नागकन्याश्च वीर्यवान् ॥ ४५॥

अवेक्षमाणो हनुमान् नैवापश्यत जानकीम् ।
तामपश्यन् कपिस्तत्र पश्यञ्श्चान्या वरस्त्रियः ॥ ४६ ॥

रावण के समस्त अन्तःपुर को ढूँढा, परन्तु जानकी जी दिखाई नहीं पड़ी। वोर्यवान हनुमान ने वहाँ देव, गन्धर्व, और नागों की कन्याओं को तो देखा, किन्तु उनको जानकी दिखाई नहीं पड़ी। तब हनुमान जी ने जानकी को न देख कर, अन्य सुन्दरी स्त्रियों में जानकी जी को तलाश किया ॥४५-४६॥

अपक्रम्य तदा वीरः प्रस्थातुमुपचक्रमे ।
स भूयः सर्वतः श्रीमान् मारुतिर्यत्नमास्थितः ।
आपानभूमिमुत्सृज्य तां विचेतुं प्रचक्रमे ॥ ४७ ॥

तदनन्तर हनुमान जी, रावण के अंत:पुर से निकल कर, अन्यत्र जा कर जानकी जी का पता लगाने का विचार करने लगे। पवननन्दन हनुमान जी पानशाला को त्याग कर, अन्य स्थानों में जानकी जी की खोज के प्रयत्न में लग गए ॥४७॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
एकादशः सर्गः ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का ग्यारहवां सर्ग पूर्ण हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ द्वादशः सर्गः बारहवाँ सर्गः ॥

सीतामरणशङ्कया हनुमतः शैथिल्यं पुनरुत्साहमवलम्ब्य स्थानान्तरेषु तेन तस्या अन्वेषणं कुत्रापि तामनवाप्य तस्य पुनश्चिन्ता च – सीता जी की मृतु की आकांशा से हनुमान जी का शिथिल होना होना, फिर उत्साह का आश्रय ले कर एनी स्थानों में उनकी खोज करना और पता नहीं लगने से उनका पुन: चिंतित होना

स तस्य मध्ये भवनस्य संस्थितो लतागृहांश्चित्रगृहान् निशागृहान् ।
जगाम सीतां प्रति दर्शनोत्सुको न चैव तां पश्यति चारुदर्शनाम् ॥१॥

रावण के वासगृह के बीच हनुमान जी ने लतागृहों, चित्र शालाओं और रात में रहने के घरों में भली भाँति ढूँढा पर जानकी जी उनको दिखाई नहीं पड़ी ॥१॥

स चिन्तयामास ततो महाकपिः प्रियामपश्यन् रघुनन्दनस्य ताम्।
ध्रुवं हि सीता म्रियते यथा न मे विचिन्वतो दर्शनमेति मैथिली ॥२॥

हनुमान जी श्रीरामचन्द्र जी की प्यारी सीता को न देख कर, अत्यन्त चिन्तित हो विचारने लगे कि, निश्चय ही जानकी जीती हुई नहीं हैं। क्योंकि मैंने उन्हें इतना ढूँढा तब भी उनके मुझे दर्शन नहीं हुए ॥२॥

सा राक्षसानां प्रवरेण जानकी स्वशीलसंरक्षणतत्परा सती ।
अनेन नूनं प्रति दुष्टकर्मणा हता भवेदार्यपथे परे स्थिता ॥ ३ ॥

ऐसा लगता है, अपने पतिव्रत धर्म की रक्षा में तत्पर और श्रेष्ठ पतिव्रत धर्म पर आरूढ़ जानकी जी को इस दुष्टात्मा रावण ने मार डाला है ॥३॥

विरूपरूपा विकृता विवर्चसो महानना दीर्घविरूपदर्शनाः ।
समीक्ष्य सा राक्षसराजयोषितो भयाद् विनष्टा जनकेश्वरात्मजा ॥४॥

अथवा इन कुरूप, विकराल, बुरे रंग वाली, बड़े बड़े मुखों वाली, दीर्घाकार और भयंकर नयनों वाली रावण की स्त्रियों को देखकर, भयवश सीता जी ने स्वयं प्राण त्याग दिए होंगे ॥४॥

सीतामदृष्ट्वा ह्यनवाप्य पौरुषं विहृत्य कालं सह वानरैश्चिरम् ।
न मेऽस्ति सुग्रीवसमीपगा गतिः सुतीक्ष्णदण्डो बलवांश्च वानरः ॥५॥

हा! न तो मुझे सीताजी का कुछ पता मिला और न समुद्र लांघने का फल ही कुछ मुझे मिला। फिर वानरों के लिये, सुग्रीव का नियत किया हुआ अवधि-काल भी व्यतीत हो गया। अतः अब हम लौट कर सुग्रीव

के पास भी नहीं जा सकते। क्योंकि वह बलवान वानरराज अत्यंत कठोर दण्ड देने वाला है ॥५॥

दृष्टमन्तःपुरं सर्वं दृष्टा रावणयोषितः ।
न सीता दृश्यते साध्वी वृथा जातो मम श्रमः ॥ ६ ॥

मैंने रावण का सारा अंत:पुर छान डाला और उसकी समस्त स्त्रियों को भी एक एक करके देख डाला, परन्तु उन साध्वी सीता जी का दर्शन नहीं हुआ, अतः मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया ॥६॥

किं नु मां वानराः सर्वे गतं वक्ष्यन्ति सङ्गताः ।
गत्वा तत्र त्वया वीर किं कृतं तद् वदस्व नः ॥ ७ ॥

जब मैं लौट कर जाऊँगा और वानर मुझसे पूछेगे कि वीर, तुमने वहाँ जा कर क्या किया वह हमसे कहो-तब मैं उनसे क्या कहूँगा।॥७॥

अदृष्ट्वा किं प्रवक्ष्यामि तामहं जनकात्मजाम् ।
ध्रुवं प्रायमुपासिष्ये कालस्य व्यतिवर्तने ॥ ८ ॥

जानकी को देखे बिना मैं उन्हें क्या उत्तर दूंगा। अतः सुग्रीव की निश्चित की हुई समय की अवधि तो बीत ही गयी अत: अब मैं अन्न जल त्याग कर यहीं अपने प्राण त्याग दूंगा ॥८॥

किं वा वक्ष्यति वृद्धश्च जाम्बवानङ्गदश्च सः ।

गतं पारं समुद्रस्य वानराश्च समागताः ॥ ९ ॥

यदि मैं समुद्र के पार वानरों के पास लौट कर जाऊँ, तो बूढ़े जाम्बवान् और युवराज अंगद मुझसे क्या कहेंगे ॥९॥

अनिर्वेदः श्रियो मूलं अनिर्वेदः परं सुखम् ।
अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः॥ १० ॥

इस प्रकार हताश होने पर भी पवननन्दन ने पुनः मन ही मन कहा कि मुझे अभी हतोत्साहित नहीं होना चाहिये क्योंकि उत्साह ही कार्यसिद्धि का मूल है और उत्साह ही परम सुख का देने वाला है। उत्साह ही मनुष्यों को सदैव सब कार्यों में संलग्न करने वाला है ॥१०॥

करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः ।
तस्मादनिर्वेदकरं यत्नं चेष्टेऽहमुत्तमम् ॥ ११ ॥

उत्साह पूर्वक जीव जो काम करते हैं, उत्साह उनके उस काम को सिद्ध करता है। अतः मैं अब उत्साह पूर्वक सीता जी को ढूढ़ने का प्रयत्न करता हूँ ॥ ११॥

भूयस्तावद्वीचेष्यामि देशान् रावणपालितान् ।
आपानशाला विचितास्तथा पुष्पगृहाणि च ॥ १२ ॥

चित्रशालाश्च विचिता भूयः क्रीडागृहाणि च ।

निष्कुटान्तररथ्याश्च विमानानि च सर्वशः ॥ १३ ॥

यद्यपि पानशाला, पुष्पगृह, चित्रशाला, क्रीड़ागृह, गृहोद्यान, भीतरी गलियाँ और अटारियों को भी एक बार कोना कोना ढूंढ चुका हूँ, तब भी मैं अब इन समस्त स्थानों तथा रावणरक्षित अन्य स्थानों को भी पुनः ढूंढूंगा ॥१२-१३॥

इति संचिन्त्य भूयोऽपि विचेतुमुपचक्रमे ।
भूमीगृहांश्चैत्यगृहान् गृहातिगृहकानपि ॥ १४ ॥

उत्पतन् निष्पतंश्चापि तिष्ठन् गच्छन् पुनः क्वचित् ।
अपवृण्वंश्च द्वाराणि कवाटान्यवघट्टयन् ॥ १५ ॥

इस प्रकार मन में निश्चय कर हनुमान जी, पुनः सीता जी को ढूँढने में प्रवृत हुए। उन्होंने तहखाने में, चौराहे के मण्डपों में तथा रहने के घरों से दूर सैर सपाटे के लिये बने हुए घरों में ऊपर नीचे सर्वत्र ढूँढने लगे। कभी तो वह ऊपर चढ़ते कभी नीचे उतरते, कभी खड़े हो जाते और कभी फिर चल पड़ते थे। कहीं घरों के दरवाजों को खोल देते और कहीं उन्हें बंद कर देते थे ॥१४-१५॥

प्रविशन् निष्पतंश्चापि प्रपतन्नुत्पतन्निव ।
सर्वमप्यवकाशं स विचचार महाकपिः ॥ १६ ॥

कहीं घर में घुसकर, कहीं बाहर निकलकर, कहीं लेट कर और कहीं बैठ कर हनुमान जी, सभी स्थानों में सर्वत्र सीता जी को खोजने लगे ॥१६॥

चतुरङ्गुलमात्रोऽपि नावकाशः स विद्यते ।
रावणान्तःपुरे तस्मिन् यं कपिर्न जगाम सः ॥ १७ ॥

यहाँ तक कि, रावण के अंत:पुर नवास में चार अंगुल भी ऐसी जगह नही बची जहाँ कपि गये न हो और जो उन्होंने देखी न हो ॥१७॥

प्राकारान्तरवीथ्यश्च वेदिकाश्चैत्यसंश्रयाः ।
दीर्घिका: पुष्करिण्यश्च सर्वं तेनावलोकितम् ॥ १८ ॥

परकोटा, परकोटे के भीतर की गलियां, चौराहों के चबूतरे तालाब और तलैयाँ सभी हनुमान जी ने छान डालीं ॥ १८ ॥

राक्षस्यो विविधाकारा विरूपा विकृतास्तथा ।
दृष्टा हनुमता तत्र न तु सा जनकात्मजा ॥ १९ ॥

इन जगहों में उनको विविध प्रकार की कुरूप विकराल राक्षसियां तो दिखाई दीं; किन्तु माता सीता का दर्शन नहीं हुआ ॥१९॥

रूपेणाप्रतिमा लोके वरा विद्याधरस्त्रियः ।
दृष्टा हनुमता तत्र न तु राघवनन्दिनी ॥ २० ॥

संसार में अनुपम सौन्दर्यवती और श्रेष्ठ विद्याधरों की स्त्रियाँ तो हनुमान जी ने देखीं, किन्तु वहां उन्हें श्रीरगुनाथ जी को आनंद प्रदान करने वाली सीता जी दिखाई नहीं दीं ॥२०॥

नागकन्या वरारोहाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।
दृष्टा हनुमता तत्र न तु सा जनकात्मजा ॥ २१॥

चन्द्रबदनी और पूर्ण चंद्रमा के समान मुखवाली बहुत सी सुन्दर नागकन्याएँ भी हनुमान जी ने देखी; किन्तु जनक किशोरी सीता जी का दर्शन उन्हें नहीं हुआ ॥२१॥

प्रमथ्य राक्षसेन्द्रेण नागकन्या बलाद्धृताः ।
दृष्टा हनुमता तत्र न सा जनकनन्दिनी ॥ २२ ॥

वह नागकन्याएँ जिनका रावण बलपूर्वक अपरहण कर लंका ले आया था, हनुमान जी ने देखीं, किन्तु जनकनन्दिनी कहीं नहीं दिखाई दीं ॥२२॥

सोऽपश्यंस्तां महाबाहुः पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः ।
विषसाद महाबाहुर्हनुमान् मारुतात्मजः ॥ २३ ॥

महाबाहु पवननन्दन हनुमान जी ने अन्य सुन्दरी स्त्रियों में दूंढने पर भी जब जानकी जे जी को नहीं देखा, तब वह दुखी हो गए ॥२३॥

उद्योगं वानरेन्द्राणां प्लवनं सागरस्य च ।
व्यर्थं वीक्ष्यानिलसुतश्चिन्तां पुनरुपागमत् ॥ २४ ॥

माता सीता का पता लगाने के लिये वानरशिरोमणि वीरों का उद्योग और अपना समुद्र का फांदना व्यर्थ हुआ देखकर, पवननन्दन पुनः अत्यंत चिन्तित हुए ॥२४॥

अवतीर्य विमानाच्च हनुमान् मारुतात्मजः ।
चिन्तामुपजगामाथ शोकोपहतचेतनः ॥ २५ ॥

पवननन्दन हनुम्नन जी विमान से उतर आये और शोक से विकल हो कर, अत्यन्त चिन्तित हो गये ॥ २५॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वादशः सर्गः ।

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का बारहवां सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ त्रयोदशः सर्गः तेरहवाँ सर्ग॥

सीताविनाशाशंकया हनुमतश्चिन्ता, सीतानुपलब्धिसूचनादनर्थं सम्भाव्य हनुमतोऽपरावर्तनाय निश्चयः पुनरन्वेषणविचारश्च, अशोकवाटिकायामनुसन्धानविषये विविधं पर्यालोचनं च – सीता जी के विनाश की आशंका से हनुमान जी का चिंतित होना, सीता जी ने न मिलने की सूचना श्रीराम को न देने से अनर्थ की सम्भावना देखकर हनुमान जी का लौटने निश्चय करके पुन: खोजने का विचार करके अशोक वाटिका में ढूँढने के लिए विविध पक्षों पर विचार करना

विमानात् तु स संक्रम्य प्राकारं हरियूथपः ।
हनुमान् वेगवानासीद् यथा विद्युद् घनान्तरे ॥ १ ॥

तदनन्तर वानरश्रेष्ठ हनुमान जी विमान से उतर कर महल के परकोटे पर कूद चढ़ गये। हनुमान जी का वेग उस समय ऐसा था, जैसा कि मेघ के भीतर चमकने वाली बिजली का होता है ॥१॥

सम्परिक्रम्य हनुमान् रावणस्य निवेशनान् ।
अदृष्ट्वा जानकीं सीतामब्रवीद् वचनं कपिः ॥ २ ॥

रावण के आवासगृह में चारों ओर घूम फिर कर और सीता जी को वहां कहीं भी न पा कर, हनुमान जी आप ही आप कहने लगे ॥२॥

भूयिष्ठं लोलिता लङ्का रामस्य चरता प्रियम् ।
न हि पश्यामि वैदेहीं सीतां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्र जी का प्रियकार्य करने के लिए मैंने पुन: लंकापुरी को सर्वत्र खोज डाला, किन्तु उस सर्वांग सुन्दरी विदेहनंदिनी सीताजी का पता नहीं चला ॥३॥

पल्वलानि तटाकानि सरांसि सरितस्तथा ।
नद्योऽनूपवनान्ताश्च दुर्गाश्च धरणीधराः ॥ ४ ॥

मैंने यहाँ की पुष्करिणिया, तालाब, झीलें, छोटी बड़ी नदिया, नदीतट के वनों, दुर्गों और पर्वतों से ले कर ॥४॥

लोलिता वसुधा सर्वा न तु पश्यामि जानकीम् ।
इह सम्पातिना सीता रावणस्य निवेशने । ॥ ५ ॥

आख्याता गृध्रराजेन न च सा दृश्यते न किम्
किं नु सीताथ वैदेही मैथिली जनकात्मजा । ॥ ६ ॥

सारा पृथिवीमण्डल छान डाला, किन्तु मुझे कहीं भी सीता जी का दर्शन नहीं हुआ। गृधराज सम्पाति का कहना है कि, सीताजी रावण के महल में ही है, किन्तु यहाँ तो सीता जी दिखाई नहीं देती। कहीं वैदेही, मैथिली, जनकात्मजा सीताजी ॥५-६॥

उपतिष्ठेत विवशा रावणेन हृता बलात्
क्षिप्रमुत्पततो मन्ये सीतामादाय रक्षसः । ॥ ७ ॥

बिभ्यतो रामबाणानामन्तरा पतिता भवेत्
अथवा ह्रियमाणायाः पथि सिद्धनिषेविते । ॥ ८ ॥

विवश होकर दुष्टात्मा रावण के वश में तो नहीं हो गयीं अथवा जब रावण सीता को हरण करके, श्रीरामचन्द्र जी के बाणों के भय से शीघ्रता पूर्वक आ रहा था, तब जानकी जी हडवड़ी में कहीं बीच में छूट कर गिर न पड़ी हों। अथवा जब वह सिद्धों से सेवित आकाश मार्ग से सीता को अपहृत कर ला रहा था ॥७-८॥

मन्ये पतितमार्याया हृदयं प्रेक्ष्य सागरम्
रावणस्योरुवेगेन भुजाभ्यां पीडितेन च । ॥ ९ ॥

तया मन्ये विशालाक्ष्या त्यक्तं जीवितमार्यया
उपर्युपरि सा नूनं सागरं क्रमतस्तदा । ॥ १० ॥

विवेष्टमाना पतिता सागरे जनकात्मजा

आहो क्षुद्रेण चानेन रक्षन्ती शीलमात्मनः । ॥ ११ ॥

अबन्धुर्भक्षिता सीता रावणेन तपस्विनी
अथवा राक्षसेन्द्रस्य पत्नीभिरसितेक्षणा । ॥ १२ ॥

अदुष्टा दुष्टभावाभिः भक्षिता सा भविष्यति
संपूर्णचन्द्रप्रतिमं पद्मपत्रनिभेक्षणम् । ॥ १३ ॥

उस समय हो सकता है कि, सागर को देखने से भयभीत होकर, सीता जी के प्राण निकल गये हो अथवा रावण के महावेग से चलने और उसकी भुजाओं के बीच दबकर विकल हो जाने से, उस विशालाक्षी सीताजी ने प्राण त्याग दिये हों। अथवा समुद्र पार करते समय छटपटाती हुई सीताजी समुद्र में गिर पड़ी हों। अथवा अपने पतिव्रत की रक्षा करती हुई उस अनाथिनी को इस नीच रावण ने हो खा डाला हो अथवामन में दुष्ट भाव रखने वाली रावण की दुष्टा स्त्रियों ने ही कमलाक्षी सीताजी को मिल कर खा डाला हो। अथवा पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह ॥९-१३ ॥

रामस्य ध्यायती वक्त्रं पञ्चत्वं कृपणा गता
हा राम लक्ष्मणेत्येवं हायोध्ये चेति मैथिली । ॥ १४ ॥

विलप्य बहु वैदेही न्यस्तदेहा भविष्यति
अथवा निहिता मन्ये रावणस्य निवेशने ॥ १५ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के मुखमण्डल का स्मरण करती हुई अपने प्राण त्याग दिए हों। अथवा हा राम! हा लक्ष्मण! हा अयोध्या! कह कर बहुत सा विलाप करती हुई मैथिली ने शरीर छोड़ दिया हो अथवा यह भी सम्भव है कि, रावण के घर में वह कहीं छिपा कर रखी गयी हों ॥१४-१५॥

नूनं लालप्यते सीता पञ्जरस्थेव सारिका ।
जनकस्य कुले जाता रामपत्नी सुमध्यमा ॥ १६ ॥

कथं उत्पलपत्राक्षी रावणस्य वशं व्रजेत् ।
विनष्टा वा प्रणष्टा वा मृता वा जनकात्मजा ॥ १७ ॥

और पिंजरे में बंद मैना की तरह विवश पड़ी विलाप करती हों। किन्तु कमलदल के समान नेत्र वाली और क्षीण कटिवाली सीताजी राजा जनक की बेटी और श्रीरामचन्द्र जी को भार्या होकर रावण के वश में कैसे जा सकती है? उसे रावण ने भले ही किसी तहखाने में छिपा रखा हो, अथवा वह समुद्र में गिर कर नष्ट हो गयी हो अथवा उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए हों ॥१६-१७॥

रामस्य प्रियभार्यस्य न निवेदयितुं क्षमम् ।
निवेद्यमाने दोषः स्याद् दोषः स्यादनिवेदने ॥ १८ ॥

किन्तु श्रीरामचन्द्र जी के पास जाकर इन बातों में से मैं एक भी बात नहीं कह सकता। क्योंकि वह अपनी प्रिया सीता जी से अत्यंत प्रेम

करते हैं। क्या किया जाय ऐसा समाचार कहने से भी दोष लगता है और न कहने से भी दोष का भागी होना पड़ता है॥१८॥

कथं नु खलु कर्तव्यं विषमं प्रतिभाति मे ।
अस्मिन्नेवंगते कार्ये प्राप्तकालं क्षमं च किम् ॥ १९ ॥

ऐसे में निश्चय पूर्वक मेरा क्या कर्तव्य है इसका निश्चय करना बड़ी विषम समस्या जान पड़ती है। परिस्थिति तो यह है कि अब समयानुसार क्या किया जाना उचित होगा ॥१९॥

भवेदिति मतं भूयो हनुमान् प्रविचारयन् ।
यदि सीतामदृष्ट्वाऽहं वानरेन्द्रपुरीमितः ॥ २० ॥

गमिष्यामि ततः को मे पुरुषार्थो भविष्यति ।
ममेदं लङ्घनं व्यर्थं सागरस्य भविष्यति ॥ २१ ॥

इस प्रकार अपने मन में विचारों की ऊहापोह करते करते, हनुमानजी बड़े विचार में पड़ गये। वह सोचने लगे कि, यदि सीता 'को देखे विना किष्किन्धा को लौट चलें, तो इसमें मेरा पुरुषार्थ ही क्या समझा जायगा । बल्कि मेरा सौ योजन समुद्र का लांघना भी व्यर्थ ही हो जायगा ॥२०-२१॥

प्रवेशश्चैव लङ्कायां राक्षसानां च दर्शनम् ।
किं वा वक्ष्यति सुग्रीवो हरयो वापि संगताः ॥ २२ ॥

फिर लङ्का में प्रवेश करना और राक्षसों का अन्वेषण करना सभी व्यर्थ है। सुग्रीव अथवा अन्य वानर मिलने पर मुझसे क्या कहेंगे? ॥२२॥

किष्किन्धामनुसम्प्राप्तं तौ वा दशरथात्मजौ ।
गत्वा तु यदि काकुत्स्थं वक्ष्यामि परुषं वचः ॥ २३ ॥

फिर किष्किन्धा में जाने पर दशरथनन्दन श्रीराम और लक्ष्मण जी 'मुझसे क्या कहेंगे। वहां जा कर यदि मैं श्रीरामचन्द्र जी से यह अप्रिय वचन कहूँ ॥२३॥

न दृष्टेति मया सीता ततस्तक्ष्यति जीवितम् ।
परुषं दारुणं तीक्ष्णं क्रूरमिन्द्रियतापनम् ॥ २४ ॥

कि मुझे सीता जी का दर्शन नहीं हुआ तो वह तत्क्षण प्राण त्याग देंगे। क्योंकि सीताजी के सम्बन्ध में उनसे इस प्रकार का वचन कहना श्रीराम जी के लिये केवल कठोर, भयंकर असह्य और इन्द्रियों को संताप देने वाला ही होगा ॥२४॥

सीतानिमित्तं दुर्वाक्यं श्रुत्वा स न भविष्यति ।
तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा पञ्चत्वगतमानसम् ॥ २५ ॥

सीताजी के विषय में कोई भी अप्रिय वचन सुनकर श्रीरामचन्द्र जी कदापि जीवित नहीं रहेंगे। उनको शोक से विकल हो प्राण त्यागते देखकर॥२५॥

भृशानुरक्तमेधावी न भविष्यति लक्ष्मणः ।
विनष्टौ भ्रातरौ श्रुत्वा भरतोऽपि मरिष्यति ॥ २६ ॥

उनके अत्यन्त अनुरागी और मेधावी लक्ष्मण भी नहीं बचेंगे। जब श्रीराम और लक्ष्मण के मरने का वृत्तान्त भरत जी सुनेंगे, तब वह भी प्राण त्याग देंगे ॥२६॥

भरतं च मृतं दृष्ट्वा शत्रुघ्नो न भविष्यति ।
पुत्रान् मृतान् समीक्ष्याथ न भविष्यन्ति मातरः ॥ २७ ॥

भरत की मृत्यु देख कर शत्रुघ्न भी जीवित नहीं रहेंगे । इस प्रकार अपने चारों पुत्रों की मृत्यु देखे कर, उनकी माताएँ भी जीवित नहीं बचेंगी ॥२७॥

कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च न संशयः ।
कृतज्ञः सत्यसन्धश्च सुग्रीवः प्लवगाधिपः ॥ २८ ॥

निश्चय ही कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी भी अपने प्राण त्याग देंगी। फिर कृतज्ञः और सत्यप्रतिज्ञ वानरराज सुग्रीव भी ॥२८॥

रामं तथा गतं दृष्ट्वा ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ।
दुर्मना व्यथिता दीना निरानन्दा तपस्विनी ॥ २९ ॥

पीडिता भर्तृशोकेन रुमा त्यक्ष्यति जीवितम् ।
वालिजेन तु दुःखेन पीडिता शोककर्शिता ॥ ३० ॥

श्रीराम को ऐसी अवस्था में देखकर अपना प्राण त्याग देंगे। तब अपना मन मारे, व्यथित, दीन और दुखी बेचारी रुमा अपने पति के शोक से मोहित होकर अपने प्राण गवां देगी। बालि के मारे जाने के दुःख से 'पीड़ित और शोक से विकल ॥२९-३०॥

पञ्चत्वमागता राज्ञी तारापि न भविष्यति ।
मातापित्रोर्विनाशेन सुग्रीवव्यसनेन च ॥ ३१ ॥

तारा उसी समय मरने को तैयार थी सो अब राजा सुग्रीव के मर जाने पर वह भी कभी न जियेगी। माता पिता और सुग्रीव के मर जाने पर ॥३१॥

कुमारोऽप्यङ्गदतस्माद् विजहिष्यति जीवितम् ।
भर्तृजेन तु दुःखेन अभिभूता वनौकसः ॥ ३२ ॥

युवराज अंगद कैसे जीवित रह सकेगा। फिर स्वामी को मरा देख कर वानर बहुत दुःखी हो कर ॥३२॥

शिरांस्यभिहनिष्यन्ति तलैर्मुष्टिभिरेव च ।
सान्त्वेनानुप्रदानेन मानेन च यशस्विना ॥ ३३ ॥

थपेड़ों और घूंसों से अपने सिरों को धुन डालेंगे। जो वानर राज सुग्रीव दान व मान से वानरों को सान्त्वना प्रदान कर ॥३३॥

लालिताः कपिनाथेन प्राणांस्त्यक्ष्यन्ति वानराः ।
न वनेषु न शैलेषु न निरोधेषु वा पुनः ॥ ३४ ॥

उनका लालन पालन किया करते हैं, उन सुग्रीव को मृत देखकर समस्त वानर भी अपने प्राण त्याग देंगे। तब क्या वनों, क्या पर्वतों और क्या घरों में ॥३४॥

क्रीडामनुभविष्यन्ति समेत्य कपिकुञ्जराः ।
सपुत्रदाराः सामात्या भर्तृव्यसनपीडिताः ॥ ३५ ॥

शैलाग्रेभ्यः पतिष्यन्ति समेषु विषमेषु च ।
विषमुद्बन्धनं वापि प्रवेशं ज्वलनस्य वा ॥ ३६ ॥

कपिकुंजर एकत्र हो विहार नहीं करेंगे। अपने स्वामी के शोक से सन्तापित होकर स्त्री, पुत्र और अपने अपने सेवकों को साथ लेकर वानरगण, पर्वत शिखरों पर चढ़ सम विषम भूमि पर गिर कर जान दे देंगे । अथवा विष खा कर, अथवा गले में फांसी लगा कर, अथवा जलती हुई आग में कूद कर मर जायेंगे॥३५-३६॥

उपवासमथो शस्त्रं प्रचरिष्यन्ति वानराः ।
घोरमारोदनं मन्ये गते मयि भविष्यति ॥ ३७ ॥

अथवा उपवास कर या शस्त्र से अपना गला काट वानर मृत्यु का वरण कर लेंगे। मैं समझता हूँ मेरे किष्किन्धा में लौट कर जाने से वहाँ महा भयंकर हाहाकार मच जायगा ॥३७॥

इक्ष्वाकुकुलनाशश्च नाशश्चैव वनौकसाम् ।
सोऽहं नैव गमिष्यामि किष्किन्धां नगरीमितः ॥ ३८ ॥

क्योंकि मेरे वहां जाते ही इश्वाकुकुल का और वानर कुल का नाश निश्चित है अतः मैं यहाँ से किष्किन्धा तो लौट कर नहीं जाऊँगा ॥३८॥

न च शक्ष्याम्यहं द्रष्टुं सुग्रीवं मैथिलीं विना ।
मय्यगच्छति चेहस्थे धर्मात्मानौ महारथौ ॥ ३९ ॥

आशया तौ धरिष्येते वानराश्च तरस्विनः ।
हस्तादानो मुखादानो नियतो वृक्षमूलिकः ॥ ४० ॥

मैं सीता को देखे बिना सुग्रीव के सामने नहीं जा सकता और यदि मैं वहां न जाकर यहीं बना रहूँ तो वह दोनों धर्मात्मा महारथी श्रीराम और लक्ष्मण तथा वानरगण आशा से जीवित तो बने रहेंगे। अतः अब

तो मैं जितेन्द्रिय हो, आपसे आप जो हाथ में या मुख में आ जायगा उसको खाकर और वृक्षमूल वासी होकर ॥३९-४०॥

वानप्रस्थो भविष्यामि ह्यदृष्ट्वा जनकात्मजाम् ।
सागरानूपजे देशे बहुमूलफलोदके ॥ ४१ ॥

वानप्रस्थ हो जाऊँगा। यदि मैं जानकी का पता न लगा पाया, तो अनेक फल, मूल और जल से पूर्ण समुद्र के तट पर ॥४१॥

चितिं कृत्वा प्रवेक्ष्यामि समिद्धमरणीसुतम् ।
उपविष्टस्य वा सम्यग् लिङ्गिनं साधयिष्यतः ॥ ४२ ॥

चिता बना कर और अरणी से उत्पन्न की हुई आग से उसे जला उसमें गिर कर प्राण दे दूंगा। अथवा आमरण उपवास व्रत धारण कर शरीर से आत्मा को छुड़ा दूंगा अर्थात् मर जाऊँगा ॥४२॥

शरीरं भक्षयिष्यन्ति वायसाः श्वापदानि च ।
इदमप्यृषिभिर्दृष्टं निर्याणमिति मे मतिः ॥ ४३ ॥

सम्यगापः प्रवेक्ष्यामि न चेत् पश्यामि जानकीम् ।
सुजातमूला सुभगा कीर्तिमाला यशस्विनी ॥ ४४ ॥

तब मेरे मृतशरीर को कौए, सियार आदि खा डालेंगे। ऋषियों ने इस शरीर को त्याग करने का और भी उपाय बतलाया है अत: यदि मुझे

जानको न मिली तो मैं जल समाधी ले लूँगा । हाय, मैंने प्रारम्भ में लंका राक्षसी को जीत कर जो नाम प्राप्त की अब माता सीता के दर्शन न पाने से वह मेरी कीर्ति सदा के लिये नष्ट हो गयी॥४३-४४॥

प्रभग्ना चिररात्राय मम सीतामपश्यतः ।
तापसो वा भविष्यामि नियतो वृक्षमूलिकः ॥ ४५ ॥

जिसका प्रारम्भ शुभ हुआ, ऐसी सुभगा और यशस्विनी दीर्घ रात्रि भी सीताजी के खोजने में समाप्त हुई। किन्तु सीताजी का दर्शन नही हुआ। अतः मैं वृक्ष के नीचे निवास करने वाला जितेन्द्रिय वानप्रस्थी बन जाऊँगा ॥४५॥

नेतः प्रतिगमिष्यामि तामदृष्ट्वासितेक्षणाम् ।
यदी तु प्रतिगच्छामि सीतामनधिगम्य ताम् ॥ ४६ ॥

परन्तु उस कमल सदृश नेत्रों वाली सीताजी का दर्शन किए बिना मैं अब यहाँ से नहीं लौटूंगा और यदि माता सीता का पता लगाये बिना मैं यहाँ से लौट कर गया ॥४६॥

अङ्गदः सहितः सर्वैर्वानरैर्न भविष्यति ।
विनाशे बहवो दोषा जीवन् प्राप्नोति भद्रकम् ॥ ४७ ॥

तो अंगद सहित समस्त वानर जीवित नहीं रहेंगे। मरने में अनेक दोष हैं और जीवित रहने में अनेक शुभों की प्राप्ति की आशा है ॥४७॥

तस्मात् प्राणान् धरिष्यामि ध्रुवो जीवति संगमः
एवं बहुविधं दुःखं मनसा धारयन् बहु । ॥ ४८ ॥

अत: मैं जीवित रहूँगा । क्योंकि जीवित रहने से निश्चय ही इष्ट सिद्धि होती है। इस प्रकार की अनेक चिन्ता करते हुए पवननन्दन बहुत दुःखी हो रहे थे ॥४८॥

नाध्यगच्छत् तदा पारं शोकस्य कपिकुञ्जरः ।
रावणं वा वधिष्यामि दशग्रीवं महाबलम् ॥ ४९ ॥

और उस शोक के पार वह न जा सके । तब उन्होंने विचारा कि, क्यों न महाबली दशग्रीव रावण ही का वध क्यों न कर डालूँ ॥४९॥

काममस्तु हृता सीता प्रत्याचीर्णं भविष्यति ।
अथवैनं समुत्क्षिप्य उपर्युपरि सागरम् ॥ ५० ॥

क्योंकि इसका वध करने से सीताजी के अपहरण करने के बैर का बदला तो हो ही जायगा अथवा रावण को बारम्बार समुद्र के ऊपर उछालते हुए ॥५०॥

रामायोपहरिष्यामि पशुं पशुपतेरिव ।
इति चिन्तासमापन्नः सीतामनधिगम्य ताम् ॥ ५१ ॥

ध्यानशोकपरीतात्मा चिन्तयामास वानरः ।
यावत् सीतां न पश्यामि रामपत्नीं यशस्विनीम् ॥ ५२ ॥
तावदेतां पुरीं लङ्कां विचिनोमि पुनः पुनः ।
संपातिवचनाच्चापि रामं यद्यानयाम्यहम् ॥ ५३ ॥

श्रीरामचन्द्र जी को वैसे ही भेंट कर दूंगा, जैसे पशु के मालिक को पशु सौंपा जाता है । इस प्रकार की अनेक चिन्ता करते हुए, चिन्ता और शोक में डूबे हुए हनुमानजी ने विचारा कि, जब तक सीताजी नहीं मिलेंगी तब तक बार बार इसी लंका में सीता जी की खोज करता रहूँगा। अथवा संपाति के वचनों पर विश्वास कर श्रीरामचन्द्र जो को ही यहां ले आऊँ ॥५१-५३॥

अपश्यन् राघवो भार्यां निर्दहेत् सर्ववानरान् ।
इहैव नियताहारो वत्स्यामि नियतेन्द्रियः ॥ ५४ ॥

और यहां आने पर श्रीरामचन्द्र जी ने सीता जी को नहीं पाया तो क्रुद्ध होकर वह सब वानरों को भस्म कर डालेंगे। अतः यही ठीक है कि मैं नियताहारी हो यहीं रहूँ॥५४॥

न मत्कृते विनश्येयुः सर्वे ते नरवानराः
अशोकवनिका चापि महतीयं महाद्रुमा । ॥ ५५ ॥

मैं नहीं चाहता कि, मेरे कारण वह समस्त नर और वानर नष्ट हो जाएँ। अरे ! यह जो अशोकवाटिका में बड़े बड़े वृक्ष दिखाई दे रहे हैं। ॥५५॥

इमामधिगमिष्यामि न हीयं विचिता मया ।
वसून् रूद्रांस्तथाऽदित्यानश्विनौ मरुतोऽपि च ॥ ५६ ॥

नमस्कृत्वा गमिष्यामि रक्षसां शोकवर्धनः
जित्वा तु राक्षसान् देवीमिक्ष्वाकुकुलनन्दिनीम् ।
संप्रदास्यामि रामाय यथा सिद्धीमिव तपस्विने ॥ ५७ ॥

अंक अनुसंधान तो मैंने किया ही नहीं। अतः अब मैं इसमें जाऊँगा। आठों वसुओं, ग्यारहों रुद्रों, बारहों आदित्यों, दोनों अश्विनीकुमारों तथा उनचासों मरुद्गणों को नमस्कार कर, राक्षसों का शोक बढ़ाने के लिये मैं वहाँ जाऊँगा। फिर सब राक्षसों को जीतकर और इश्काकु कुल को आनंदित करने वाली जनक नन्दिनी सीता जी को ले जाकर मैं श्रीरामचन्द्र जी को वैसे ही दूंगा, जैसे तपस्वियों को सिद्धि दी जाती है ॥५६-५७॥

सः मुहूर्तमिव ध्यात्वा चिन्ताविग्रथितेन्द्रियः ।
उदतिष्ठन् महाबाहुर्हनुमान् मारुतात्मजः ॥ ५८ ॥

चिन्ता से विकल होकर, महातेजस्वी पवननन्दन हनुमान जी एक मुहर्त तक कुछ सोच विचार कर सहसा उठकर खड़े हो गए ॥ ५८ ॥

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्राग्निमरुद्गणेभ्यः ॥५९॥

और मन ही मन इष्ट देवताओं को नमस्कार करते हुए बोले मैं श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण जी को नमस्कार करता हूँ। उन देवी जनकनन्दिनी को भी मैं नमस्कार करता हूँ। मैं, रुद्र, इन्द्र, यम, वायु, चन्द्र, अग्नि और मरुद्गणों को भी नमस्कार करता हूँ ॥५९॥

स तेभ्यस्तु नमस्कृत्वा सुग्रीवाय च मारुतिः ।
दिशः सर्वाः समालोक्य सोऽशोकवनिकां प्रति ॥ ६० ॥

उन सब को तथा सुग्रीव को नमस्कार कर, पवनकुमार सम्पूर्ण दिशाओं को अच्छी तरह देख कर, अशोकवन की ओर प्रस्थान किया ॥६०॥

स गत्वा मनसा पूर्वमशोकवनिकां शुभाम् ।
उत्तरं चिन्तयामास वानरो मारुतात्मजः ॥ ६१ ॥

उस मनोहर अशोकवाटिका में हनुमान जी मन द्वारा तो पहले ही पहुँच गये थे। इसके पश्च्यात पवननन्दन हनुमान जी आगे के कर्त्तव्य के विषय में विचारने लगे॥६१॥

ध्रुवं तु रक्षोबहुला भविष्यति वनाकुला ।
अशोकवनिका पुण्या सर्वसंस्कारसंस्कृता ॥ ६२ ॥

उन्होंने विचारा कि, अशोकवाटिका निश्चय ही बहुत साफ सुथरी और सजी हुई होगी और उसकी रखवाली के लिये भी बहुत से राक्षस नियुक्त होंगे। अतः उसे चल कर अवश्य हूँढना चाहिये ॥६२॥

रक्षिणश्चात्र विहिता नूनं रक्षन्ति पादपान् ।
भगवानपि विश्वात्मा नातिक्षोभं प्रवायति ॥ ६३ ॥

अवश्य ही वहाँ के पेड़ों की सुरक्षा के लिये रक्षक होंगे। भगवान विश्वात्मा पवनदेव भी पेड़ों को झकारते हुए वहाँ नहीं बहते होंगे ॥६३॥

संक्षिप्तोऽयं मयाऽऽत्मा च रामार्थे रावणस्य च ।
सिद्धिं दिशन्तु मे सर्वे देवाः सर्षिगणास्त्विह ॥ ६४ ॥

अत: श्रीरामचन्द्र जी का कार्य पूरा करने के लिये और रावण की दष्टि से अपने को बचाने के लिये, मैंने अपने शरीर को छोटा कर लिया है। अतः इस समय देवगण और ऋषिगण मेरा अभीष्ट पूरा करें॥६४॥

ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान् देवाश्चैव तपस्विनः ।
सिद्धिमग्निश्च वायुश्च पुरुहूतश्च वज्रभृत् ॥ ६५ ॥

वरुणः पाशहस्तश्च सोमादित्यौ तथैव च ।
अश्विनौ च महात्मानौ मरुतः सर्व एव च ॥ ६६ ॥

सिद्धिं सर्वाणि भूतानि भूतानां चैव यः प्रभुः ।
दास्यन्ति मम ये चान्येऽप्यदृष्टाः पथि गोचराः ॥ ६७ ॥

भगवान् स्वयंभू ब्रह्मा, देवतागण, तपस्वीगण, अग्नि, वायु, वज्रधारी इन्द्र, पाशहस्त वरुण, चन्द्रमा, सूर्य, महात्मा अश्विनी कुमार, उनचासों मरुत और रुद्र, समस्त प्राणिगण और समस्त प्राणियों के प्रभु श्रीमन नारायण तथा अदृश्य भाव से विचरने वाले अन्य सभी देवगण भी मेरा कार्य पूर्ण करें ॥६५- ६७॥

तदुन्नसं पाण्डुरदन्तमव्रणं शुचिस्मितं पद्मपलाशलोचनम् ।
द्रक्ष्ये तदार्यावदनं कदान्वहं प्रसन्नताराधिपतुल्यवर्चसम् ॥ ६८ ॥

ना जानें कब मैं उन सतीसाध्वी एवं कमलनयनी सीताजी का उच्च नासिका से भूषित, श्वेतदन्त पंक्ति से शोभित, मंद मुसकान युक्त, चेचक के दागों से रहित, मुखारविन्द का दर्शन पाऊँगा ॥६८॥

क्षुद्रेण हीनेन नृशंसमूर्तिना सुदारुणालङ्कृतवेषधारिणा ।
बलाभिभूता ह्यबला तपस्विनी कथं नु मे दृष्टिपथेऽद्य सा भवेत्
॥६९॥

इस क्षुद्र, नीच, नृशंस और भयंकर रूप धारी रावण ने कपट रूप बना कर बलपूर्वक जिस अबला तपस्विनी सीताजी का अपहरण कर लिया है; अब वह किस प्रकार मेरे दृष्टिपथ में आ सकती हैं ॥६६॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
त्रयोदशः सर्गः ।

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का तेरहवां सर्ग पूर्ण हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ चतुर्दशः सर्गः चौदहवाँ सर्गः ॥

अशोकवनिकायां प्रविश्य तस्याः शोभाया दर्शनमेकस्मिन्नशोके प्रच्छन्नीभूतेन हनुमता तत एव तस्या अनुसन्धानम् - हनुमान जी का अशोक वाटिका में प्रवेश कर उसकी शोभा देखना तथा अशोक वृक्ष पर छिपे रहकर सीता जी का अनुसन्धान करना

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा मनसा चाधिगम्य ताम् ।
अवप्लुतो महातेजाः प्राकारं तस्य वेश्मनः ॥ १ ॥

महातेजस्वी हनुमान जी मुहूर्त भर कुछ सोच कर तथा सीता जी का ध्यान कर, रावण के महल के परकोटे से नीचे उतर आये और अशोक वाटिका की चारदीवारी पर बैठ गए ॥१॥

स तु संहृष्टसर्वाङ्गः प्राकारस्थो महाकपिः ।
पुष्पिताग्रान् वसन्तादौ ददर्श विविधान् द्रुमान् ॥ २ ॥

उस चारदिवारी पर बैठ कर वसन्त आदि सभी ऋतुओं में सदा फूलने वाले विविध वृक्षों को देख कर, महाकपि हनुमान जी का शरीर पुलकित हो गया॥२॥

सालानशोकान् भव्यांश्च चंपकांश्च सुपुष्पितान् ।
उद्दालकान् नागवृक्षांश्चूतान् कपिमुखानपि ॥ ३ ॥

उन वृक्षों में सुन्दर शाल और अशोक के पेड़ तथा भली भांति आक फले हुए चंपा के पेड़, लसोड़ा, नागकेसर और कपि के मुख की आकृति वाले आम के फलों के वृक्ष थे ॥३॥

तथाम्रवणसम्पन्नाँल्लताशतसमन्वितान् ।
ज्यामुक्त इव नाराचः पुप्लुवे वृक्षवाटिकाम् ॥ ४ ॥

आम के वन से आच्छादित और सैकड़ों लताओं से वेष्ठित उस अशोक वाटिका में धनुष से छूटे हुए तीर की तरह हनुमान जी उछल कर जा पहुँचे ॥४॥

स प्रविश्य विचित्रां तां विहगैरभिनादिताम् ।
राजतैः कांचनैश्चैव पादपैः सर्वतो वृताम् ॥ ५ ॥

वहाँ जाकर हनुमान जी ने देखा कि, वह वाटिका बड़ी अदभुत है। वहाँ पेड़ों पर बैठे अनेक पक्षी कलरव कर रहे हैं, और वह चारों ओर चांदी और सोने के वृक्षों से शोभित है ॥५॥

विहगैर्मृगसङ्घैश्च विचित्रां चित्रकाननाम् ।
उदितादित्यसङ्काशां ददर्श हनुमान् बली ॥ ६ ॥

उसमें अनेक प्रकार के जीवजन्तु और पक्षी होने के कारण उसकी विचित्र शोभा हो रही है। हनुमान जी ने वहां जाकर देखा कि उस वाटिका की शोभा, उदयकालीन सूर्य की तरह है ॥६॥

वृतां नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पोपगफलोपगैः ।
कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च मत्तैर्नित्यनिषेविताम् ॥ ७ ॥

उसमें विविध प्रकार के फलों और फूलों के वृक्ष भरे हुए हैं और उन पर मतवाली कोयलें कूक रही हैं तथा भौंरे गुंजार कर रहे हैं ॥७॥

प्रहृष्टमनुजां काले मृगपक्षिमदाकुलाम् ।
मत्तबर्हिणसङ्घुष्टां नानाद्विजगणायुताम् ॥ ८ ॥

उस वाटिका में जाने से मनुष्य का मन सदा प्रसन्न होता था और वहाँ मृग और पक्षी भरे हुए थे। मतवाले मोरे मोरनियाँ नाचा करते थे और अनेक पक्षी वहां निवास करते थे।॥८॥

मार्गमाणो वरारोहां राजपुत्रीमनिन्दिताम् ।
सुखप्रसुप्तान् विहगान् बोधयामास वानरः ॥ ९ ॥

हनुमान जी ने सुन्दरी और अनिन्दिता राजकुमारी सीता को खोजते हुए, सुख की नींद में सोते हुए वहाँ के पक्षियों को जगा दिया ॥९॥

उत्पतद्भिर्द्विजगणैः पक्षैर्वतैः समाहताः ।
अनेकवर्णा विविधा मुमुचुः पुष्पवृष्टयः ॥ १० ॥

जब समस्त पक्षी चौंके और परों को फैला कर उड़े, तब उनके पंखों से निकले हुए पवन के झोंके से विविध वृक्षों ने रंग बिरंगे पुष्पों की वर्षा की ॥१०॥

पुष्पावकीर्णः शुशुभे हनुमान् मारुतात्मजः ।
अशोकवनिकामध्ये यथा पुष्पमयो गिरिः ॥ ११ ॥

हनुमान जी फूलों के ढेर से ढक कर, उस अशोकाटिका में उस समय फूलों के पहाड़ की तरह दिखाई देने लगे ॥११॥

दिशः सर्वाभिधावन्तं वृक्षखण्डगतं कपिम् ।
दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि वसन्त इति मेनिरे ॥ १२ ॥

जब हनुमान जी वृक्षों ही वृक्षों मे उस वाटिका में चारों ओर घूमने लगे तब उन्हें देखकर समस्त प्राणियों ने समझा कि, वसन्त ऋतु ही वानर रूप धारण कर वाटिका में विचर रहा है ॥१२॥

वृक्षेभ्यः पतितैः पुष्पैरवकीर्णाः पृथग्विधैः ।
रराज वसुधा तत्र प्रमदेव विभूषिता ॥ १३ ॥

वृक्षों से गिरे हुए फूलों से ढक कर, वहाँ की भूमि श्रृंगार की हुई स्त्री की तरह शोभा पाने लगी ॥१३॥

तरस्विना ते तरवः तरसा बहु कम्पिताः ।
कुसुमानि विचित्राणि ससृजुः कपिना तदा ॥ १४ ॥

बलवान हनुमान जी के ज़ोर से हिलाने पर उन पेड़ों के रंग बिरंगे फूल झड कर गिर पड़े ॥१४॥

निर्धूतपत्रशिखराः शीर्णपुष्पफल द्रुमाः ।
निक्षिप्तवस्त्राभरणा धूर्ता इव पराजिताः ॥ १५ ॥

उनके फूल ही नहीं बल्कि पत्ते, फुनगियां और फल पुष्प सब गिर पड़े। उस समय वे सब वृक्ष ऐसे दिखाई देते थे, जैसे जुए में कपड़े गहने हारे हुए धूर्त दिखाई देते हैं ॥१५॥

हनूमता वेगवता कम्पितास्ते नगोत्तमाः ।
पुष्पपर्णफलान्याशु मुमुचुः फलशालिनः ॥ १६ ॥

पवननन्दन द्वारा ज़ोर से हिलाये हुए फूलने फलने वाले उन उत्तम वृक्षों ने अपने अपने फूल, पत्ते और फल तुरन्त गिरा दिये ॥१६॥

विहङ्गसङ्घैर्हीनास्ते स्कन्धमात्राश्रया द्रुमाः ।
बभूवुरगमाः सर्वे मारुतेन विनिर्धुताः ॥ १७ ॥

पत्तियों से रहित उन वृक्षों में केवल डालियाँ ही डालियाँ रह गयीं। हवा द्वारा नष्ट किये हुए पत्तों की तरह वह वृक्ष अब किसी पक्षी के बैठने योग्य नहीं रह गये थे ॥१७॥

निर्धूतकेशी युवतिर्यथा मृदितवर्णका ।
निष्पीतशुभदन्तोष्ठी नखैर्दन्तैश्च विक्षता ॥ १८ ॥

उस समय अशोकवाटिका ऐसी जान पड़ती थी, जैसी वह तरुणी स्त्री हो, जिसके सिर के बाल बिखरे हों, तिलक पोंछ दिया गया हो, ओंठों में दांत से काटने के घाव हों, तथा अन्य अंगों में भी दांतों और नखों के घाव लगे हों ॥१८॥

तथा लाङ्गूलहस्तैस्तु चरणाभ्यां च मर्दिता ।
वभूवाशोकवनिका प्रभग्नवनपादपा ॥ १९ ॥

हनुमान जी की पूँछ, हाथ और दोनों पैरों से मर्दित होने के कारण, अशोकवाटिका के समस्त उत्तमोत्तम वृक्ष छिन्न भिन्न हो गये ॥१९॥

महालतानां दामानि व्यधमत् तरसा कपिः ।
यथा प्रावृषि वेगेन मेघजालानि मारुतः ॥ २० ॥

जिस प्रकार वर्षा ऋतु में तेज हवा मेघों को छिन्न भिन्न कर देती है, उसी प्रकार हनुमान जी ने बड़ी तेजी से वहां की बड़ी बड़ी लताओं को छिन्न भिन्न कर डाला ॥२०॥

स तत्र मणिभूमीश्च राजतीश्च मनोरमाः ।
तथा काञ्चनभूमीश्च विचरन् ददृशे कपिः ॥ २१ ॥

वहां विचरते हुए हनुमान जी ने रजतमयी, मणिमयी, और सुवर्णमयी विविध प्रकार को मनोहर भूमियाँ ``देखीं ॥२१॥

वापीश्च विविधाकाराः पूर्णाः परमवारिणा ।
महार्हैर्मणिसोपानैरुपपन्नास्ततस्ततः ॥ २२ ॥

सुस्वादु मीठे जल से भरी विविध आकार प्रकार की बावलियां भी हनुमान जी ने देखीं। इन बावलियों की सीढ़ियों में अत्यंत मूल्यवान मणियां जड़ी हुई थीं ॥२२॥

मुक्ताप्रवालसिकताः स्फाटिकान्तरकुट्टिमाः ।
काञ्चनैस्तरुभिश्चित्रैर्तीरजैरुपशोभिताः ॥ २३ ॥

उनमें मोती और मूंगे बालू की तरह बिछाए गए थे और उनके फर्श में स्फटिक पत्थर जड़ा हुआ था। उनके किनारे पर रंग बिरंगे सोने के वृक्ष शोभायमान थे ॥२३॥

फुल्लपद्मोत्पलवनाश्चक्रवाकोपशोभिताः ।
नत्यूहरुतसंघुष्टा हंससारस नादिताः ॥ २४ ॥

उसमें प्रफुल्लित कमलों के वन दिखाई देते थे और चक्रवाक पक्षी गूँज रहे थे। पपीहा, हंस और सारस पक्षियों के कलनाद गूँज रहे थे ॥२४॥

दीर्घाभिर्द्रुमयुक्ताभिः सरिद्‌भिश्च समन्ततः ।
अमृतोपमतोयाभिः शिवाभिरुपसंस्कृताः ॥ २५ ॥

उन तालाबों के चारों ओर बड़े बड़े वृक्ष लगे थे और छोटी छोटी नदियाँ बह रही थीं। उन तालाबों में अमृत के समान स्वादिष्ट जल भरा हुआ था जो भीतरी सोतों से उन तालाबों में पहुँचा करता था ॥२५॥

लताशतैरवतताः सन्तानकुसुमावृताः ।
नानागुल्मावृतवनाः करवीरकृतान्तराः ॥ २६ ॥

उनके ऊपर लता के मंडप बने हुए थे और वह कल्पवृक्ष के फूलों से घिरे हुए थे। विविध गुच्छों से उनका जल ढका हुआ था तथा बीच बीच में खिले हुए कनेर के वृक्ष गवाक्ष की से शोभा प्राप्त करते थे ॥२६॥

ततोऽम्बुधरसङ्‌काशं प्रवृद्धशिखरं गिरिम् ।
विचित्रकूटं कूटैश्च सर्वतः परिवारितम् ॥ २७ ॥

फिर वहाँ कपिश्रेष्ठ हनुमान ने मेघ के समान उच्च शिखरों वाला एक अद्‌भुत पर्वत वहां देखा, जो चारों ओर फैला हुआ था ॥२७॥

शिलागृहैरवततं नानावृक्ष समावृतम् ।
ददर्श कपिशार्दूलो रम्यं जगति पर्वतम् ॥ २८ ॥

उस पर्वत में अनेक पत्थर के गुफानुमा घर बने हुए थे, जिनके चारों ओर अनेक वृक्ष थे। संसार भर के पर्वतों में रमणीक इस पर्वत को हनुमान जी ने देखा ॥२८॥

ददर्श च नगात् तस्मान्नदीं निपतितां कपिः ।
अङ्कादिव समुत्पत्य प्रियस्य पतितां प्रियाम् ॥ २९ ॥

इस पर्वत से निकल कर एक नदी बह रही थी। हनुमान जी को वह ऐसी प्रतीत हुई मानों, कोई प्रियतमा कामिनी कुपित होकर अपने प्रियतम की गोद को त्याग कर, भूमि पर गिर पड़ी हों।॥२६॥

जले निपतिताग्रैश्च पादपैरुपशोभिताम् ।
वार्यमाणामिव क्रुद्धां प्रमदां प्रियबन्धुभिः ॥ ३० ॥

जैसे कोई मानिनी कामिनी कुपित हो अपने प्रियतम को त्याग कर अन्यत्र जाना चाहती हो और उसकी प्यारी सखी सहेलियां उसे रोक रही हों, वैसे ही उस नदी के किनारे वृक्षों की डालियां जल में डूबी हुई इसी भाव को प्रदर्शित कर रही थीं। ॥३०॥

पुनरावृत्ततोयां च ददर्श स महाकपिः ।
प्रसन्नामिव कान्तस्य कान्तां पुनरुपस्थिताम् ॥ ३१ ॥

हनुमान जी ने देखा कि, कुछ दूर जा कर नदी का जल पुनः पीछे आ रहा है। मानों वह रूठी हुई कामिनी प्रसन्न होकर लौट कर प्रियतम के समीप जा रही हो। ॥३१॥

तस्यादूरात् स पद्मिन्यो नानाद्विजगणायुताः ।
ददर्श कपिशार्दूलो हनुमान् मारुतात्मजः ॥ ३२ ॥

पवननन्दन हनुमान जी ने देखा कि, उस नदी से कुछ दूर हट कर अनेक जाति के पक्षियों से युक्त और कमल के फूलों से शोभित एक पुष्करिणी है ॥३२॥

कृत्रिमां दीर्घिकां चापि पूर्णां शीतेन वारिणा ।
मणिप्रवरसोपानां मुक्तासिकतशोभिताम् ॥ ३३ ॥

फिर हनुमान जी ने कृत्रिम तालाब भी देखा जो ठंडे जल से परिपूर्ण था और उसकी सीढ़ियां मणिमय बनी हुई थीं। वह मोती रूपी बालू से शोभित थीं ॥३३॥

विविधैर्मृगसङ्घैश्च विचित्रां चित्रकाननाम् ।
प्रासादैः सुमहद्भिश्च निर्मितैर्विश्वकर्मणा ॥ ३४ ॥

अनेक प्रकार के मृगों और चित्र विचित्र वनों से युक्त तथा अनेक बहुत बड़े बड़े भवनों से शोभित उस वाटिका को विश्वकर्मा ने बनाया था ॥३४॥

काननैः कृत्रिमैश्चापि सर्वतः समलङ्कृताम् ।
ये केचित् पादपास्तत्र पुष्पोपगफलोपगाः ॥ ३५ ॥

कृत्रिम वनों से वह वाटिका चारों ओर से सजाई गयी थीं। वहाँ फूलने और फलने वाले वृक्ष लगे थे ॥३५॥

सच्छत्राः सवितर्दीकाः सर्वे सौवर्णवेदिकाः ।
लताप्रतानैर्बहुभिः पर्णैश्च बहुभिर्वृताम् ॥ ३६ ॥

वह सभी छाते की तरह ऊपर की ओर फैले हुए छाया किये हुए थे, उनके चारों ओर चबूतरे बने हुए थे, जिन पर चढ़ने के लिये सोने की सीढियां थीं। वहा अनेक लताओं के जाल थे, जिनके पत्तों से ही छाया बनी रहती थी ॥३६॥

काञ्चनीं शिंशुपामेकां ददर्श स महाकपिः ।
वृतां हेममयीभिस्तु वेदिकाभिः समन्ततः ॥ ३७ ॥

तदनन्तर हनुमान जी ने सुनहरे रंग का एक अशोक वृक्ष देखा । उसका तना सोने का बना हुआ था और जो अनेकों लताओं तथा पत्तों से व्याप्त था ॥३७॥

सोऽपश्यद् भूमिभागांश्च नगप्रस्रवणानि च ।
सुवर्णवृक्षानपरान् ददर्श शिखिसन्निभान् ॥ ३८ ॥

इनके अतिरिक्त हनुमान जी ने वहाँ अनेक क्यारियाँ, पहाड़ी झरने तथा अन्य अग्नि की तरह कान्तिमान् सवर्ण वृक्ष भी देखे ॥३८॥

तेषां द्रुमाणां प्रभया मेरोरिव महाकपिः ।
अमन्यत तदा वीरः काञ्चनोऽस्मीति सर्वतः ॥ ३९ ॥

सुमेरु के संग से जिस प्रकार सूर्य भगवान प्रदीप्त हो जाते है, उसो प्रकार उन समस्त सुवर्ण वृक्षों की प्रभा से हनुमान जी ने अपने को सुवर्णमय माना ॥३९॥

तां काञ्चनान् वृक्षगणान् मारुतेन प्रकम्पितान्म् ।
किङ्किणीशतनिर्घोषां दृष्ट्वा विस्मयमागमत् ॥ ४० ॥

जब वह स्वर्ण मय पेड़ वायु के झोंके से हिलते थे, तब उनमें से असंख्य घुंघुरूओं के एक साथ झनकारने की मधुर ध्वनि उत्पन्न होती थी। यह सब देख कर हनुमान जी को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥४०॥

स पुष्पिताग्रान् रुचिरान् तरुणाङ्कुरपल्लवान् ।
तामारुह्य महावेगः शिंशपां पर्णसंवृताम् ॥ ४१ ॥

सुन्दर पुष्पों वाले, नवीन अंकुरों तथा पत्तों से युक्त दीतिमान् उन पत्तों से युक्त हनुमान जी उस अशोक वृक्ष पर चढ़ गये और उसके पत्तों में अपने को छिपा लिया ॥४१॥

इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं रामदर्शनलालसाम् ।
इतश्चेतश्च दुःखार्तां संपतन्तीं यदृच्छया ॥ ४२ ॥

वहाँ बैठ कर वह विचारने लगे कि, यहां से कदाचित् मैं सोता जी का दर्शन कर सकूं क्योंकि हो सकता है कि दुःख से विकल होकर वह श्रीरामचन्द्र जो के दर्शन की लालसा किये हुए, इधर उधर घूमती दैव वश इधर आ निकले ॥४२॥

अशोकवनिका चेयं दृढं रम्या दुरात्मनः ।
चन्दनैश्चंपकैश्चापि बकुलैश्च विभूषिता ॥ ४३ ॥

यह रावण की अशोकवाटिका अत्यंत रमणीय है। चन्दन, चंपा और मौलसिरी के वक्ष इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं ॥४३॥

इयं च नलिनी रम्या द्विजसङ्घनिषेविता ।
इमां सा राजममहिषी नूनमेष्यति जानकी ॥ ४४ ॥

यह पुष्करणी कमलों से भी पूर्ण है और इसके चारों ओर बैठे हुए पक्षी भी इसकी शोभा बढ़ाते हैं। अतः श्री रामचन्द्र जी की महिषी सीता यहाँ अवश्य आएँगी ॥४४॥

सा रामा राजमहिषी राघवस्य प्रिया सती ।
वनसंचारकुशला ध्रुवमेष्यति जानकी ॥ ४५ ॥

श्री राम जी की प्रियतमा जानकी वनों में घूमने में कुशल हैं। अतः वह घूमती घामती यहाँ अवश्य आएँगी ॥४५॥

अथवा मृगशावाक्षी वनस्यास्य विचक्षणा ।
वनमेष्यति साद्येह रामचिन्तासुकर्शिता ॥ ४६ ॥

अथवा इन वन की विशेषताओं के ज्ञान में निपुण मृगशावक नयनी सीता आज यहाँ इस तालाब के तटवर्ती वन में अवश्य पधारेंगी क्योंकि वह श्रीरामचन्द्र जी की चिन्ता में विकल हैं और इस रमणीय पुष्करणी में आकर उनकी चिन्ता कम हो सकेगी ॥४६॥

रामशोकाभिसन्तप्ता सा देवी वामलोचना ।
वनवासरता नित्यमेष्यते वनचारिणी ॥ ४७ ॥

वह सुन्दर नेत्रों वाली माता जानकी श्रीरामचन्द्र जी के वियोग जनित शोक से सन्तप्त है और वनवास मे उनका प्रेम है, अतः संभव है वह यहाँ आयें ॥४७॥

वनेचराणां सततं नूनं स्पृहयते पुरा ।
रामस्य दयिता चार्या जनकस्य सुता सती ॥ ४८ ॥

श्रीरामचन्द्र जी की प्रिय भार्या और जनकनन्दिनी जानकी जी वन के मृगों और पक्षियों पर अति प्रेम रखती हैं अत: संभव है की वह यहाँ भ्रमण के लिए आयें ॥४८॥

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी ।
नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी ॥ ४९ ॥

यह प्रात:काल की संध्या का समय है और इसमें मन लगाने वाली तथा सदैव सोलह वर्ष जैसी दिखाई पड़ने वाली अक्षययौवना तथा सुन्दर वर्ण वाली जानकी इस नदी के स्वच्छ जल में स्नानादि तथा ईश्वरोपासना करने अवश्य पधारेंगी ॥४९॥

तस्याश्चाप्यनुरूपेयमशोकवनिका शुभा ।
शुभायाः पार्थिवेन्द्रस्य पत्नी रामस्य सम्मता ॥ ५० ॥

राजेन्द्र श्रीरामचन्द्र की श्रेष्ठा एवं प्यारी भार्या जानकी के आने के लिये यह उत्तम अशोकवाटिका सर्वथा उपयुक्त भी है ॥५०॥

यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना ।
आगमिष्यति सावश्यमिमां शीतजलां नदीम् ॥ ५१ ॥

यदि वह चन्द्र नयनी देवी जानकी जीती है, तो वह शीतल जल वाली इस नदी के तट पर अवश्य ही आएँगी ॥५१॥

एवं तु मत्वा हनुमान् महात्मा प्रतीक्षमाणो मनुजेन्द्रपत्नीम् ।
अवेक्षमाणश्च ददर्श सर्वं सुपुष्पिते पर्णघने निलीनः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार महात्मा हनुमान जो उस फूले हुए अशोक वृक्ष के घने पत्तों में अपने को छिपाए हुए, सीताजी के आने की प्रतीक्षा करते हुए महात्मा हनुमान जी सम्पूर्ण वन पर दृष्टिपात करते रहे ॥५२॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
चतुर्दशः सर्गः ।

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का चौदहवां सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ पञ्चदशः सर्गः पंद्रहवाँ सर्ग ॥

वनसुषमां अवलोकयता हनुमता चैत्यप्रासादसंनिधौ दयनीयां सीतामालोक्येयमेव सेति तर्कणं तस्य प्रसन्नता च – वन की शोभा का अवलोकन करते हुए एक चैत्य प्रासाद के पास सीता जी का दयनीय अवस्था में दर्शन करके प्रसन्न होना

स वीक्षमाणस्तत्रस्थो मार्गमाणश्च मैथिलीम् ।
अवेक्षमाणश्च महीं सर्वां तामन्ववैक्षत ॥ १ ॥

हनुमान जी उस वृक्ष पर बैठे हुए, सीता माता को ढूँढने के लिये, पृथिवों पर चारों ओर दृष्टि फैला कर, देख रहे थे ॥१॥

सन्तानकलताभिश्च पादपैरुपशोभिताम् ।
दिव्यगन्धरसोपेतां सर्वतः समलङ्कृताम् ॥ २ ॥

वह वन कल्पवक्षों की लताओं और वृक्षों से शोभित, दिव्य गन्धो और दिव्य रसों से पूर्ण, और चारों ओर सजा हुआ था ॥२॥

तां स नन्दनसङ्काशां मृगपक्षिभिरावृताम् ।
हर्म्यप्रासादसम्बाधां कोकिलाकुलनिःस्वनाम् ॥ ३ ॥

वह वन नन्दनवन के तुल्य, मृग और पक्षियों से पूर्ण, अटारियों से युक्त भवनों से सघन और कोकिल की कुंज से कून्जित था ॥३॥

काञ्चनोत्पलपद्माभिर्वापीभिरुपशोभिताम् ।
बह्वासनकुथोपेतां बहुभूमिगृहायुताम् ॥ ४ ॥

उसमें सुवर्ण के कमलों वाली बावलियां थीं, और वहाँ बहुत सुन्दर बैठने के लिये बैठकें बनी हुई थी और बहुत से आसन और कालीन बिछे हुए थे। उसमें पृथ्वी के नीचे अनेक तहखाने भी बने हुए थे। ॥४॥

सर्वर्तुकुसुमै रम्यां फलवद्भिश्च पादपैः ।
पुष्पितानामशोकानां श्रिया सूर्योदयप्रभाम् ॥ ५ ॥

प्रदीप्तामिव तत्रस्थो मारुतिः समुदैक्षत ।
निष्पत्रशाखां विहगैः क्रियमाणामिवासकृत् ॥ ६ ॥

उसमें ऐसे वृक्ष लगे हुए थे, जिनमें सभी ऋतुओं में फल और फूल लगे रहते थे। खिले हुए अशोकवृक्षों की कान्ति से वहां मानों सूर्योदय की प्रभा फैल रही थी। हनुमान जी ने देखा कि, पेड़ों की डालियों पर अनेक पक्षी अपने दोनों परों को फैलाये और पत्तों को ढ़के बैठे थे, जिससे ऐसा प्रतीत होता था, मानों वृक्षों की डालियों में पत्ते ही नहीं हैं ॥५-६॥

विनिष्पतद्भिः शतशश्चित्रैः पुष्पावतंसकैः ।
आमूलपुष्परचितैरशोकैः शोकनाशनैः ॥ ७ ॥

सैकड़ों रंग बिरंगे पक्षी जो अपनी चोंच में फूलों को दबाए हुए थे, आभूषणों से सजे हुए प्रतीत होते थे। जड़ से ले कर फुनगी तक खिले और मन को हर्षित करने वाले अशोकवृक्ष ॥७॥

पुष्पभारातिभारैश्च स्पृशद्भिरिव मेदिनीम् ।
कर्णिकारैः कुसुमितैः किंशुकैश्च सुपुष्पितैः ॥ ८ ॥

स देशः प्रभया तेषां प्रदीप्त इव सर्वतः ।
पुन्नागाः सप्तपर्णाश्च चंपकोद्दालकास्तथा ॥ ९ ॥

फूलों के बोझ से झुक कर, मानो पृथिवी को छू रहे थे। खिले फूले हुए कनेर और टेसू के फूलों की प्रभा से, वह स्थान चारों ओर से प्रदीप्त दिखाई देता था अर्थात उन लाल फूलों से ऐसा जान पड़ता

था मानो, चारों ओर अग्नि प्रज्वल्लित हो। वहाँ नागकेसर, चंपा, लसोड़ा ॥८-९॥

विवृद्धमूला बहवः शोभन्ते स्म सुपुष्पिताः ।
शातकुम्भनिभाः केचित् केचिदग्निशिखप्रभाः ॥ १० ॥

आदि बड़ी बड़ी जड़ों वाले फूले हुए वृक्ष वहां की शोभा बढ़ा रहे थे। इन वृक्षों में अनेक सोने के रंग के, अनेक अग्नि के रंग के॥१०॥

नीलाञ्जननिभाः केचित् तत्राशोकाः सहस्रशः ।
नन्दनं विबुधोद्यानं चित्रं चैत्ररथं यथा ॥ ११ ॥

अतिवृत्तमिवाचिन्त्यं दिव्यं रम्यश्रियायुतम् ।
द्वितीयमिव चाकाशं पुष्पज्योतिर्गणायुतम् ॥ १२ ॥

और कोई अन्य काजल की तरह काले रंग के थे। इस प्रकार के रंग बिरंगे सहस्त्रों, अशोक वृक्ष वहाँ थे। यह अशोक वाटिका इन्द्र के नन्दनकानन और कुबेर के चैत्ररथ नामक उद्यान से भी उत्तमता, रमणीयता, और सौन्दर्य में बढ़ कर थी। इसके सौन्दर्य के कल्पना भी करना सम्भव नहीं है। यह कह सकते हैं कि, रावण का अशोक उद्यान पुष्प रूपी तारागण से युक्त दूसरे आकाश के समान था॥ ११-१२॥

पुष्परत्नशतैश्चित्रं द्वितीयं सागरं यथा ।
सर्वर्तुपुष्पैर्निचितं पादपैर्मधुगन्धिभिः ॥ १३ ॥

अथवा पुष्प रूपी सैकड़ों रंग बिरंगे रत्नों से भरा पांचवा सागर था। सभी ऋतुओं में इसमें फूलों के ढेर लगे रहते थे और मधुगन्ध युक्त वृक्षों से यह सँवारा हुआ था ॥१३॥

नानानिनादैरुद्यानं रम्यं मृगगणद्विजैः ।
अनेकगन्धप्रवहं पुण्यगन्धं मनोहरम् ॥ १४ ॥

शैलेन्द्रमिव गन्धाढ्यं द्वितीयं गन्धमादनम् ।
अशोकवनिकायां तु तस्यां वानरपुङ्गवः ॥ १५ ॥

इसमें विविध प्रकार के पक्षी कलरव करते थे और तरह तरह के पक्षी और मृग निवास करते थे। विविध प्रकार की मनोहर सुगंधों से सुवासित मानों दूसरा गिरिश्रेष्ठ गन्धमादन था। उस अशोक वाटिका में हनुमान जी ने ॥१४-१५॥

स ददर्शाविदूरस्थं चैत्यप्रासादमूर्जितम् ।
मध्ये स्तम्भसहस्रेण स्थितं कैलासपाण्डुरम् ॥ १६ ॥

समीप ही ऊँचा एक गोलाकार भवन देखा । उसके बीच में एक हजार खम्बे थे और उसका रंग कैलाश पर्वत की तरह सफेद था ॥१६॥

प्रवालकृतसोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम् ।
मुष्णन्तमिव चक्षूंषि द्योतमानमिव श्रिया ॥ १७ ॥

उसकी सीढ़ियां मूंगे की और उसके चबूतरे सोने के बने हुए थे। वह भवन ऐसा प्रकाशमान हो रहा था कि, उसकी ओर देखने से आखें चौंधिया जाती थी। ॥१७॥

निर्मलं प्रांशुभावत्वादुल्लिखन्तमिवाम्बरम् ।
ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम् ॥ १८ ॥

उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ।
ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम् ॥ १९ ॥

वह भवन बहुत साफ़ स्वच्छ था और ऊँचाई में आकाश से बातें करता था। उसमें मैले कपड़े पहने और राक्षसियों से घिरी, उपवास से कृश, उदास और बार बार लम्बी सांसें लेती हुई और शुक्लपक्ष के प्रारम्भ में चन्द्ररेखा को तरह निर्मल एक स्त्री को हनुमान जी ने देखा ॥१८-१९॥

मन्दप्रख्यायमानेन रूपेण रुचिरप्रभाम् ।
पिनद्धां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः ॥ २० ॥

मनोहर कान्तियुक्त सीता जी का रूप, जो धुंए से ढकी हुई अग्नि शिखा की तरह बड़ी कठिनाई से देखने में आता था, हनुमान जी ने देखा ॥२०॥

पीतेनैकेन संवीतां क्लिष्टेनोत्तमवाससा ।

सपङ्कामनलङ्कारां विपद्मामिव पद्मिनीम् ॥ २१ ॥

वह एक पुरानी पीले रंग की उत्तम साड़ी पहने हुए और आभूषण रहित होने से पुष्पहीन कमलिनी की तरह शोभाहीन दिखाई देती थीं ॥२१॥

पीडितां दुःखसन्तप्तां परिक्षीणां तपस्विनीम् ।
ग्रहेणाङ्गारकेणेव पीडितामिव रोहिणीम् ॥ २२ ॥

पीड़ित और दुःख से सन्तप्त, अत्यन्त दुर्बल तपस्विनी जानकी मंगलग्रह से सतायी हुई रोहिणी की तरह, उदास प्रतीत होती थीं ॥२२॥

अश्रुपूर्णमुखीं दीनां कृशामनशनेन च ।
शोकध्यानपरां दीनां नित्यं दुःखपरायणाम् ॥ २३ ॥

सदा शोकान्वित, चिन्तित, उदास रहने और उपवास करने के कारण वह दुबली हो गयी थीं और उनकी आखों से आंसुओं की धारा बह रही थी॥२३॥

प्रियं जनमपश्यन्तीं पश्यन्तीं राक्षसीगणम् ।
स्वगणेन मृगीं हीनां श्वगणेनावृतामिव ॥ २४ ॥

उसके नेत्रों के सामने सदा राक्षसियां रहा करती थीं। वह अपने प्रियजन श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को न देखने के कारण, झुण्ड से

बिछुड़ी हुई और शिकारी कुत्तों से घिरी हिरनी को तरह ग्रस्त और घबराइ हुई थी ॥२४॥

नीलनागाभया वेण्या जघनं गतयैकया ।
नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव ॥ २५ ॥

काले नाग की तरह जो चोटी उनकी जांघ पर आ पड़ी थी, वह ऐसी लगती थी, जैसे शरद ऋतु में नील वर्ण वाली वन पंक्ति दिखाई देती है ॥२५॥

सुखार्हां दुःखसन्तप्तां व्यसनानामकोविदाम् ।
तां विलोक्य विशालाक्षीं अधिकं मलिनां कृशाम् ॥ २६ ॥

तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादिभिः ।
ह्रियमाणा तदा तेन रक्षसा कामरूपिणा ॥ २७ ॥

सुख भोगने योग्य और कभी दुःख न भोगे हुए, किन्तु दुःख सन्तप्त मलिन वेश बनाये और दुबली पतली उस विशाल नयनी को देख कर, हनुमान जी ने तर्क वितर्क द्वारा अनेक कारणों से अपने मन में निश्चय किया कि, यही माता सीता हैं। वह अपने मन में कहने लगे कि, कामरूपी रावण जब इनको हर कर ले जा रहा था ॥२६-२७॥

यथारूपा हि दृष्टा वै तथारूपेयमङ्गना ।
पूर्णचन्द्राननां सुभ्रूं चारुवृत्तपयोधराम् ॥ २८ ॥

तब मैंने जैसे रूप वाली स्त्री देखी थी, वैसा ही इनका रूप है। क्योंकि उन्ही की तरह यह पूर्णचन्द्र बदनी है, इसकी सुन्दर भौंहे हैं तथा गोल पयोधर हैं ॥२८॥

कुर्वतीं प्रभयादेवीं सर्वा वितिमिरा दिशः ।
तां नीलकण्ठीं बिम्बोष्ठीं सुमध्यां सुप्रतिष्ठिताम् ॥ २९ ॥

अपने शरीर को कान्ति से इन्होने मानों समस्त दिशाओं को प्रकाशित कर रखा है। इनका कंठ इन्द्रनील-मणिजटित आभूषण की प्रभा से दमक रहा है। इनके अधर कुन्दरू की तरह लाल हैं, कमर पतली और समस्त अंग साँचे में ढले हुए से हैं ॥२९॥

सीतां पद्मपलाशाक्षीं मन्मथस्य रतिं यथा ।
इष्टां सर्वस्य जगतः पूर्णचन्द्रप्रभामिव ॥ ३० ॥

यह कमलनयनी सीता मानों साक्षात् मदन की स्त्री रति अथवा पूर्णिमा के चन्द्र की चाँदनी की तरह सारे जगत् की इष्टदेवी हैं ॥३०॥

भूमौ सुतनुमासीनां नियतामिव तापसीम् ।
निःश्वासबहुलां भीरुं भुजगेन्द्रवधूमिव ॥ ३१ ॥

यह सुन्दर शरीर वाली माता सीता मन को वश में किये हुए तपस्विनो की तरह पृथिवी पर बैठी है और त्रस्त नागिन की तरह बार बार निःश्वास छोड़ रही है ॥३१॥

शोकजालेन महता विततेन न राजतीम् ।
संसक्तां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः ॥ ३२ ॥

बड़े भारी शोकजाल में पड़ जाने से माता सीता व पूर्ववत् शोभायमान नहीं हैं। इस समय तो यह ऐसी जान पड़ती है, मानों धुए के बोच अग्निशिखा छिपी हो ॥३२॥

तां स्मृतीमिव सन्दिग्धामृद्धिं निपतितामिव ।
विहतामिव च श्रद्धामाशां प्रतिहतामिव ॥ ३३ ॥

सोपसर्गां यथा सिद्धिं बुद्धिं सकलुषामिव ।
अभूतेनापवादेन कीर्तिं निपतितामिव ॥ ३४ ॥

वह संदिग्ध अर्थवाली स्मृति, भूतल पर गिरी हुई ऋद्धि, टूटी हुई श्रद्धा, भग्न हुई आशा, विघ्न युक्त सिद्धि, कलुषित बुद्धि और मिथ्या कलंक से भ्रष्ट हुई कीर्ति के सामान दिखाई देती हैं॥ ३३-३४ ॥

रामोपरोधव्यथितां रक्षोगणनिपीडिताम् ।
अबलां मृगशावाक्षीं वीक्षमाणां ततस्ततः ॥ ३५ ॥

राक्षस द्वारा हरे जाने पर तथा श्रीरामचन्द्र जो से मिलने में बाधा पड़ने के कारण, शोक से विकल मृगशावक नयनी यह अबला, घबरा कर चारों ओर देख रही है ॥३५॥

बाष्पाम्बुपरिपूर्णेन कृष्णवक्राक्षिपक्ष्मणा ।
वदनेनाप्रसन्नेन निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ॥ ३६ ॥

उनका मुख प्रसन्न नहीं था। उसपर आंसुओं की धारा बह रही थी और नेत्रों की पलकें काली एवं टेढ़ी दिखाई देती थीं तथा वह बार बार लंबी साँसे ले रही थीं ॥३६॥

मलपङ्कधरां दीनां मण्डनार्हाममण्डिताम् ।
प्रभां नक्षत्रराजस्य कालमेघैरिवावृताम् ॥ ३७ ॥

यह आभूषण धारण करने योग्य होने पर भी आभूषण शून्य सी हो रही है और शरीर में मैल लगा हुआ है तथा यह अत्यन्त उदास हो रही है। मानों काले मेघों से ढकी चन्द्रमा को प्रभा हो ॥३७॥

तस्य सन्दिदिहे बुद्धिः तथा सीतां निरीक्ष्य च ।
आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव ॥ ३८ ॥

इस प्रकार सीताजी को देखकर, हनुमान जी की बुद्धि वैसे ही भ्रमित में पड़ गयी, जैसे अभ्यास के आभाव में विद्या शिथिल पड़ जाती है ॥३८॥

दुःखेन बुबुधे सीतां हनुमाननलङ्कृताम् ।
संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थान्तरं गताम् ॥ ३९ ॥

हनुमान जी ने सीता को अलंकारहीन देख कर, शब्द व्युत्पत्ति से हीन अर्थान्तर प्रतिपादक वाक्य की तरह बड़ी कठिनाई से पहचाना ॥३९॥

तां समीक्षय विशालाक्षीं राजपुत्रीमनिन्दिताम् ।
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादयन् ॥ ४० ॥

अनिन्दिता, विशालाक्षी राजपुत्री सीता को देख कर, हनुमान जी ने कई कारणों के आधार पर तर्क वितर्क किया और विचारने लगे कि, क्या यही माता सीता हैं? ॥४०॥

वैदेह्या यानि चाङ्गेषु तदा रामोऽन्वकीर्तयत् ।
तान्याभरणजालानि गात्रशोभीन्यलक्षयत् ॥ ४१ ॥

सीता जी को पहचानने का मुख्य कारण यह था कि, श्रीरामचन्द्र जी ने सीता जी के शरीर पर जिन आभूषणों के होने की चर्चा की थी, वही आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥४१॥

सुकृतौ कर्णवेष्टौ च श्वदंष्ट्रौ च सुसंस्थितौ ।
मणिविद्रुमचित्राणि हस्तेष्वाभरणानि च ॥ ४२ ॥

श्यामानि चिरयुक्तत्वात् तथा संस्थानवन्ति च ।
तान्यैवेतानि मन्येऽहं यानि रामोऽन्वकीर्तयत् ॥ ४३ ॥

कानों में बहुत सुन्दर बने हुए कुण्डल और कुत्ते के दांतों की सी आकृति वाले त्रिकर्ण नामक कर्णफूल कानों की शोभा बढ़ा रहे थे और हाथों में मूंगा तथा मणियों के जड़ाऊ कँगन थे। जो बहुत दिनों से साफ न करने के कारण काले पड़ गये थे, किन्तु आकर प्रकार में वैसे ही सुशोभित थे। इन्हें देख हनुमान जी ने मन ही मन कहा कि, यह वही आभूषण हैं जिनकी चर्चा श्री रामचन्द्र जी ने की थी॥ ४२-४३॥

तत्र यान्यवहीनानि तान्यहं नोपलक्षये ।
यान्यस्या नावहीनानि तानीमानि न संशयः ॥ ४४ ॥

किन्तु श्री रामचन्द्र द्वारा बताये हुए कई आभूषण दिखाई नहीं देते, संभव है वह गिर गये हों अथवा खो गये हैं। परन्तु जो विद्यमान हैं, वह निस्सन्देह उसी प्रकार के हैं, जिनका वर्णन श्रीराम ने किया था ॥४४॥

पीतं कनकपट्टाभं स्रस्तं तद्वसनं शुभम् ।
उत्तरीयं नगासक्तं तदा दृष्टं प्लवङ्गमैः ॥ ४५ ॥

उनमें से जरी युक्त पीला वस्त्र जो पर्वत पर कर गिर पड़ा था, उसे तो वहाँ उपस्थित हम सभी वानरों ने देखा ही था ॥४५॥

भूषणानि च मुख्यानि दृष्टानि धरणीतले ।
अनयैवापविद्धानि स्वनवन्ति महान्ति च ॥ ४६ ॥

तथा अनेक उत्तम आभूषण जो पृथिवी पर गिरे हुए देखे थे और जिनके गिरने पर बड़ा झन झन शब्द हुआ था, निश्चय ही इन्हीं के द्वारा गिराये हुए थे ॥४६॥

इदं चिरगृहीतत्वाद् वसनं क्लिष्टवत्तरम् ।
तथाऽपि नूनं तद्वर्णं तथा श्रीमद्यथेतरत् ॥ ४७ ॥

हालाँकि बहुत दिनों की पहनी हुई होने के कारण इनकी ओढनी मसली हुई और मैली हो गयी है। तब भी भी उसका रंग नहीं उड़ा हैं और जो वस्त्र हमें वहाँ मिला था उसी की तरह यह भी वैसा ही कान्तिमान है ॥४७॥

इयं कनकवर्णाङ्गी रामस्य महिषी प्रिया ।
प्रणष्टापि सती यस्य मनसो न प्रणश्यति ॥ ४८ ॥

यह स्वर्ण के समान, गौर अंग वाली, श्रीराम जी की प्यारी पटरानी पतिव्रता सीता यद्यपि श्रीरामचन्द्र जी के सन्मुख नहीं हैं, तब भी श्रीराम जी के मन से दूर नहीं हुई है ॥४८॥

इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिरिह तप्यते ।
कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च ॥ ४९ ॥

यह वही हैं, जिने लिये श्रीरामचन्द्र जी इस जगत में करुणा, दया, शोक और प्रेम इन चार प्रकार के दुःख से सन्तप्त हो रहे हैं।॥४९॥

स्त्री प्रणष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः ।
पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च ॥ ५० ॥

एक स्त्री हरण हो गयी इस कारण करुणा, आश्रितजन की रक्षा नहीं कर पाए इसलिये दयालुता, भार्या का पता नहीं चलता इस कारण शोक और प्रिया का वियोग होने से प्रेम की वेदना । यह चार प्रकार के शोक श्रीरामचन्द्र जी को सता रहे हैं ॥५०॥

अस्या देव्या यथारूपमङ्गप्रत्यङ्गसौष्ठवम् ।
रामस्य च यथारूपं तस्येयमसितेक्षणा ॥ ५१ ॥

इन देवी का जैसा रूप लावण्य और अंग प्रत्यंग का सौन्दर्य है, वैसा ही श्रीरामचन्द्र जी का भी है। अतः इससे तो यह श्रीरामचन्द्र जी की प्रियतमा सीता ही जान पड़ती हैं ॥५१॥

अस्या देव्या मनस्तस्मिंस्तस्य चास्यां प्रतिष्ठितम् ।
तेनेयं स च धर्मात्मा मुहूर्तमपि जीवति ॥ ५२ ॥

इन देवी का मन श्रीरामचन्द्र जी में है और श्रीरामचन्द्र जी का मन इनमें है इसीलिये यह सीता देवी और वह धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी,

अभी तक जीवित हैं। नहीं तो यह दोनों एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते थे॥५२॥

दुष्करं कृतवान् रामो हीनो यदनया प्रभुः ।
धारयत्यात्मनो देहं न शोकेनावसीदति ॥ ५३ ॥

इनके विरह में श्रीरामचन्द्र जी महाराज का जीते रहना बड़ा ही दुष्कर कार्य है। आश्चर्य है, सीता जी के विरहजन्य-शोक से पीडित हो कर भी, श्रीरामचन्द्र जी अभी तक जीवित है; अन्यथा इनके विरहजन्य शोक से श्रीरामचन्द्र जी का नष्ट हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी ॥५३॥

दुष्करं कुरुते रामो य इमां मत्तकाशिनीम ।
बिना सीतां महाबाहुमुहूर्तमपि जीवति ॥ ५४॥

मेरी समझ में तो महाबाहु श्रीरामचन्द्र जी यह बड़ा हो दुष्कर कार्य कर रहे हैं कि, सीता जैसी अनुरागवती पत्नी के बिना वह मुहर्त भर भी जीवित रह रहे हैं ॥५४॥

एवं सीतां तदा दृष्ट्वा हृष्टः पवनसम्भवः ।
जगाम मनसा रामं प्रशशंस च तं प्रभुम् ॥ ५५ ॥

पवननन्दन ने इस प्रकार सीताजी को देखा और वह अत्यंत प्रसन्न हुए तथा मन से श्रीरामचन्द्र जी के समीप पहुँच कर उनकी स्तुति करने लगे ॥५५॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
पञ्चदशः सर्गः ।

इस प्रकार वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड
का पन्द्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ षोडशः सर्गः सोलहवाँ सर्ग ॥

सीतायाः शीलं सौन्दर्यं च मनसा प्रशस्य तां दुःखमग्नां निरीक्ष्य तदर्थं हनुमतोऽपि शोकः – हनुमान जी का सीता जी के शील और सौन्दर्य की मन ही मन सराहना करते हुए उन्हें कष्ट में देख कर स्वयं भी उनके लिए शोक करना

प्रशस्य तु प्रशस्तव्यां सीतां तां हरिपुङ्गवः ।
गुणाभिरामं रामं च पुनश्चिन्तापरोऽभवत् ॥ १ ॥

प्रशंसा करने योग्य सीता जी की प्रशंसा कर, और गुणाभिराम श्रीरामचन्द्र जी के गुणानुवादन कर, हनुमान जी फिर सोचने विचारने लगे ॥१॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणः ।
सीतामाश्रित्य तेजस्वी हनूमान् विललाप ह ॥ २ ॥

एक मुहूर्त भर कुछ सोच कर तेजस्वी हनुमान जी नेत्रों में आंसू भर और सीता जी के लिये विलाप कर मन ही मन कहने लगे ॥२॥

मान्या गुरुविनीतस्य लक्ष्मणस्य गुरुप्रिया ।
यदि सीता हि दुःखार्ता कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ३ ॥

गुरुओं द्वारा सुशिक्षित श्रीलक्ष्मण जी के ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामचन्द्र जी की पत्नी सीता, जब ऐसे कष्ट भोग रही है, तब दूसरों के विषय में कहना ही क्या है ? हा ! काल के प्रभाव का उल्लंघन करना अथवा काल के प्रभाव से बचना सर्वथा दुस्साध्य है ॥३॥

रामस्य व्यवसायज्ञा लक्ष्मणस्य च धीमतः ।
नात्यर्थं क्षुभ्यते देवी गङ्गेव जलदागमे ॥ ४ ॥

सीता जी, बुद्धिमान श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी की प्रयत्नशीलता या पराक्रम को भली भांति जानती हैं। तभी तो वर्षा कालीन गंगा जी की तरह, अन्य नदियों का जल आने पर भी यह क्षोभ को प्राप्त नहीं हो रही हैं ॥४॥

तुल्यशीलवयोवृत्तां तुल्याभिजनलक्षणाम् ।
राघवोऽऽर्हति वैदेहीं तं चेयमसितेक्षणा ॥ ५ ॥

सचमुच शील,स्वभाव, अवस्था, चरित्र, कुल और शुभ लक्षणों में सीता जी श्रीरामचन्द्र जी की भार्या होने योग्य हैं और वह इनके योग्य पति हैं।॥५॥

तां दृष्ट्वा नवहेमाभां लोककान्तामिव श्रियम् ।
जगाम मनसा रामं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥

तदनन्तर स्वर्ण की तरह दीप्तिमान तथा लक्ष्मी जी की तरह लोकानन्द दायिनी उन जानकी जी के दर्शन कर, हनुमान जी मन से श्रीरामचन्द्र जी के पास जा, कहने लगे॥६॥

अस्या हेतोर्विशालाक्ष्या हतो वाली महाबलः ।
रावणप्रतिमो वीर्ये कबन्धश्च निपातितः ॥ ७ ॥

इन विशाल लोचना सीताजी के लिये हो तो श्रीरामचन्द्र जी ने महाबलि वालि को और रावण की तरह पराक्रमी कन्ध को मारा था ॥७॥

विराधश्च हतः सङ्ख्ये राक्षसो भीमविक्रमः ।
वने रामेण विक्रम्य महेन्द्रेणेव शम्बरः ॥ ८ ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने इन्हीं के लिये युद्ध में भयंकर पराक्रमी विराध को उसी प्रकार मारा था; जिस प्रकार इन्द्र ने शंबरासुर को मारा था॥८॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
निहतानि जनस्थाने शरैरग्निशिखोपमैः ॥ ९ ॥

इन्हीं के लिये श्रीरामचन्द्र जी ने अग्निशिखा की तरह चम चमाते बाणों से जनस्थान-निवासी भयंकर कर्म करने वाले चौदह हज़ार राक्षसों को मारा था ॥९॥

खरश्च निहतः सङ्ख्ये त्रिशिराश्च निपातितः ।
दूषणश्च महातेजा रामेण विदितात्मना ॥ १० ॥

युद्ध में खर, त्रिशिरा और महातेजस्वी दूषण को, प्रसिद्ध श्रीरामचन्द्र जी ने मारा था ॥१०॥

ऐश्वर्यं वानराणां च दुर्लभं वालिपालितम् ।
अस्या निमित्ते सुग्रीवः प्राप्तवांल्लोकविश्रुतः ॥ ११ ॥

इन्हीं के कारण दुर्लभ वानरों का राज्य, जिसका पालन वालि करता था, लोकमान्य सुग्रीव प्राप्त हुआ ॥११॥

सागरश्च मयाऽऽक्रान्तः श्रीमान् नदनदीपतिः ।
अस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः पुरी चेयं निरीक्षिता ॥ १२ ॥

मैंने भी इन्हीं विशाल लोचना जानकी जी के लिये नदियों के स्वामी समुद्र फांदा और इस लंका पुरी का अवलोकन किया ॥१२॥

यदि रामः समुद्रान्तां मेदिनीं परिवर्तयेत् ।
अस्याः कृते जगच्चापि युक्तमित्येव मे मतिः ॥ १३ ॥

मेरे विचार से यदि श्रीरामचन्द्र जी इन देवी के लिये, केवल यह पृथिवी ही नहीं, बल्कि समस्त लोकों को भी उलट देते, तब भी उनका ऐसा करना उचित ही होता ॥१३॥

राज्यं वा त्रिषु लोकेषु सीता वा जनकात्मजा ।
त्रैलोक्यराज्यं सकलं सीताया नाप्नुयात् कलाम् ॥ १४ ॥

यदि त्रिलोकी के राज्य और जनकनन्दिनी की तुलना की जाय, तो त्रिलोकी का राज्य, माता सीता की एक कला के बराबर भी नहीं हो सकता ॥१४॥

इयं सा धर्मशीलस्य जनकस्य महात्मनः ।
सुता जनकराजस्य सीता भर्तृदृढव्रता ॥ १५ ॥

क्योंकि धर्मात्मा महात्मा जनक की यह पुत्री सीता, पातिव्रत धर्म के निर्वाह करने में पूर्ण दृढ हैं ॥१५॥

उत्थिता मेदिनीं भित्त्वा क्षेत्रे हलमुखक्षते ।
पद्मरेणुनिभैः कीर्णा शुभैः केदारपांसुभिः ॥ १६ ॥

जब हलकी फाल वाले हल से खेत जोता जा रहा था तब यह पृथिवी को फोड़ कर, कमल के पराग की भांति क्यारी की सुन्दर धूल में लिपटी हुई प्रकट हुई थीं थी॥१६॥

विक्रान्तस्यार्यशीलस्य संयुगेष्वनिवर्तिनः ।
स्नुषा दशरथस्यैषा ज्येष्ठा राज्ञो यशस्विनी ॥ १७ ॥

और अत्यंत पराक्रमी, श्रेष्ठ स्वभाव वाले, और युद्ध में कभी पीठ न दिखाने वाले महाराज दशरथ की महायशस्विनी ज्येष्ठ पुत्रवधू हैं ॥१७॥

धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य रामस्य विदितात्मनः ।
इयं सा दयिता भार्या राक्षसीवशमागता ॥ १८ ॥

और धर्मात्मा, कृतज्ञ तथा प्रसिद्ध पुरुष श्रीरामचन्द्र जी की यह प्यारी पत्नी, इस समय राक्षसियों के वश में पड़ी हैं ॥१८॥

सर्वान् भोगान् परित्यज्य भर्तृस्नेहबलात् कृता ।
अचिन्तयित्वा कष्टानि प्रविष्टा निर्जनं वनम् ॥ १९ ॥

अपने पति के प्रेम की वशवर्तिनी होकर, यह घर के समस्त सुख भागों को त्याग कर और वन के दुःखों की जरा भर भी परवाह न करते हुए, निर्जन वन में चली आयीं थी ॥१६॥

सन्तुष्टा फलमूलेन भर्तृशुश्रूषणापरा ।
या परां भजते प्रीतिं वनेऽपि भवने यथा ॥ २० ॥

और फल फूल खा कर सन्तुष्ट हो, अपने पति की सेवा करती हुई, वन में भी उसी प्रकार प्रसन्न रहती थीं जैसे राजमहल में रहती थीं ॥२०॥

सेयं कनकवर्णाङ्गी नित्यं सुस्मितभाषिणी ।
सहते यातनामेतामनर्थानामभागिनी ॥ २१ ॥

जिन्होंने कभी कोई विपत्ति नहीं झेली, जो सदा हँसमुख बनी रहती थीं, वही यह सवर्ण के समान वर्ण वाली सीताजी कष्ट भोग रही हैं ॥२१॥

इमां तु शीलसम्पन्नां द्रष्टुमिच्छति राघवः ।
रावणेन प्रमथितां प्रपामिव पिपासितः ॥ २२ ॥

रावण द्वारा सतायी हुई इन सुशीला जानकी को देखने के लिये श्रीरामचन्द्र जी उसी प्रकार उत्सुक हैं, जिस प्रकार प्याऊ देखने को प्यासा उत्सुक हुआ करता है।॥२२॥

अस्या नूनं पुनर्लाभाद् राघवः प्रीतिमेष्यति ।
राजा राज्यपरिभ्रष्टः पुनः प्राप्येव मेदिनीम् ॥ २३ ॥

निश्चय ही इनको पुन: प्राप्त कर श्रीरामचन्द्र जी वैसे ही प्रसन्न होंगे जैसे खोये हुए राज्य को प्राप्त कर राजा प्रसन्न होता है ॥२३॥

कामभोगैः परित्यक्ता हीना बन्धुजनेन च ।
धारयत्यात्मनो देहं तत्समागमकाङ्क्षिणी ॥ २४ ॥

माला चन्दनादि सुख भोगों से वञ्चित और बन्धुबान्धवों से रहित यह जानकी जी श्रीरामचन्द्र जी से मिलने की लालसा ही से प्राणों को धारण किये हुए हैं ॥२४॥

नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान् पुष्पफलद्रुमान् ।
एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति ॥ २५ ॥

सीता जी न तो राक्षसियों को और न फले फूले इन वृक्षों की ओर ही देखती है। यह तो एकाग्र मन से केवल श्रारामचन्द्र जी के ध्यान में ही मग्न है ॥२५॥

भर्ता नाम परं नार्या भूषणं भूषणादपि ।
एषा तु रहिता तेन भूषणार्हा न शोभते ॥ २६ ॥

क्योंकि स्त्रियों के लिये उनका पति ही आभूषण हैं अपितु आभूषणों से भी अधिक शोभा दायक है। अतः यह पति वियोग के कारणा, शोभा योग्य होने पर भी, शोभायमान प्रतीत नहीं हो रही हैं ॥२६॥

दुष्करं कुरुते रामो हीनो यदनया प्रभुः ।
धारयत्यात्मनो देहं न दुःखेनावसीदति ॥ २७ ॥

इनके पति श्रीरामचन्द्र जी इनके वियोग में भी जीवित हैं। अतः सचमुच वह भी अत्यंत दुष्कर कार्य कर रहे हैं ॥२७॥

इमाममसितकेशान्तां शतपत्रनिभेक्षणाम् ।
सुखार्हां दुःखितां ज्ञात्वा ममापि व्यथितं मनः ॥ २८ ॥

काले केशवाली, कमलनयनी और सुख भोगने योग्य इन जानकी जी को दुःखी देख कर, मेरा भी मन दुःख से व्यथित हुआ जाता है ॥२८॥

क्षितिक्षमा पुष्करसन्निभेक्षणा या रक्षिता राघवलक्ष्मणाभ्याम् ।
सा राक्षसीभिर्विकृतेक्षणाभिः संरक्ष्यते सम्प्रति वृक्षमूले ॥ २९ ॥

हा! जो पृथिवी के समान क्षमा करने वाली है और जिसकी रक्षा स्वयं श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण करते थे, आज वही कमल नयनी सीता विकट नेत्रों वाली राक्षसियों के पहरे में वृक्ष के नीचे बैठी हैं ॥२९॥

हिमहतनलिनीव नष्टशोभा व्यसनपरम्परया निपीड्यमाना ।
सहचररहितेव चक्रवाकी जनकसुता कृपणां दशां प्रपन्ना ॥३०॥

हिम (पाले) की मारी कमलिनी के सामान इनकी शोभा नष्ट हो गयी हैं, दुःखों से उत्पीड़ित हो तथा अपने सहचर से रहित चकवी की तरह, पति वियोग का कष्ट सहन करती हुई जानकीजी शोचनीय दशा को प्राप्त हुई हैं ॥३०॥

अस्या हि पुष्पावनताग्रशाखाः शोकं दृढं वै जनयन्त्यशोकाः ।
हिमव्यपायेन च शीतरश्मिरभ्युत्थितो नैकसहस्ररश्मि: ॥ ३१ ॥

फूलों के भार मे झुकी हुई अशोक वृक्ष की यह डालियाँ और वसन्त कालीन यह निर्मल और सूर्य की अपेक्षा मन्द किरणों वाला यह चन्द्रमा, इन देवी के शोक को और भी अधिक बढ़ा रहे होंगे।॥ ३१॥

इत्येवमर्थं कपिरन्ववेक्ष्य सीतेयमित्येव तु जातबुद्धिः ।
संश्रित्य तस्मिन् निषसाद वृक्षे बली हरीणामृषभस्तरस्वी ॥ ३२ ॥

बलवान कपिश्रेष्ठ हनुमान इस प्रकार मन ही मन भली भांति यह निश्चय करके कि, यही सीता जी हैं, और अपना प्रयोजन सिद्ध हुआ देख, उसी वृक्ष पर अच्छी तरह बैठ गये ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षोडशः सर्गः ।

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ सप्तदशः सर्गः सत्रहवाँ सर्ग ॥

भीषणराक्षसीभिर्वृतायाः सीताया दर्शनेन हनुमतो हर्षः – भयंकर राक्षसियों से घिरी हुई सीताजी के दर्शन से हनुमान जी का हर्षित होना

ततः कुमुदखण्डाभो निर्मलं निर्मलोदयः ।
प्रजगाम नभश्चन्द्रो हंसो नीलमिवोदकम् ॥ १ ॥

उस समय कुमुद पुष्पों की तरह श्वेत वर्ण वाले निर्मलरूप से उदित हुए चन्द्रमा स्वच्छ आकाश में, कुछ ऊपर को चढ़ आए और वैसे ही शोभित हुए, जैसे नीले जल वाली झील में हंस शोभित होता है ॥१॥

साचिव्यमिव कुर्वन् स प्रभया निर्मलप्रभः ।
चन्द्रमा रश्मिभिः शीतैः सिषेवे पवनात्मजम् ॥ २ ॥

निर्मल कान्ति वाले चन्द्रदेव, अपनी चांदनी से हनुमान जी की सहायता करते हुए, उनको अपनी शीतल किरणों से हर्षित करने लगे॥२॥

स ददर्श ततः सीतां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
शोकभारैरिव न्यस्तां भारैर्नावमिवाम्भसि ॥ ३ ॥

हनुमान जी ने उस चांदनी में चन्द्रमुखी सीताजी को देखा। उस समय सीता की दशा शोकवश ऐसी हो रही थी; जैसी अधिक बोझ से लदी हुई नाव की जल में होती है ॥३॥

दिदृक्षमाणो वैदेहीं हनुमान् मारुतात्मजः ।
स ददर्शाविदूरस्था राक्षसीर्घोरदर्शनाः ॥ ४ ॥

जानकीजी को देखते हुए पवननन्दन हनुमान जी को दृष्टि भयंकर दर्शन वाली उन राक्षसियों पर पड़ी, जो सीता जी के समीप बैठी हुई थीं॥४॥

एकाक्षीमेककर्णां च कर्णप्रावरणां तथा ।
अकर्णां शङ्कुकर्णां च मस्तकोच्छ्वासनासिकाम् ॥ ५ ॥

अतिकायोत्तमाङ्गीं च तनुदीर्घशिरोधराम् ।
ध्वस्तकेशीं तथाकेशीं केशकम्बलधारिणीम् ॥ ६ ॥

उन राक्षसियों में कोई एक आँख वाली, कोई एक कान वाली, कोई बहुत बड़े कानों वाली, किसी के दोनों कानों से विहीन और किसी के कान ऐसे दिखाई देते थे की मानो खूंटे गड़े हों। किसी की नाक मस्तक पर स्थित थी और वह मस्तक पर स्थित नाक से सांस लेती हुई वहाँ बैठो थी। उनमें से किसी के शरीर का ऊपरी भाग बहुत बड़ा था, किसी की गर्दन पतली और लंबी थी, किसी के सिर पर थोड़े बाल थे और किसी के सिर पर बाल उगे हो नहीं थे। किसी के शरीर पर इतने रोम थे कि, वह ऐसी जान पड़ती थी, मानों काला कंबल ओढ़े हुए हो ॥५-६॥

लम्बकर्णललाटां च लम्बोदरपयोधराम् ।
लम्बोष्ठीं चुबुकोष्ठीं च लम्बास्यां लम्बजानुकाम् ॥ ७ ॥

किसी के लंबे लंबे कान और लंबा ललाट था और किसी के लम्बे पेट और लंबे पयोधर थे। किसी के लंबे होंठ अत्यधिक लम्बे होने के कारण लटक रहे थें तो किसी के ठोड़ी तक लटक रहे थे, कोई लंबे मुख वाली थी और कोई लंबी जांघों वाली थी ॥७॥

ह्रस्वां दीर्घां तथा कुब्जां विकटां वामनां तथा ।
करालां भुग्नवक्त्रां च पिङ्गाक्षीं विकृताननाम् ॥ ८ ॥

कोई नाटी, कोई लंबी, कोई कुबड़ी, कोई विकटाकार, कोई बौनी, कोई भयंकर रूप वाली, कोई टेढ़े मुख वाली, कोई पीले नेत्रों वाली और कोई विकृत मुख वाली थी ॥८॥

विकृताः पिङ्गलाः कालीः क्रोधनाः कलहप्रियाः ।
कालायसमहाशूलकूटमुद्गरधारिणीः ॥ ९ ॥

कोई टेढ़े मेढ़े अंगों वाली, कोई पीली, कोई काली, कोई सदा क्रुद्ध रहने वाली और कोई कलहप्रिया थी। उनमें कोई लोहे का बड़ा शूल और कोई कांटेदार मुगदर हाथ में लिये हुए थी॥९॥

वराहमृगशार्दूलमहिषाजशिवामुखाः ।
गजोष्ट्रहयपादाश्च निखातशिरसोऽपराः ॥ १० ॥

किसी का मुख शूकर जैसा, किसी का हिरन जैसा, किसी का सिंह जैसा, किसी का भैंसे जैसा, किसी का बकरी जैसा और किसी का स्यारिन जैसा था। किसी के पैर हाथी जैसे, किसी के ऊँट जैसे और किसी के घोड़े जैसे थे। किसी किसी का सिर माथे में घुसा हुआ था ॥१०॥

एकहस्तैकपादाश्च खरकर्ण्यश्वकर्णिकाः ।
गोकर्णीर्हस्तिकर्णीश्च हरिकर्णीस्तथापराः ॥ ११ ॥

कोई एक हाथ और कोई एक पैर वाली थी। किसी के कान गधे जैसे, किसी के घोड़े जैसे, किसी के गाय जैसे, किसी के हाथी जैसे, तथा किसी के बन्दर जैसे थे ॥११॥

अनासा अतिनासाश्च तिर्यङ्नासा अनासिकाः ।
गजसन्निभनासाश्च ललाटोच्छवासनासिकाः ॥ १२ ॥

किसी के नाक ही नहीं थी, किसी के नाक तो थी; किन्तु वह बहुत बड़ी थी। किसी की नाक टेढ़ी थी और किसी की विशेष रूप की नासिका थी। किसी की नाक हाथी की सूंड जैसी और किसी की नाक उसके ललाट में थी जिससे वह सांस लेती थीं ॥१२॥

हस्तिपादा महापादा गोपादाः पादचूलिकाः ।
अतिमात्रशिरोग्रीवा अतिमात्रकुचोदरीः ॥ १३ ॥

किसी के हाथी जैसे पैर थे, किसी के गाय जैसे पैर थे, किसी के बड़े बड़े पैर थें और किसी के पैरों पर चोटी जैसे केशों का समूह था। किसी की गर्दन और सिर ही देख पड़ते थे और किसी के पेट और स्तन ही स्तन दिखाई देते थे ॥१३॥

अतिमात्रास्यनेत्राश्च दीर्घजिह्वाननास्तथा ।
अजामुखीर्हस्तिमुखीर्गोमुखीः सूकरीमुखीः ॥ १४ ॥

किसी के बड़ा मुख और किसी के बड़े बड़े नेत्र थे और किसी की लंबी जीभ और लंबे नख थे। कोई बकरे के मुख वाली, कोई हाथी के मुख वाली, कोई गौ के मुख वाली और कोई शूकरी जैसे मुख वाली थी ॥ १४॥

हयोष्ट्रखरवक्त्राश्च राक्षसीर्घोरदर्शनाः ।
शूलमुद्गरहस्ताश्च क्रोधनाः कलहप्रियाः ॥ १५ ॥

किसी का मुख घोड़े जैसा, किसी का ऊँट जैसा और किसी का गधे जैसा था। वह समस्त राक्षसी बड़े भयंकर रूपवाली थीं। उनके हाथों में शूल और मुगदर थे तथा वे बड़ी गुस्सैल और झगड़ा करने वाली थीं ॥१५॥

कराला धूम्रकेशीन्यो राक्षसीर्विकृताननाः ।
पिबन्ति सततं पानं सुरामांससदाप्रियाः ॥ १६ ॥

वह भयंकर और धुंए के समान केशवाली, तथा भयंकर मुख वाली राक्षसियों थीं। वह सदा शराब पिया करती थीं। क्योंकि उनको शराब पीना और मांस खाना अत्यंत प्रिय था ॥१६॥

मांसशोणितदिग्धाङ्गीर्मांसशोणितभोजनाः ।
ता ददर्श कपिश्रेष्ठो रोमहर्षणदर्शनाः ॥ १७ ॥

उनके शरीर में मांस और रुधिर सना हुआ था, क्योंकि वे रुधिर पीती और मांस खाया करती थीं। उनको देखने से देखने वाले के शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते थे। ऐसी राक्षसियों को हनुमान जी ने देखा ॥१७॥

स्कन्धवन्तमुपासीनाः परिवार्य वनस्पतिम् ।
तस्याधस्ताच्च तां देवीं राजपुत्रीमनिन्दिताम् ॥ १८ ॥

वह सभी, उस सघन वृक्ष को घेरे हुए बैठी थीं, जिसके नोचे सुन्दरी राजपुत्री सीता जी बैठी हुई थीं ॥१८॥

लक्षयामास लक्ष्मीवान् हनुमाञ्जनकात्मजाम् ।
निष्प्रभां शोकसन्तप्तां मलसङ्कुलमूर्धजाम् ॥ १९ ॥

हनुमान जी ने जनकनन्दिनी को देखा कि, वह प्रभाहीन हो रही हैं और शोक से सन्तप्त हैं तथा उनके सिर के बाल मैल से चीकट हो रहे हैं ॥१९॥

क्षीणपुण्यां च्युतां भूमौ तारां निपतितामिव ।
चारित्रव्यपदेशाढ्यां भर्तृदर्शनदुर्गताम् ॥ २० ॥

मानों पुण्य क्षीण जो जाने पर कोई तारा स्वर्ग से टूटकर पृथिवी पर गिरा पड़ा हो, उसी प्रकार सीता जी भी कांतिहीन प्रतीत हो रही हैं। सीता जी एक प्रसिद्ध पतिव्रता स्त्री हैं। परन्तु इस समय इनको अपने पति का दर्शन दुर्लभ हो रहा है ॥२०॥

भूषणैरुत्तमैर्हीनां भर्तृवात्सल्यभूषणाम् ।
राक्षसाधिपसंरुद्धां बन्धुभिश्च विनाकृताम् ॥ २१ ॥

यद्यपि उनके अंगों में उत्तम आभूषण नहीं है ; तब भी वह पति प्रेम रूपी आभूषण से भूषित हैं और बन्धुजनों से रहित वह वह रावण के यहाँ नजरबन्द हैं ॥२१॥

वियूथां सिंहसंरुद्धां बद्धां गजवधूमिव ।
चन्द्ररेखां पयोदान्ते शारदाभ्रैरिवावृताम् ॥ २२ ॥

उस समय जानकी जी ऐसी जान पड़ती थीं, मानों अपने झुण्ड से छूटी और बंधी हुई हथिनी, सिंह के चंगुल में फंस गयी है। अथवा मानों वर्षा ऋतु के अन्त में, शरद ऋतु के श्वेत बादलों से घिरी हुई चन्द्र की चांदनी के समान प्रतीत हो रही हैं ॥२२॥

क्लिष्टरूपामसंस्पर्शादयुक्तामिव वल्लकीम् ।
स तां भर्तृहिते युक्तामयुक्तां रक्षसां वशे ॥ २३ ॥

उबटनादि न लगाने से, वह मानों बहुत दिनों से स्पर्श से वंचित वीणा की तरह मलिन हो रही हैं। जो सीता जी अपने पति के पास रहने योग्य हैं; वह आज राक्षसियों के करकटाक्ष का लक्ष्य बनी हुई हैं अथवा राक्षसियों के पहरे में हैं ॥२३॥

अशोकवनिकामध्ये शोकसागरमाप्लुताम् ।
ताभिः परिवृतां तत्र सग्रहामिव रोहिणीम् ॥ २४ ॥

अशोकवाटिका में सीताजी, मानों शोकसागर में डूब कर, मंगल ग्रह से ग्रसित रोहिणी की तरह, उन राक्षसियों से घिरी हैं ॥२४ ॥

दद‍र्श हनुमांस्तत्र लतामकुसुमामिव ।
सा मलेन च दिग्धाङ्गी वपुषा चाप्यलङ्कृता ॥ २५ ॥

हनुमान जी ने अशोकवाटिका में पुष्पहीन लता की तरह, सीता जी को शरीर में मैल लपेटे और श्रृंगार रहित देखा ॥२५॥

मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति च न भाति च ।
मलिनेन तु वस्त्रेण परिक्लिष्टेन भामिनीम् ॥ २६ ॥

संवृतां मृगशावाक्षीं ददर्श हनुमान् कपिः ।
तां देवीं दीनवदनामदीनां भर्तृतेजसा ॥ २७ ॥

सुन्दर होने पर भी सीता जी कीचड़ में सनी हुई नलिनी की तरह, शोभाहीन हो रही थीं। हनुमान जी ने देखा कि, मृगनयनी सीता जी अपने शरीर को एक जीर्ण और मैले कुचैले वस्त्र से ढके हुए हैं। यद्यपि सीता जी इस समय उदास थी तथापि वे श्रीराम चन्द्र जी के बल पराक्रम और तेज का स्मरण कर उदास दिखाई नहीं देती थीं ॥२६-२७॥

रक्षितां स्वेन शीलेन सीतामसितलोचनाम् ।
तां दृष्ट्वा हनुमान् सीतां मृगशावनिभेक्षणाम् ॥ २८ ॥

काले काले नेत्रों वाली सोता जी अपने शील स्वभाव से स्वयं अपने पातिव्रत धर्म की रक्षा कर रही थीं। उन मृगशावकनयनी सीता जी को हनुमान जी ने देखा ॥२८॥

मृगकन्यामिव त्रस्तां वीक्षमाणां समन्ततः ।
दहन्तीमिव निःश्वासैर्वृक्षान् पल्लवधारिणः ॥ २९ ॥

वह मृग के बच्चे की भांति भयभीत नयनो से, चारों ओर देख रही थीं और अपने निःश्वासों से मानों आस पास के पल्लव धारी वृक्षों को भस्म किये डालती थीं ॥२९॥

संघातमिव शोकानां दुःखस्योर्मिमिवोत्थिताम् ।
तां क्षमां सुविभक्ताङ्गीं विनाभरणशोभिनीम् ॥ ३० ॥

प्रहर्षमतुलं लेभे मारुतिः प्रेक्ष्य मैथिलीम् ।
हर्षजानि च सोऽश्रूणि तां दृष्ट्वा मदिरेक्षणाम् ।
मुमुचे हनुमांस्तत्र नमश्चक्रे च राघवम् ॥ ३१ ॥

उस समय हनुमान जी को ऐसा लगा मानों शोक सागर से दु:ख रुपी लहरें उठ रही हों। क्षमा की साक्षात् मूर्ति सुन्दर अंगों वाली तथा बिना आभूषणों के भी शोभायमान मिथिलेश कुमारी जानकी जी को देखकर, हनुमान जी बहुत प्रसन्न हुए। उन श्रेष्ठ नेत्रों वाली जानकी जी

को देखकर, हनुमान जी की आँखों से आनन्द के आसूं बहाने लगे और उन्होंने मन से श्रीरामचन्द्र जी को प्रणाम किया ॥३०-३१॥

नमस्कृत्वाथ रामाय लक्ष्मणाय च वीर्यवान् ।
सीतादर्शनसंहृष्टो हनुमान् संवृतोऽभवत् ॥ ३२ ॥

महाबली हनुमान जी ने श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी को मन से प्रणाम किया और सीता के दर्शन पाने से अत्यन्त प्रसन्न होकर, वह उसी वृक्ष के पत्तों में छिप कर बैठ गये ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
सप्तदशः सर्गः ।

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का सत्तरहवां सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ अष्टादशः सर्गः अठारहवाँ सर्ग ॥

स्वकीयस्त्रीभिः परिवृतस्य रावणस्य अशोकवनिकायां आगमनं हनुमता तस्य दर्शनं च – अपनी स्त्रियों से घिरे हुए रावण का अशोक वाटिका में आगमन और हनुमान जी का उसे देखना

-

तथा विप्रेक्ष्यमाणस्य वनं पुष्पितपादपम् ।
विचिन्वतश्च वैदेहीं किंचिच्छेषा निशाभवत् ॥ १ ॥

उस पुष्पित वृक्षों से युक्त अशोकवाटिका को देखते देखते और सीताजी को खोजते हुए अब थोड़ी ही रात शेष रह गयी अर्थात रात्रि का केवल एक प्रहर शेष रह गया ॥१॥

षडङ्गवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम् ।
शुश्राव ब्रह्मघोषान् स विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम् ॥ २ ॥

रात्रि के उस अंतिम प्रहर में षडवेदों के ज्ञाता और उत्तमोत्तम यज्ञों के करने वाले ब्राह्मण राक्षसों के वेदपाठ की ध्वनि हनुमान जी ने सुनी ॥२॥

अथ मङ्गलवादित्रैः शब्दैः श्रोत्रमनोहरैः ।
प्राबोध्यत महाबाहुर्दशग्रीवो महाबलः ॥ ३ ॥

तदनन्तर मन्त्र सूचक बाजों की कर्ण मधुर ध्वनि के साथ महाबली एवं महावीर रावण जगाया गया ॥३॥

विबुध्य तु महाभागो राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
स्रस्तमाल्याम्बरधरो वैदेहीमन्वचिन्तयत् ॥ ४ ॥

यथासमय प्रतापी रावण सो कर उठ बैठा और सोते समय खिसकी हुई अपनी मालाओं और वस्त्रों को संभालता हुआ सीताजी के विषय में चिन्ता करने लगा ॥४॥

भृशं नियुक्तस्तस्यां च मदनेन मदोत्कटः ।
न तु तं राक्षसः कामं शशाकात्मनि गूहितुम् ॥ ५ ॥

क्योंकि वह कामवेग के वश होकर सीता जी में अत्यंत आसक्त हो गया था और वह उस कामवेग को किसी प्रकार भी रोकने में असमर्थ था ॥५॥

स सर्वाभरणैर्युक्तो बिभ्रच्छ्रियमनुत्तमाम् ।
तां नगैर्विविधैर्जुष्टां सर्वपुष्पफलोपगैः ॥ ६ ॥

वह रावण समस्त आभूषणों को पहनने के कारण अपूर्व शोभा धारण कर, उस सर्वऋतु में फलने फूलने वाले वृक्षों से युक्त ॥६॥

वृतां पुष्करिणीभिश्च नानापुष्पोपशोभिताम् ।
सदा मदैश्च विहगैर्विचित्रां परमाद्भुतैः ॥ ७ ॥

तथा अनेक पुष्करिणियों से तथा विविध प्रकार के पुष्पों से शोभित, तथा परम अद्भुत एवं मतवाले पक्षियों से कूज्जित ॥७॥

ईहामृगैश्च विविधैर्वृतां दृष्टिमनोहरैः ।
वीथीः सम्प्रेक्षमाणश्च मणिकाञ्चनतोरणाम् ॥ ८ ॥

तथा देखने में सुन्दर अनेक प्रकार के बनावटी मृगों से शोभित तथा मणि और काञ्चन के तोरणों तथा उद्यान-सरोवरों को देखता हुआ ॥८॥

नानामृगगणाकीर्णां फलैः प्रपतितैर्वृताम् ।
अशोकवनिकामेव प्राविशत् सन्ततद्रुमाम् ॥ ९ ॥

तथा अनेक प्रकार के वन्य जीव-जन्तुओं से युक्त, टपके हुए पके फलों से व्याप्त, सघन वृक्षों से पूर्ण, उस अशोकवाटिका में पहुँचा। ॥९॥

अङ्गनाः शतमात्रं तु तं व्रजन्तमनुव्रजन् ।
महेन्द्रमिव पौलस्त्यं देवगन्धर्वयोषितः ॥ १० ॥

उसके पीछे पीछे सैकड़ों स्त्रियां भी वैसे ही चली जाती थों जैसे देवता और गन्धर्वो की स्त्रियां इन्द्र के पीछे चलती हैं ॥१०॥

दीपिकाः काञ्चनीः काश्चिज्जगृहुस्तत्र योषितः ।
वालव्यजनहस्ताश्च तालवृन्तानि चापराः ॥ ११ ॥

किसी स्त्री के हाथ में सुवर्ण के दीपक किसी के हाथ में चंवर और किसी के हाथ में ताड़ के पंखे थे ॥११॥

काञ्चनैश्चैव भृङ्गारैर्जह्रुः सलिलमग्रतः ।
मण्डलाग्रा बृसीश्चैव गृह्यान्याः पृष्ठतो ययुः ॥ १२ ॥

कोई जल से भरी सुवर्ण की झारियां हाथ में लिये हुए भागे चलती थी, और कोई गोल आसन लिये हुए पीछे चली जाती थो ॥१२॥

काचिद् रत्नमयीं पात्रीं पूर्णां पानस्य भ्राजतीम् ।
दक्षिणा दक्षिणेनैव तदा जग्राह पाणिना ॥ १३ ॥

कोई कोई चतुर स्त्री दहिने हाथ में मदिरा से भरी साफ रत्नजटित सुराही लिये हुए चली जाती थी ॥१३॥

राजहंसप्रतीकाशं छत्रं पूर्णशशिप्रभम् ।
सौवर्णदण्डमपरा गृहीत्वा पृष्ठतो ययौ ॥ १४ ॥

कोई राजहंस की तरह सफेद और पूर्णमासी के चन्द्रमा की तरह गोल और सोने की डंडी वाला छत्र रावण के ऊपर ताने उसके पीछे जा रही थी ॥१४॥

निद्रामदपरीताक्ष्यो रावणस्योत्तमस्त्रियः ।
अनुजग्मुः पतिं वीरं घनं विद्युल्लता इव ॥ १५ ॥

नींद और मदिरा के नशे से अलसाई रावण की सुंदरियां, उसी प्रकार अपने वीर पति के पोछे चली जा रही थी, जिस प्रकार मेघ के पीछे बिजली चमकती जाती है ॥१५॥

व्याविद्धहारकेयूराः समामृदितवर्णकाः ।
समागलितकेशान्ताः सस्वेदवदनास्तथा ॥ १६ ॥

उन स्त्रियों की कण्ठमालाएं और बाजूबंद अपने अपने स्थानों से कुछ कुछ खिसक गये थे और उलट पुलट गये थे। उनमें से अनेकों के अंगराग छूट गये थे उनके सिर की चोटियाँ खुल गयीं थीं और उनके मुखों पर पसीने की बूंदे झलक रही थीं ॥१६॥

घूर्णन्त्यो मदशेषेण निद्रया च शुभाननाः ।

स्वेदक्लिष्टाङ्गकुसुमाः समाल्याकुलमूर्धजाः ॥ १७ ॥

वह सुन्दरी स्त्रियां नशे और नींद की खुमारी से डगमगाती पसीने से भीगे फूलों को धारण किये तथा जूड़ों में फूल सजाये हुए थीं ॥१७॥

प्रयान्तं नैर्ऋतपतिं नार्यो मदिरलोचनाः ।
बहुमानाच्च कामाच्च प्रियभार्यास्तमन्वयुः ॥ १८ ॥

इस प्रकार मदमाते नैनों वाली वह सब स्त्रियाँ, अति आदर के साथ और कामपीड़ित हो, अपने पति के पीछे पीछे चली जाती थीं॥१८॥

स च कामपराधीनः पतिस्तासां महाबलः ।
सीतासक्तमना मन्दो मन्दाञ्चितगतिर्बभौ ॥ १९ ॥

उनका वह महाबलि और काम से पीड़ित पति रावण, सीताजी पर आसक्त था, तथा नशे में चूर, झूमता हुआ मंद गति से आगे आगे चल रहा था ॥१९॥

ततः काञ्चीनिनादं च नूपुराणां च निस्वनम् ।
शुश्राव परमस्त्रीणां स कपिर्मारुतनन्दनः ॥ २० ॥

पवनसुत हनुमान जी ने उन सुन्दरी स्त्रियों की करधनियों और नूपुरों की झंकार को सुना ॥२०॥

तं चाप्रतिमकर्माणमचिन्त्यबलपौरुषम् ।

द्वारदेशमनुप्राप्तं ददर्श हनुमान् कपिः ॥ २१ ॥

हनुमान जी ने देखा कि, वह अनुपम कर्मा, अचिन्त्य एवं असाधारण बल और पुरुषार्थ से युक्त रावण, उस वाटिका के द्वार पर आ पहुँचा है ।॥२१॥

दीपिकाभिरनेकाभिः समन्तादवभासितम् ।
गन्धतैलावसिक्ताभिर्ध्रियमाणाभिरग्रतः ॥ २२ ॥

आगे आगे सुगन्धित तेल से पूर्ण और अनेक स्त्रियों द्वारा धारण की गई मशालों के प्रकाश में रावण का समस्त शरीर चारों ओर से प्रकाशित हो, भली भांति दिखाई दे रहा था ॥२२॥

कामदर्पमदैर्युक्तं जिह्मताम्रायतेक्षणम् ।
समक्षमिव कन्दर्पमपविद्धशरासनम् ॥ २३ ॥

उस समय रावण काम, दर्प और मद से नशे में चूर था और उसके विशाल कुटिल नेत्र लाल हो रहे थे। उस समय वह ऐसा दिखाई देता था; मानों साक्षात् कामदेव धनुष को दूर फेंक कर, सामने चला आता हो ॥२३॥

मथितामृतफेनाभमरजोवस्त्रमुत्तमम् ।
सपुष्पमवकर्षन्तं विमुक्तं सक्तमङ्गदे ॥ २४ ॥

मथे हुए अमृत के झागों की तरह अति उजला तथा अति उत्तम वस्त्र, जो उसके बाजूबन्द में खिसक कर अटक गया था, साधारणतया उसे खींच कर उसने यथास्थान रख लिया था ॥२४॥

तं पत्रविटपे लीनः पत्रपुष्पशतावृतः ।
समीपमुपसंक्रान्तं विज्ञातुमुपचक्रमे ॥ २५ ॥

रावण जैसे जैसे समीप आता जाता था, वैसे वैसे हनुमान जी उस सघन पेड़ के फूल पत्तों में अपने शरीर को छिपाते जाते थे और छिपकर ही वह यह भी जानना चाहते थे कि, सामने आता हुआ व्यक्ति कौन है ॥२५॥

अवेक्षमाणस्तु ततो ददर्श कपिकुञ्जरः ।
रूपयौवनसम्पन्ना रावणस्य वरस्त्रियः ॥ २६ ॥

देखते देखते हनुमान जी ने प्रथम रावण को श्रेष्ठ और रूपवती युवती स्त्रियों को देखा ॥२६॥

ताभिः परिवृतो राजा सुरूपाभिर्महायशाः ।
तन्मृगद्विजसङ्घुष्टं प्रविष्टः प्रमदावनम् ॥ २७ ॥

उन अत्यन्त रूपवती सुन्दरियों के साथ महायशस्वी राक्षस राज, मृगों और पत्तियों से युक्त उस प्रमोदवन में पहुँचा ॥ २७॥

क्षीबो विचित्राभरणः शङ्कुकर्णो महाबलः ।

तेन विश्रवसः पुत्रः स दृष्टो राक्षसाधिपः ॥ २८ ॥

उस समय महाबलि विश्रवा के पुत्र एवं राक्षसराज रावण को हनुमान जी ने देखा जोकि उन्मत्त, मूल्यवान गहनों को धारण किये हुए और गर्व से कानों को स्तब्ध किये हुए था ॥२८॥

वृतः परमनारीभिर्ताराभिरिव चन्द्रमाः ।
तं ददर्श महातेजास्तेजोवन्तं महाकपिः ॥ २९ ॥

रावणोऽयं महाबाहुरिति सञ्चिन्त्य वानरः ।
अवप्लुतो महातेजा हनुमान् मारुतात्मजः ॥ ३० ॥

परम रूपवती स्त्रियों से घिरे हुए उस महातेजस्वी राक्षसराज रावण को, ताराओं से घिरे चन्द्रमा की तरह शोभित देखकर, वृक्ष पर चढ़े हुए पवननन्दन हनुमान जी ने सोचा कि, यह महाबाहु रावण ही है ॥ २९-३०॥

स तथाप्युग्रतेजाः स निर्धूतस्तस्य तेजसा ।
पत्रे गुह्यान्तरे सक्तो मतिमान् संवृतोऽभवत् ॥ ३१ ॥

यद्यपि हनुमान जी स्वयं भी अत्यन्त तेजस्वी थे, तथापि रावण के तेज के सामने उनका तेज भी दब गया और वृक्ष की एक डाली पर उसके सघन पत्तों में हनुमान जी ने अपने आप को छिपा लिया ॥३१॥

स तामसितकेशान्तां सुश्रोणीं संहतस्तनीम् ।
दिदृक्षुरसितापाङ्गीमुपावर्तत रावणः ॥ ३२ ॥

काले केशों वाली, पतली कमर वाली, उन्नत पयोधरों और काले नेत्रों वाली जानकीजी को देखने के लिये रावण उनके समीप गया ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे अष्टादशः सर्गः ।

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ एकोनविंशः सर्गः उन्नीसवाँ सर्ग ॥

रावणं दृष्ट्वा दुःखभयचिन्तासु मग्नायाः सीताया अवस्था – रावण को देख कर दुःख, भय और चिंता में डूबी हुई सीता जी की अवस्था का वर्णन

तस्मिन्नेव ततः काले राजपुत्री त्वनिन्दिता ।
रूपयौवनसम्पन्नं भूषणोत्तमभूषितम् ॥ १ ॥

ततो दृष्ट्वैव वैदेही रावणं राक्षसाधिपम् ।
प्रावेपत वरारोहा प्रवाते कदली यथा ॥ २ ॥

उस समय अनिन्दिता सुन्दरी राजपुत्री सीता, रूपयौवन सम्पन्न और उत्तम भूषणों से भूषित राक्षसराज रावण को देख, मारे डर के केले के पत्ते की तरह काँपने लगी ॥१-२॥

ऊरुभ्यामुदरं छाद्य बाहुभ्यां च पयोधरौ ।

उपविष्टा विशालाक्षी रुदती वरवर्णिनी ॥ ३ ॥

विशाल लोचना और सुन्दर रंग वाली सीताजी दोनों जांघों से अपने पेट को तथा बाहों से अपने स्तनों को को ढक कर बैठी हुई, राने लगी ॥३॥

दशग्रीवस्तु वैदेहीं रक्षितां राक्षसीगणैः ।
ददर्श सीतां दुःखार्तां नावं सन्नामिवार्णवे ॥ ४ ॥

रावण ने देखा कि, राक्षसियों के पहरे में सीता अत्यन्त दुःखी है और, समुद्र की लहरों से झोंका खाती हुई नाव की तरह डगमगा रही हैं ॥४॥

असंवृतायामासीनां धरण्यां संशितव्रताम् ।
छिन्नां प्रपतितां भूमौ शाखामिव वनस्पतेः ॥ ५ ॥

वहां बिना बिछौने के भूमि पर बैठी हुई तथा दृढ व्रत धारण किये हुए सीता जी, भूमि पर पडी वृक्ष की कटी डाली की तरह दिखाई देतीं थी।॥५॥

मलमण्डनदिग्धाङ्गीं मण्डनार्हाममण्डनाम् ।
मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति न विभाति च ॥ ६ ॥

सीताजी के अंग, जो भूषणों से भूषित होने योग्य थे, उन सभी अंगों पर मैल चढ़ा हुआ था। वह इस समय कीचड़ से लिपटी हुई कुमुदनी की तरह दिखाई देती थी॥६॥

समीपं राजसिंहस्य रामस्य विदितात्मनः ।
सङ्कल्पहयसंयुक्तैर्यान्तीमिव मनोरथैः ॥ ७ ॥

मानों उस समय वह मनोरथों के संकल्प रूपी घोड़ों पर सवार होकर, प्रसिद्ध राजसिंह श्रीरामचन्द्र जी के पास जा रही थी॥७॥

शुष्यन्तीं रुदतीमेकां ध्यानशोकपरायणाम् ।
दुःखस्यान्तमपश्यन्तीं रामां राममनुव्रताम् ॥ ८ ॥

श्री रामचन्द्र जी का ध्यान करते करते हुए और शोक से विकल होने के कारण उसका शरीर सूख कर काँटा हो रहा था। वह लगातार रो रही थीं। उनके दुःख रूपी सागर का अंत दिखाई नहीं देता था तथा वह केवल श्री राम ही का ध्यान लगाये हुए थीं ॥८॥

चेष्टमानामथाविष्टां पन्नगेन्द्रवधूमिव ।
धूप्यमानां ग्रहेणेव रोहिणीं धूमकेतुना ॥ ९ ॥

वह मन्त्रमुग्ध सर्पिणी की तरह छटपटा रही थी, मानों रोहिणी धूमकेतु के ताप से सन्तत हो रही हो ॥९॥

वृत्तशीलकुले जातामाचारवति धार्मिके ।
पुनःसंस्कारमापन्नां जातामिव च दुष्कुले ॥ १० ॥

दृढ़-स्वभाव-सम्पन्न, समयानुकूल-आचारवान् और यज्ञादि धर्मानुष्ठान प्रधान-कुल में उत्पन होकर तथा उस कुल के योग्य ही विवाहसंस्कार से संस्कारित हो कर भी, इस समय वह लंकापुरी में रहने के कारण, राक्षसकुलोत्पन्न जैसी दिखाई दे रहीं थीं ॥१०॥

सन्नामिव महाकीर्तिं श्रधामिव विमानिताम् ।
प्रज्ञामिव परिक्षीणां आशां प्रतिहतामिव ॥ ११ ॥

उस समय श्री सीता जी ऐसी दिखाई देती थीं, जैसे क्षीण हुई विशाल कीर्ति, तिरस्कृत हुई श्रद्धा, सर्वथा ह्रास को प्राप्त हुई बुद्धि अथवा टूटी हुई आशा ॥११॥

आयतीमिव विध्वस्तां आज्ञां प्रतिहतामिव ।
दीप्तामिव दिशं काले पूजामपहतामिव ॥ १२ ॥

नष्ट हुए भविष्य, उल्लङ्घन की हुई राजाज्ञा, उल्का पात के समय जलती हुई दिशाएँ, अथवा नष्ट हुई पूजा की सामग्री ॥१२॥

पद्मिनीमिव विध्वस्तां हतशूरां चमूमिव ।
प्रभामिव तमोध्वस्तामुपक्षीणामिवापगाम् ॥ १३ ॥

अथवा तुषार पात से जीर्ण शीर्ण हुई कुमुदनी, नष्ट शूरों की सेना, अन्धकार से नष्ट हुई प्रभा, सूखी हुई नदी ॥१३॥

वेदीमिव परामृष्टां शान्तामग्निशिखामिव ।
पौर्णमासीमिव निशां तमोग्रस्तेन्दुमण्डलाम् ॥ १४ ॥

अथवा अस्पृश्यों के स्पर्श द्वारा भ्रष्ट हुई यज्ञवेदी, बुझी हुई अग्निशिखा, राहुग्रसित चन्द्रमण्डल से युक्त पूर्णिमा की रात ॥१४॥

उत्कृष्टपर्णकमलां वित्रासितविहङ्गमाम् ।
हस्तिहस्तपरामृष्टामाकुलामिव पद्मिनीम् ॥ १५ ॥

अथवा टूटी हुई पंखड़ियों का कमल, भयभीत पक्षी और हाथी की सूंड़ से खलबलाई हुई कमलयुक्त पुष्करिणी ॥१५॥

पतिशोकातुरां शुष्कां नदीं विस्रावितामिव ।
परया मृजया हीनां कृष्णपक्षे निशामिव ॥ १६ ॥

सीता जी श्रीरामचन्द्र जी के वियोग-जन्य-शोक से व्याकुल हो कर इस प्रकार सूख गयी हैं, जैसे टूटे हुए बाँध की नदी जल इधर उधर बह जाने के कारण सूख गई हों। शरीर में उबटन आदि न लगाने से जानकी कृष्णपक्ष की रात्रि की तरह मलिन हो रहीं थीं ॥१६॥

सुकुमारीं सुजाताङ्गीं रत्नगर्भगृहोचिताम् ।
तप्यमानामिवोष्णेन मृणालीमचिरोद्धृताम् ॥ १७ ॥

सुकुमारी और सुन्दर अंगोंवाली एवं रत्नजटित घर में रहने योग्य जानकी जी, इस समय दुःख से सन्तप्त ऐसी कुम्हलायी हुई सी दिखाई देती थीं, जैसे हाल की उखड़ी हुई कमलिनी धूप के ताप से तप्त होकर कुम्हला गयी हो ॥ १७॥

गृहीतामालितां स्तंभे यूथपेन विनाकृताम् ।
निःश्वसन्तीं सुदुःखार्तां गजराजवधूमिव ॥ १८ ॥

जिस प्रकार हथिनी पकड़ कर खूटे में बांध दी जाती और वह अपने यूथपति के वियोग में प्रत्यन्त दुःखी होकर, बारम्बार लम्बी लम्बी साँसे लेती है, उसी प्रकार सीता जी उस समय अत्यन्त विकल होकर लम्बी लम्बी सांसे ले रही थी॥१८॥

एकया दीर्घया वेण्या शोभमानामयत्नतः ।
नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव ॥ १९ ॥

बिना सम्हाली हुई वेणी उनकी पीठ पर वैसे ही शोभायमान थी। जैसे वर्षाकाल में नीले रंग की वनश्रेणी से पृथिवी शोभित होती है ॥ १६ ॥

उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च ।
परिक्षीणां कृशां दीनां अल्पाहारां तपोधनाम् ॥ २० ॥

उपवास, शोक, चिन्ता और भय के कारण सीता जी का, शरीर बिल्कुल दुबला पतला हो रहा है। केवल जलमात्र पी कर शरीर को तपा रही है, अर्थात कष्ट दे रही हैं ॥२०॥

आयाचमानां दुःखार्तां प्राञ्जलिं देवतामिव ।
भावेन रघुमुख्यस्य दशग्रीवपराभवम् ॥ २१ ॥

और दुःख से विकल होकर, इष्टदेवता की तरह हाथ जोड़ कर, मानों रघुवंशियों में प्रधान श्रीरामचन्द्र जी से रावण के पराजय की प्रार्थना कर रही हैं ॥२१॥

समीक्षमाणां रुदतीमनिन्दितां सुपक्ष्मताम्रायतशुक्ललोचनाम् ।
अनुव्रतां राममतीव मैथिलीं प्रलोभयामास वधाय रावणः ॥ २३ ॥

निन्दारहित सीता जी रो रो कर श्रेष्ठ पलकों से युक्त, अरुण प्रान्त-भूषित, श्वेत विशाल नेत्रों से, अपनी रक्षा के लिये, इधर उधर दृष्टि डालती हुई, अपने रक्षक को देख रही थीं और रावण श्रीरामचन्द्र जी को ऐसी पतिव्रता भार्या सीता को लालच दिखला कर, मानों अपने लिये मृत्यु को आमंत्रण दे रहा था ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनविंशः सर्गः ।

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का उन्नीसवा सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ विंशः सर्गः बीसवाँ सर्ग ॥

रावणकर्तृकं सीतायाः प्रलोभनम् – रावण द्वारा श्री सीता जी को विविध प्रकार के प्रलोभन देना

स तां परिवृतां दीनां निरानन्दां तपस्विनीम् ।
साकारैर्मधुरैर्वाक्यैर्न्यदर्शयत रावणः ॥ १ ॥

रावण संकेतों और मधुर वचनों से, राक्षसियों से घिरी हुई दीनभाव को प्राप्त दुःखिनी और तपस्विनी सीता को लुभाने लगा॥१॥

मां दृष्ट्वा नागनासोरु गूहमाना स्तनोदरम् ।
अदर्शनमिवात्मानं भयान्नेतुं त्वमिच्छसि ॥ २ ॥

रावण ने कहा- हे सुन्दरी! तुम मुझे देख कर अपने उदर और स्तनों को ढक कर, भयभीत होकर, अपने सारे शरीर को इस प्रकार छिपा रही हो मानो अदृश्य हो जाना चाहती हो ॥२॥

कामये त्वां विशालाक्षि बहुमन्यस्व मां प्रिये ।
सर्वाङ्गगुणसपन्ने सर्वलोकमनोहरे ॥ ३ ॥

हे विशाल लोचना! हे प्रिये ! मैं तुम्हे चाहता है। अतः तुम भी मुझे विशेष आदर दो। तुम्हारे सभी अंग सुन्दर हैं; अत: तुम सब का मन हरने वाली हो ॥३॥

नेह केचिन्मनुष्या वा राक्षसाः कामरूपिणः ।
व्यपसर्पतु ते सीते भयं मत्तः समुत्थितम् ॥ ४ ॥

हे सीते ! इस समय यहाँ पर न तो कोई मनुष्य है और न कामरूपी कोई राक्षस ही उपस्थित है। फिर तुम डरती किससे हो ? यदि तुम्हे मुझसे डर लगता हो तो, इस भय को तुम त्याग दो ॥४॥

स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वथैव न संशयः ।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं संप्रमथ्य वा ॥ ५ ॥

हे भीरु ! परायी स्त्री के पास जाना अथवा पराई स्त्री को बल पूर्वक हर लाना, निस्सन्देह राक्षसों का तो यह सदा का धर्म है ॥५॥

एवं चैवमकामां त्वां न च स्प्रक्ष्यामि मैथिलि ।
कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम् ॥ ६ ॥

मिथिलेश नंदिनी ! ऐसे अवस्था में भी, यदि तुम न चाहोगी तो मैं तुम्हारा स्पर्श नहीं करूंगा। भले ही कामदेव मुझे अत्यंत प्रताड़ित करें ॥६॥

देवि नेह भयं कार्यं मयि विश्वसिहि प्रिये ।
प्रणयस्व च तत्त्वेन मैवं भूः शोकलालसा ॥ ७ ॥

हे देवि! इस विषय में तुम्हे संदेह न कर मुझ पर विश्वास करना चाहिए। हे प्रिये। मुझे तुम्हे यथार्थ प्रेमदान देना चाहिए और इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिए ॥७॥

एकवेणी अधःशय्या ध्यानं मलिनमम्बरम् ।
अस्थानेऽप्युपवासश्च नैतान्यौपयिकानि ते ॥ ८ ॥

एक वेणी धारण करना, बिना बिछौने ने नीचे भूमि पर सोना, मैले वस्त्र धारण करना और अनावश्यक उपवास करना तुमको शोभा नहीं देता ॥८॥

विचित्राणि च माल्यानि चन्दनान्यगुरूणि च ।
विविधानि च वासांसि दिव्यान्याभरणानि च ॥ ९ ॥

महार्हाणि च पानानि शयनान्यासनानि च ।
गीतं नृत्यं च वाद्यं च लभ मां प्राप्य मैथिलि ॥ १० ॥

हे मैथिली! मेरे पास रह कर, रंगबिरंगे फूलों की मालाएँ पहनों, चन्दन और अगर शरीर में लगा कर, विविध प्रकार के सुन्दर वस्त्र और गहने पहन कर, बहुमूल्य पेय, शय्या, आसन, वाच, गान और वाद्यों का सुख भोगो ॥९-१०॥

स्त्रीरत्नमसि मैवं भूः कुरु गात्रेषु भूषणम् ।
मां प्राप्य हि कथं वा स्यास्त्वमनर्हा सुविग्रहे ॥ ११ ॥

तुम स्त्रियों में एक रत्न हो, अतः ऐसा श्रृंगार हीन वेश तुमको शोभा नहीं देता अपितु तुम्हे तो अपने शरीर को अलंकृत करना चाहिए। हे सुन्दरी ! मुझे पा कर भी तुम भूषण आदि से अस्स्मानित होकर कैसे रहोगी? ॥११॥

इदं ते चारु सञ्जातं यौवनं व्यतिवर्तते ।
यदतीतं पुनर्नैति स्रोतः स्रोतस्विनामिव ॥ १२ ॥

तुम्हारा यह सुन्दर नवोदित यौवन बीता जा रहा है। यह यौवन नदी की धार की तरह है, जो एक बार बह गयी, वह फिर लौट कर नहीं आ सकती ॥१२॥

त्वां कृत्वोपरतो मन्ये रूपकर्ता स विश्वकृत् ।
न हि रूपोपमा ह्यन्या तवास्ति शुभदर्शने ॥ १३ ॥

हे सुन्दरी ! ऐसा लगता है की रूप बनाने वाले ब्रह्मा ने तुमको रचकर, फिर रचना करना ही त्याग दिया है। क्योंकि तुम्हारे समान रूपवती स्त्री और कोई नहीं दिखाई नहीं देती ॥१३॥

त्वां समासाद्य वैदेहि रूपयौवनशालिनीम् ।
कः पुनर्नातिवर्तेत साक्षादपि पितामहः ॥ १४ ॥

हे वैदेहि! तुम्हारे जैसी सुन्दरी स्त्री को पाकर ऐसा कौन ऐसा होगा, जिसका मन कुमार्ग में न जाए। और की बात ही क्या, तुम्हे देखकर तो स्वयं ब्रह्मा जो भी कुपथगामी हो जाएं ॥१४॥

यद् यत् पश्यामि ते गात्रं शीतांशुसदृशानने ।
तस्मिन् तस्मिन् पृथुश्रोणि चक्षुर्मम निबध्यते ॥ १५ ॥

हे चन्द्रमुखी ! मैं तुम्हारे शरीर के जिस अंग पर द्रष्टि डालता हूँ, उसो अंग पर मेरी आँखें अटक जाती हैं ॥१५॥

भव मैथिलि भार्या मे मोहमेतं विसर्जय ।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां ममाग्रमहिषी भव ॥ १६ ॥

सर्वासामेव भद्रं ते समग्रमहिषी भव ।
लोकेभ्यो यानि रत्नानि सम्प्रमथ्याहृतानि मे ॥ १७ ॥

तानि मे भीरु सर्वाणि राज्यं चैव ददामि ते ।

विजित्य पृथिवीं सर्वां नानानगरमालिनीम् ॥ १८ ॥

जनकाय प्रदास्यामि तव हेतोर्विलासिनि ।
नेह पश्यामि लोकेऽन्यं यो मे प्रतिबलो भवेत् ॥ १९ ॥

हे मैथिली ! तुम अब मेरी पत्नी बन जाओ और पतिव्रत के इस मोह को छोड़ दो। मैं जो इधर उधर से उत्तमोत्तम स्त्रियां लेकर आया हूँ; तुम उन सबकी मुख्य पटरानी जाओ। मैं अनेकों लोकों को जीत कर जो रत्न लाया हूँ, उन सब रत्नों को तथा अपने समस्त राज्य को मैं तुम्हे देता हूँ। हे विलासिनी ! मैं तुम्हारे लिये, अनेक नगरों से भरी यह समस्त पृथिवी जीत कर, तुम्हारे पिता जनक को दे दूंगा। मैं इस जगत में किसी ऐसे अन्य पुरुष को नहीं देखता जा मेरा सामना कर सके ॥१६-१९॥

पश्य मे सुमहद्वीर्यमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ।
असकृत् संयुगे भग्ना मया विमृदितध्वजाः ॥ २० ॥

अशक्ताः प्रत्यनीकेषु स्थातुं मम सुरासुराः ।
इच्छ मां क्रियतामद्य प्रतिकर्म तवोत्तमम् ॥ २१ ॥

तुम युद्ध में मेरा वह अतुलित बल पराक्रम को देखना जिसके आगे कोई प्रतिद्वंदी नहीं टिक सकता। युद्ध में मैंने सुर-असुरों को बारम्बार पराजित कर, उनकी ध्वजाएँ तोड़ गिरायी हैं। सुर और असुरों की सेना में मेरे सामने खड़ा रह सके, ऐसा कोई भी नहीं है। हे देवी! तुम

मुझे अब स्वीकार करो, आज तुम्हारा उत्तम श्रृंगार कराया जाए ॥२०-२१॥

सुप्रभाण्यवसज्जन्तां तवाङ्गे भूषणानि च ।
साधु पश्यामि ते रूपं सुयुक्तं प्रतिकर्मणा ॥ २२ ॥

और सुन्दर चमचमाते गहनों से तुम्हारे अंग सजाये जायें। मेरी इच्छा है कि, मैं तुम्हारे श्रृंगार किए हुए रूप को देखूं ॥२२॥

प्रतिकर्माभिसंयुक्ता दाक्षिण्येन वरानने ।
भुंक्ष्व भोगान् यथाकामं पिब भीरु रमस्व च ॥ २३ ॥

हे सुन्दरी! तुम उदारता वश मुझ पर कृपा करते हुए, अपने शरीर को अच्छी तरह भूषित करो। हे भीरु! इच्छानुसार भागों को भोग कर, पृथ्वी पर विहार करो ॥२३॥

यथेष्टं च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं वा धनानि च ।
ललस्व मयि विस्रब्धा धृष्टमाज्ञापयस्व च ॥ २४ ॥

तुम जितना चाहे उतना धन या पृथिवी जिसको चाहे उसको दे डालो। मेरा विश्वास कर, मेरे साथ भोग भोगने की इच्छा करो और निःसंदेह भाव से मुझे अपनी सेवा की आज्ञा दो॥२४॥

मत्प्रसादाल्ललन्त्याश्च ललतां बान्धवस्तव ।

ऋद्धिं ममानुपश्य त्वं श्रियं भद्रे यशस्विनि ॥ २५ ॥

मुझे प्रसन्न करने से केवल तुम्हारी ही अभीष्ट सिद्धि नहीं होगी। बल्कि तुम्हारे बन्धुजनों की भी सभी इच्छाएं पूर्ण होती रहेंगी। हे भद्रे! हे यशस्विनी, मेरी समृद्धि, धन संपत्ति और कीर्ति को तो देखो ॥२५॥

कि करिष्यसि रामेण सुभगे चीरवाससा
निक्षिप्तविजयो रामो गतश्रीर्वनगोचरः । ॥ २६ ॥

हे सुभगे ! चीर-वल्कल धारी राम को प्राप्त कर तुम क्या करोगी? राम ने विजय की आशा त्याग दी है, वह श्रीहीन होकर वन में विचर रहा है ॥२६॥

व्रती स्थण्डिलशायी च शङ्के जीवति वा न वा ।
न हि वैदेहि रामस्त्वां द्रष्टुं वाप्युपलभ्यते ॥ २७ ॥

वह व्रत का पालन करता हुआ पृथ्वी पर सोता है । मुझे तो अब उसके जीवित रहने में भी सन्देह है। हे वैदेहि !, राम से तुम्हारे मिलन का तो प्रश्न ही नहीं है, तुम अब उसे देख भी नहीं सकती ॥२७॥

पुरोबलाकैरसितैर्मेघैर्ज्योत्स्नामिवावृताम् ।
न चापि मम हस्तात् त्वां प्राप्तुमर्हति राघवः ॥ २८ ॥

हिरण्यकशिपुः कीर्तिमिन्द्रहस्तगतामिव ।

चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि ॥ २९ ॥

वैदेही ! जिस प्रकार बगलों की पंक्ति मेघाच्छादित चांदनी को नहीं देख सकती ; उसी प्रकार रामचन्द्र भी अब तुमको देख नहीं सकते। रामचंद्र मेरे हाथो से तुमको अब वैसे ही नहीं ले सकते, जैसे हिरणयकश्यप इंद्र के हाथ में गयी अपनी कीर्ति को पुन: प्राप्त नहीं कर पाया था। हे सुन्दर दन्त पंक्ति वाली ! हे चारुहासिनी ! हे सुन्दर नयनी ! हे विलासनी ! ॥२७-२९॥

मनो हरसि मे भीरु सुपर्णः पन्नगं यथा ।
क्लिष्टकौशेयवसनां तन्वीमप्यनलङ्कृताम् ॥ ३० ॥

हे भीरु! तुम मेरे मन को उसी प्रकार हर रही हो जिस प्रकार गरुड़ सांप को हरता है। यद्यपि तुमने केवल एक पुरानी रेशमी साड़ी पहनी हुई हैं, शरीर से अत्यन्त कृशकाय हो और तुम्हारे शरीर पर गहने भी नहीं है। ॥३०॥

त्वां दृष्ट्वा स्वेषु दारेषु रतिं नोपलभाम्यहम् ।
अन्तःपुरनिवासिन्यः स्त्रियः सर्वगुणान्विताः ॥ ३१ ॥

यावत्यो मम सर्वासामैश्वर्यं कुरु जानकि ।
मम ह्यसितकेशान्ते त्रैलोक्यप्रवरस्त्रियः ॥ ३२ ॥

तब भी तुमको देख कर, अपनी सुन्दरी स्त्रियों से प्रेम करने को मेरा मन नहीं करता। जनकनंदिनी ! मेरे महल में निवास करने वाली जितनी भी सर्वगुण संपन्न स्त्रियाँ हैं, तुम उन सब की स्वामिनी बन जाओ। हे काले काले केशों वाली सुंदरी! मेरे महल में तीनों लोकों की सुन्दरी स्त्रियाँ हैं। ॥३१-३२॥

तास्त्वां परिचरिष्यन्ति श्रियमप्सरसो यथा
यानि वैश्रवणे सुभ्रु रत्नानि च धनानि च ।
तानि लोकांश्च सुश्रोणि मया भुङ्क्ष्व यथासुखम् ॥ ३३ ॥

वह सभी तुम्हारी वैसे ही सेवा करेंगी, जैसे लक्ष्मी जी की सेवा अप्सराएँ किया करती हैं । हे सुभगे! कुबेर का जो कुछ धन और रत्न हैं, उन सब को तथा समस्त लोकों के सुख को मेरे साथ इच्छानुसार भोग करों ॥३३॥

न रामस्तपसा देवि न बलेन न विक्रमैः ।
न धनेन मया तुल्यस्तेजसा यशसापि वा ॥ ३४ ॥

हे देवी ! तप, बल, पराक्रम, धन, तेज और यश में राम मेरी बराबरी नहीं कर सकता ॥३४॥

पिब विहर रमस्व भुङ्क्ष्व भोगान्
धननिचयं प्रदिशामि मेदिनीं च ।
मयि लल ललने यथासुखं त्वं

त्वयि च समेत्य ललन्तु बान्धवास्ते ॥ ३५ ॥

तुम दिव्य रस का पान करो, विहार करो, क्रीडा करो तथा सुखों का उपभोग करो। मैं तुम्हे अतुलित धन राशि और सारी पृथ्वी समर्पित किए देता हूँ। हे ललने! तुम भी मेरे साथ मन माना सुख भोगो और तुम्हारे निकट आकर तुम्हारे बन्धुजन भी इच्छा अनुसार सुख भोगेंगे ॥३५॥

कुसुमिततरुजालसन्ततानि
भ्रमरयुतानि समुद्रतीरजानि ।
कनकविमलहारभूषिताङ्गी
विहर मया सह भीरु काननानि ॥ ३६ ॥

हे सुन्दर-सुवर्ण-हार से भूषित अंग वाली! हे भीरु ! तुम मेरे साथ, पुष्पित वृक्षों से भरे हुए तथा भौरों से युक्त समुद्रतीर वर्ती वनों में विहार करो ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे विंशः सर्गः ।

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का बीसवाँ सर्ग पूर्ण हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥एकविंशः सर्गः इक्कीसवाँ सर्ग॥

सीताकर्तृकं रावणस्य प्रबोधनं श्रीरामेण सह तुलनायां तस्य तुच्छतायाः प्रतिपादनम् – सीता जी द्वारा रावण को उत्तर में श्री राम की प्रशंसा और श्री राम के सामने रावण के तुच्छता का वर्णन

तस्या तद् वचनं श्रुत्वा सीता रौद्रस्य रक्षसः ।
आर्ता दीनस्वरा दीनं प्रत्युवाच ततः शनैः ॥ १ ॥

उस भयंकर रावण के यह वचन सुन कर सीता जी पीड़ा से विकल और दीन होकर, रावण को धीरे धोरे उत्तर देना आरम्भ किया ॥१॥

दुःखार्ता रुदती सीता वेपमाना तपस्विनी ।
चिन्तयन्ती वरारोहा पतिमेव पतिव्रता ॥ २ ॥

उस समय सुन्दर अंगो वाली सीता जी दुःख से विकल होकर रोती हुई कांप रही थीं तथा अपने पतिव्रत धर्म की रक्षा के लिये चिन्ता करती हुई, श्रीरामचन्द्र जी का स्मरण कर रही थीं ॥२॥

तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता ।
निवर्तय मनो मत्तः स्वजने प्रीयतां मनः ॥ ३ ॥

पवित्र मुस्कान वाली विदेहनन्दिनी ने अपने और रावण के बीच में तिनके को आड़ कर रावण से बाली । हे रावण ! तुम मेरी ओर से अपने मन को हटा लो और अपने आत्मीय जनों अर्थात अपनी पत्नियों से ही प्रेम करो ॥३॥

न मां प्रार्थयितुं युक्तस्त्वं सिद्धिमिव पापकृत् ।
अकार्यं न मया कार्यं एकपत्न्या विगर्हितम् ॥ ४ ॥

क्योंकि मैं तेरे चाहने योग्य उसी प्रकार नहीं हूँ जैसे सिद्धि, पापाचारी जनों द्वारा चाहने योग्य नहीं होती। मैं पतिव्रत धर्म पालन करने वाली हूँ। अतः मैं ऐसा कार्य नहीं कर सकती जो पतिव्रता के लिए निन्दित है ॥४॥

कुलं संप्राप्तया पुण्यं कुले महति जातया ।
एवमुक्त्वा तु वैदेही रावणं तं यशस्विनी ॥ ५ ॥

मैं उच्च कुल में उत्पन्न हो कर पवित्र कुल में ब्याही गयी हूँ। अतः मैं ऐसा गर्हित कार्य नहीं कर सकती। उस यशस्विनी ने रावण से इस प्रकार कहकर ॥५॥

रावणं पृष्ठतः कृत्वा भूयो वचनमब्रवीत् ।
नाहमौपयिकी भार्या परभार्या सती तव ॥ ६ ॥

उसकी और अपनी पीठ फेर ली और फिर कहने लगी, हे रावण! क्योंकि मैं सती और परायी स्त्री हूँ, मैं तेरी भार्या बनने योग्य नहीं हो सकती ॥६॥

साधु धर्ममवेक्षस्व साधु साधुव्रतं चर ।
यथा तव तथान्येषां रक्ष्या दारा निशाचर ॥ ७ ॥

निशाचर ! तुझे उचित है कि, सद धर्म और सद व्रत के अनुकूल आचरण करो। जिस प्रकार अपनी स्त्रीयों की तुम रक्षा करते हो, वैसे ही पराई स्त्री की भी रक्षा करना उचित है ॥७॥

आत्मानमुपमां कृत्वा स्वेषु दारेषु रम्यताम् ।
अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चपलेन्द्रियम् ॥ ८ ॥

अतः अपने को आदर्श बना कर तुझे अपनी ही स्त्रियों में अनुरक्त रहना चाहिए। क्योंकि जो चञ्चल मन कर के और अपनी इन्द्रियों को चलायमान कर, अपनी स्त्रियों से सन्तुष्ट नहीं होता ॥८॥

नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम् ।
इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे ॥ ९ ॥

ऐसी खोटी नीति पर चलने वाले मनुष्य को पराई स्त्रियाँ नष्ट कर डालती हैं। क्या यहां सत्पुरुष नहीं रहते अथवा तू सत्पुरुषों का संग पसंद नहीं करता ॥९॥

यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता ।
वचो मिथ्याप्रणीतात्मा पथ्यमुक्तं विचक्षणैः ॥ १० ॥

क्योंकि यदि उनके साथ तेरा संग हुआ होता, तो तेरी बुद्धि ऐसी सदाचारहीनता को कभी प्राप्त नहीं करती। अथवा सत्पुरुषों के हितकर वचनों को मिथ्या समझकर ॥१०॥

राक्षसानामभावाय त्वं वान प्रतिपद्यसे ।
अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम् ॥ ११ ॥

तू कहीं राक्षसों का नाश करने पर तो नहीं तुला हुआ है। हितोपदेश को न सुनने वाले तथा अनीति करने में मग्न रहने वाले राजा के होने से ॥११॥

समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्राणि नगराणि च ।
तथैव त्वां समासाद्य लंका रत्नौघसंकुला ॥ १२ ॥

बड़े बड़े समृद्धशाली राज्यों और नगरों का विनाश हो जाता है। अतः ऐसा लगता है कि, रत्नों से भरी पूरी इस लंका का ॥ १२॥

अपराधात् तवैकस्य नचिराद् विनशिष्यति ।
स्वकृतैर्हन्यमानस्य रावणादीर्घदर्शिनः ॥ १३ ॥

अभिनन्दन्ति भूतानि विनाशे पापकर्मणः ।
एवं त्वां पापकर्माणं वक्ष्यन्ति निकृता जनाः ॥ १४ ॥

तेरे अकेले के दोष से नाश होने वाला है। हे रावण! दूरदर्शिता के प्रभाव से किये हुए अपने पापों से जो पापी नष्ट होता है, उसका नाश देख कर प्राणी मात्र प्रसन्न होते हैं। इसी तरह तुम पापी को मरा देखकर वह लोग जिनको तूने कष्ट पहुँचाया है, यह कहेंगे ॥१३-१४॥

दिष्ट्यैतद् व्यसनं प्राप्तो रौद्र इत्येव हर्षिताः ।
शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा ॥ १५ ॥

कि, बड़े हर्ष की बात है जो यह दुष्ट रावण ऐसी विपत्ति में पड़ा है। हे रावण ! तू यदि मुझे अपना ऐश्वर्य अथवा धन का लालच दिखलाकर लुभाना चाहे, तो तुम कुझे लुभा नहीं सकते ॥१५॥

अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा ।
उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम् ॥ १६ ॥

कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित् ।
अहमौपयिकी भार्या तस्यैव च धरापतेः ॥ १७ ॥

जिस प्रकार सूर्य की प्रभा सूर्य को छोड़ कर, अन्य किसी की अनुगामिनी नहीं हो सकती, उसी प्रकार मैं भी श्रीरामचन्द्र जी के छोड़ कर और किसी की नहीं हो सकती। उन लोकनाथ श्रीराम चन्द्र जी की भुजा को आदर पूर्वक अपने सिर के नीचे रख, मैं अब कैसे किसी अन्य पुरुष की भुजा को तकिया बना सकती हूँ। मैं तो उन्हीं महाराज श्रीरामचन्द्र जी की उपयुक्त भार्या हूँ ॥१६-१७॥

व्रतस्नातस्य विद्येव विप्रस्य विदितात्मनः ।
साधु रावण रामेण मां समानय दुःखिताम् ॥ १८ ॥

जिस प्रकार ब्रह्म-विद्या, व्रत-स्नायी ब्राह्मण ही के योग्य हो सकती है, उसी प्रकार मैं भी उन जगप्रसिद्ध श्रीरामचन्द्र जी की ही पत्नी हो सकती हूँ। हे रावण! यदि तू अपना भला चाहता हो तो तू मुझ दुखिया को अब श्रीराम चन्द्र जी से मिला दे ॥१८॥

वने वासितया सार्धं करेण्वेव गजाधिपम् ।
मित्रमौपयिकं कर्तुं रामः स्थानं परीप्सता ॥ १९ ॥

बन्धं चानिच्छता घोरं त्वयासौ पुरुषर्षभः ।
विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः ॥ २० ॥

क्योंकि जैसे वन में बिछुड़ी हुई हथिनी, हाथी को पाकर ही आनन्दित होती है। वैसे ही मैं श्रीराम को पा कर ही प्रसन्न हो सकती हूँ। हे रावण! यदि तू लंका बचाना चाहता है और तुझे अपनी मृत्यु अभीष्ट नहीं है। तो तुझे चाहिये कि, तू श्रीरामचन्द्र जी को अपना मित्र बना ले। भगवान श्रीरामचन्द्र जी धर्मात्मा और शरणागतवत्सल के नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ १९-२०॥

तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि ।
प्रसादयस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम् ॥ २१ ॥

यदि तू जीवित रहना चाहते है तो तुझे श्री रामचन्द्र जी से मैत्री कर, शरणागतवत्सल श्रीरामचन्द्र जी के शरण लेनी चाहिए ॥२१॥

मां चास्मै प्रयतो भूत्वा निर्यातयितुमर्हसि ।
एवं हि ते भवेत् स्वस्ति सम्प्रदाय रघूत्तमे ॥ २२ ॥

और विनयपूर्वक मुझे उनको सौंप देना चाहिए। मुझे श्रीरामचन्द्र जी को सौंप देने से तेरा ही कल्याण होगा ॥२२॥

अन्यथा त्वं हि कुर्वाणः परां प्राप्स्यसि चापदम् ।
वर्जयेद् वज्रमुत्सृष्टं वर्जयेतन्तकश्चिरम् ॥ २३ ॥

त्वद्विधं न तु संक्रुद्धो लोकनाथः स राघवः ।

रामस्य धनुषः शब्दं श्रोष्यसि त्वं महास्वनम् ॥ २४ ॥

शतक्रतुविसृष्टस्य निर्घोषमशनेरिव ।
इह शीघ्रं सुपर्वाणो ज्वलितास्या इवोरगाः ॥ २५ ॥

इषवो निपतिष्यन्ति रामलक्ष्मणलक्षिताः ।
रक्षांसि निहनिष्यन्तः पुर्यामस्यां न संशयः ॥ २६ ॥

इसके विपरीत, यदि तूने ऐसा नहीं किया तो तू बड़ी भारी विपत्ति में पड़ जाएगा। क्योंकि तुम जैसा पापी, इन्द्र के चलाये हुए वज्र से भले ही बच जाय, और भले ही मृत्यु भी बहुत काल तक तुझे जीवित छोड़ दे, किन्तु क्रोध में भरे हुए लोकनाथ श्रीरामचन्द्र जी तुझे कभी नहीं छोड़ेंगे। हे रावण! तू शीघ्र ही इन्द्र के वज्र के समान श्रीरामचन्द्र जी के धनुष की टंकार का महाशब्द सुनेगा। इस लंका में बड़े फलवाले, ज्वलितमुख सर्पों की तरह, श्रीराम और लक्ष्मण के नाम से अंकित बाण चारों ओर गिरेंगे और राक्षसों का संहार करेंगे ॥२३-२६॥

असम्पातं करिष्यन्ति पतन्तः कङ्कवाससः ।
राक्षसेन्द्रमहासर्पान् स रामगरुडो महान् ॥ २७ ॥

वह कंकपत्रों से भूषित बाण जब लंका में गिरेंगे, तब लंका में तिल बराबर भी जगह बाणों से शून्य नहीं रह जाएगी। हे रावण! राक्षस रूपी महासर्पों को श्रीराम रूपी महागरुड़ ॥ २७ ॥

उद्धरिष्यति वेगेन वैनतेय इवोरगान् ।
अपनेष्यति मां भर्ता त्वत्तः शीघ्रमरिन्दमः ॥ २८ ॥

उसी प्रकार वेग पूर्वक नष्ट कर डालेंगे, जैसे विन्तानंदन गरुड़ सर्प का संहार करते हैं। शत्रुओं का दमन करने वाले मेरे स्वामी, अविलंब मुझे तेरे हाथ से वैसे ही छुड़ाकर ले जायेंगे ॥२८॥

असुरेभ्यः श्रियं दीप्तां विष्णुस्त्रिभिरिव क्रमैः ।
जनस्थाने हतस्थाने निहते रक्षसां बले ॥ २९ ॥

जैसे त्रिविक्रम भगवान ने तीन पैर से नाप कर, दैत्यों के हाथ से देवताओं की राज्यलक्ष्मी को छुड़ाया था। हे राक्षस! जब राक्षसों की सेना का संहार हो जाने से जनस्थान का तेरा आश्रय नष्ट हो गया ॥२९॥

अशक्तेन त्वया रक्षः कृतमेतदसाधु वै ।
आश्रमं तत्तयोः शून्यं प्रविश्य नरसिंहयोः ॥ ३० ॥

गोचरं गतयोर्भ्रात्रोरपनीता त्वयाधम ।
नहि गन्धमुपाघ्राय रामलक्ष्मणयोस्त्वया ॥ ३१ ॥

शक्यं सन्दर्शने स्थातुं शुना शार्दूलयोरिव ।
तस्य ते विग्रहे ताभ्यां युगग्रहणमस्थिरम् ॥ ३२ ॥

और तुम स्वयं युद्ध करने में असमर्थ हो गए और तुझसे कुछ भी करते नहीं बन पड़ा। नीच निशाचर ! तब तुम उन नरसिंहों की अनुपस्थिति में, शून्य आश्रम में जाकर तू मुझे चुरा लाया । जिस प्रकार कुत्ता सिंह की गन्ध पाकर उसके सन्मुख खड़ा नहीं रह सकता: उसी प्रकार तू भी श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण के सामने नहीं ठहर सकता। उनसे युद्ध छिड़ने पर तेरा उनसे जीतना वैसे ही असम्भव है ॥३०-३२॥

वृत्रस्येवेन्द्रबाहुभ्यां बाहोरेकस्य विग्रहे
क्षिप्रं तव स नाथो मे रामः सौमित्रिणा सह ।
तोयमल्पमिवादित्यः प्राणानादास्यते शरैः ॥ ३३ ॥

जैसे इंद्र की दो भुजाओं के साथ युद्ध छिड़ने पर, एक भुजा वाले वृत्रासुर के लिए संग्राम के बोझ को संभालना मुश्किल हो गया था। वह मेरे स्वामी श्रीरामचन्द्र जी, सुमित्राकुमार लक्ष्मण लहित, शीघ्र ही अपने बाणों से तेरे प्राणों को वैसे ही हर लेंगे; जैसे सूर्य को थोडे से पानी को अपनी किरणों द्वारा शीघ्र ही सुखा देते हैं ॥३३॥

गिरिं कुबेरस्य गतोऽथवाऽऽलयं
सभां गतो वा वरुणस्य राज्ञः
असंशयं दाशरथेर्विमोक्ष्यसे
महाद्रुमः कालहतोऽशनेरिव ॥ ३४ ॥

हे रावण! अब चाहे तू कुबेर के कैलाश पर्वत पर चला जा अथवा वरुण ही सभा में जाकर छिप जा, किन्तु जिस प्रकार काल का मारा

हुआ विशाल वृक्ष, वज्र का आघात लगते ही नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार तू दशरथनंदन श्री राम के बाणों के नष्ट होकर तत्काल ही अपने प्राणों से हाथ धो बैठेगा, इसमें संशय नहीं हैं ॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का इक्कीसवां सर्ग पूर्ण हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ द्वाविंशः सर्गः बाइसवाँ सर्ग॥

रावणेन तस्याः कृते मासद्वयावधेः प्रदानं सीताकर्तृकं तस्य भर्त्सनं रावणस्य तां निर्भर्त्स्य राक्षसीनां नियन्त्रणे संस्थाप स्त्रिभिः सह स्वभवने गमनम् –रावण का सीता जी को दो माह के अवधि देना, सीता जी का रावण को फटकारना तथा रावण द्वारा सीता जी को धमकी देकर राक्षसियों को उन्हें नियंत्रण में रखने की आज्ञा देकर , स्त्रियों सहित पुन: अपने भवन के लिए प्रस्थान

सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं राक्षसेश्वरः ।
प्रत्युवाच ततः सीतां विप्रियं प्रियदर्शनाम् ॥ १ ॥

सीता जी के यह कठोर वचन सुन, राक्षसराज ने प्रियदर्शन सीता जी से उत्तर में यह अप्रिय वचन कहे ॥१॥

यथा यथा सान्त्वयिता वश्यः स्त्रीणां तथा तथा ।
यथा यथा प्रियं वक्ता परिभूतस्तथा तथा ॥ २ ॥

जैसे जैसे पुरुष स्त्री को अनुनय विनय से समझाता है, वैसे वैसे स्त्री उस समझाने वाले पुरुष के वश में हो जाती है। किन्तु मैंने प्रिय वचनों द्वारा जितना तुम्हे समझाया, तुमने उतना ही मेरा तिरस्कार किया ॥२॥

संनियच्छति मे क्रोधं त्वयि कामः समुत्थितः ।
द्रवतो मार्गमासाद्य हयानिव सुसारथिः ॥ ३ ॥

परन्तु क्या करूँ, मैं तुम्हारे ऊपर आसक्त हूँ, यह आसक्ति ही मेरे क्रोध को उसी प्रकार रोके हुए है, जैसे दौड़ते हुए घोड़ों को सारथी रोके रखता है ॥३॥

वामः कामो मनुष्याणां यस्मिन् किल निबध्यते ।
जनेतस्मिन् त्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते ॥ ४ ॥

मनुष्यों के लिये काम सचमुच बड़ा प्रतिकूल है, क्योंकि काम जिसके प्रति उभर आता है, निश्चय ही उसके ऊपर स्नेह और दया उत्पन्न कर देता है ॥४॥

एतस्मात् कारणान्न त्वां घातयामि वरानने ।
वधार्हामवमानार्हां मिथ्या प्रव्रजने रताम् ॥ ५ ॥

हे सुमुखी ! यही कारण है कि, झूठे वैराग्य तथा प्रीति में तत्पर तथा वध और तिरस्कार करने योग्य होने पर भी मैं तुम्हारा वध नहीं कर रहा हूँ। ॥५॥

परुषाणि हि वाक्यानि यानि यानि ब्रवीषि माम् ।
तेषु तेषु वधो युक्तस्तव मैथिलि दारुणः ॥ ६ ॥

मिथिलेश कुमारी! तुमने मुझसे जैसे जैसे कठोर वचन कहे हैं, उनके लिये तो तुम्हे प्राणदंड देना ही उचित है ॥६॥

एवमुक्त्वा तु वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः ।
क्रोधसंरम्भसंयुक्तः सीतामुत्तरमब्रवीत् ॥ ७ ॥

विदेहराज कुमारी सीता से ऐसा कह कर, क्रोध के आवेश में भरे हुए राक्षस राज रावण फिर सीता की कही बातों का उत्तर देने लगा ॥७॥

द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः ।
ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि ॥ ८ ॥

सुन्दरी ! मैंने तुम्हारे लिए जो अवधि निश्चित कर दी है, उसमें अब केवल दो मास शेष हैं, तब तक तो मुझे तेरी रक्षा करनी ही उचित है। यह अवधि बीतने पर तुम्हे मेरी शय्या पर आना ही पड़ेगा ॥८॥

द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम् ।
मम त्वां प्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः ॥ ९ ॥

यदि दो मास बीतने पर भी तुमने मुझे अपना पति बनाना स्वीकार नहीं किया, तो मेरे रसोइये मेरे भोजन के लिये तेरे टुकड़े टुकड़े कर डालेंगे॥६॥

तां भर्त्स्यमानां सम्प्रेक्ष्य राक्षसेन्द्रेण जानकीम् ।
देवगन्धर्वकन्यास्ता विषेदुर्विकृतेक्षणाः ॥ १० ॥

सीता को रावण द्वारा इस प्रकार धमकायी जाती हुई देखकर, वह सब देव और गन्धर्व कन्याएँ, जो रावण के साथ आयी थीं, सीता को कनखियों से देखकर बहुत दुःखी हुई ॥१०॥

ओष्ठप्रकारैरपरा नेत्रैर्वक्त्रैस्तथापराः ।
सीतामाश्वासयामासुस्तर्जितां तेन रक्षसा ॥ ११ ॥

और किसी ने होठों से, किसी के नेत्रों से और किसी ने मुख के संकेतों से उस राक्षसराज रावण से पीड़ित जानकी जी को धीरज बंधाया ॥११॥

ताभिराश्वासिता सीता रावणं राक्षसाधिपम् ।
उवाचात्महितं वाक्यं वृत्तशौटीर्यगर्वितम् ॥ १२ ॥

उनके आश्वासित होकर सीता जी, अपने पातिव्रतबल से बल्वान्विंत होकर, अपने हित की बात रावण से कहने लगी॥१२॥

नूनं न ते जनः कश्चिदस्मिन्निःश्रेयसि स्थितः ।
निवारयति यो न त्वां कर्मणोऽस्माद् विगर्हितात् ॥ १३ ॥

हे रावण ! मुझे विश्वास हो गया कि, इस लंका पुरी में तेरा हितैषी कोई नहीं है, जो तुझे इस निन्दित कर्म को करने से रोके ॥१३॥

मां हि धर्मात्मनः पत्नीं सचीमिव शचीपतेः ।
त्वदन्यस्त्रिषु लोकेषु प्रार्थयेन्मनसापि कः ॥ १४ ॥

क्योंकि तीनों लोकों में तेरे सिवाय दूसरा कोई भी ऐसा पुरुष नहीं होगा, जो इन्द्र की पत्नी शची की तरह धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी की पत्नी को प्राप्त करने की मन में कल्पना भी करता हो ॥१४॥

राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः ।
उक्तवानपि यत् पापं क्व गतस्तस्य मोक्ष्यसे ॥ १५ ॥

हे राक्षसाधम ! अमित तेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी की भार्या से तूने जैसे अनुचित वचन कहे हैं, उनके फलस्वरूप दण्ड, श्रीरामचन्द्र जी के बाणों से कहाँ जाकर तू अपनी रक्षा करेगा ॥१५॥

यथा दृप्तश्च मातङ्गः शशश्च सहितौ वने ।

तथा द्विरदवद् रामस्त्वं नीच शशवत् स्मृतः ॥ १६ ॥

यदि दर्पित हाथी और खरगोश वन में एक साथ ही रहते हैं तथापि वह बराबर नहीं होते। इसी प्रकार श्रीरामचन्द्र जी हाथी के समान हैं और तू क्षुद्र खरगोश की तरह है ॥१६॥

स त्वमिक्ष्वाकुनाथं वै क्षिपन्निह न लज्जसे ।
चक्षुषो विषये तस्य न यावदुपगच्छसि ॥ १७ ॥

अरे ! इक्ष्वाकुनाथ श्रीरामचन्द्र जी की निन्दा करते तुझे लाज नहीं आती। जब तक तू उनके सामने नहीं पड़ता, तब तक तू भले ही तर्जन गर्जन कर ले ॥१७॥

इमे ते नयने क्रूरे विकृते कृष्णपिंगले ।
क्षितौ न पतिते कस्मान्मामनार्य निरीक्षतः ॥ १८ ॥

अरे! तेरी यह क्रूर, टेढ़ी मेढ़ी, काली पीली, आँखे, जिनसे तूने मुझे बुरी निगाह से देखा है, क्यों नहीं निकल कर पृथिवी पर गिर पड़तीं ॥१८॥

तस्य धर्मात्मनः पत्नी स्नुषा दशरथस्य च ।
कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा पाप शीर्यति ॥ १९ ॥

उन धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी की पत्नी और महाराज दशरथ की पुत्रवधू से तूने जिस जीभ से ऐसी पाप भरी बातें कही हैं, तेरी वह जीभ गल कर नीचे क्यों नहीं गिर पड़ती ॥१९॥

असन्देशात् तु रामस्य तपसश्चानुपालनात् ।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा ॥ २० ॥

हे रावण ! मैं चाहूँ तो तुझको अपने पातिव्रत धर्म के प्रभाव से अभी जला कर भस्म कर डालूं, परन्तु इसके लिये मुझे श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा नहीं है और मैं पातिव्रतधर्म पालन में तत्पर हूँ ॥२०॥

नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामाय धीमतः ।
विधिस्तव वधार्थाय विहितो नात्र संशयः ॥ २१ ॥

तेरो यह शक्ति नहीं थी कि, उन श्रीमान् रामचन्द्र जो के समक्ष रहते हुए, तू मुझे बलात अपहृत हर लाता। निश्चय जान ले कि, तेरे द्वारा अपहृत होने का विधान विधाता ने तेरे नाश के लिये ही रचा है।॥ २१॥

शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च ।
अपोह्य रामं कस्माच्चिद् दारचौर्यं त्वया कृतम् ॥ २२ ॥

तू तो अपने को बड़ा शूरवीर समझता है, कुबेर का भाई है और सब से बढ़ कर अपने को बलवान् समझता है। फिर श्रीरामचन्द्र जी को धोखा देकर, तूने उनकी स्त्री को क्यों चुराया है? ॥२२॥

सीताया वचनं श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः ।
विवृत्य नयने क्रूरे जानकीमन्ववैक्षत ॥ २३ ॥

राक्षसराज रावण सीताजी के ऐसे वचन सुन और त्योरी चढ़ा कर, क्रूर कटाक्ष से सीता जी को घूरने लगा ॥२३॥

नीलजीमूतसंकाशो महाभुजशिरोधरः ।
सिंहसत्त्वगतिः श्रीमान् दीप्तजिह्वोग्रलोचनः ॥ २४ ॥

उस समय रावण नीलवर्ण वाले बादल की तरह प्रतीत होता था। उसकी भुजाएँ बड़ी बड़ी थीं और गर्दन लंबी थी। वह बलवान सिंह के समान अकड़ कर चला करता था। उसकी जीभ आग के समान लपलपा रही थी तथा नेत्र बड़े भयंकर प्रतीत होते थे ॥ २४ ॥

चलाग्रमुकुटप्रांशुर्चित्रमाल्यानुलेपनः ।
रक्तमाल्याम्बरधरस्तप्ताङ्गदविभूषणः ॥ २५ ॥

क्रोद्ध के कारण उसके मुकुट का अग्रभाग हिल रहा था, जिससे वह अत्यंत विशाल दिखाई दे रहा था। वह गले में रंग बिरंगे फूलों की माला पहने हुए था और अंगों नें लाल चन्दन लगाये हुए था। वह लाल मालाएँ उअर लाल वस्त्र पहने हुए था तथा भुजाओं मे सोने के बाजूबंद पहने हुए था।॥२५॥

श्रोणीसूत्रेण महता मेचकेन सुसंवृतः ।
अमृतोत्पादने नद्धो भुजङ्गेनेव मन्दरः ॥ २६ ॥

उसकी कमर में काले रंग का कटिसूत्र लिपटा हुआ था जो समुद्र मंथन के समय मेरुपर्वत से लिपटे हुए काले सर्प के सद्दश्य था। ॥२६॥

ताभ्यां स परिपूर्णाभ्यां भुजाभ्यां राक्षसेश्वरः ।
शुशुभेऽचलसंकाशः श्रृंगाभ्यामिव मन्दराः ॥ २७ ॥

पर्वत की तरह लंबे डील डोल के राक्षसराज रावण की दोनों भुजाएं, दो शिखरों से शोभित मंद्रांचल पर्वत की तरह शोभित होती थीं। ॥२७॥

तरुणादित्यवर्णाभ्यां कुण्डलाभ्यां विभूषितः ।
रक्तपल्लवपुष्पाभ्यामशोकाभ्यामिवाचलः ॥ २८ ॥

मध्यान कालीन सूर्य की तरह चमचमाते कुण्डलों से वह विभूषित था -मानों एक पर्वत लाल पत्र और लाल पुष्प धारी अशोक वृक्षों से शोभायमान हो रहा हो ॥२८॥

स कल्पवृक्षप्रतिमो वसन्त इव मूर्तिमान् ।
श्मशानचैत्यप्रतिमो भूषितोऽपि भयंकरः ॥ २९ ॥

यद्यपि रावण कल्पवृक्ष की तरह और मूर्तिमान वसंत की तरह सुशोभित हो रहा था, तथापि वह श्मशान घाट के सजे हुए वृक्ष की तरह भयंकर ही दिखाई पड़ता था ॥२९॥

अवेक्षमाणो वैदेहीं कोपसंरक्तलोचनः ।
उवाच रावणः सीतां भुजंग इव निःश्वसन् ॥ ३० ॥

वह सीताजी को क्रोध के मारे लाल लाल नेत्रों से देखता हुआ और सर्प की तरह फुफकारता हुआ बोला ॥३०॥

अनयेनाभिसम्पन्नमर्थहीनमनुव्रते ।
नाशयाम्यहमद्य त्वां सूर्यः सन्ध्यामिवौजसा ॥ ३१ ॥

नीति और अर्थ से शून्य श्रीरामचन्द्र जी को मानने वाली, तुझे भी मैं उसी प्रकार समाप्त किये देता हूँ, जैसे सूर्य सन्ध्याकालीन अन्धकार का नाश करता है ॥३१॥

इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः ।
सन्ददर्श ततः सर्वा राक्षसीर्घोरदर्शनाः ॥ ३२ ॥

शत्रुओं को रुलाने वाले रावण ने सीता से इस प्रकार कह कर, उन भयङ्कर समस्त राक्षसियों को आज्ञा दी॥३२॥

एकाक्षीमेककर्णां च कर्णप्रावरणां तथा ।
गोकर्णीं हस्तिकर्णीं च लंबकर्णीमकर्णिकाम् ॥ ३३ ॥

उस समय वहां उपस्थित उन राक्षसियों में कोई एक आँख वाली, कोई एक कान वाली, कोई बड़े बड़े कानों वाली, कोई गौ जैसे कानों वाली, कोई हाथी जैसे कानों वाली, कोई बड़े लंबे लंबे कानों वाली और कोई कटे कानो वाली थी॥३३॥

हस्तिपद्यश्वपद्यौ च गोपदीं पादचूलिकाम् ।
एकाक्षीमेकपादीं च पृथुपादीमपादिकाम् ॥ ३४ ॥

कोई हाथी, कोई घोड़ा, कोई बैल जैसे पैरों वाली और कोई पावों में बड़े बड़े केशों वाली थी। कोई एक बड़ी और एक छोटी आखों वाली, कोई एक बड़े और एक छोटे पैरों वाली, कोई मौटे पैरों वाली और कोई बिना पैर वाली थी॥३४॥

अत्मात्रशिरोग्रीवां अतिमात्रकुचोदरीम् ।
अतिमात्रास्यनेत्रां च दीर्घजिह्वानखामपि ॥ ३५ ॥

किसी की गरदन और सिर किसी के स्तन और उदर बहुत बड़े थे। किसी की आँखे बहुत बड़ी थीं और किसी की जीभ बड़ी लंबी थी, और किसी के जीभ ही नहीं थी ॥३५॥

अनासिकां सिंहमुखीं गोमुखीं सुकरीमुखीम् ।
यथा मद्वशगा सीता क्षिप्रं भवति जानकी ॥ ३६ ॥

कोई नासिकारहित, काई सिंहमुखी, कोई गोमुखी, और कोई शूकरीमुखी थी। इन सभी को सम्बोधन कर रावण बोला कि, जिस तरह यह जानकी सीता अविलंब मेरे वश में आ जाए ॥३६॥

तथा कुरुत राक्षस्य सर्वाः क्षिप्रं समेत्य वा ।
प्रतिलोमानुलोमैश्च सामदानादिभेदनैः ॥ ३७ ॥

उस तरह तुम सब मिल कर शीघ्र प्रयत्न करो। साम, दान, भेदादि, अनुकूल प्रतिकूल उपायों से ॥३७॥

आवर्जयत वैदेहीं दण्दस्योद्यमनेन च ।
इति प्रतिसमादिश्य राक्षसेन्द्रः पुनः पुनः ॥ ३८ ॥

अथवा डरा धमका कर जैसे हो सके वैसे, तुम सीता को मेरे काबू में कर दो। इस प्रकार रावण उन राक्षसियों को बार बार आज्ञा देकर ॥३८॥

काममन्युपरीतात्मा जानकीं प्रति गर्जत ।
उपगम्य ततः क्षिप्रं राक्षसी धान्यमालिनी ॥ ३९ ॥

जब काम से पीड़ित रावण सीता को घुड़कने लगा, तब तुरन्त धान्यमालिनी राक्षसी रावण के पास जाकर ॥ ३९॥

परिष्वज्य दशग्रीवमिदं वचनमब्रवित् ।
मया क्रीड महाराज सीतया किं तवानया ॥ ४० ॥

और रावण से लिपट उससे कहने लगी! हे महाराज ! आप मेरे साथ विहार कीजिये । यह सीता आपके किस काम की है ॥४०॥

विवर्णया कृपणया मानुष्या राक्षसेश्वर ।
नूनमस्यां महाराज न देवा भोगसत्तमान् ॥ ४१ ॥

विदधत्यमरश्रेष्ठास्तव बाहुबलार्जितान् ।
अकामां कामयानस्य शरीरमुपतप्यते ॥ ४२ ॥

क्योंकि हे रावण ! यह सीता तो बुरे रंग की, दुखिया और मानुषी है। निश्चय ही इसके भाग्य में विधाता ने आपके बाहुबल से उपार्जित दुर्लभ भोगों को भोगना लिखा ही नहीं। फिर जो स्त्री अपने को नहीं चाहती ; उसकी चाह करने वाले पुरुष का शरीर सदा सन्तप्त रहता है ॥४१- ४२॥

इच्छतीं कामयानस्य प्रीतिर्भवति शोभना ।
एवमुक्तस्तु राक्षस्या समुत्क्षिप्तस्ततो बली । ॥ ४३ ॥

और जो स्त्री अपने पति को चाहती है, उसको चाह करने से, चाहने का सुख प्राप्त होता है। यह कहकर वह राक्षसी बलवान रावण को वहां से हटा कर ले गयी। ॥४३॥

प्र हसन् मेघसंकाशो राक्षसः स न्यवर्तत
प्रस्थितः स दशग्रीवः कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
ज्वलद्भास्करसंकाशं प्रविवेश निवेशनम् ॥ ४४ ॥

मेघ के समान लंबा चौड़ा वह राक्षस रावण मुस्कुराता हुआ वहाँ से लौट चला। पृथिवी को मानों कंपायमान करता हुआ रावण, चमचमाते सूर्य की तरह प्रकाशित अपने घर में चला गया ॥४४॥

देवगन्धर्वकन्याश्च नागकन्याश्च तास्ततः ।
परिवार्य दशग्रीवं प्रविशुस्ता गृहोत्तमम् ॥ ४५ ॥

उस समय देव, गन्धर्व और नागकन्याएँ भी उसको घेरे हुए उस श्रेष्ठभवन में चली गयीं ॥४५॥

स मैथिलीं धर्मपरामवस्थितां प्रवेपमानां परिभर्त्स्य रावणः ।
विहाय सीतां मदनेन मोहितः स्वमेव वेश्म प्रविवेश रावणः ॥४६॥

इस प्रकार कामासक्त रावण, पातिव्रत धर्मपालन में तत्पर और डर से थर थराती हुई जानकीजी को डांट डपट कर और उनको त्याग कर अपने महल में चला गया। ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का बाइसवाँ सर्ग पूरा हआ ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥त्रयोविंशः सर्गः तेइसवाँ सर्ग॥

राक्षसीभिः सीतायाः प्रबोधनम् - राक्षसियों द्वारा सीता जी समझाना

इक्त्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः ।
सन्दिश्य च ततः सर्वा राक्षसीर्निर्जगाम ह ॥ १ ॥

सीता जी को इस प्रकार डरा धमका कर, शत्रुओं को संताप देने वाला राक्षसराज रावण उन सब राक्षसियों को सीता को शीघ्र वश में करने का आदेश दे कर , अशोकवाटिका से निकल कर चला गया ॥१॥

निष्क्रान्ते राक्षसेन्द्रे तु पुनरन्तःपुरं गते ।
राक्षस्यो भीमरूपास्ताः सीतां समभिदुद्रुवुः ॥ २ ॥

जब राक्षस वहाँ से चल कर अपने अन्तःपुर में पहुँच गया, तब वह भयंकर रूपधारिणी राक्षसियां सीता जी की ओर दौड़ती हुई आयीं ॥२॥

ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यः क्रोधमूर्छिताः ।
परं परुषया वाचा वैदेहीं इदमब्रुवन् । ॥ ३ ॥

और विदेह कुमारी सीता के निकट पहुँच कर क्रुद्ध से व्याकुल हुई उन राक्षसियों ने अत्यंत कठोर वाणी मे बोलना आरम्भ किया ॥३॥

पौलस्तस्य वरिष्ठस्य रावणस्य महात्मनः ।
दशग्रीवस्य भार्यात्वं सीते न बहु मन्यसे ॥ ४ ॥

हे सीते ! श्रेष्ठ पुलस्त्य ऋषि के पुत्र महात्मा दशग्रीव रावण की पत्नी बनना क्या तू बड़ी बात नहीं समझती? ॥४॥

ततस्त्वेकजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
आमन्त्र्य क्रोधताम्राक्षी सीतां करतलोदरीम् ॥ ५ ॥

तदनन्तर छोटे पेट वाली एकजटा नाम की राक्षसी ने क्रोध में भरक्र और आखें लाल लाल करके सीता जी को संबोधित कर कहा ॥५॥

प्रजापतीनां षण्णां तु चतुर्थोऽयं प्रजापतिः ।
मानसो ब्राह्मणः पुत्र पुलस्त्य इति विश्रुतः ॥ ६ ॥

विदेहकुमारी ! छः प्रजापतियों में जो चतुर्थ प्रजापति[1] हैं और जो ब्रह्मा के मानसपुत्र हैं, वही पुलस्त्य के नाम से प्रसिद्ध हैं ॥६॥

पुलस्तस्य तु तेजस्वी महर्षिर्मानसः सुतः ।
नाम्ना स विश्रवा नाम प्रजापतिसमप्रभः ॥ ७ ॥

उन महर्षि पुलस्त्य के बड़े तेजस्वी मानसपुत्र विश्रवा जी हैं, जो प्रजापति के समान ही प्रभावान हैं ॥७॥

तस्य पुत्रो विशालाक्षि रावणः शत्रुरावणः ।
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि ॥ ८ ॥

हे विशालाक्षी ! उन्हीं विश्रवा जी का पुत्र रावण है, जो शत्रुषों को संताप देने वाला है। तुमको उसी राक्षसराज की पत्नी बन जाना चाहिये । ॥८॥

महोक्तं चारुसर्वाङ्गि वाक्यं किं नानुमन्यसे ।
ततो हरिजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

हे सर्वांग सुन्दरी! मैं जो कह रही है। उसे तुम क्यों नहीं मानती ? इसके पश्च्यात हरिजटा नाम की राक्षसी बोली ॥९॥

---

[1] १मरीचि, २अत्रि, ३ भरिस, ४ पुलस्त्य, ५ पुलह और ६ क्रतु-ये छः प्रजापति हैं।

विवृत्य नयने कोपान्मार्जारसदृशेक्षणा ।
येन देवास्त्रयस्त्रिंशद् देवराजश्च निर्जितः ॥ १० ॥

वह बिल्ली जैसी आँखों वाली हरिजटा कुपित होकर और त्योरी चढ़ा कर कहने लगी- अरी ! जिसने तैंतीसों देवताओं को और उनके राजा इन्द्र तक को हरा दिया ॥१०॥

तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि ।
ततस्तु प्रघसा नाम राक्षसी क्रोधमूर्छिता ॥ ११ ॥

उस राक्षसराज की भार्या तुझको बन जाना चाहिये । तदनन्तर, कुपित होकर प्रघसा नाम राक्षसी ॥११॥

भर्त्सयन्ती तदा घोरमिदं वचनम ब्रवीत ।
वीर्योत्सिक्तस्य शूरस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः ॥ १२ ॥

सीता जी को बुरी तरह डांटती हुई कहने लगी देख, बड़े पराक्रमी, शूर तथा युद्धक्षेत्र में कभी शत्रु को पीठ न, दिखलाने वाले ॥१२॥

बलिनो वीर्ययुक्तस्य भार्या त्वं किं न लिप्ससे ।
प्रियां बहुमतां भार्यां त्यक्त्वा राजा महाबलः ॥ १३ ॥

बलवान और पराक्रम युक्त रावण की भार्या बनना क्या तू पसंद नहीं करती ? देख, वह महाबली राक्षसराज, अपनी प्यारी और कृपापात्र ॥ १३ ॥

सर्वासां च महाभागां त्वामुपैष्यति रावणः ।
समृद्धं स्त्रीसहस्रेण नानारत्नोपशोभितम् ॥ १४ ॥

और सब स्त्रियों से बढ़ कर भाग्यवती मन्दोदरी को भी त्याग कर, तेरे ही साथ रहा करेगा। फिर हजारों स्त्रीरत्नों से भरे पूरे और नाना रत्नों से शोभित ॥१४॥

अन्तःपुरं तदुत्सृज्य त्वामुपैष्यति रावणः ।
अन्या तु विकटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥ १५ ॥

अपने अन्तःपुर को त्याग, रावण तेरे वश में हो जायगा। तदनन्तर एक दूसरी राक्षसी जिसका नाम विकटा था, कहने लगी ॥१५॥

असकृद् भीमवीर्येण नागा गन्धर्वदानवाः ।
निर्जिताः समरे येन स ते पार्श्वमुपागतः ॥ १६ ॥

जिस रावण ने अनेकों बार देवताओं, नागों, गन्धों और दानवों को युद्ध में परास्त किया, वह तेरे पास आया था ॥१६॥

तस्य सर्वसमृद्धस्य रावणस्य महात्मनः ।

किमर्थं राक्षसेन्द्रस्य भार्यात्वं नेच्छसेऽधमे ॥ १७॥

हे अधमे ! ऐसे सभी प्रकार से समृद्धशाली महात्मा राक्षसराज रावण की पत्नी, तू क्यों बनना नहीं चाहती ? ॥१७॥

ततस्तां दुर्मुखी नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
यस्य सूर्यो न तपति भीतो यस्य च मारुतः ॥ १८ ॥

न वाति स्मायतापांगि किं त्वं तस्य न तिष्ठसे
पुष्पवृष्टिं च तरवो मुमुचुर्यस्य वै भयात् । ॥ १९ ॥

तत्पश्च्यात दुर्मुखी नाम की राक्षसी कहने लगी। जिसके डर से न तो सूर्य अधिक तपता है और न ही वायु अत्यंत तीव्रता के साथ बहता है, उसके वश में तू क्यों नहीं हो जाती ? जिसके भय से पेड़ फूलों की वृष्टि किया करते हैं ॥१८-१९॥

शैलाः सुस्त्रुवुः पानीयं जलदाश्च यदेच्छति
तस्य नैर्ऋतराजस्य राजराजस्य भामिनि ।
किं त्वं न कुरुषे बुद्धिं भार्यार्थे रावणस्य हि ॥२० ॥

और पर्वत पानी बहाया करते हैं और जब रावण चाहता है, तभी मेघ पानी बरसाया करते हैं; उस राक्षसराज रावण की पत्नी बनना तू क्यों पसंद नहीं करती ? ॥२०॥

साधु ते तत्त्वतो देवि कथितं साधु भामिनि ।
गृहाण सुस्मिते वाक्यं अन्यथा न भविष्यसि ॥ २१ ॥

हे भामिनी! हे सुन्दर मुस्कान वाली सीते! मैंने तो तुझसे जो ठीक बात थी वही कही है। तू इसे मान ले तो अच्छी बात है, नहीं तो तेरे लिये अच्छा नहीं होगा ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का तेइसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ चतुर्विंशः सर्गः चौबीसवाँ सर्ग॥

सीतया रक्षसीनां वचसोऽनङ्गीकरणं, राक्षसीकर्तृकं तस्या भर्त्सनं च - सीता जी का राक्षसियों का वचन स्वीकार करने से इंकार तथा राक्षसियों द्वारा सीता जी को डराना – धमकाना।

ततः सीतां समस्तास्ता राक्षस्यो विकृताननाः ।
परुषं परुषानर्हां ऊचुस्तद् वाक्यमप्रियम् ॥ १ ॥

इसके पश्च्यात विकराल प्राकृति वाली राक्षसियां मिल कर, कठोर वचन न सुनने योग्य सीताजी के प्रति अप्रिय तथा कठोर वचन कहने लगीं ॥१॥

किं त्वमन्तःपुरे सीते सर्वभूतमनोरमे ।
महार्हशयनोपेते न वासमनुमन्यसे ॥ २ ॥

हे सीते ! क्या तू प्राणिमात्र का मन मोहने वाले और उत्तमोत्तम सेजों से युक्त रावण के महल में रहना पसंद क्यों नहीं करती ॥२॥

मानुषी मानुषस्यैव भार्यात्वं बहु मन्यसे ।
प्रत्याहर मनो रामान् नैवं जातु भविष्यति ॥ ३ ॥

हे मानुषी! मनुष्य की पत्नी होने को तू बड़ी बात समझती है। पर अब तू श्रीरामचन्द्र जी की ओर से अपना मन हटा ले, क्योंकि अब तू श्रीरामचन्द्र जी से कभी नहीं मिल पाएगी ॥३॥

त्रैलोक्यवसुभोक्तारं रावणं राक्षसेश्वरम् ।
भर्तारमुपसङ्गम्य विहरस्व यथासुखम् ॥ ४ ॥

त्रैलोक्य की समृद्धि को भागने वाले राक्षसराज रावण को अपना पति बना कर, तुम्हे आनंद पूर्वक विहार करना चाहिए ॥४॥

मानुषी मानुषं तं तु राममिच्छसि शोभने ।
राज्याद् भ्रष्टमसिद्धार्थं विक्लवन्तं अनिन्दिते ॥ ५ ॥

हे अनिन्द्य सुन्दरी! तू मानुषी है, इसीलिए तू उस राष्ट्र भ्रष्ट, असफल-मनोरथ और डरपोक राम को चाहती है ॥५॥

राक्षसीनां वचः श्रुत्वा सीता पद्मनिभेक्षणा ।
नेत्राभ्यां अश्रुपूर्णाभ्यां इदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥

राक्षसियों के कठोर वचन सुन कर, कमलनयनी सीताजी ने नेत्रों में आसूं भर कर उनकी ओर देखा और कहने लगीं ।॥६॥

यदिदं लोकविद्विष्टं उदाहरत सङ्गताः ।
नैतन्मनसि वाक्यं मे किल्बिषं प्रतितिष्ठति ॥ ७ ॥

तुम सब मिल कर मुझे ऐसा पाठ पढ़ा रही हो, जो लोक में निन्दित है। तुम्हारी यह पापपूर्ण वचन मेरे कण्ठ हृदय में एक क्षण के लिए भी नहीं ठहरते ॥७॥

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति ।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥ ८ ॥

मैं मानुषी हो कर कभी राक्षस की पत्नी नहीं बन सकती। तुम सब भले ही मुझे मार कर खा जाओ, किन्तु मैं तुम्हारा कहना नहीं मान सकती ॥८॥

दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः ।
तं नित्यमनुरक्ताऽस्मि यथा सूर्यं सुवर्चला ॥ ९ ॥

भले ही मेरे स्वामी दीन दुःखिया हों और राज्यभ्रष्ट ही क्यों न हों, किन्तु मेरे लिये तो वही मेरे गुरु हैं, मेरे पूज्य हैं। मैं उनमें सदा वैसी ही प्रीति रखती हैं, जैसी प्रीति सुवर्चला की सूर्य में रहती हैं ॥९॥

यथा शची महाभागा शक्रं समुपतिष्ठति ।
अरुन्धति वसिष्ठं च रोहिणी शशिनं यथा ॥ १० ॥

महाभागा शची की इन्द्र में, अरुन्धती की वशिष्ठ में, रोहिणी चन्द्र में॥१०॥

लोपामुद्रा यथागस्त्यं सुकन्या च्यवनं यथा ।
सावित्री सत्यवन्तं च कपिलं श्रीमती यथा ॥ ११ ॥

लोपामुद्रा के अगस्त्य में, सुकन्या के च्वयन में, सावित्री के सत्यवान् में, श्रीमती के कपिल में ॥११॥

सौदासं मदयन्तीव केशिनी सगरं यथा ।
नैषधं दमयन्तीव भैमी पतिमनुव्रता ॥ १२ ॥

मदयन्ती की सौदास में, केशिनी की सगर में और भीमकुमारी दमयन्ती की निषध नरेश नल में ॥१२॥

तथाहं इक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता ।
सीताया वचनं श्रुत्वा राक्षस्यः क्रोधमूर्छिताः ॥ १३ ॥

उसी प्रकार मैं इक्ष्वाकु श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी को अपना पति समझकर उनकी अनुयायिनी हूँ। सीता जी के ये वचन सुन कर, वह सभी राक्षसियाँ बहुत क्रुद्ध हुई ॥१३॥

भर्त्सयन्ति स्म परुषैः वाक्यै रावणचोदिताः ।
अवलिनः स निर्वाक्यो हनुमान् शिंशपाद्रुमे ॥ १४ ॥

सीतां सन्तर्जयन्तीस्ता राक्षसीरश्रृणोत् कपिः ।
तमभिक्रम्य संरब्धा वेपमानां समन्ततः ॥ १५ ॥

भृशं संलिलिहुर्दीप्तान् प्रलंबान् दशनच्छदान् ।
ऊचुश्च परमक्रुद्धाः प्रगृह्याशु परश्वधान् ॥ १६ ॥

और क्रोधावेश में भर कर, वह रावण की आज्ञा से प्रेरित हो, सीता जी को बुरी तरह डांटने, धमकाने लगी। उधर हनुमान जी, उस अशोक वृक्ष पर छिपे छिपे, चुपचाप सीता को डपटती हुई उन सब राक्षसियों की बातें सुन रहे थे। वह सभी सीता जी को डराती धमकाती हुई उन्हें चारों ओर से घेर कर, बार बार अपने लंबे लंधे होंठ जीभ से चाटने लगी और अत्यन्त क्रुद्ध होकर तथा हाथों में फरसा ले कर बोलीं ॥१४-१६॥

नेयमर्हति भर्तारं रावणं राक्षसाधिपम् ।
सा भर्त्स्यमाना भीमाभी राक्षसीभिर्वरांगना ॥ १७ ॥

तू इस राक्षसराज रावण को अपने योग्य पति नहीं समझती! तो क्या तू अपने को हम लोगों के द्वारा खाने योग्य समझती है। उन भयङ्कर

प्राकृति वाली राक्षसियों द्वारा इस प्रकार डराई धमकायी गयी सुन्दरमुखी सीता ॥१७॥

सा बाष्पमपमार्जन्ती शिंशपां तामुपागमत् ।
ततस्तां शिंशपां सीता राक्षसीभिः समावृता ॥ १८ ॥

आखों से आंसू पोंछती हुई उस अशोक वृक्ष के नीचे चली गयी जहाँ हनुमान जी बैठे थे। परन्तु वहाँ भी उन राक्षसियों ने भी वहाँ आकर सीता जी को घेर लिया ॥१८॥

अभिगम्य विशालाक्षी तस्थौ शोकपरिप्लुता ।
तां कृशां दीनवदनां मलिनांबरवासिनीम् ॥ १९ ॥

वह राक्षसी उन मलिन वस्त्र धारिणी दुर्बल, दीन, शोकसागर में निमग्न, विशाल लोचना सीता जी के निटक जा कर, ॥१९॥

भर्त्सयाञ्चक्रिरे भीमा राक्षस्यस्ताः समन्ततः ।
ततस्तु विनता नाम राक्षसी भीमदर्शना ॥ २० ॥

चारों ओर से सीता माता को डराने धमकाने लगीं। उनमें भयानक आकृति वाली विनता नाम की एक राक्षसी थी ॥२०॥

अब्रवीत् कुपिताकारा कराला निर्णतोदरी ।

सीते पर्याप्तमेतावद् भर्तुः स्नेहः प्रदर्शितः ॥ २१ ॥

वह विकराल शरीर और बड़े पेट वाली राक्षसी अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहने लगी- हे सीते ! बस बहुत हुआ, तुमने अभी तक अपने पति के प्रति जितना मानवीय शिष्टाचार और प्रेम दिखलाया है, वह काफी है ॥ २१॥

सर्वत्रातिकृतं भद्रे व्यसनायोपकल्पते ।
परितुष्टास्मि भद्रं ते मानुशस्ते कृतो विधिः ॥ २२ ॥

हे भद्रे ! अति किसी बात की अच्छी नहीं होती। क्योंकि, अति का परिणाम दुःखदायी होता है। भगवान तुम्हारा भला करे। मैं तुम्हारे ऊपर अत्यंत प्रसन्न हूँ। क्योंकि, मनुष्य का कर्तव्य तूने यथाविधि निभाया है ॥२२॥

ममापि तु वचः पथ्यं ब्रुवन्त्याः कुरु मैथिलि ।
रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम् ॥ २३ ॥

अब मैं भी तुमसे जो तुम्हारे हित की बात कहती हूँ, उसे हे मैथिली! तुम्हे भी करना चाहिए। तुम्हे समस्त राक्षसों के स्वामी रावण को अपना स्वामी पति बना लेना चाहिए ॥२३॥

विक्रान्तमापतन्तं च सुरेशमिव वासवम् ।
दक्षिणं त्यागशीलं च सर्वस्य प्रियवादिनम् ॥ २४ ॥

वह बड़ा पराक्रमी, रूपवान् और इन्द्र की तरह चतुर, उदार, और सब के लिये प्रियदर्शी है ॥२४॥

मानुषं कृपणं रामं त्यक्त्वा रावणमाश्रय ।
दिव्यांगरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता ॥ २५ ॥

तुम मनुष्य और दीनहीन श्रीरामचन्द्र जी का त्याग कर, रावण का वरण कर लो और दिव्य अंगराग तथा दिव्य आभूषणों को पहन कर कर, अपना श्रृंगार करो ॥२५॥

अद्यप्रभृति लोकानां सर्वेषामीश्वरी भव ।
अग्नेः स्वाहा यथा देवी शची वेन्द्रस्य शोभने ॥ २६ ॥

और आज ही से प्राणी मात्र की स्वामिनी बन जाओ। जिस प्रकार अग्नि की भार्या स्वाहा और इन्द्र की प्राण वल्लभा शची है, उसी प्रकार हे सुन्दरी! तुम रावण की पत्नी बनकर शोभायमान बन जाओ ॥२६॥

किं ते रामेण वैदेहि कृपणेन गतायुषा ।
एतदुक्तं च मे वाक्यं यदि त्वं न करिष्यसि ॥ २७ ॥

शोभने ! तुम उस दुखिया और अल्प आयु वाले श्रीरामचन्द्र जी को ले कर क्या करोगी, मैंने तुझसे जो बातें कहीं है, यदि तू उनको नहीं मानोगी ॥२७॥

अस्मिन् मुहूर्ते सर्वास्त्वां भक्षयिष्यामहे वयम् ।
अन्या तु विकटा नाम लंबमानपयोधरा ॥ २८ ॥

तो हम सब मिल कर तुझको अभी मार कर खा जायेंगी। तदनन्तर लंबे लंबे स्तनों वाली, विकटा नाम की एक और राक्षसी ॥२८॥

अब्रवीत् कुपिता सीतां मुष्टिमुद्यम्य तर्जती ।
बहून्यप्रतिरूपाणि वचनानि सुदुर्मते ॥ २९ ॥

अनुक्रोशान् मृदुत्वाच्च सोढानि तव मैथिलि ।
न च नः करुषे वाक्यं हितं कालपुरस्कृतम् ॥ ३० ॥

क्रोध में भर और मुक्का तान कर सीता से बोली- हे दुर्मते। तेरे बहुत से अप्रिय वचन हम लोगों ने दया और नम्रता वश सहे हैं। किन्तु अब यदि तू हमारे मतनुकूल और हितकारी वचनों को नहीं मानेगी तो तेरे लिये अच्छा नहीं होगा ॥२९- ३०॥

आनीतासि समुद्रस्य पारमन्यैर्दुरासदम् ।
रावणान्तःपुरे घोरे प्रविष्टा चासि मैथिलि ॥ ३१ ॥

हे सीते! तू समुद्र के पार लाई गई है, जहाँ और कोई नहीं आ सकता और रावण के दुर्गम अन्तःपुर में तूने केवल प्रवेश ही नहीं किया है ॥३१॥

रावणस्य गृहे रुद्धा अस्माभिस्त्वभिरक्षिता ।

न त्वां शक्तः परित्रातुं अपि साक्षात् पुरन्दरः ॥ ३२ ॥

अपितु तू रावण के घर में नजरबंद है और हम लोग तेरी रखवाली कर रही हैं। मैथिलि ! श्रीरामचन्द्र जी की तो बात ही क्या है, यदि स्वयं देवराज इन्द्र भी तुझे बचाने के लिए यहाँ आ जाएँ तो तुझे बचा नहीं सकते ॥३२॥

कुरुष्व हितवादिन्या वचनं मम मैथिलि ।
अलं अश्रुनिपातेन त्यज शोकमनर्थकम् ॥ ३३ ॥

अत: हे मैथिली ! हमने तुम्हारे हित के लिए जो वचन तुमसे कहें हैं, उसे मान लो। अब रोना बंद करके इस व्यर्थ के शोक को छोड़ दो ॥ ३३ ॥

भज प्रीतिं प्रहर्षं च त्यजन्ती नित्यदैन्यताम् ।
सीते राक्षसराजेन परिक्रीड यथासुखम् ॥ ३४ ॥

राक्षसराज रावण के साथ सुखपूर्वक विहार करो। इस सदा छाई रहने वाली उदासी को दूर भगा दो और अपने ह्रदय में उल्लास को स्थान दो॥३४॥

जानीमहे यथा भीरु स्त्रीणां यौवनमध्रुवम् ।
यावन्न ते व्यतिक्रामेत् तावत् सुखमवाप्नुहि ॥ ३५ ॥

हे भीरु! तुझको यह तो ज्ञात की है कि, स्त्रियों का यौवन सदैव नहीं रहता । अत: जब तक तुम्हारा यौवन दल नहीं जाता, तब तक सुख भोग लो ॥३५॥

उद्यानानि च रम्याणि पर्वतोपवनानि च ।
सह राक्षसराजेन चर त्वं मदिरेक्षणे ॥ ३६ ॥

हे मतवाले नयनों वाली सुंदरी! तुम राक्षस राज रावण के साथ रमणीय बागों में, पर्वतों पर और उपवनों में विहार करो ॥३६॥

स्त्रीसहस्राणि ते देवि वशे स्थास्यन्ति सुन्दरि ।
रावण भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम् ॥ ३७ ॥

हे सुन्दरि! सात सहस्त्र स्त्रियां तेरे अधीन रहेंगी। अत: तू समस्त राक्षसों का भरण करने वाले, उनके स्वामी रावण को अपना पति बना लो ॥३७॥

उत्पाट्य वा ते हृदयं भक्षयिष्यामि मैथिलि ।
यदि मे व्याहृतं वाक्यं न यथावत् करिष्यसि ॥ ३८ ॥

और यदि आज तू हमारे कथनानुसार हमारे वचनों का यथावत् पालन नहीं करेगी, तो हम तेरा कलेजा निकाल कर खा जायेंगी॥३८॥

ततश्चण्डोदरी नाम राक्षसी क्रूरदर्शना ।
भ्रामयन्ती महच्छूलं इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥

तदनन्तर कुपित हो चाण्डोदरी नाम की क्रूर राक्षसी, एक बड़ा त्रिशुल घुमाती हुई बोली ॥३६॥

इमां हरिणशावाक्षीं त्रासोत्कंपपयोधराम् ।
रावणेन हृतां दृष्ट्वा दौर्हृदो मे महानयम् ॥ ४० ॥

हे राक्षसियों ! देखो, जब रावण इसको हर कर लाये थे, उस समय यह भय के मारे कांप रही थे और इसका वक्ष स्थल हिल रहा था। तब इस मृगनयनी मानव कन्या को देखकर मेरे मन में एक बड़ी इच्छा उत्पन हुई, ॥४०॥

यकृत् प्लीहं महत् पीडं हृदयं च सबन्धनम् ।
आंत्राण्यपि तथा शीर्षं खादेयमिति मे मतिः ॥ ४१ ॥

मैंने चाहा कि, मैं इसके उदर के दहिनी कोख के मांस खण्डों को तथा वक्ष स्थल को, हृदय को, हृदय के नीचे के मांस को तथा आंतो और सिर को खा जाऊँ। आज भी मेरा यही विचार है ॥४१॥

ततस्तु प्रघसा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
कण्ठमस्या नृशंसायाः पीडयामः किमास्यते ॥ ४२ ॥

तदनन्तर प्रघसा नाम की राक्षसी कहने लगी। हे राक्षसियों! यदि ऐसा है तो हम अनावश्यक यहाँ क्यों बैठी हैं आओ इस क्रूर हृदय सीता का गला घोंट डाले ॥४२॥

निवेद्यतां ततो राज्ञे मानुषी सा मृतेति ह ।
नात्र कश्चन सन्देहः खादतेति स वक्ष्यति ॥ ४३॥

और जाकर महाराज रावण को सूचना दे दें कि, वह मानुषी स्त्री मर गयी। यह सुन वह निस्सन्देह हम लोगों को इसके खा डालने की आज्ञा दे ही देंगे ॥४३॥

ततसत्वजामुखी नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत ।
विशस्येमां ततः सर्वान् समान् कुरुत पिण्डकान् ॥ ४४ ॥

विभजाम ततः सर्वा विवादो मे न रोचते ।
पेयमानीयतां क्षिप्रं माल्यं च विविधं बहु ॥ ४५ ॥

तदनन्तर अजामुखी नाम की राक्षसी बाली- मुझे तो व्यर्थ का वाद विवाद अच्छा नहीं लगता आओ इसको मार कर इसके मांस के बरावर बराबर भाग कर डालें अर्थात् हिस्से के लिये हममें झगड़ा न हो अतः पहले से ही से इसके शरीर के बराबर बरावर टुकड़े कर डालते हैं। साथ ही विविध प्रकार की पेय सामग्री तथा फूल मालाएँ इत्यादि भी प्रचुर मात्रा में माँगा ली जाएँ ॥४४-४५॥

ततः शूर्पणखा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
अजामुख्या यदुक्तं हि तदेव मम रोचते ॥ ४६ ॥

सुरा चानीयतां क्षिप्रं सर्वशोकविनाशिनी ।
मानुषं मांसमास्वाद्य नृत्यामोऽथ निकुम्भिलाम् ॥ ४७ ॥

तदनन्तर शूर्पणखा नाम की राक्षसी बोली-अजामुखी ने जो बात कही है वह मुझे भी पसंद है अर्थात मैं इसका अनुमोदन करती हूँ। अत: समस्त शोकों को नष्ट करने वाली सूरा को भी शीघ्र मँगवाना चाहिये। उसके साथ मनुष्य का मांस खा कर, हम सब निकुम्भिला देवी के समीप नृत्य करेंगी ॥४६-४७॥

एवं संभर्त्स्यमाना सा सीता सुरसुतोपमा ।
राक्षसीभिः विरूपाभिः धैर्यमुत्सृज्य रोदिति ॥ ४८॥

जब इस प्रकार देवकन्या के सामान सुन्दरी सीता को, उन भयंकर राक्षसियों ने धमकाया डराया, तब वह धैर्य छोड़ कर उच्च स्वर से रोने लगीं ॥४८॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का चौबीसवाँ सर्ग पूर्ण हुआ ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ पञ्चविंशः सर्गः पच्चीसवाँ सर्ग ॥

राक्षसीवचोऽनङ्गीकृत्य शोकसन्तप्तायाः सीताया विलापः – राक्षसियों की बात मानने से इनकार करके शोक संतप्त सीताजी का विलाप करना

तथा तासां वदन्तीनां परुषं दारुणं बहु ।
राक्षसीनामसौम्यानां रुरोद जनकात्मजा ॥ १ ॥

उन भयङ्कर राक्षसियों के इस प्रकार बहुत से कठोर वचनों के कहने पर, जानकी जी अधीर हो कर रो पड़ी ॥१॥

एवमुक्ता तु वैदेही राक्षसीभिर्मनस्विनी ।
उवाच परमत्रस्ता बाष्पगद्गदया गिरा ॥ २ ॥

उन राक्षसियों के इस प्रकार कहने पर पतिव्रतधर्म पालन में दृढ़ता पूर्वक स्थित मनस्विनी विदेह राजकुमारी सीता जी, अत्यन्त त्रस्त होकर, नेत्रों से आंसू बहती हुई गदगद वाणी से बाली ॥२॥

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति ।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥ ३ ॥

मानुषी कभी भी राक्षस की भार्या नहीं बन सकती है । तुम सब भले ही मुझे मार कर खा डालो, पर मैं तुम्हारी यह बात नहीं मान सकती ॥३॥

सा राक्षसीमध्यगता सीता सुरसुतोपमा ।
न शर्म लेभे शोकार्ता रावणेनेव भर्त्सिता ॥ ४ ॥

उस समय राक्षसियों के बीच फंसी हुई देवकन्या स्वरुप सीता को, दुःख से छुटकारा पाने का कुछ और उपाय दिखाई नहीं देता था। क्योंकि एक तो वह दुःख से विकल थीं तथा उन्हें रावण ने डराया धमकाया भी था ॥४॥

वेपते स्माधिकं सीता विशन्तीवाङ्गमात्मनः ।
वने यूथपरिभ्रष्टा मृगी कोकैरिवार्दिता ॥ ५ ॥

उस समय सीता जी थरथर काँप रही थी और मारे डर के सिकुड़ कर अपने शरीर में घुसी जाती थी। मानों अपने झुंड से अलग हुई कोई अकेली हिरनी भेड़ियों से घिरी हो ॥५॥

सा त्वशोकस्य विपुलां शाखामालम्ब्य पुष्पिताम् ।
चिन्तयामास शोकेन भर्तारं भग्नमानसा ॥ ६ ॥

वह अत्यन्त शोक से विकल तथा हताश होकर, उस वृक्ष की पुष्पित डाली को थाम कर, अपने पति श्रीरामचन्द्र जी का स्मरण करने लगी॥६॥

सा स्नापयन्ती विपुलौ स्तनौ नेत्रजलस्रवैः ।
चिन्तयन्ती न शोकस्य तदान्तमधिगच्छति ॥ ७ ॥

उस समय उसके नेत्रों से निकले हुए आंसू छल छल करते उनके पयोधरों को धो रहे थे। वह उस संकट से पार पाने का कुछ उपाय सोच रही थीं परन्तु उन्हें उस शोक सागर के पार जाने का कोई उपाय नहीं सूझता था ॥७॥

सा वेपमाना पतिता प्रवाते कदली यथा ।
राक्षसीनां भयत्रस्ता विवर्णवदनाभवत् ॥ ८ ॥

अन्त में वह थरथरा कर वायु के झोंके से गिरे हुए केले के पेड़ की तरह, ज़मीन पर गिर पड़ी और राक्षसियों के डर से उनके मुख की कान्ति फीकी पड़ गयी तथा वह उदास हो गयीं ॥८॥

तस्याः सा दीर्घविपुला वेपन्त्याः सीतया तदा ।
ददृशे कम्पिता वेणी व्यालीव परिसर्पती ॥ ९ ॥

उस समय शरीर के कांपने से जानकी जी की बड़ी लंबी और घनी चोटी भी कांपने लगी। उस समय वह हिलती हुई चोटी ऐसी दिखाई देती थी, मानों रेंगती हुई नागिन लहरा रही हो ॥९॥

सा निःश्वसन्ती शोकार्ता कोपोपहतचेतना ।
आर्ता व्यसृजदश्रूणि मैथिली विललाप च ॥ १० ॥

दुखिया जानकी शोक से अचेत होकर और श्रीराम के विरह से विकल होकर, लम्बी लम्बी सांसे लेती हुई, विलाप करके रोने लगीं ॥१०॥

हा रामेति च दुःखार्ता हा पुनर्लक्ष्मणेति च ।
हा श्वश्रुर्मम कौसल्ये हा सुमित्रेति भामिनी ॥ ११ ॥

जानकी जी विलाप करती हुई कहने लगीं - हा राम! हा लक्ष्मण ! हा मेरी सास कौशल्ये ! हा आर्ये सुमित्रे ॥११॥

लोकप्रवादः सत्योऽयं पण्डितैः समुदाहृतः ।
अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ॥ १२ ॥

संसार में पण्डितों की कही हुई यह कहावत ठीक ही है कि, बिना समय आये कोई नहीं मरता, चाहे स्त्री हो या पुरुष ॥१२॥

यत्राहमाभिः क्रूराभी राक्षसीभिरिहार्दिता ।
जीवामि हीना रामेण मुहूर्तमपि दुःखिता ॥ १३ ॥

अन्यथा श्री राम के दर्शन से वंचित तथा इन क्रूर राक्षसियों द्वारा पीड़ित होने पर भी, क्या यह सम्भव था कि, मैं यहाँ एक मुहूर्त भी जीवित रहती ॥१३॥

एषाल्पपुण्या कृपणा विनशिष्याम्यनाथवत् ।
समुद्रमध्ये नौः पूर्णा वायुवेगैरिवाहता ॥ १४ ॥

मैं अल्प पुण्या और दुखियारी, एक अनाथिनी की तरह वैसे ही नष्ट हो जाऊँगी; जैसे बोझ से लदी नाव समुद्र में वायु के झोकों से नष्ट हो जाती है ॥१४॥

भर्तारं तमपश्यन्ती राक्षसीवशमागता ।
सीदामि ननु शोकेन कूलं तोयहृतं यथा ॥ १५॥

मैं अपने पति की अनुपस्थिति में इन राक्षसियों से पीड़ित होकर और उसी प्रकार निश्चय ही नष्ट हो जाउंगी, जिस प्रकार पानी के थपेड़ों से नदी तट नष्ट हो जाता है ॥१५॥

तं पद्मदलपत्राक्षं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
धन्याः पश्यन्ति मे नाथं कृतज्ञं प्रियवादिनम् ॥ १६ ॥

जो उन कमलनयन, सिंहविक्रान्त गामी, कृतज्ञ और मधुरभाषी मेरे स्वामी के दर्शन करते हैं; वह धन्य हैं ॥१६॥

सर्वथा तेन हीनाया रामेण विदितात्मना ।
तीक्ष्णं विषमिवास्वाद्य दुर्लभं मम जीवनम् ॥ १७ ॥

उन आत्मज्ञानी श्रीरामचन्द्र जी के बिना मेरा जीना सर्वथा उसी प्रकार कठिन है। जैसे हलाहल विषपान करने वाले का जीना कठिन होता है ॥१७॥

कीदृशं तु महापापं मया देहान्तरे कृतम् ।
येनेदं प्राप्यते घोरं महादुःखं सुदारुणम् ॥ १८ ॥

पता नहीं मैंने पिछले जन्मों में कैसे पाप कर्म किये थे। जिनके फलस्वरूप मुझे यह घोर दारुण दुःख सहने पड़ रहे हैं ॥१८॥

जीवितं त्यक्तुमिच्छामि शोकेन महता वृता ।

राक्षसीभिश्च रक्ष्यन्त्या रामो नासाद्यते मया ॥ १९ ॥

इस समय मेरे ऊपर जैसी भारी विपत्ति पड़ी हुई है, उससे तो मैं अब मरना ही पसंद करती हूँ। क्योंकि इन राक्षसियों के पहरे में श्रीरामचन्द्र जी को तो मैं प्राप्त नहीं कर सकती ॥१९॥

धिगस्तु खलु मानुष्यं धिगस्तु परवश्यताम् ।
न शक्यं यत् परित्यक्तुं आत्मच्छन्देन जीवितम् ॥ २० ॥

धिक्कार है मनुष्य जीवन पर और धिक्कार है परतंत्रता पर जिसके पंजे में फँसकर मैं अपनी इच्छानुसार प्राणों का परित्याग भी नहीं कर सकती॥ २०॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
पञ्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का पच्चीसवां सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥षड्विंशः सर्गः छब्बीसवाँ अध्याय ॥

सीतायाः करुणो विलापः, स्वप्रणपरित्यागनिश्चयश्च - सीता जी का विलाप तथा अपने प्राणों को त्याग देने का निश्चय

प्रसक्ताश्रुमुखीत्येवं ब्रुवती जनकात्मजा ।
अधोगतमुखी बाला विलप्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

इस प्रकार रुदन करती हुई सीताजजी नीचे को सिर झुकाये फिर विलाप करने लगी ॥१॥

उन्मत्तेव प्रमत्तेव भ्रान्तचित्तेव शोचती ।
उपावृत्ता किशोरीव विवेष्टन्ती महीतले ॥ २ ॥

भ्रम मिटाने के लिये ज़मीन पर लोटने वाली घोड़ी की तरह, असहाय जानकी जी उन्मत, असावधान, अथवा अनवस्थिता स्त्री के समान

तरह लोटने लगी तथा उस अवस्था में उन सरलहृदया सीता जी ने इस प्रकार विलाप करना प्रारम्भ किया: ॥२॥

राघवस्य प्रमत्तस्य रक्षसा कामरूपिणा ।
रावणेन प्रमथ्याहमानीता क्रोशती बलात् ॥ ३ ॥

यह कामरूपी राक्षस श्रीरामचन्द्र जी को धोखा देकर, मुझ रोती, चिल्लाती अबला को बलपूर्वक हर कर यहां ले आया ॥३॥

राक्षसीवशमापन्ना भर्त्स्यमाना च दारुणम् ।
चिन्तयन्ती सुदुःखार्ता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ४ ॥

अब यहाँ आ कर मैं राक्षसियों के वश में पड़ कर, नित्य इनकी कठोर धमकियाँ सुनती और सहती हूँ। इस प्रकार अत्यंत दुखी एवं चिंतित होकर मैं अब जीवित नहीं रहना चाहती ॥४॥

नहि मे जीवितेनार्थो नैवार्थैर्न च भूषणैः ।
वसन्त्या राक्षसीमध्ये विना रामं महारथम् ॥ ५ ॥

उन महावलबान श्रीरामचन्द्र जी के बिना, राक्षसियों के बीच रह कर, अब न तो मुझे अब जीवित रहने से ही कुछ प्रयोजन है, न मुझे धन दौलत की आवश्यकता हैं और न ही आभूषणों से ही कुछ काम है। ॥५॥

अश्मसारमिदं नूनं अथवाप्यजरामरम् ।
हृदयं मम येनेदं न दुःखेनावशीर्यते ॥ ६ ॥

अवश्य ही मेरा ह्रदय लोहे का बना हुआ है, अथवा अजर- अमर है, तभी तो इतना दुःख पड़ने पर भी यह टुकड़े टुकड़े नहीं हो जाता ॥६॥

धिङ्मामनार्यामसतीं याहं तेन विना कृता ।
मुहूर्तमपि जीवामि जीवितं पापजीविका ॥ ७ ॥

मुझ दुष्टात्मा और अपतिव्रता को धिक्कार है, जो मैं श्रीरामचन्द्र जी के बिना मुहूर्त भर भी जीवित हूँ ॥७॥

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम् ।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम् ॥ ८ ॥

उस निशाचर रावण को तो अपने बाएं पैर से भी नहीं छुऊँगी फिर उस दुष्ट को चाहने की बात करना तो दूर की बात है ॥८॥

प्रत्याख्यातं न जानाति नात्मानं नात्मनः कुलम् ।
यो नृशंसस्वभावेन मां प्रार्थयितुमिच्छति ॥ ९ ॥

वह न तो मेरे मना करने पर ही कुछ ध्यान देता है, न अपने और न अपने कुल का ही कुछ मान रखता है है। वह तो अपने क्रूर कामी

स्वभाव के वशवर्ती होकर बारंबार केवल मुझे प्राप्त करने का ही विचार करता है। ॥९॥

छिन्ना भिन्ना प्रभिक्ता वा दीप्ता वाग्नौ प्रदीपिता ।
रावणं नोपतिष्ठेयं किं प्रलापेन वश्चिरम् ॥ १० ॥

राक्षसियों ! तुम्हारे व्यर्थ आलाप से मैं प्रभावित होने नहीं हूँ, चाहे मेरे शरीर के दो टुकड़े कर डालो, चाहे मुझे मसल डालो, चाहे मेरे शरीर की अनेकों टुकड़े अलग अलग कर दो और चाहे मेरे समूचे अंग को जलती आग में झोंक दो; किन्तु मैं रावण की हो कर नहीं रहूँगी ॥१०॥

ख्यातः प्राज्ञः कृतज्ञश्च सानुक्रोशश्च राघवः ।
सद्वृत्तो निरनुक्रोशः शङ्के मद्भाग्यसंक्षयात् ॥ ११ ॥

श्रीरामचन्द्र जी विख्यात, दोषों में भी गुणों को देखने वाले, कृतज्ञ, दयालु और सदाचारी हैं। किन्तु मैं समझ नहीं पा रही, इस समय वह वे ऐसे निष्ठुर क्यों हो गये हैं। हो न हो, यह मेरे ही भाग्य का दोष है ॥११॥

राक्षसानां जनस्थाने सहस्राणि चतुर्दश ।
एनैकेन निरस्तानि स मां किं नाभिपद्यते ॥ १२ ॥

अन्यथा जिन्होंने जनस्थान में अकेले चौदह हज़ार राक्षसों का वध कर डाला, क्या वह मेरी रक्षा नहीं करेंगे? ॥१२॥

निरुद्धा रावणेनाहमल्पवीर्येण रक्षसा ।
समर्थः खलु मे भर्ता रावणं हन्तुमाहवे ॥ १३ ॥

इस अल्प बल वाले रावण ने मुझे यहाँ ला कर बंदी बना रखा है; परन्तु निश्चय ही मेरे पति श्रीरामचन्द्र, युद्ध में रावण का वध करने में समर्थ हैं ॥१३॥

विराधो दण्डकारण्ये येन राक्षसपुङ्गवः ।
रणे रामेण निहतः स मां किं नाभिपद्यते ॥ १४ ॥

जिन्होंने दंडक आरण्य में राक्षसोत्तम विराध को मार डाला, वह श्रीरामचन्द्र क्या मेरा उद्धार नहीं करेंगे ॥१४॥

कामं मध्ये समुद्रस्य लङ्केयं दुष्प्रधर्षणा ।
न तु राघवबाणानां गतिरोधो भविष्यति ॥ १५ ॥

यद्यपि इस लंका के अत्यंत विशाल समुद्र के बीच में होने के कारण इसमें बाहर से किसी का आना सहज नहीं है, तब भी श्रीरामचन्द्र जी के बाणों की गति को कौन रोक सकता है ॥१५॥

किं तु तत्कारणं येन रामो दृढपराक्रमः ।
रक्षसापहृतां भार्यां इष्टां यो नाभिपद्यते ॥ १६ ॥

न जाने क्या कारण है कि श्रीरामचन्द्र जी सुदृढ़ पराक्रमी हो कर भी, राक्षस द्वारा अपहृत हुई अपनी प्यारी पत्नी का उद्धार नहीं करते? ॥१६॥

इहस्थां मां न जानीते शङ्के लक्ष्मणपूर्वजः ।
जानन्नपि स तेजस्वी धर्षणां मर्षयिष्यति ॥ १७ ॥

इसका कारण यही हो सकता है कि, कदाचित् लक्ष्मण के ज्येष्ठ भाई श्रीरामचन्द्र को अभी यह मालूम नहीं हो पाया है कि, मैं लंका में बंदी हूँ। यदि वह यह जानते होते, तो क्या ऐसे तेजस्वी हो कर, वह इस प्रकार का अपमान कभी सह सकते थे ॥१७॥

हृतेति मां योऽधिगत्य राघवाय निवेदयेत् ।
गृध्रराजोऽपि स रणे रावणेन निपातितः ॥ १८ ॥

जो जटायु रावण द्वारा मेरे अपहृत होने का जाने का संवाद श्रीरामचन्द्र जी को दे सकता था; उस गृधराज जटायु को भी तो रावण ने युद्ध में मार डाला ॥१८॥

कृतं कर्म महत् तेन मां तथाभ्यवपद्यता ।
तिष्ठता रावणवधे वृद्धेनापि जटायुषा ॥ १९ ॥

जटायु ने बहुत बड़ा पुरुषार्थ किया, जो उन्होंने वृद्ध हो कर भी मुझे छुड़ाने के लिये रावण से द्वन्द्वयुद्ध किया ॥१९॥

यदि मामिह जानीयाद् वर्तमानां हि राघवः ।
अद्य बाणैरभिक्रुद्धः कुर्याल्लोकमराक्षसम् ॥ २० ॥

यदि श्रीरामचन्द्र जी को मेरे यहां रहने का पता लग जाए, तो वह आज ही क्रुद्ध होकर सारे लोकों को अपने वाणों से राक्षसशून्य कर डालें ॥२०॥

निर्दहेच्च पुरीं लङ्कां निर्दहेच्च महोदधिम् ।
रावणस्य च नीचस्य कीर्तिं नाम च नाशयेत् ॥ २१ ॥

वह समुद्र को सुखा कर लंका को भस्म कर डालें और इस नीच रावण के नाम और यश का भी नाश कर डालते ॥२१॥

ततो निहतनाथानां राक्षसीनां गृहे गृहे ।
यथाहमेवं रुदती तथा भूयो न संशयः ॥ २२ ॥

तब तो निसंदेह अपने पतियों का संहार हो जाने पर सभी राक्षासियां, लंका के प्रत्येक घर में, उसी तरह विलाप करेंगी जैसे, आज मैं कर रही हूँ ॥२२॥

अन्विष्य रक्षसां लङ्कां कुर्याद् रामः सलक्ष्मणः ।
न हि ताभ्यां रिपुर्दृष्टो मुहूर्तमपि जीवति ॥ २३ ॥

मुझे विश्वास है कि, लंका का पता लगा कर, श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण शत्रु का नाश अवश्य करेंगे। क्योंकि उनके सामने पड़ने पर उनका शत्रु एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता ॥२३॥

चिताधूमाकुलपथा गृध्रमण्डलमण्डिता ।
अचिरेणैव कालेन श्मशानसदृशी भवेत् ॥ २४ ॥

अब थोड़े ही समय में यह लंका, चिता के धुंए से पूर्ण और गिद्धों के दलों से युक्त हो कर, श्मशान जैसी बन जायगी ॥२४॥

अचिरेणैव कालेन प्रप्स्याम्येनं मनोरथम् ।
दुष्प्रस्थानोऽयमाभाति सर्वेषां वो विपर्ययः ॥ २५ ॥

थोड़े ही दिनों बाद मेरा यह मनोरथ सफल होगा। क्योंकि जहाँ सब कुमार्गगामी होते हैं; वहां नाश अवश्य ही होता है ॥२५॥

यादृशानि तु दृश्यन्ते लङ्कायामशुभानि तु ।
अचिरेणैव कालेन भविष्यति हतप्रभा ॥ २६ ॥

इस समय लंका में जैसे अशकुन दिखाई दे रहे हैं, उनको देखते हुए ऐसा लगता है कि अतिशीघ्र यह लंका पुरी निस्तेज अर्थात् नष्ट हो जायगी ॥२६॥

नूनं लङ्का हते पापे रावणे राक्षसाधमे ।

शोषमेष्यति दुर्धर्षा प्रमदा विधवा यथा ॥ २७ ॥

इस पापात्मा रावण के मारे जाने पर निस्सन्देह यह लंका दुर्धर्ष होने पर भी विधवा स्त्रो की तरह नष्ट हो जाएगी ॥ २७ ॥

पुण्योत्सवसमृद्धा च नष्टभर्त्री सराक्षसा ।
भविष्यति पुरी लङ्का नष्टभर्त्री यथाङ्गना ॥ २८ ॥

यद्यपि इस समय इस लंका नगरी में नित्य ही उत्तम उत्सव होते हैं, तथापि जब रावण मारा जायगा तब यह विधवा स्त्री के समान श्री हीन हो जाएगी॥ २८॥

नूनं राक्षसकन्यानां रुदन्तीनां गृहे गृहे ।
श्रोष्यामि नचिरादेव दुःखार्तानामिह ध्वनिम् ॥ २९ ॥

निश्चय ही लंका के घर घर में राक्षस कन्यायें दुःख से आतुर होकर रोएंगी और मैं शीघ्र ही उन दुःखियारि कन्याओं की क्रंदन ध्वनि सुनूंगी ॥२९॥

सान्धकारा हतद्योता हतराक्षसपुङ्गवा ।
भविष्यति पुरी लङ्का निर्दग्धा रामसायकैः ॥ ३० ॥

जब श्रीरामचन्द्र के बाण इस लंका को भस्म कर डालेंगे, तब यह अन्धकारमय, हतप्रभ और वीर राक्षसों से शून्य हो जायगी ॥३०॥

यदि नाम स शूरो मां रामो रक्तान्तलोचनः ।
जानीयाद् वर्तमानां यां राक्षसस्य निवेशने ॥ ३१ ॥

यह तभी संभव होगा जब अरुणनयन वीर श्रीरामचन्द्र के पास, रावण के अंत:पुर में मेरे बंदी होने का संवाद उन तक पहुँच जाए ॥३१॥

अनेन तु नृशंसेन रावणेनाधमेन मे ।
समयो यस्तु निर्दिष्टस्तस्य कालोऽयमागतः ॥ ३२ ॥

हे राक्षसियों! इस दुष्ट और अधम रावण ने मेरे लिये जो अवधि निश्चित की थी, वह भी अब पूरी होने वाली है ॥३२॥

अकार्यं ये न जानन्ति नैर्ऋताः पापकारिणः ।
अधर्मात् तु महोत्पातो भविष्यति हि साम्प्रतम् ॥ ३३ ॥

यह पापी राक्षस, धर्म अधर्म नहीं जानते, अत: मेरे वध रूपी महापाप से, अब बड़ा भारी उत्पात होने वाला है ॥३३॥

नैते धर्मं विजानन्ति राक्षसाः पिशिताशनाः ।
ध्रुवं मां प्रातराशार्थं राक्षसः कल्पयिष्यति ॥ ३४ ॥

इन राक्षसों को धर्म तत्व का कुछ भी ज्ञान नहीं है अत: रावण निश्चय ही जैसा कि वह कह गया है अपने भोजन के लिये मेरे शरीर के टुकड़े टुकड़े करवायेगा ॥३४॥

साहं कथं करिष्यामि तं विना प्रियदर्शनम् ।
रामं रक्तान्तनयनमपश्यन्ती सुदुःखिता ॥ ३५ ॥

अत: मैं बिना श्रीरामचन्द्र जी के क्या करूँगी।अरुण नयन श्रीरामचन्द्र जी को देखे बिना मुझे बड़ा दुःख हो रहा है ॥३५॥

यदि कश्चित्प्रदाता में विश्स्याद्य भवेदिह ।
क्षिप्रं वैवस्वतं देवं पश्येयं पतिना विना ॥ ३६ ॥

यदि इस समय कोई मुझे विष दे देता ; तो मैं अपने पति के वियोग में शीघ्र ही यमराज के दर्शन करती ॥३६॥

नाजानाज्जीवतीं रामः स मां भरतपूर्वजः ।
जानन्तौ तु न कुर्यातां नोर्व्यां हि परिमार्गणम् ॥ ३७ ॥

हा! श्रीरामचन्द्र जी को यह नहीं मालूम कि, मैं अभी जीवित हूँ; नहीं तो वे मेरे लिये सारी पृथिवी खोज डालते ॥३७॥

नूनं ममैव शोकेन स वीरो लक्ष्मणाग्रजः ।

देवलोकमितो यातः त्यक्त्वा देहं महीतले ॥ ३८ ॥

मुझे तो यह निश्चय जान पड़ता है कि, मेरे वियोगजन्य शोक से पीड़ित होकर, इस पृथिवी पर अपना शरीर छोड़कर, वह लक्ष्मण के बड़े भाई वीर श्रीरामचन्द्र जी परलोक सिधार गये ॥३८॥

धन्या देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
मम पश्यन्ति ये वीरं रामं राजीवलोचनम् ॥ ३९ ॥

स्वर्गलोक वासी वह देवता, गन्धर्व, सिद्ध और देवर्षि धन्य हैं, जो मेरे कमलनयन स्वामी श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन पाते होंगे ॥३९॥

अथवा नहि तस्यार्थो धर्मकामस्य धीमतः ।
मया रामस्य राजर्षेर्भार्यया परमात्मनः ॥ ४० ॥

अथवा केवल धर्म की चाहना रखने वाले, बुद्धिमान, उत्कष्ट स्वभाव वाले एवं राजर्षि श्रीरामचन्द्र को मुझ भार्या से कोई प्रयोजन नहीं हैं, इसीलिए वह मेरी सुध नहीं ले रहे हैं ॥४०॥

दृश्यमाने भवेत् प्रीतिः सौहृदं नास्त्यदृश्यतः ।
नाशयन्ति कृतघ्नास्तु न रामो नाशयिष्यति ॥ ४१ ॥

क्योंकि, सुहृदय भाव तथा प्रीति तो उनसे हुआ करती है जो अपनी दृष्टि के सामने रहते हैं। जो आँखों से ओझल होते हैं उन पर लोगों

का स्नेह नहीं रहता। परन्तु यह संभव नहीं है क्योंकि यह रीति तो कृतघ्नों की होती है। श्रीरामचन्द्र के मन में पीठ पीछे भी मेरी प्रीति कभी नष्ट नहीं होगी ॥४१ ॥

किं वा मय्यगुणाः केचित् किं वा भाग्यक्षयो हि मे ।
या हि सीता वरार्हेण हीना रामेण भामिनी ॥ ४२ ॥

हाँ यह अवश्य हो सकता है कि, मुझमें कोई दुर्गुण हों या मेरे सौभाग्य का अन्त ही आ पहुँचा हो। अन्यथा माता सीता जैसे श्रेष्ठ पदार्थ को अंगीकार करने वाले श्रीरामचन्द्र जी का मुझसे वियोग ही क्यों होता ॥४२॥

श्रेयो मे जीवितान्मर्तुं विहीनाया महात्मना ।
रामादक्लिष्टचारित्राच्छूराच्छत्रुनिबर्हणात् ॥ ४३ ॥

श्रेष्ठचरित्र बाले, महाबली, शत्रुहन्ता महात्मा श्रीरामचन्द्र जी से जब मेरा वियोग हो गया। तब मेरे लिये ऐसे दुःख भरे जीने से मर जाना ही अच्छा है ॥४३॥

अथवा न्यस्तशस्त्रौ तौ वने मूलफलाशिनौ ।
भ्रातरौ हि नरश्रेष्ठौ संवृत्तौ वनगोचरौ ॥ ४४ ॥

अथवा यह भी हो सकता है कि, वे दोनों भाई शस्त्र त्याग कर फल मूल खा कर और मुनिवृत्ति धारण कर, वन में विचरण करते हों ॥४४॥

अथवा राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ।
छद्मना घातितौ शूरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४५ ॥

अथवा दुष्ट आत्मा राक्षसराज रावण ने उन दोनों भाई राम लक्ष्मण को धोखे से मरवा डाला हो ॥४५॥

साहमेवंविधे काले मर्तुमिच्छामि सर्वतः ।
न च मे विहितो मृत्युरस्मिन् दुःखेऽतिवर्तति ॥ ४६ ॥

अत: ऐसे संकट के समय मैं सभी प्रकार से अपने जीवन का अंत कर देने की इच्छा रखती हूँ । किन्तु ऐसे दुःख के समय में भी मेरी मृत्यु मेरे भाग्य में नहीं लिखी है ॥४६॥

धन्याः खलु महात्मानो मुनयः सत्यसम्मताः ।
जितात्मानो महाभागा येषां न स्तः प्रियाप्रिये ॥ ४७ ॥

निश्चय ही वे पापरहित जितेन्द्रिय महाभाग मुनिगण धन्य हैं, जिनका न तो कोई प्रिय (मित्र) है और न ही अप्रिय (शत्रु) है अर्थात् जो रागद्वेष से परे हैं ॥४७॥

प्रियान्न संभवेद् दुःखमप्रियादधिकं भवेत् ।
ताभ्यां हि ते वियुज्यन्ते नमस्तेषां महात्मनाम् ॥ ४८ ॥

जिनको अपने किसी प्रियजन के वियोग से न तो कभी दुःखी होना पड़ता और न किसी अप्रिय का संयोग होने पर कष्ट का अनुभव होता है। जो इन दोनों अर्थात् प्रिय-अप्रिय, रागद्वेष से छूट गये हैं, उन महात्माओं को मेरा प्रणाम है ॥४८॥

साहं त्यक्ता प्रियेणैव रामेण विदितात्मना ।
प्राणांस्त्यक्ष्यामि पापस्य रावणस्य गता वशम् ॥ ४९ ॥

एक तो उन आत्मज्ञानी प्यारे श्रीराम से मैं बिछुड़ गयी हूँ और दूसरे मैं पापी रावण के चंगुल में आ फंसी हूँ -अतः अब मैं इन प्राणों का परित्याग कर दूँगी ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का छब्बीसवां सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥सप्तविंशः सर्गः सत्ताईसवाँ सर्गः ॥

त्रिजटायाः स्वप्नस्तत्र रक्षसां विनाशस्य श्रीराघवविजयस्य च सूचनम् - त्रिजटा द्वारा अपने स्वप्न का वर्णन, रावण के विनाश तथा श्री राम के विजय की सूचना

इत्युक्ताः सीतया घोरं राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः ।
काश्चिज्जग्मुस्तदाख्यातुं रावणस्य दुरात्मनः ॥ १ ॥

सीताजी की यह बातें सुनकर, वह राक्षसी बहुत कुपित हुईं और उनमें से कोई कोई तो इन बातों को कहने के लिये बलवान रावण के पास चली गयीं ॥ १॥

ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यो भीमदर्शनाः ।
पुनः परुषमेकार्थमनर्थार्थमथाब्रुवन् ॥ २ ॥

और जो रह गयीं, वह भयंकर रूप वाली राक्षसियां, सीताजी के पास जाकर पूर्ववत् कठोर और निंदनीय वचन कहने लगी ॥२॥

अद्येदानीं तवानार्ये सीते पापविनिश्चये ।
राक्षस्यो भक्षयिष्यन्ति मांसमेतद् यथासुखम् ॥ ३ ॥

वह बोली, हे पापिन ! हे दुर्बुधे ! आज अभी यह सभी राक्षसियों मजे से तेरे मांस को खा डालेंगी ॥३॥

सीतां ताभिरनार्याभिर्दृष्ट्वा सन्तर्जितां तदा ।
राक्षसी त्रिजटा वृद्धा प्रबुद्धा वाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥

इन सब दयारहित राक्षसियों को सीता जी के प्रति कठोर वचन कहते देख, त्रिजटा नामक एक वृद्धा राक्षसी, जो अभी भी निद्रा से जागी थी, लेटे लेटे ही कहने लगी॥४॥

आत्मानं खादतानार्या न सीतां भक्षयिष्यथ ।
जनकस्य सुतामिष्टां स्नुषां दशरथस्य च ॥ ५ ॥

अरी दुष्टाओं! तुम अपने आपको खाओ तो भले ही खा जाओ, परन्तु जनक की दुलारी और महाराज दशरथ की बहू सीता को, तुम नहीं खा सकती ॥५॥

स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः ।
राक्षसानामभावाय भर्तुरस्या भवाय च ॥ ६ ॥

क्योंकि आज मैंने एक बड़ा भयंकर और रोमाञ्चकारी स्वप्न देखा है। जिसका फल है, राक्षसों का विनाश और सीता के पति श्री रामचन्द्र की विजय ॥६॥

एवमुक्तास्त्रिजटया राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः ।
सर्वा एवाब्रुवन् भीताः त्रिजटां तामिदं वचः ॥ ७ ॥

त्रिजटा के ऐसे वचन सुनकर उन राक्षसियों का क्रोध दूर हो गया और वह सभी भयभीत होकर त्रिजटा से यह बोली ॥ ७॥

कथयस्व त्वया दृष्टः स्वप्नोऽयं कीदृशो निशि ।
तासां श्रुत्वा तु वचनं राक्षसीनां मुखोद्गतम् ॥ ८ ॥

उवाच वचनं काले त्रिजटा स्वप्नसंश्रितम् ।
गजदन्तमयीं दिव्यां शिबिकामन्तरिक्षगाम् ॥ ९ ॥

अरी ! बताओ तो सही, तुमने रात को कैसा स्वप्न देखा है। जब उन राक्षसियों ने इस प्रकार पूछा, तब त्रिजटा उनको अपने स्वप्न का वृत्तान्त बतलाने लगी। वह बोली, मैंने स्वप्न में देखा है कि, हाथीदांत की बनी और आकाशचारिणी पालकी में ॥८-९॥

युक्तां हंससहस्रेण स्वयमास्थाय राघवः ।
शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन समागतः ॥ १० ॥

जिसमें सहस्रो हंस जुते हुए हैं; श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण सहित, सफेद वस्त्र और सफेद पुष्पमालाएँ पहने हुए बैठे हैं और लंका में पधारे हैं।॥१०॥

स्वप्ने चाद्य मया दृष्टा सीता शुक्लाम्बरावृता ।
सागरेण परिक्षिप्तं श्वेत पर्वतमास्थिता ॥ ११ ॥

आज स्वप्न में मैंने सीताजी को सफेद साड़ी पहने हुए और समुद्र से घिरे हुए एक सफेद पर्वत के ऊपर बैठे हुए देखा है ॥११॥

रामेण सङ्गता सीता भास्करेण प्रभा यथा ।
राघवश्च पुनर्दृष्टश्चतुर्दन्तं महागजम् ॥ १२ ॥

आरूढः शैलसङ्काशं चकास सह लक्ष्मणः ।
ततस्तौ नरशार्दूलो दीप्यमानौ स्वतेजसा ॥ १३ ॥

उस पर्वत के ऊपर श्रीरामचन्द्र जी के साथ सीता जी वैसे ही बैठी हैं, जैसे सूर्य के साथ प्रभा विद्यमान होती है। फिर मैंने देखा कि, श्रीरामचन्द्र जी चार दांतों वाले और पर्वत के समान विशाल एक गजराज की पीठ पर लक्ष्मण सहित सवार होकर शोभायमान हो रहे हैं। फिर देखा है कि, वह दोनों नरसिंह, जो अपने तेज से दमक रहे हैं ॥१२-१३॥

शुक्लमाल्याम्बरधरौ जानकीं पर्युपस्थितौ ।
ततस्तस्य नगस्याग्रे ह्याकाशस्थस्य दन्तिनः ॥ १४ ॥

और सफेद वस्त्रों और सफेद फूल की मालाओं को पहने हुए जानकी जी के निकट आये हैं। फिर देखा कि, उस पर्वत के शिखर पर आकाश में खड़े हाथी के ऊपर ॥१४॥

भर्त्रा परिगृहीतस्य जानकी स्कन्धमाश्रिता ।
भर्तुरङ्कात् समुत्पत्य ततः कमललोचना ॥ १५ ॥

जानकी जी भी सवार हो गई हैं। उस गज को इनके पति श्रीरामचन्द्र जी पकड़े हुए हैं। तदनन्तर कमलनयनी जानकी अपने पति के अंक से उछती हैं। उस समय मैंने देखा कि,॥ १५॥

चन्द्रसूर्यौ मया दृष्टा पाणिभ्यां परिमार्जती ।
ततस्ताभ्यां कुमाराभ्यामास्थितः स गजोत्तमः ॥ १६ ॥

सीतया च विशालाक्ष्या लङ्काया उपरि स्थितः ।
पाण्डुरर्षभयुक्तेन रथेनाष्टयुजा स्वयम् ॥ १७ ॥

जानकी जी सूर्य और चन्द्रमा को अपने दोनों हाथों से पोंछ रही है अर्थात उन पर हाथ फेर रही हैं। तदनन्तर विशाल लोचना सीता जी सहित उन दोनों राजकुमारों को अपनी पीठ पर चढ़ा कर वह उत्तम

गज आकर लंका के ऊपर ठहर गया है। फिर देखा कि, आठ सफ़ेद बैलों से जुटे हुए रथ पर ॥१६-१७॥

इहोपयातः काकुत्स्थः सीतया सह भार्यया ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह वीर्यवान् ॥ १८ ॥

आरूढ़ होकर काकुत्स्थ कुल भूषण श्री राम स्वयं आप और अपनी भार्या सीता को साथ ले यहाँ पधारे हैं। फिर बलवान श्रीरामचन्द्र, अपने भाई लक्ष्मण और भार्या सीता सहित, ॥१८॥

आरुह्य पुष्पकं दिव्यं विमानं सूर्यसन्निभम् ।
उत्तरां दिशमालोच्य प्रस्थितः पुरुषोत्तमः ॥ १९॥

सूर्य की तरह दमकते हुए पुष्पक विमान पर सवार होकर, उत्तर की ओर जाते हुए दिखाई दे रहे हैं ॥१९॥

एवं स्वप्ने मया दृष्टो रामो सूर्य सन्निभम ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह भार्यया ॥ २० ॥

इस प्रकार स्वप्न में मैंने अपनी पत्नी सीता सहित विष्णु भगवान् के सदृश्य पराक्रमी श्रीरामचन्द्र को तथा उनके भाई लक्ष्मण के दर्शन किये हैं ॥२०॥

न हि रामो महातेजाः शक्यो जेतुं सुरासुरैः ।

राक्षसैर्वापि चान्यैर्वा स्वर्गः पापजनैरिव ॥ २१ ॥

जैसे पापियों के लिये स्वर्ग में जाना असम्भव है, वैसे ही देव, दानव अथवा राक्षसों के लिये श्रीरामचन्द्र को जीतना असम्भव है ॥२१॥

रावणश्च मया दृष्टो मुण्डस्तैलसमुक्षितः ।
रक्तवासाः पिबन्मत्तः करवीरकृतस्रजः ॥ २२ ॥

मैंने रावण को भी स्वप्न में देखा है कि, वह तेल में डूबा हुआ जमीन पर लोट रहा है। शराब पिये उन्मत्त हुआ, लाल कपड़े और कनेर के फूलों की माला पहने हुए ॥२२॥

विमानात् पुष्पकादद्य रावणः पतितः क्षितौ ।
कृष्यमाणः स्त्रिया मुण्डो दृष्टः कृष्णाम्बरः पुनः ॥ २३ ॥

पुष्पक विमान से रावण पृथिवी पर आ गिरा है। फिर देखा है कि, उसको पकड़ कर स्त्रियां खींच रही हैं। उसका सिर गंजा है और वह काले कपड़े पहने हुए है ॥२३॥

रथेन खरयुक्तेन रक्तमाल्यानुलेपनः ।
पिबंस्तैलं हसन्नृत्यन् भ्रान्तचित्ताकुलेन्द्रियः ॥ २४ ॥

वह लाल माला पहने और लालचन्दन लगाये गधों के रथ में बैठा है। फिर देखा है कि, वह तेल पीता हुआ हंस और नाच रहा है और भ्रांत चित्त होकर विकल हो रहा है ॥२४॥

गर्दभेन ययौ शीघ्रं दक्षिणां दिशमास्थितः ।
पुनरेव मया दृष्टो रावणो राक्षसेश्वरः ॥ २५ ॥

पतितोऽवाक्शिरा भूमौ गर्दभाद् भयमोहितः ।
सहसोत्थाय सम्भ्रान्तो भयार्तो मदविह्वलः ॥ २६ ॥

और गधे पर सवार होकर जल्दी जल्दी दक्षिण की ओर जा रहा है। फिर मैंने राक्षसराज रावण को देखा कि, वह गधे पर से नीचे मुख के बल भूमि पर गिर पड़ा है और भयभीत होकर विकल हो रहा है। फिर तुरन्त उठ कर विकल होता हुआ, भयभीत और मतवाला ॥२५-२६॥

उन्मत्तरूपो दिग्वासा दुर्वाक्यं प्रलपन् बहु ।
दुर्गन्धं दुःसहं घोरं तिमिरं नरकोपमम् ॥ २७ ॥

रावण, पागलों की तरह नग्न होकर, बार बार दुर्वाक्य कहता हुआ प्रलाप कर रहा है। दुस्सह दुर्गन्ध से युक्त, भयङ्कर अन्धकार से व्याप्त नरक की तरह ॥ २७॥

मलपङ्कं प्रविश्याशु मग्नस्तत्र स रावणः ।

कण्ठे बद्ध्वा दशग्रीवं प्रमदा रक्तवासिनी ॥ २८ ॥

काली कर्दमलिप्ताङ्गी दिशं याम्यां प्रकर्षति ।
एवं तत्र मया दृष्टः कुम्भकर्णौ महाबलः ॥ २९॥

मल के कीचड़ में जा कर डूब गया है। फिर देखा कि, लाल वस्त्र पहिने हुए निकटाकार कोई स्त्री जिसके शरीर में कीचड़ लपटी हुई है, गले में रस्सी बांध रावण को दक्षिण की ओर खींच कर लिये जा रही है। इसी प्रकार मैंने निशाचर कुम्भकर्ण को भी देखा है ॥२८-२९॥

रावणस्य सुताः सर्वे मुण्डास्तैलसमुक्षिताः ।
वराहेण दशग्रीवः शिशुमारेण चेन्द्रजित् ॥ ३० ॥

रावण के समस्त पुत्रों को सिर गंजा कराए हुए और तेल में डूबे हुए देखा है। फिर मैंने यह भी देखा की रावण सूअर पर, मेघनाद को सूंस पर ॥३०॥

उष्ट्रेण कुम्भकर्णश्च प्रयातो दक्षिणां दिशम् ।
एकस्तत्र मया दृष्टः श्वेतच्छत्रो विभीषणः ॥ ३१ ॥

और कुम्भकर्ण ऊँट पर सवार हो कर दक्षिण दिशा की ओर जा रहे हैं। मैंने केवल विभीषण को सफेद छत्र ताने, ॥३१॥

शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्नृत्तगीतैरलङ्कृतः ॥ ३२ ॥

सफेद फूलों को माला तथा सफेद वस्त्र धारण किये और सफेद सुगन्धित चन्दन लगाये हुए देखा है और देखा है कि उनके सामने शंख, दुन्दभी बज रही हैं और नृत्य गान हो रहा है ॥३२॥

आरुह्य शैलसङ्काशं मेघस्तनितनिःस्वनम् ।
चतुर्दन्तं गजं दिव्यमास्ते तत्र विभीषणः ॥ ३३ ॥

फिर विभीषण पर्वत के समान आकार वाले मेघ की तरह गर्जने वाले चार दांतों वाले दिव्य हाथी पर सवार हैं ॥३३॥

चतुर्भिः सचिवैः सार्धं वैहायसमुपस्थितः ।
समाजश्च मया वृत्तो गीतवादित्रनिःस्वनः ॥ ३४ ॥

उनके साथ उनके द्वार मंत्री हैं और वह प्रकाशमार्ग में स्थित है। राजसभा में मैंने गाना बजाना होते हुए देखा है ॥३४॥

पिबतां रक्तमाल्यानां रक्षसां रक्तवाससाम् ।
लङ्कां चेयं पुरी रम्या सवाजिरथकुञ्जरा ॥ ३५ ॥

और देखा है कि, लंकावासी समस्त राक्षस मद पी रहे हैं, लाल फूलों की मालाएँ और लाल रंग के ही वस्त्र धारण किए हुए हैं। फिर मैंने

देखा कि, यह रमणीक लंकापुरी घोड़ों, रथों और हाथियों सहित ॥३५॥

सागरे पतिता दृष्टा भग्नगोपुरतोरणा ।
लङ्का दृष्टा मया स्वप्ने रावणेनाभिरक्षिता ॥ ३६ ॥

दग्धा रामस्य दूतेन वानरेण तरस्विना ।
पीत्वा तैलं प्रमत्ताश्च प्रहसन्त्यो महास्वनाः ॥ ३७॥

लङ्कायां भस्मरूक्षायां सर्वा राक्षसयोषितः ।
कुम्भकर्णादयश्चेमे सर्वे राक्षसपुङ्गवाः ॥ ३८ ॥

समुद्र में डूब गयी है और उसके गोपुरद्वार और तोरणद्वार टूट फूट गये हैं। फिर मैंने स्वप्न में देखा है कि, रावण द्वारा रक्षित लंका, किसी बलवान श्रीरामचन्द्र जी के दूत वानर ने जला कर भस्म कर डाली है। राक्षसों की स्त्रियों को मैंने देखा है कि, वह शरीर में भस्म लगाये तेल पी रही हैं और मतवाली होकर इस लंका में बड़े ज़ोर से हँस रही हैं। फिर कुम्भकर्ण आदि यहां के प्रधान प्रधान समस्त राक्षस ॥३६-३८॥

रक्तं निवसनं गृह्य प्रविष्टा गोमयहृदम् ।
अपगच्छत पश्यध्वं सीतामाप्नोति राघवः ॥ ३९॥

लाल कपड़े पहने हुए गोबर भरे कुण्ड में गिर पड़े हैं। अत: राक्षसियों! तुम सब यहां से चली जाओ। देखना किस तरह सीताजी, श्री रामचन्द्र जी को शीघ्र प्राप्त करती हैं ॥३९॥

घातयेत् परमामर्षी युष्मान् सार्धं हि राक्षसैः ।
प्रियां बहुमतां भार्यां वनवासमनुव्रताम् ॥ ४० ॥

यदि तुमने ऐसा नहीं किया, तो कहीं वह परमकुद्ध होकर राक्षसों के साथ साथ तुम्हें भी मार न डालें । मेरी समझ में तो यह आता है कि, अपनी ऐसी प्यारे अत्यन्त कृपापात्री तथा वनवास में भी साथ देने वाली भार्या की ॥४०॥

भर्त्सितां तर्जितां वापि नानुमंस्यति राघवः ।
तदलं क्रूरवाक्यैश्च सान्त्वमेवाभिधीयताम् ॥ ४१ ॥

तुम्हारे द्वारा दुर्दशा की गई, देखकर, श्रीरामचन्द्र जी तुमको कभी क्षमा नहीं करेंगे। अतः तुम्हें उचित है कि, अब सीता से कठोर वचन मत कहो और अब उससे ऐसी बातें कहो, जिससे उसे धीरज बंधे ॥४१॥

अभियाचाम वैदेहीमेतद्धि मम रोचते ।
यस्या ह्येवंविधः स्वप्नो दुःखितायाः प्रदृश्यते ॥ ४२॥

मेरी तो यह इच्छा है कि, हम सब मिल कर, सीता जी से अनुग्रह की प्रार्थना करें। क्योंकि जिस दुखियारी स्त्री के बारे में ऐसा स्वप्न देखा जाता है, ॥४२॥

सा दुःखैर्बहुभिर्मुक्ता प्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।
भर्त्सितामपि याचध्वं राक्षस्यः किं विवक्षया ॥ ४३ ॥

वह विविध प्रकार के दुःखों से छूट कर अपने प्यारे पति को प्राप्त कर लेती हैं। हे राक्षसियों ! यद्यपि तुम लोगों ने इसको बहुत डराया धमकाया है, तब भी तुम इस बात की चिन्ता मत करो ॥४३॥

राघवाद्धि भयं घोरं राक्षसानामुपस्थितम् ।
प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा ॥ ४४ ॥

अब राक्षसों को श्रीरामचन्द्र से बड़ा भयंकर भय आ पहुँचा है। जब यह जनकनन्दिनी प्रणाम करने से प्रसन्न हो जायगी ॥४४॥

अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात् ।
अपि चास्या विशालाक्ष्या न किञ्चिदुपलक्षये ॥ ४५ ॥

विरूपमपि चाङ्गेषु सुसूक्ष्ममपि लक्षणम् ।
छायावैगुण्यमात्रं तु शङ्के: दुःखमुपस्थितम् ॥ ४६ ॥

तब हम राक्षसियों को भी इस महाभय से बचाने में यह समर्थ होंगी। तुमने सीता जी को इतना डराया धमकाया उस पर भी इन विशालनयनी सीता के शरीर में दुःख की रेखा तक दिखाई नहीं पड़ती और न इनके अंग विरूप ही देख पड़ते हैं। इनकी मलिन कान्ति देखने से अवश्य इनके दुःखी होने का सन्देह होता है ॥४५-४६॥

अदुःखार्हामिमां देवीं वैहायसमुपस्थिताम् ।
अर्थसिद्धिं तु वैदेह्याः पश्याम्यहमुपस्थिताम् ॥ ४७ ॥

यह देवी सीता दुःख भोगने योग्य कदापि नहीं हो सकती क्योंकि मैंने स्वप्न में भी इनको विमान में स्थित देखा है। इससे मुझे जान पड़ता है कि, इनके कार्य की सिद्धि निश्चित ही होने वाली है ॥४७॥

राक्षसेन्द्रविनाशं च विजयं राघवस्य च ।
निमित्तभूतमेतत् तु श्रोतुमस्या महत् प्रियम् ॥ ४८ ॥

और रावण का नाश तथा श्रीरामचन्द्र की जीत भी अवश्य होने वाली है। एक और कारण भी है, जिससे इनका शीघ्र एक बड़ा सुख संवाद सुनना निश्चित जान पड़ता है ॥४८॥

दृश्यते च स्फुरच्चक्षुः पद्मपत्रमिवायतम् ।
ईषद्धि हृषितो वास्या दक्षिणाया ह्यदक्षिणः ।
अकस्मादेव वैदेह्या बाहुरेकः प्रकम्पते ॥ ४९॥

वह यह कि, कमल के तुल्य विशाल इनका, बायाँ नेत्र फड़क रहा है और इन परम प्रवीणा जानकी जी की पुलकायमान बायीं भुजा भी अकस्मात् फड़क रही है ॥४९॥

करेणुहस्तप्रतिमः सव्यश्चोरुरनुत्तमः ।
वेपन् कथयतिवास्या राघवं पुरतः स्थितम् ॥ ५० ॥

और इनकी हाथी की सूंड की तरह वाम जंघा का फड़कना यह प्रकट करता है कि, श्रीरामचन्द्र शीघ्र ही इनके पास उपस्थित होंगे ॥५०॥

पक्षी च शाखानिलयं प्रविष्टः पुनः पुनश्चोत्तमसान्त्ववादी ।
सुस्वागतं वाचमुदीरयाणः पुनः पुनश्चोदयतीव हृष्टः ॥ ५१ ॥

देखो वृक्ष की डाली पर बैठा हुआ यह मादा सारस प्रसन्न होकर बार बार मधुर वाणी से बोल रही है, मानों हर्ष में भर कर श्रीरामचन्द्र जी के आगमन की सूचना दे रही है ॥ ५१॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का सत्ताइसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥अष्टाविंशः सर्गः अठाईसवाँ सर्ग ॥

विलपन्त्याः सीतायाः प्राणत्यागायोद्यमः – विलाप करती हुई सीता जी का प्राण त्याग करने लिए उद्यत होना

सा राक्षसेन्द्रस्य वचो निशम्य तद् रावणस्य प्रियमप्रियार्ता ।
सीता वितत्रास यथा वनान्ते सिंहाभिपन्ना गजराजकन्या ॥ १ ॥

त्रिजटा के ऐसे वचन सुनने पर भी सीता जी को रावण की धमकी याद आ गयी। इसलिये वह वन में सिंह से घिरी हुई गजराजकन्या की तरह भयभीत हो गयीं ॥१॥

सा राक्षसीमध्यगता च भीरुर्वाग्भिर्भृशं रावणतर्जिता च ।
कान्तारमध्ये विजने विसृष्टा बालेव कन्या विललाप सीता ॥ २ ॥

राक्षसियों से घिरी हुई तथा रावण और राक्षसियों से डरायी धमकायी हुई सीता जी, निर्जन वन में अकेली छूटी हुई एक बालिका की तरह विलाप करने लगी ॥२॥

सत्यं बतेदं प्रवदन्ति लोके नाकालमृत्युर्भवतीति सन्तः ।
यत्राहमेवं परिभर्त्स्यमाना जीवामि यस्मात् क्षणमप्यपुण्या ॥ ३ ॥

बड़े ही दुःख की बात है। सज्जनों का यह कथन सत्य ही है कि, बिना समय आये किसी की मृत्यु किसी की नहीं आती क्योंकि यदि ऐसा न होता, तो इतनी डरायी धमकायी और तिरस्कृत किए जाने पर भी मैं पुण्य हीना क्या एक क्षण भी जीवित रह सकती थी ॥३॥

सुखाद् विहीनं बहुदुःखपूर्ण मिदं तु नूनं हृदयं स्थिरं मे ।
विशीर्यते यन्न सहस्रधाद्य वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य ॥ ४ ॥

सुखरहित और दुःखपूर्ण मेरा हृदय निश्चय ही बड़ा कठोर है। यदि यह ऐसा नहीं होता तो, वज्र से तोड़े गये पर्वतशिखर की तरह यह हज़ार टुकड़ों का क्यों नहीं हो गया ॥४॥

नैवास्ति नूनं मम दोषमत्र वध्याहमस्याप्रियदर्शनस्य ।
भावं न चास्याहमनुप्रदातुअलं द्विजो मन्त्रमिवाद्विजाय ॥ ५ ॥

निश्चय ही मुझे आत्महत्या का पाप नहीं लगेगा क्योंकि अन्त में तो यह भयंकर राक्षस मुझे मार ही डालेगा। अतः इसके द्वारा मारी जाने की

अपेक्षा स्वयं ही मर जाना अच्छा है। फिर जिस प्रकार ब्राह्मण शूद्र को वेद मन्त्र नहीं दे सकता, वैसे ही मैं अपना हृदय रावण को नहीं दे सकती ॥५॥

तस्मिन्ननागच्छति लोकनाथे गर्भस्थजन्तोरिव शल्यकृन्तः ।
नूनं ममाङ्गान्यचिरादनार्यः शस्त्रैः शितैश्छेत्स्यति राक्षसेन्द्रः ॥ ६ ॥

यह मुझे निश्चय मालूम है कि, लोकनाय श्रीरामचन्द्र के आने के पूर्व ही यह राक्षसाधिपति शस्त्र से मेरे शरीर की बोटियां कर डालेगा; जैसे शल्य चिकित्सक गर्भ में रुके हुए बालक को टुकड़े टुकड़े कर काट डालता है अथवा जैसे इंद्र ने दिति के गर्भ में स्थित शिशु के उनचास टुकड़े कर डाले थे ॥६॥

दुःखं बतेदं मम दुःखिताया मासौ चिरायाभिगमिष्यतो द्वौ ।
बद्धस्य वध्यस्य यथा निशान्ते राजोपरोधादिव तस्करस्य ॥ ७ ॥

मुझ चिरकालीन दुखियारी के लिये रावण की निर्दिष्ट की हुई अवधि के दो मास शीघ्र ही वैसे ही पूरी हो जायेगी, जैसे राजा से फांसी की आज्ञा पाये हुए कारागृह में कैद चोर की फांसी का समय शीघ्र पूरा हो जाता है ॥७॥

हा राम हा लक्ष्मण हा सुमित्रे हा राममातः सह मे जनन्यः ।
एषा विपद्याम्यहमल्पभाग्या महार्णवे नौरिव मूढवाता ॥ ८ ॥

हा राम! हा लक्ष्मण ! हा सुमित्रे ! हा कौशल्ये ! हा मेरी माता! मैं अपने मन्दभाग्य के कारण वैसे ही नाश को प्राप्त होने वाली है जैसे महासागर में तूफान से नाव का नाश होता है ॥८॥

तरस्विनौ धारयता मृगस्य सत्त्वेन रूपं मनुजेन्द्रपुत्रौ ।
नूनं विशस्तौ मम कारणात् तौ सिंहर्षभौ द्वाविव वैद्युतेन ॥ ९ ॥

निश्चय ही मृगरूपधारी उस राक्षस ने मेरे कारण उन दोनों तेजस्वी और सिंह के समान पराक्रमी राजकुमारों को बिजली से उसी प्रकार मार डाला होगा जैसे दो श्रेष्ठ सिंह बिजली से मारे जाएँ। ॥९॥

नूनं स कालो मृगरूपधारी मामल्पभाग्यां लुलुभे तदानीम् ।
यत्रार्यपुत्रं विससर्ज मूढा रामानुजं लक्ष्मणपूर्वजं च ॥ १० ॥

मृगरूपधारी उस काल ने अवश्य ही मुझ मन्दभाग्यवाली की बुद्धि उस समय हर ली थी। तभी तो मुझ मूढ़ बुद्धि वाली ने दोनों राजकुमारों को-अर्थात् श्रीराम और लक्ष्मण को, आश्रम के बाहर भेज दिया था ॥१०॥

हा राम सत्यव्रत दीर्घबाहो हा पूर्णचन्द्रप्रतिमानवक्त्र ।
हा जीवलोकस्य हितः प्रियश्च वध्यां न मां वेत्सि हि राक्षसानाम् ॥ ११ ॥

हा सत्यव्रतधारी श्री राम ! हा विशाल बाहों वाले ! हाँ पूर्णिमा के चन्द्र की तरह मुख वाले! हा प्राणीमात्र के हितैषो और प्रिय ! तुम यह वात अभी नहीं जानते कि, मैं राक्षसों के हाथों से मारी जाने वाली हूँ ॥११॥

अनन्यदेवत्वमियं क्षमा च भूमौ च शय्या नियमश्च धर्मे ।
पतिव्रतात्वं विफलं ममेदं कृतं कृतघ्नेष्विव मानुषाणाम् ॥ १२ ॥

यदि मैं अपने पति को छोड़ अन्य किसी देवी देवता की मान मनौती नहीं करती तो मेरो यह अनन्यता, मेरी यह क्षमा, मेरा भूमिशयन का व्रत, पातिव्रत धर्म का नियमित रूप से पालन, यह समस्त पतिव्रता स्त्रियों के पालने योग्य अनुष्ठान, वैसे ही व्यर्थ हो जाएँ जैसे किसी का किया हुआ उपकार कृतघ्नों में निष्फल हो जाता है ॥१२॥

मोघो हि धर्मश्चरितो मयायं तथैकपत्नीत्वमिदं निरर्थकम् ।
या त्वां न पश्यामि कृशा विवर्णा हीना त्वया सङ्गमने निराशा
॥१३॥

मेरा द्वारा आचरित यह पातिव्रत धर्म और मेरा यह अभिमान कि, मैं श्रीराम की एकमात्र पत्नी हूँ-निष्फल हुए जाते हैं। जो मैं ऐसी दुर्बल और विवर्ण हो कर भी तुम्हारे दर्शन नहीं पा रही हूँ और तुम्हारा वियोग होने पर भी तुम्हारे संयोग से हताश हो रही हूँ॥१३॥

पितुर्निदेशं नियमेन कृत्वा वनान्निवृत्तश्चरितव्रतश्च ।
स्त्रीभिस्तु मन्ये विपुलेक्षणाभिः संरंस्यसे वीतभयः कृतार्थः ॥१४॥

मैं तो समझती हूँ जब आप नियमानुसार पिता की आज्ञा का पालन करके अपने व्रत को पूर्ण करने के पश्च्यात जब वन से लौटेंगे, तब निर्भय एवं सफल मनोरथ होकर विशाल नयनवाली बहुत सी सुन्दरी स्त्रियों के साथ रमण करेंगे ॥१४॥

अहं तु राम त्वयि जातकामा चिरं विनाशाय निबद्धभावा ।
मोघं चरित्वाथ तपोव्रतं च त्यक्ष्यामि धिग्जीवितमल्पभाग्याम् ॥१५॥

किन्तु हे श्रीरामचन्द्र ! मैं तो केवल आप में ही अनुराग रखती हूँ और मैंने तो अपना नाश करने के लिये ही आपसे प्रेम किया है। अभी तक मैंने जितने भी व्रत और तप किए, वह दोनों व्यर्थ सिद्ध हो गये। अतः मुझ अल्प भाग्यवती के जीवन को धिक्कार है, मैं उस अभीष्ट फल को न देने वाले धर्म का आचरण करने के कारण मुझे अपने प्राणों का परित्याग करना पड़ेगा ॥१५॥

सञ्जीवितं क्षिप्रमहं त्यजेयं विषेण शस्त्रेण शितेन वापि ।
विषस्य दाता नहि मेऽस्ति कश्चिश्च्छस्त्रस्य वा वेश्मनि राक्षसस्य
॥१६॥

मैं अपना जीवन, विष खा कर अथवा गले में पैनी कटारी मार, कर शीघ्र समाप्त कर लेती। किन्तु क्या करूँ इस राक्षस के यहाँ मुझे कोई विष अथवा शस्त्र देनेवाला भी नहीं है ॥१६॥

इतीव देवी बहुधा विलप्य सर्वात्मन राममनुस्मरन्ती ।
प्रवेप्माना परिशुष्कवक्त्रा नागोत्तमं पुष्पितमाससाद ॥ १७ ॥

इस प्रकार देवी सीता अनेक प्रकार से विलाप करती तथा श्रीरामचन्द्र का स्मरण करती, थरथराती और मुंह सुखाये पुष्पित एवं श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के निकट चली गयी और वहां जा शोक से विकल हो गयी ॥१७॥

शोकाभितप्ता बहुधा विचिन्त्य सीताथ वेणीग्रथनं गृहीत्वा ।
उद्बध्य वेण्युद्ग्रथनेन शीघ्रं अहं गमिष्यामि यमस्य मूलम् ॥ १८॥

तदनन्तर बहुत कुछ सोच विचार कर, अपनी चोटी के बंधन को हाथ में लेकर कहने लगी कि, मैं इसी बंधन से गले में फांसी लगा कर, अपनी जान दे दूंगी ॥१८॥

उपस्थिता सा मृदुसर्वगात्री शाखां गृहीत्वा च नगस्य तस्य ।
तस्यास्तु रामं परिचिन्तयन्त्या रामानुजं स्वं च कुलं शुभाङ्ग्याः
॥१९॥

शोकानिमित्तानि तदा बहूनि धैर्यार्जितानि प्रवराणि लोके ।
प्रादुर्निमित्तानि तदा बभूवुः पुरापि सिद्धान्युपलक्षितानि ॥ २०॥

इस प्रकार निर्णय कर, कोमलांगी जानकी उस वृक्ष के निकट जा और उस वृक्षश्रेष्ठ की एक डाली पकड़ कर खड़ी हो गयीं। इस प्रकार प्राण त्याग के लिए उद्यत होकर, जब वह श्री राम, लक्ष्मण और अपने

कुल के विषय में विचार करने लगी, उस समय शुभ अंगो वाली सीता जी के सामने ऐसे बहुत से लोक प्रसिद्ध श्रेष्ठ शकुन उपस्थित हुए जो उनके शोक की निर्वृत्ति करने वाले और उन्हें ढांढस बढाने वाले थे। ॥१९-२०॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
अष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकांड का अठाईसवां सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥एकोनत्रिंशः सर्गः उनत्तीसवाँ सर्ग॥

सीतायाः शुभशकुनानि -सीता जी द्वारा देखे गए शुभ शकुनों का वर्णन

तथागतां तां व्यथितामनिन्दितां व्यतीतहर्षां परिदीनमानसाम् ।
शुभां निमित्तानि शुभानि भेजिरे नरं श्रिया जुष्टमिवोपसेविनः ॥१॥

जिस समय दुखियारी, हर्षशून्य, सन्तप्त और निन्दारहित सीता जी अपनी मृत्यु की आकांक्षा कर रही थी, उस समय वह समस्त शुभ शकुन उनके सामने वैसे ही उपस्थित हुए; जैसे किसी धनी व्यक्ति के पास उसके सेवा करने वाले मनुष्य स्वयं ही उपस्थित हो जाते हैं॥१॥

तस्याः शुभं वाममरालपक्ष्मराज्यावृतं कृष्णविशालशुक्लम् ।
प्रास्पन्दतैकं नयनं सुकेश्या मीनाहतं पद्ममिवाभिताम्रम् ॥ २ ॥

उस समय उन सुन्दर केशों वाली जानकी जी के चञ्चल पलकों सहित काले तारे से शोभित, विशाल, शुक्लवर्ण बायाँ नेत्र, मछली के द्वारा हिलाये हुए कमलपुष्प की तरह फड़कने लगा ॥२॥

भुजश्च चार्वञ्चितवृत्तपीनः परार्ध्यकालागरुचन्दनार्हः ।
अनुत्तमेनाध्युषितः प्रियेण चिरेण वामः समवेपताशु ॥ ३ ॥

उनकी मनोहर गोल, सुडौल और मांसल बायीं भुजा, जो बढ़िया अगर चन्दन से चर्चित हो कर बहुत काल से अपने प्यारे पति के संयोग से वंचित हो रही थी, फड़कने लगी ॥३॥

गजेन्द्रहस्तप्रतिमश्च पीनस्तयोर्द्वयोः संहतयोस्तु जातः ।
प्रस्पन्दमानः पुनरूरुरस्या रामं पुरस्तात् स्थितमाचचक्षे ॥ ४ ॥

उनकी एक दूसरे से मिली हुई सी दोनों जांधों में से बायीं जांघ, जो हाथी की सूंड की तरह चढ़ाव उतार वाली तथा सुडौल थी फड़कती हुई मानों यह बतलाने लगी कि, श्रीरामचन्द्र जी सीता जी के सम्मुख ही खड़े हैं ॥४॥

शुभं पुनर्हेमसमानवर्ण मीषद्रजोध्वस्तमिवातुलाक्ष्याः ।
वासः स्थितायाः शिखराग्रदन्त्याः किंचित् परिस्रंसत चारुगात्र्याः ॥५ ॥

उपमारहित आखों वाली और अनार के दानों जैसी दन्तपंकि वाली सीता जी की सुनहरे रंग की अर्थात् चंपई रंग का पीताम्बर, जो कुछ मलिन सा हो गयी था, थोडा सा खिसक गया और भावी शुभ की सूचना देने लगा।॥५॥

एतैर्निमित्तैरपरैश्च सुभ्रूः संचोदिता प्रागपि साधु सिद्धैः ।
वातातपक्लान्तमिव प्रणष्टं वर्षेण बीजं प्रतिसञ्जहर्ष ॥ ६ ॥

हवा और धूप से नष्ट हुआ बीज जिस तरह वर्षा होने पर पुनः हरा भरा हो जाता है, उसी तरह सीता जी उन सभी शुभ शकुनों को देख कर और उनका शुभफलादेश जान कर, हर्षित हो गयी ॥६॥

तस्याः पुनर्बिम्बफलोपमोष्ठं स्वक्षिभ्रु केशान्तमरालपक्ष्म ।
वक्त्रं बभासे सितशुक्लदंष्ट्रं राहोर्मुखाच्चन्द्र इव प्रमुक्तः ॥ ७ ॥

उनके बिम्ब फल के समान लाल अधरों से युक्त, सुन्दर नेत्र, सुन्दर भौंहों व श्वेत, चञ्चल, शोभायुक्त, सफेद मोती की तरह चमकीले दांतों से युक्त सीता जी का मुखमंडल, राहु से छूटे हुए पूर्णचन्द्र की तरह सुशोभित होने लगा ॥७॥

सा वीतशोका व्यपनीततन्द्रा शान्तज्वरा हर्षविबुद्धसत्त्वा ।
अशोभतार्या वदनेन शुक्ले शीतांशुना रात्रिरिवोदितेन ॥ ८ ॥

उस समय श्रीसीता जो शोक, आलस्य, और सन्ताप से रहित और स्वस्थ्यवित्त होकर, अपने प्रसन्न मुख मंडल से ऐसी शोभायमान हुई, जेसो शुक्ल पक्ष में उदित हुए शीत रश्मि चंद्रमा से सुशोभित होती है॥८॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का उनत्तीसवां सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥त्रिंशः सर्गः तीसवाँ अध्याय ॥

सीतया स कर्तव्ये वार्तालापे हनुमतो विचारणा -सीता जी से वार्तालाप करने के विषय में हनुमान जी का सोच विचार करना

हनुमानपि विक्रान्तः सर्वं शुश्राव तत्त्वतः ।
सीतायास्त्रिजटायाश्च राक्षसीनां च तर्जितम् ॥ १ ॥

सीता जी का विलाप, त्रिजटा के स्वप्न का वृत्तान्त और राक्षसियों की डांट-डपट विक्रमशाली हनुमान जी ने सब ठीक ठीक सुनी ॥१॥

अवेक्षमाणस्तां देवीं देवतामिव नन्दने ।
ततो बहुविधां चिन्तां चिन्तयामास वानरः ॥ २ ॥

नन्दनकानन में रहने वाली सुर सुन्दरी की तरह, अशोक वन में बैठी हुई देवी सीता को देख कर, हनुमान जी सोचने लगे ॥२॥

यां कपीनां सहस्राणि सुबहून्ययुतानि च ।
दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते सेयमासादिता मया ॥ ३ ॥

जिन सीता जी को हजारों, लाखों, करोड़ों वानर समस्त दिशाओं में ढूंढते फिर रहे हैं, उन्हें मैंने ढूढ़ निकाला है ॥३॥

चारेण तु सुयुक्तेन शत्रोः शक्तिमवेक्षता ।
गूढेन चरता तावदवेक्षितमिदं मया ॥ ४ ॥

मैंने दूत बन कर युक्तिपूर्वक शत्रु की शक्ति का परीक्षण सीता जी की खोज करते हुआ छिपते छिपाते कर लिया है ॥४॥

राक्षसानां विशेषश्च पुरी चेयं निरीक्षिता ।
राक्षसाधिपतेरस्य प्रभावो रावणस्य च ॥ ५ ॥

मैंने राक्षसों के ऐश्वर्य को और इस लंका पुरी के तथा रावण के प्रभाव का भी निरीक्षण कर लिया है ॥५॥

युक्तं तस्याप्रमेयस्य सर्वसत्त्वदयावतः ।
समाश्वासयितुं भार्यां पतिदर्शनकांक्षिणीम् ॥ ६ ॥

मुझे इस समय, अचिन्त्य प्रभाव और सब प्राणियों पर दया करने वाले श्रीरामचन्द्र जी की पत्नी को, जो पति के दर्शन की अभिलाषिणी है, धीरज बंधाना उचित है ॥६॥

अहमाश्वासयाम्येनां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
अदृष्टदुःखां दुःखस्य न ह्यन्तमधिगच्छतीम् ॥ ७ ॥

जिन्होंने इसके पूर्व कभी दुःख नहीं सहे और जो इस दुःख सागर में डूबती हुई इसके पार नहीं जा रही है, ऐसी चन्द्र बदनी सीता जी को मैं आश्वासन दूंगा॥७॥

यदि ह्यह्यं सतीमेनां शोकोपहतचेतनाम् ।
अनाश्वास्य गमिष्यामि दोषवद् गमनं भवेत् ॥ ८ ॥

यदि मैं शोक से विकल हुई इन सीता जी को बिना आश्वासन दिए ही चला जाऊँगा, तो मेरा यहां से लौटना त्रुटिपूर्ण रह जाएगा ॥८॥

गते हि मयि तत्रेयं राजपुत्री यशस्विनी ।
परित्राणमपश्यन्ती जानकी जीवितं त्यजेत् ॥ ९ ॥

क्योंकि मेरे बिना सांत्वना दिए लौट जाने से यह यशस्विनी राजकुमारी सीता अपनी रक्षा का कोई उपाय न देख, प्राणत्याग देंगी ॥९॥

मया च स महाबाहुः पूर्णचन्द्रनिभाननः ।
समाश्वासयितुं न्याय्यः सीतादर्शनलालसः ॥ १० ॥

सीताजी से मिलने की अभिलाषा रखने वाले पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुखमण्डल बाले महाबाहु श्रीरामचन्द्र जी को जिस प्रकार माता सीता की कुशलता सुना कर सांत्वना देना उचित है, उसी प्रकार सीता जी को भी उनका सन्देश सुना कर सांत्वना देना उचित जान पड़ता है॥१०॥

निशाचरीणां प्रत्यक्षमक्षमं चाभिभाषितम् ।
कथं नु खलु कर्तव्यमिदं कृच्छ्रगतो ह्यहम् ॥ ११ ॥

किन्तु, इन राक्षसियों के सामने सीता जी से बातचीत करना तो उचित नहीं जान पड़ता। अत: सीताजी से एकान्त में किस प्रकार बातचीत की जाए, यह एक बड़ी कठिनाई सामने उपस्थित हो गई है॥११॥

अनेन रात्रिशेषेण यदि नाश्वास्यते मया ।
सर्वथा नास्ति सन्देहः परित्यक्ष्यति जीवितम् ॥ १२ ॥

अब यह रात बीतने में थोडा ही समय शेष रह गया है, इस बीच में यदि मेरी इनसे बातचीत नहीं हो सकी, तो निस्सन्देह यह अपने प्राणों का परित्याग कर देंगी ॥१२॥

रामस्तु यदि पृच्छेन्मां किं मां सीताब्रवीद् वचः ।
किमहं तं प्रतिब्रूयामसम्भाष्य सुमध्यमाम् ॥ १३ ॥

फिर जब श्रीरामचन्द्र जी मुझसे पूछेंगे कि, सीता ने मेरे लिये क्या सन्देसा भेजा है, तो मैं सुमध्यमा सीता जी से वार्तालाप किये बिना उनको क्या उत्तर दूंगा ॥१३॥

सीतासन्देशरहितं मामितस्त्वरया गतम् ।
निर्दहेदपि काकुत्स्थः क्रुद्धस्तीव्रेण चक्षुषा ॥ १४ ॥

फिर यदि सीता जी का संदेशा लिये बिना ही यहाँ से लौट गया तो काकुत्स्थ कुलभूषण श्रीरामचन्द्र जी अपनी क्रोध से भरी दुसहः दृष्टि से मुझे जला कर भस्म न कर डालेंगे ॥१४॥

यदि वोद्योजयिष्यामि भर्तारं रामकारणात् ।
व्यर्थमागमनं तस्य ससैन्यस्य भविष्यति ॥ १५ ॥

यदि मैं सीता से वार्तालाप किये बिना लौट कर सुग्रीव द्वारा, श्रीराम के लिये चढ़ाई की तैयारी भी करवाऊँ, और यहां सीताजी आत्मघात कर डालें, तो सेनासहित उनका यहाँ आना निष्फल हो जाएगा ॥२५॥

अन्तरं त्वहमासाद्य राक्षसीनामवस्थितः ।
शनैराश्वासयाम्यद्य सन्तापबहुलामिमाम् ॥ १६ ॥

अतः मैं राक्षसियों के यहाँ रहते हुए ही उचित अवसर की प्रतीक्षा करूंगा और इस वृक्ष पर बैठे बैठे ही सीता जी के मन के संताप को दूर करने के लिए, धीरज बँधा दूंगा ॥१६॥

अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः ।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् ॥ १७ ॥

मेरी सीता जी से बातचीत का भेद राक्षसियां नहीं जान पाएंगी क्योंकि एक तो मैं अत्यन्त छोटे रूप में विद्यमान हूँ और दूसरे वानर हूँ। अत: मैं मनुष्यों जैसी सुसंस्कृत भाषा में बातचीत करूँगा ॥१७॥

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् ।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ॥ १८ ॥

परन्तु इसमें एक बाधा है, यदि मैं ब्राह्मणों की तरह संस्कृत भाषा का प्रयोग करूँगा, तो संभव है कि सीता मुझे रावण समझ कर, मुझसे भयभीत हो जाएँ ॥१८॥

वानरस्य विशेषेण कथं स्यादभि भाषणम ।
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत् ॥ १९ ॥

क्योंकि सीता जी के मन में यह सन्देह उत्पन्न हो जायगा कि, यह वानर होकर संस्कृतभाषा का प्रयोग कैसे कर रहा है और वह मुझे बनावटी वानर समझ कर मुझसे डर जायगी। अतः मुझे उचित है कि, मैं इसे मनुष्यों की साधारण बोलचाल में वार्तलाप करूँ ॥१९॥

मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता ।

सेयमालोक्य मे रूपं जानकी भाषितं तथा ॥ २० ॥

रक्षोभिस्त्रासिता पूर्वं भूयस्त्रासं उपैष्यति ।
ततो जातपरित्रासा शब्दं कुर्यान्मनस्विनी ॥ २१ ॥

जानाना मां विशालाक्षी रावणं कामरूपिणम् ।
सीतया च कृते शब्दे सहसा राक्षसीगणः ॥ २२ ॥

अन्यथा मैं अन्य किसी उपाय से इन अनिन्दिता सीताजी को सांत्वना नहीं दे पाऊंगा जानकी जी पहले ही राक्षसों से त्रस्त हैं, अतः मुझे वानर के रूप में मनुष्य के समान बातें करते देखकर सीताजी और अधिक डर जायेंगी। मन में भय उत्पन्न होने के कारण और मुझे कामरूपी रावण समझ कर यह विशाल लोचना, मनस्विनी सीता चिल्ला उठीं, तो सीता जी का सहसा चिल्लाना सुन कर यह राक्षसियां, ॥२०-२२॥

नानाप्रहरणो घोरः समेयादन्तकोपमः ।
ततो मां सम्परिक्षिप्य सर्वतो विकृताननाः ॥ २३ ॥

जो यमराज के समान भयंकर हैं, विविध प्रकार के प्रकार के शस्त्र ले कर आ जायँगी और मुझे चारों ओर से घेर कर, यह विकट मुख वाली राक्षसियां ॥२३॥

वधे च ग्रहणे चैव कुर्युर्यत्नं यथाबलम् ।

तं मां शाखाः प्रशाखाश्च स्कन्धांश्चोत्तमशाखिनाम् ॥ २४ ॥

मुझे मार डालने या पकड़ लेने के लिये हर संभव प्रयास करेंगी। तब यही होगा कि, मैं बड़े बड़े वृक्षों की शाखा प्रशाखा और डाली डाली पर दौडता रहूँगा ॥२४॥

दृष्ट्वा च परिधावन्तं भवेयुः परिशङ्किताः ।
मम रूपं च सम्प्रेक्ष्य वने विचरतो महत् ॥ २५ ॥

राक्षस्यो भयवित्रस्ता भवेयुर्विकृतस्वराः ।
ततः कुर्युः समाह्वानं राक्षस्यो रक्षसामपि ॥ २६ ॥

तब मुझे इस प्रकार दौड़ते देख, ये राक्षसी सशंकित होकर डर जायेंगी। मेरे विकराल रूप को और मुझे महावन में विचरते देख कर राक्षसियां अत्यंत भयभीत होकर चिल्लाने लगेंगी और सहायता के लिए उन राक्षसों को भी पुकारेंगी, ॥२५-२६॥

राक्षसेन्द्रनियुक्तानां राक्षसेन्द्रनिवेशने ।
ते शूलशक्तिनिस्त्रिंश विविधायुधपाणयः ॥ २७ ॥

जो रावण के घर में रखवाली के लिये रावण द्वारा नियुक्त किये गये हैं। इस हलचल को देख कर राक्षस भी उदिग्न होकर शूल, शक्ति, बाण, भाला आदि विभिन्न प्रकार के हथियार हाथों में ले लेकर, ॥२७॥

आपतेयुर्विमर्देऽस्मिन् वेगेनोद्वेगकारणात् ।
संरुद्धस्तैस्तु परितो विधमे राक्षसं बलम् ॥ २८ ॥

और उत्तेजित हो बड़े वेग से आ जायेंगे और मुझे चारों और से घेर लेंगे। तब मैं उस राक्षसी सेना का नाश तो अवश्य ही कर डालूंगा ॥२८॥

शक्नुयां न तु संप्राप्तुं परं पारं महोदधेः ।
मां वा गृह्णीयुरावृत्य बहवः शीघ्रकारिणः ॥ २९ ॥

किन्तु उनके साथ युद्ध करते करते थक जाने के कारण वापस समुद्र पार न जा सकूँगा। यदि बहुत से फुर्तीले राक्षसों ने मुझे कूदते हुए पकड़ लिया ॥२९॥

स्यादियं चागृहीतार्था मम च ग्रहणं भवेत् ।
हिंसाभिरुचयो हिंस्युः इमां वा जनकात्मजाम् ॥ ३० ॥

तो श्रीरामचन्द्र जी का सीता जी को संदेशा देने का मनोरथ भी पूर्ण नहीं होगा और मैं भी पकड़ा जाऊँगा। इसके अतिरिक्त ऐसा भी हो सकता है की हिंसा में रूचि रखने वाले यह राक्षस मुझे अथवा जानकी जी को ही मार डालें ॥३०॥

विपन्नं स्यात् ततः कार्यं रामसुग्रीवयोरिदम् ।
उद्देशे नष्टमार्गेऽस्मिन् राक्षसैः परिवारिते ॥ ३१ ॥

सागरेण परिक्षिप्ते गुप्ते वसति जानकी ।
विशस्ते वा गृहीते वा रक्षोभिर्मयि संयुगे ॥ ३२ ॥

तब तो श्रीरामचन्द्र जी और सुग्रीव का सीता जी को प्राप्त करने का यह अभीष्ट कार्य बिगड़ ही जाएगा क्योंकि जानकी जी ऐसे स्थान में हैं, जहां का मार्ग काई नहीं जानता और राक्षसों से घिरा हुआ अर्थात सुरक्षित है। इतना ही नहीं अपितु चारों ओर समुद्र से घिरा हुआ भी है, ऐसे गुप्त स्थान में जानकी जी फँसी हुई हैं कि, युद्ध में राक्षसों द्वारा मेरे मारे जाने या पकड़े जाने पर, ॥३१-३२॥

नान्यं पश्यामि रामस्य सहाय्यं कार्यसाधने ।
विमृशंश्च न पश्यामि यो हते मयि वानरः ॥ ३३ ॥

मैं ऐसा किसी अन्य को नहीं देखता जो श्रीरामचन्द्रजी का यह काम पूरा कर सके। क्योंकि बहुत सोचने पर भी मेरे मारे जाने पर कोई ऐसा वानर मुझे नहीं दिखाई नहीं देता है ॥३३॥

शतयोजनविस्तीर्णं लङ्घयेत महोदधिम् ।
कामं हन्तुं समर्थोऽस्मि सहस्राण्यपि रक्षसाम् ॥ ३४ ॥

जो सौ योजन विस्तृत समुद्र को लांघ कर, यहाँ आ सके। मैं यथेष्ट रूप से हजारों राक्षसों का वध करने में सक्षम हूँ ॥३४॥

न तु शक्ष्याम्यहं प्राप्तुं परं पारं महोदधेः ।

असत्यानि च युद्धानि संशयो मे न रोचते ॥ ३५ ॥

किन्तु फिर मैं युद्ध में संयुक्त होने पर समुद्र पार नहीं जा सकता। युद्ध में जीत हार का कुछ निश्चय नहीं है और मुझे संशय युक्त कार्य में संयुक्त होना मुझे पसंद नहीं ॥३५॥

कश्च निःसंशयं कार्यं कुर्यात् प्राज्ञः ससंशयम् ।
प्राणत्यागश्च वैदेह्या भवेदनभिभाषणे ॥ ३६ ॥

ऐसा कौन पुरुष होगा, जो पण्डित हो कर भी किसी सन्दिग्ध कार्य में, निस्सन्देह हो कर प्रवृत्त हो । परन्तु यदि मैं सीता जी से बातचीत नहीं करता हूँ तो सीता जी के प्राण त्यागने का भी तो सन्देह है।॥३६॥

एष दोषो महान् हि स्यान्मम सीताभिभाषणे ।
भूताश्चार्था विरुध्यन्ति देशकालविरोधिताः ॥ ३७ ॥

विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ।
अर्थानर्थान्तरे बुद्धिः निश्चितापि न शोभते ॥ ३८ ॥

घातयन्ति हि कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ।
न विनश्येत् कथं कार्यं वैक्लव्यं न कथं मम ॥ ३९ ॥

और सीता जी से वार्तालाप में यह सभी कठिनाइयां हैं। बना बनाया काम भी देश और काल के विपरीत कार्य करने से और असावधान

अथवा अविवेकी दूत के द्वारा करने से वैसे ही नष्ट हो जाता है, जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार का विनाश हो जाता है। स्वामी अथवा मन्त्रिवर्ग द्वारा कर्तव्य अकर्तव्य के विषय में निश्चय किए जाने पर भी, असावधानतावश और अपने को पंडित समझने वाला दूत, अपनी नासमझी के कारण कार्य तो नष्ट कर डालता है। अत: किस तरह यह काम न बिगड़े और मेरी बुद्धिहीनता न समझी जाय ॥३७- ३९॥

लङ्घनं च समुद्रस्य कथं नु न वृथा भवेत् ।
कथं नु खलु वाक्यं मे श्रुणुयान्नोद्विजेत च ॥ ४० ॥

मेरा समुद्र का लांघना कैसे व्यर्थ न हो और कैसे मेरे वचन सोता जी सुने और सुन कर क्षुब्ध न हों ॥४०॥

इति संचिन्त्य हनुमान् चकार मतिमान् मतिम् ।
राममक्लिष्टकर्माणं स्वबन्धुमनुकीर्तयन् ॥ ४१ ॥

इस सभी बातों पर सोच विचार करके अत्यंत बुद्धिमान हनुमान जी ने अपने मन में यह निश्चय किया कि, अब मैं अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्र जी की कथा कहना प्रारम्भ करता हूँ ॥४१॥

नैनामुद्वेजयिष्यामि तद्बन्धुगतचेतनाम् ।
इक्ष्वाकूणां वरिष्ठस्य रामस्य विदितात्मनः ॥ ४२ ॥

शुभानि धर्मयुक्तानि वचनानि समर्पयन् ।

श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुरां प्रब्रुवन् गिरम् ।
श्रद्धास्यति यथा हीयं तथा सर्वं समादधे ॥ ४३ ॥

इससे सीता जी क्षुब्ध नहीं होंगी क्योंकि सीता जी का ध्यान सदा श्रीरामचन्द्र जी में ही लगा रहता है। इक्ष्वाकुवंशियों में श्रेष्ठ, प्रसिद्ध अथवा आत्मज्ञानी श्रीरामचन्द्र जी के शुभ और धर्मयुक्त वचनों को मधुर वाणी से उस प्रकार सुनाऊंगा जिससे सीता जी को मेरी बातों पर विश्वास हो, अब मैं ऐसा ही करूंगा ॥४२-४३॥

इति स बहुविधं महाप्रभावोज गतिपतेः प्रमदामवेक्षमाणः ।
मधुरमवितथं जगाद वाक्यं द्रुमविटपान्तरमास्थितो हनूमान् ॥४४॥

इस प्रकार अनेक प्रकार से सोच विचार कर, अशोक वृक्ष की शाखाओं में छिप कर बैठे हुए महा प्रभावशाली हनुमान जी ने, भूपति श्रीरामचन्द्र जी की भार्या 'जानकी जी को देख कर, मधुर किन्तु सत्य शब्दों में श्रीराम जी का संदेशा कहना प्रारम्भ किया ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का तीसवां सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ एकत्रिंशः सर्गः इक्कत्तीसवाँ सर्ग ॥

नुमता सीतां श्रावयतुं श्रीरामकथाया वर्णनम् - हनुमान जी द्वारा सीता जी को सुनाने के लिए श्री राम कथा का वर्णन

एवं बहुविधां चिन्तां चिन्तयित्वा महामतिः ।
संश्रवे मधुरं वाक्यं वैदेह्या व्याजहार ह ॥ १ ॥

इस प्रकार बहुत कुछ सोच विचार कर महामति हनुमान जी, सीताजी को सुनाते हुए, इस प्रकार के मधुर वचन कहने लगे ॥१॥

राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिमान् ।
पुण्यशीलो महाकीर्तिरिक्ष्वाकूणां महायशाः ॥ २ ॥

दशरथ नाम के एक राजा थे, जो बड़े पुण्यात्मा, बड़ी कीर्ति वाले, सरल और महायशस्वी थे। उनके यहाँ बहुत से रथ, हाथी और घोड़े थे ॥२॥

राजर्षीणां गुणश्रेष्ठः तपसा चर्षिभिः समः ।
चक्रवर्तिकुले जातः पुरन्दरसमो बले ॥ ३ ॥

वे अपने गुणों के कारण राजर्षियों में श्रेष्ठ माने जाते थे और तप में वह ऋषियों के तुल्य थे। उनका जन्म चक्रवर्ती कुल में हुआ था और बल में वह देवराज इन्द्र के समान थे ॥३॥

अहिंसारतिरक्षुद्रौ घृणी सत्यपराक्रमः ।
मुख्यस्येक्ष्वाकुवंशस्य लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मिवर्धनः ॥ ४ ॥

वह हिंसा से दूर रहते थे और क्षुद्र लोगों का संसर्ग नहीं करते थे। वे बड़े दयालु और सत्यपराक्रमी थे। वह इक्ष्वाकुवंशियों में श्रेष्ठ समझे जाते थे और बड़ी कान्ति वाले और लक्ष्मी को बढ़ाने वाले थे ॥४॥

पार्थिवव्यञ्जनैर्युक्तः पृथुश्रीः पार्थिवर्षभः ।
पृथिव्यां चतुरन्तायां विश्रुतः सुखदः सुखी ॥ ५ ॥

वह राजलक्षणों से युक्त, अति शोभावान और राजाओं में श्रेष्ठ थे। चारों समुद्र पर्यन्त समस्त पृथिवीमण्डल में वह प्रसिद्ध थे। वह स्वयं सुखी रहते थे और अपनी प्रजा तथा आश्रित जनों को भी सुख देने वाले थे ॥५॥

तस्य पुत्रः प्रियो ज्येष्ठस्ताराधिपनिभाननः ।
रामो नाम विशेषज्ञः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ६ ॥

चन्द्रमा की तरह मुख वाले, सकल शास्त्र और वेदों के विशेष जानने वाले और सब धनुर्धरों में श्रेष्ठ उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामचन्द्र जी, उनको बहुत प्रिय थे॥६॥

रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य स्वजनस्यापि रक्षिता ।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य च परन्तपः ॥ ७ ॥

श्रीराम जी अपने चरित्र की रक्षा करने वाले और अपने स्वजनों का प्रतिपालन करने वाले हैं। यह संसार के जीवमात्र के रक्षक तथा धर्म की भी मर्यादा रखने वाले हैं और शत्रुनों को सन्तप्त करने वाले हैं ॥७॥

तस्य सत्याभिसन्धस्य वृद्धस्य वचनात् पितुः ।
सभार्यः सह च भ्रात्रा वीरः प्रव्रजितो वनम् ॥ ८ ॥

वीर श्रीरामचन्द्र जी, अपने सत्यप्रतिज्ञ एवं वृद्ध पिता के आज्ञानुसार अपनी पत्नी और भाई के साथ वन में भेजे गये ॥८॥

तेन तत्र महारण्ये मृगयां परिधावता ।
राक्षसा निहताः शूरा बहवः कामरूपिणः ॥ ९ ॥

वन में आकर उन्होंने शिकार खेलते हुए बहुत से इच्छा-रूप धारी और अत्यंत वीर राक्षसों का संहार किया ॥६॥

जनस्थानवधं श्रुत्वा हतौ च खरदूषणौ ।

ततस्त्वमर्षापहृता जानकी रावणेन तु ॥ १० ॥

जनस्थान निवासी १४ हज़ार राक्षसों तथा खर-दूषण का मारा जाना सुनकर, रावण ने कुपित होकर, जानकी जी का अपहरण कर लिया ॥१०॥

वंचयित्वा वने रामं मृगरूपेण मायया ।
स मार्गमाणस्तां देवीं रामः सीतामनिन्दिताम् ॥ ११ ॥

जानकी जी को अपहरण करने के समय उसने मायामृग के रूप में, श्रीरामचन्द्र जी को वन में भ्रमित किया। तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी अपनी उस अनिन्दिता पत्नी को ढूंढते हुए ॥११॥

आससाद वने मित्रं सुग्रीवं नाम वानरम् ।
ततः स वालिनं हत्वा रामः परपुरञ्जयः ॥ १२ ॥

वन में सुग्रीव नामक वानर से मिले और उनसे मैत्री स्थापित की। शत्रु पुर को जीतने वाले श्रीरामचन्द्र जी ने बालि नामक वानर का वध करके, ॥ १२॥

आयच्छत् कपिराज्यं तत् सुग्रीवाय महात्मने ।
सुग्रीवेणाभिसन्दिष्टा हरयः कामरूपिणः ॥ १३ ॥

महाबली सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य दे दिया। तब सुग्रीव ने भी इच्छारूप धारण करने वाले हजारों वानरों को श्रीराम पत्नी जानकी जी को ढूँढने की आज्ञा दी ॥१३॥

दिक्षु सर्वासु तां देवीं विचिन्वन्तः सहस्रशः ।
अहं सम्पातिवचनाच्छतयोजनमायतम् ॥ १४ ॥

वानरराज सुग्रीव की आज्ञा अनुसार हज़ारों वानर उन देवी को ढूंढते हुए, चारों दिशाओं में घूम रहे हैं। उन्हीं में से मैं भी एक हूँ। मैंने संपाति के कहने से सौ योजन विस्तार वाले ॥१४॥

अस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः सागरं वेगवान् प्लुतः ।
यथारूपां यथावर्णां यथालक्ष्मवतीं च ताम् ॥ १५ ॥

मैंने समुद्र को, इस देवी के दर्शन के लिये बड़े वेग से लांघा है। मैंने सीता देवी का जैसा रूप रंग और उनकी कान्ति ॥१५॥

अश्रौषं राघवस्याहं सेयमासादिता मया ।
विररामैवमुक्त्वा स वाचं वानरपुङ्गवः ॥ १६ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के मुख से सुनी थी, वैसी हो मैंने इन देवी में पायी है। इतना कह कर, वीर शिरोमणि हनुमान जी चुप हो गये ॥१६॥

जानकी चापि तच्छ्रुत्वा विस्मयं परमं गता ।
ततः सा वक्रकेशान्ता सुकेशी केशसंवृतम् ।
उन्नम्य वदनं भीरुः शिंशपावृक्षमैक्षत ॥ १७ ॥

उनके यह सब वचन सुनकर जानकी जी बड़ी अचंभित हुई। तदनन्तर घुंघराले और काले महीन केशों वाली जानकीजी ने केशों से आच्छादित अपने मुख को ऊपर उठा कर, उस अशोक के वृक्ष की ओर देखने लगीं ॥१७॥

निशम्य सीता वचनं कपेश्च दिशश्च सर्वाः प्रदिशश्च वीक्ष्य ।
स्वयं प्रहर्षं परमं जगाम सर्वात्मना राममनुस्मरन्ती ॥ १८ ॥

सीता हनुमान जी के यह वचन सुन कर चारों ओर देखा तथा सम्पूर्ण वृतियों से श्रीरामचन्द्र जी का स्मरण करती हुई, स्वयं अत्यंत हर्षित हुई ॥१८॥

सा तिर्यगूर्ध्वं च तथा ह्यधस्तान्निरीक्षमाणा तमचिन्त्यबुद्धिम् ।
ददर्श पिङ्गाधिपतेरमात्यं वातात्मजं सूर्यमिवोदयस्थम् ॥ १९ ॥

और इधर उधर, ऊपर नीचे देखने लगी। तब सीताजी ने उदयकालीन सूर्य की तरह वानरराज सुग्रीव के मंत्री एवं असाधारण बुद्धिसम्पन पवननन्दन हनुमान जी को देखा ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का इकतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ द्वात्रिंशः सर्गः बत्तीसवाँ सर्गः ॥

सीताया वितर्कः -हनुमान जी के विषय में सीता में सीता जी का सोच विचार

ततः शाखान्तरे लीनं दृष्ट्वा चलितमानसा ।
वेष्टितार्जुनवस्त्रं तं विद्युत्सङ्घात पिङ्गलम् ॥ १ ॥

सा ददर्श कपिं तत्र प्रश्रितं प्रियवादिनम् ।
फुल्लाशोकोत्कराभासं तप्तचामीकरेक्षणम् ॥ २ ॥

मैथिली चिन्तयामास विस्मयं परमं गता ।
अहो भीममिदं सत्त्वं वानरस्य दुरासदम् ॥ ३ ॥

शाखाओं में छिपे, अर्जुन वृक्ष के रंग के समान श्वेत वस्त्र धारण किए हुए, बिजली के समूह की तरह अत्यंत पीले वर्ण के, प्रियभाषी, अशोक के फूलों के ढेर की तरह अरुण कान्ति से प्रकाशित, सोने

के सदृश्य पीले नेत्रों वाले और अति विनीत भाव से बैठे हुए हनुमान जी को देखकर, सीता जी का चित्त अत्यंत चंचल और विस्मित हो उठा। वह मन ही मन सोचने लगीं, अरे ! इस दुर्धुष वानर का रूप तो बड़ा भयानक है ॥१-३॥

दुर्निरीक्ष्यं इदं मत्वा पुनरेव मुमोह सा ।
विललाप भृशं सीता करुणं भयमोहिता ॥ ४ ॥

इसकी ओर तो आँख उठा कर भी नहीं देखने का साहस भी नहीं होता । ऐसा विचार कर सीता जी भय से मूर्छित सी हो गयीं। तथा भय से मोहित और दुःख से कातर होकर पुन: विलाप करने लगीं ॥४॥

रामरामेति दुःखार्ता लक्ष्मणेति च भामिनी ।
रुरोद सहसा सीता मन्दमन्दस्वरा सती ॥ ५ ॥

धीमे स्वर वाली दुखियारी सती सीता, हा राम! हा लक्ष्मण !! कह कर, धीमी आवाज़ से बहुत रोने लगीं ॥५॥

सा तं दृष्ट्वा हरिवरं विनीतवदुपागतम् ।
मैथिली चिन्तयामास स्वप्नोऽयमिति भामिनी ॥ ६ ॥

परन्तु विनम्रभाव से उपस्थित कपिश्रेष्ठ हनुमान जी को देखकर जानकी जी ने विचार किया कि, कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रही ॥६॥

सा वीक्षमाणा पृथुभुग्नवक्त्रं शाखामृगेन्द्रस्य यथोक्तकारम् ।
दर्दर्श पिङ्गप्रवरं महार्हं वातात्मजं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ॥ ७ ॥

सीता जी ने जब पुन: उन पर दृष्टिपात किया तब उन्हें पुनः उन आज्ञाकारी, पवननन्दन हनुमान जी का विशाल टेढ़ा मुख दिखाई दिया, जो वानरों में तथा बुद्धिमानों में श्रेष्ठ थे और मूल्यवान आभूषण पहनने योग्य थे॥७॥

सा तं समीक्ष्यैव भृशं विपन्ना गतासुकल्पेव बभूव सीता ।
चिरेण सञ्ज्ञां प्रतिलभ्य चैवं विचिन्तयामास विशालनेत्रा ॥ ८ ॥

उन्हें देखते ही सीताजी अंत्यंत व्याकुल होकर मूर्ती जैसी हो गयी, मानों मृतप्राय हो गयी हों। फिर बहुत देर बाद सचेत होकर, वह विशाल नयनी सीता जी विचारने लगीं ॥८॥

स्वप्ने मयायं विकृतोऽद्य दृष्टः शाखामृगः शास्त्रगणैर्निषिद्धः ।
स्वस्त्यस्तु रामाय सलक्ष्मणाय तथा पितुर्मे जनकस्य राज्ञः ॥ ९ ॥

आज मैंने यह बड़ा बुरा स्वप्न देखा है। क्योंकि स्वप्न में वानर का देखना शास्त्रों में निषिद्ध बताया गया है। अत: मेरी भगवान् से प्रार्थना है कि लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी का तथा मेरे पिता महाराज जनकाजी का मंगल हो ॥९॥

स्वप्नोऽहि नायं नहि मेऽस्ति निद्रा शोकेन दुःखेन च पीडितायाः ।
सुखं हि मे नास्ति यतो विहीना तेनेन्दुपूर्णप्रतिमानेनेन ॥ १० ॥

जानकी जी पुन: विचार कर कहने लगीं यह स्वप्न तो हो नहीं सकता क्योंकि शोक और दुःख से पीड़ित रहने के कारण मुझे कभी नींद तो आती नहीं। भला शोक और दुःख से पीड़ित को नींद कहाँ आती है। निद्रा तो सुखी रहने वालों को आती है। मुझे तो उन चन्द्रमुख श्रीराम चन्द्र जी से बिछुड़ जाने के कारण, अब सुख सुलभ ही नहीं है ॥१०॥

रामेति रामेति सदैव बुद्ध्या विचिन्त्य वाचा ब्रुवती तमेव ।
तस्यानुरूपं च कथां तदर्थामेवं प्रपश्यामि तथा शृणोमि ॥ ११ ॥

इसका कारण तो मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि, मैं रात दिन श्रीराम जी के ध्यान में रहती और श्रीराम जो का नाम रटा करती हूँ। अतः मुझे तदनुरूप ही देख और सुन पड़ता है।॥ ११ ॥

अहं हि तस्याद्य मनोभवेन सम्पीडिता तद्गतसर्वभावा ।
विचिन्तयन्ती सततं तमेव तथैव पश्यामि तथा शृणोमि ॥ १२ ॥

सदा की भाँति मैं आज भी श्री रामचंद्र जी के वियोग में कन्दर्प से पीड़ित हो बैठी हुई, उन्ही का ध्यान कर रही थी। अत: श्री राम की लालसा से अत्यंत पीड़ित होने के कारण मुझे सदा उन्हीं का ध्यान रहता है तथा उन्ही के अनुरूप दिखाई देता है ॥१२॥

मनोरथः स्यादिति चिन्तयामि तथापि बुद्ध्यापि वितर्कयामि ।
किं कारणं तस्य हि नास्ति रूपं सुव्यक्तरूपश्च वदत्ययं माम् ॥१३॥

किन्तु इसका कारण तो मेरा मनोरथ भी हो सकता है। यह बात मैं समझती हूँ, तब भी बुद्धि इस बात को ग्रहण नहीं करती क्योंकि मेरे मनोरथ का ऐसा रूप नहीं जान पड़ता । अर्थात् मेरा मनोरथ तो श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन का है, किन्तु यह तो वानर का दर्शन है और यह वानर मुझसे बातचीत भी कर रहा है। इसका क्या कारण है ? ॥१३॥

नमोऽस्तु वाचस्पतये सवज्रिणे स्वयम्भुवे चैव हुताशनाय ।
अनेन चोक्तं यदिदं ममाग्रतो वनौकसा तच्च तथास्तु नान्यथा ॥१४॥

मैं बृहस्पति, इन्द्र, ब्रह्मा और अग्नि को प्रणाम करती हूँ और प्रार्थना करती हूँ कि, इस वानर ने जो मेरे सामने जो कुछ अभी कहा है, वह सब सत्य निकले, और उसमें कुछ भी अन्यथा न हो ॥ १४॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का बत्तीसवां सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥त्रयस्त्रिंशः सर्गः तैंतीसवाँ सर्ग ॥

आत्मानं परिचाययन्त्या सीतया स्ववनागमनापहरणयोर्वृत्तान्तस्य वर्णनम् – सीताजी का हनुमान को परिचय देते हुए, वनगमन और अपहरण का वृतांत बताना

सोऽवतीर्य द्रुमात् तस्माद् विद्रुमप्रतिमाननः ।
विनीतवेषः कृपणः प्रणिपत्योपसृत्य च ॥ १ ॥

तामब्रवीन्महातेजा हनूमान् मारुतात्मजः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय सीतां मधुरया गिरा ॥ २ ॥

इतने में मूंगे के समान लाल मुख वाले, महातेजस्वी हनुमानजी, वृक्ष की ऊंची शाखा से नीचे की शाखा पर उतर आये और सीताजी के निकट जा प्रणाम कर माथे पर अंजली बाँध ली और हाथ जोड़े हुए, अर्थात् अत्यंत विनम्र और दीनभाव से, मधुर वाणी द्वारा सीता जी से बोले ॥१-२॥

का नु पद्मपलाशाक्षि क्लिष्टकौशेयवासिनि ।
द्रुमस्य शाखामालम्ब्य तिष्ठसि त्वमनिन्दिते ॥ ३ ॥

हे कमलनयनी ! हे सर्वांग सुन्दरी ! आप कौन हैं, जो ऐसे मैले कपड़े पहने और पेड़ की डाली पकड़े हुए खड़ी हैं ? ॥३॥

किमर्थं तव नेत्राभ्यां वारि स्रवति शोकजम् ।
पुण्डरीकपलाशाभ्यां विप्रकीर्णमिवोदकम् ॥ ४ ॥

कमलपत्र से जलबिन्दु टपकने के समान, आपके नेत्रों से शोक जनित यह आंसू क्यों टपक रहे हैं ?॥४॥

सुराणामसुराणां च नागगन्धर्वरक्षसाम् ।
यक्षाणां किंनराणां च का त्वं भवसि शोभने ॥ ५ ॥

हे शोभने ! सुरों, असुरों, नागों, गन्धों, राक्षसों, यक्षों, किन्नरों में से आप कौन हो?॥५॥

का त्वं भवसि रुद्राणां मरुतां वा वरानने ।
वसूनां वा वरारोहे देवता प्रतिभासे मे ॥ ६ ॥

हे चारुबदने ! अथवा आप रुद्रों, रुद्र्गणों अथवा वसुओं में से कोई हो? क्योंकि आप तो मुझे देवताओं जैसी दिखाई दे रही हो ॥६॥

किं नु चन्द्रमसा हीना पतिता विबुधालयात् ।
रोहिणी ज्योतिषां श्रेष्ठा श्रेष्ठा सर्वगुणाधिका ॥ ७ ॥

अथवा आप नक्षत्रों में श्रेष्ठ तथा सर्वगुण प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ रोहिणी तो नहीं हो, जो चन्द्रमा के वियोगजन्य शोक से ग्रसित होकर, स्वर्ग से पृथिवी पर आ गिरी हो ? ॥७॥

का त्वं भवसि कल्याणि त्वमनिन्दित लोचने ।
कोपाद् वा यदि वा मोहाद् भर्तारमसितेक्षणे ॥ ८ ॥

वसिष्ठं कोपयित्वा त्वं वासि कल्याण्यरुन्धती ।
को नु पुत्रः पिता भ्राता भर्ता वा ते सुमध्यमे ॥ ९ ॥

हे सुन्दर नेत्रों वाली कल्याणी ! तुम कौन हो ? हे काले नेत्रों वाली! कोप या मोह वश, आप अपने पति वशिष्ठजी को कुपित करके यहाँ आयी हुई अरुन्धती तो नहीं हो? हे सुमध्यमे ! कहीं तुम्हारा पुत्र, पिता, भाई, अथवा पति तो ॥८-९॥

अस्माल्लोकादमुं लोकं गतं त्वमनुशोचसि ।
रोदनादतिनिःश्वासाद् भूमिसंस्पर्शनादपि ॥ १० ॥

इस लोक से परलोक को नहीं चला गया, जिसके लिये आप शोक कर रही हैं। आपके रोने, निवास छोड़ने और भूमिस्पर्श करने से ॥१०॥

न त्वां देवीमहं मन्ये राज्ञः सञ्ज्ञावधारणात् ।
व्यञ्जनानि हि ते यानि लक्षणानि च लक्षये ॥ ११ ॥

यह तो मुझे निश्चय हो गया कि, आप देवता नहीं हो। क्योंकि देवता ये काम नहीं करते फिर आपने बार बार महाराज श्रीरामचन्द्र जी का नाम लिया है। अतः आपके शारीरिक अवयवों के गठन तथा सामुद्रिकशास्त्र में वर्णित अन्य शारीरिक लक्षणों को देखने से ॥११॥

महिषी भूमिपालस्य राजकन्या च मे मता ।
रावणेन जनस्थानाद् बलात् प्रमथिता यदि ॥ १२ ॥

सीता त्वमसि भद्रं ते तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ।
यथा हि तव वै दैन्यं रूपं चाप्यतिमानुषम् ॥ १३ ॥

मुझे निश्चित रूप से ऐसा लगता है कि, आप किसी भूपाल की पटरानी अथवा राजकन्या हो। रावण जनस्थान से बलपूर्वक जिनको अपहृत हर लाया था, यदि आप वही सीता हो तो आपका कल्याण हो। आप ठीक ठीक मुझे बताइये। क्योंकि दुःख के कारण आपकी दीनता से, आपके आलौकिक रूप से ॥१२-१३॥

तपसा चान्वितो वेषस्त्वं राममहिषी ध्रुवम् ।
सा तस्य वचनं श्रुत्वा रामकीर्तनहर्षिता ॥ १४ ॥

तथा आपके तपस्विनी के वेश से आप निश्चय ही मुझे श्रीराम की महारानी दिखाई देती हैं। हनुमान जी के इन वचनों को तथा श्रीराम नाम-कीर्तन को सुनकर, सीता जी हर्षित हो गयीं ॥१४॥

उवाच वाक्यं वैदेही हनुमन्तं द्रुमाश्रितम् ।
पृथिव्यां राजसिहानां मुख्यस्य विदितात्मनः ॥ १५ ॥

और वृक्ष पर बैठे हनुमान जी से वैदेही कहने लगी-हे कपिवर ! पृथिवी के समस्त श्रेष्ठ राजाओं में मुख्य एवं प्रसिद्ध ॥१५॥

स्नुषा दशरथस्याहं शत्रुसैन्यप्रणाशिनः ।
दुहिता जनकस्याहं वैदेहस्य महात्मनः ॥ १६ ॥

और शत्रुओं के सेना का संहार करने वाले महाराज दशरथ की मैं पुत्रवधू और महात्मा: विदेह राजा जनकजी मैं पुत्री हूँ ॥१६॥

सीतेति नाम्ना चोक्ताहं भार्या रामस्य धीमतः ।
समा द्वादश तत्राहं राघवस्य निवेशने ॥ १७ ॥

मेरा नाम सीता है, और बुद्धिमान श्रीरामचन्द्र जी की मैं धर्म पत्नी हूँ। बारह वर्ष तक मैं श्रीरामचन्द्र जी के निवास अयोध्या में उनके अंत:पुर में ॥ १७ ॥

भुञ्जाना मानुषान् भोगान् सर्वकामसमृद्धिनी ।
ततस्त्रयोदशे वर्षे राज्ये चेक्ष्वाकुनन्दनम् ॥ १८ ॥

अभिषेचयितुं राजा सोपाध्यायः प्रचक्रमे ।
तस्मिन् सम्भ्रियमाणे तु राघवस्याभिषेचने ॥ १९ ॥

सभी कामनाओं को पूर्ण करती हुई, मनुष्योपयोगी समस्त पदार्थों का उपयोग करती रही। तदनन्तर तेरहवें वर्ष महाराज दशरथ ने वशिष्ठ जी की सलाह से, इश्वाकुनन्दन श्रीरामचन्द्र जी का राज्याभिषेक करना चाहा। अभिषेक की सारी तैयारियां पूरी होने के पश्च्यात ॥१८-१९॥

कैकेयी नाम भर्तारमिदं वचनमब्रवीत् ।
न पिबेयं न खादेयं प्रत्यहं मम भोजनम् ॥ २० ॥

कैकेयी ने अपने पति महाराज दशरथ से यह कहा कि, अब मैं न तो जलपान ही करुँगी और न भोजन ही ग्रहण करुँगी ॥२०॥

एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते ।
यत् तदुक्तं त्वया वाक्यं प्रीत्या नृपतिसत्तम ॥ २१ ॥

यदि आपने श्रीरामचन्द्र जी का राज्याभिषेक किया तो वही मेरे जीवन का अंत होगा। हे नृपोत्तम! आपने प्रसन्नता पूर्वक, पूर्वकाल में मुझे जो वर दिया था ॥२१॥

तच्चेन्न वितथं कार्यं वनं गच्छतु राघवः ।
स राजा सत्यवाग् देव्या वरदानमनुस्मरन् ॥ २२ ॥

उसे यदि तुम मिथ्या नहीं करना चाहते हो, तो श्रीरामचन्द्र जी वन को चले जाएँ । हे कपिवर ! वह सत्यवादी राजा अपने पहले दिए हुए वर को स्मरण कर ॥२२॥

मुमोह वचनं श्रुत्वा कैकेय्याः क्रूरमप्रियम् ।
ततस्तं स्थविरो राजा सत्ये धर्मे व्यवस्थितः ॥ २३ ॥

कैकेयी के इस निष्ठुर और अप्रिय वचन को सुन कर, अचेत हो गये। तदनन्तर वृद्ध महाराज दशरथ ने सत्य रूपी धर्म का पालन करने के लिये ॥२३॥

ज्येष्ठं यशस्विनं पुत्रं रुदन् राज्यमयाचत ।
स पितुर्वचनं श्रीमानभिषेकात् परं प्रियम् ॥ २४ ॥

रोते हुए अपने यशस्वी ज्येष्ठ राजकुमार श्रीरामचन्द्र जी से दिया हुआ राज्य भारत के लिए माँगा; किन्तु श्रीरामचन्द्र जी ने अपने अभिषेक से कहीं बढ़ कर पिता की आज्ञा को प्रिय समझा ॥२४॥

मनसा पूर्वमासाद्य वाचा प्रतिगृहीतवान् ।
दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् सत्यं ब्रूयान्न चानृतम् ॥ २५ ॥

अपि जीवितहेतोर्हि रामः सत्यपराक्रमः ।
स विहायोत्तरीयाणि महार्हाणि महायशाः ॥ २६ ॥

और प्रथम उन्होंने उसे मन से अंगीकार कर फिर वाणी द्वारा प्रकट किया। क्योंकि सत्यपराक्रमी श्री रामचन्द्र जी दान देते हैं, दान लेते नहीं, वह सदा सत्य ही बोलते हैं, कभी झूठ नहीं बोलते। इस विषय में भले ही उनके प्राण ही क्यों न चले जायें, परन्तु वह केवल सत्य का ही पालन करते हैं। महायशस्वी श्रीरामचन्द्र जी ने बड़े मूल्यवान एवं बढ़िया वस्त्रों को त्याग कर, ॥२५-२६॥

विसृज्य मनसा राज्यं जनन्यै मां समादिशत् ।
सा ऽहं तस्याग्रतस्तूर्णं प्रस्थिता वनचारिणी ॥ २७ ॥

तथा मन से राज्य को छोड़, मुझे अपनी जननी की सेवा करने की आज्ञा दी। परन्तु मैं तुरन्त ही वन चारिणी का वेश बना कर, उनके आगे आगे वन जाने को तैयार हुई ॥२७॥

न हि मे तेन हीनाया वासः स्वर्गेऽपि रोचते ।
प्रागेव तु महाभागः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ॥ २८ ॥

क्योंकि श्रीराम के बिना मुझे अकेले स्वर्ग में रहना भी अच्छा नहीं लगता। अपने सुहृद्यों के आनन्द को बढ़ाने वाले सुमित्रा नंदन महाभाग लक्ष्मण भी ॥२८॥

पूर्वजस्यानुयात्रार्थे कुशचीरैः अलङ्कृतः ।
ते वयं भर्तुरादेशं बहुमान्य दृढव्रताः ॥ २९ ॥

प्रविष्टाः स्म पुरादृष्टं वन गम्भीरदर्शनम् ।
वसतो दण्डकारण्ये तस्याहममितौजसः ॥ ३० ॥

चीर वल्कल धारण कर, बड़े भाई के साथ चलने को तैयार हो गये। अत: हम सब महाराज दशरथ की आज्ञा को अति आदर और दृढ़ता पूर्वक पालन करते हुए ऐसे सघन वन में प्रवेश किया, जिसे पहले कभी नहीं देखा था। हम सब लोग दण्डकवन में रहा करते थे कि, उन महाबली ॥२९-३०॥

रक्षसापहृता भार्या रावणेन दुरात्मना ।
द्वौ मासौ तेन मे कालो जीवितानुग्रहः कृतः ।
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां तु मासाभ्यां ततस्त्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ ३१ ॥

श्रीरामचन्द्र जी की भार्या अर्थात मुझ को दुष्ट रावण हर लाया। उसने अनुग्रह कर मुझे दो मास तक और जीवित रखने की अवधि बाँध दी है। दो मास बीतने पर मुझे अपने प्राण त्यागने पड़ेंगे ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकांड का तैतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥चतुस्त्रिंशः सर्गः चौंतीसवाँ सर्गः ॥

हनुमति सीताया सन्देहः, स्वत एव तस्य समाधानं च सीताया आदेशेन हनुमता श्रीरामगुणानां वर्णनम् - सीता जी का हनुमान के प्रति संदेह तथा उसका समाधान तथा हनुमान जी द्वारा श्री रामजी के गुणों का वर्णन

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा हनुमान् हरिपुंगवः ।
दुःखाद् दुःखाभिभूतायाः सान्त्वमुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥

शोकसन्तप्ता जानकीजी के यह वचन सुन, कपिप्रवर हनुमान जी उनको सांत्वना देते हुए उत्तर में यह वोले ॥१॥

अहं रामस्य सन्देशाद् देवि दूतस्तवागतः ।
वैदेहि कुशली रामः स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥ २ ॥

हे देवी! श्रीरामचन्द्र जी को आज्ञा से दूत बन कर, मैं तुम्हारे पास उनका संदेशा लेकर आया हूँ। विदेहनन्दिनी ! श्रीरामचन्द्र जी सकुशल हैं तथा आपका कुशल वृत्तान्त पुछा है ॥२॥

यो ब्राह्ममस्त्रं वेदांश्च वेद वेदविदां वरः ।
स त्वां दाशरथी रामो देवि कौशलमब्रवीत् ॥ ३ ॥

हे देवी! जिन्हें ब्रह्मास्त्र और वेदों का भी पूर्ण ज्ञान है और जो वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं, उन्हीं दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी ने आपका कुशल मंगल पूछा है ॥३॥

लक्ष्मणश्च महातेजा भर्तुस्तेऽनुचरः प्रियः ।
कृतवाञ्छोकसन्तप्तः शिरसा तेऽभिवादनम् ॥ ४ ॥

महा तेजस्वी और अपने बड़े भाई की सेवा में सदा तत्पर रहने वाले, लक्ष्मण जी ने शोकसन्तप्त होकर तथा शीश झुका कर आपको प्रणाम कहा है ॥४॥

सा तयोः कुशलं देवी निशम्य नरसिंहयोः ।
प्रीतिसंहृष्टसर्वाङ्गी हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥ ५ ॥

उन दोनों पुरुष सिंहों का कुशलसंवाद सुनकर, सीता का सारा शरीर हर्ष से पुलकित हो गया और वह हनुमान जी से कहने लगीं ॥५॥

कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मा ।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥ ६ ॥

मनुष्य यदि जीवित रहे तो सौ वर्ष के बाद भी उसको आनंद प्राप्त होता ही है, यह लौकिक कहावत आज मुझे बिलकुल सत्य एवं कल्याणमयी जान पड़ती है ॥६॥

तयोः समागते तस्मिन् प्रीतिरुत्पादिताद्भुता ।
परस्परेण चालापं विश्वस्तौ तौ प्रचक्रतुः ॥ ७ ॥

इस प्रकार सीताजी और हनुमान जी के भेंट हो जाने पर अब उन दोनों में परस्पर विलक्षण अनुराग उत्पन्न हो गया और वह दोनों विश्वस्त होकर आपस में वार्तालाप करने लगे ॥७॥

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा हनुमान् मारुतात्मजः ।
सीतायाः शोकतप्तायाः समीपमुपचक्रमे ॥ ८ ॥

शोक संतप्त सीता जो के उन वचनों को सुनकर, कपि श्रेष्ठ हनुमान जी, सीता जी के कुछ निकट चले गये ॥८॥

यथा यथा समीपं स हनुमानुपसर्पति ।
तथा तथा रावणं सा तं सीता परिशङ्कते ॥ ९ ॥

किन्तु हनुमान जी जैसे जैसे सीता जी के निकट पहुँचते, वैसे वैसे सीता जी हनुमान जी को रावण समझ कर, उन पर सन्देह करती जाती थी ॥९॥

अहो धिग् धिक्कृतमिदं कथितं हि यदस्य मे ।
रूपान्तरमुपागम्य स एवायं हि रावणः ॥ १० ॥

मैंने इस वानर से बातचीत करके बड़ा अनुचित कार्य किया, मुझको धिक्कार है। क्योंकि यह रूप बदले हुए रावण ही है ॥१०॥

तामशोकस्य शाखां सा विमुक्ता शोककर्शिता ।
तस्यामेवानवद्याङ्गी धरण्यां समुपाविशत् ॥ ११ ॥

सुन्दरी सीता जी यह कह कर तथा शोक से विकल होकर, अशोक की शाखा को छोड़ नहीं भूमि पर बैठ गयीं ॥११॥

हनुमानपि दुःखार्ता तां दृष्ट्वा भयमोहिताम ।
अवन्दत महाबाहुस्ततस्तां जनकात्मजाम् ॥ १२ ॥

महाबाहु हनुमान जी ने दुःख संतप्त सीता जी को भयभीत देख कर, उनको प्रणाम किया ॥ १२॥

सा चैनं भसन्त्रस्ता भूयो नैनमुदैक्षत ।
तं दृष्ट्वा वन्दमानं तु सीता शशिनिभानना ॥ १३ ॥

किन्तु भयभीत सीता जी ने फिर हनुमान जी की ओर नहीं देखा। अपितु चन्द्रमुखी सीता जी ने, हनुमान जी को प्रणाम करते देख कर, ॥ १३ ॥

अब्रवीद् दीर्घमुच्छ्वस्य वानरं मधुरस्वरा ।
मायां प्रविष्टो मायावी यदि त्वं रावणः स्वयम् ॥ १४ ॥

लम्बी साँसे लेकर, हनुमान जी से मधुर स्वर में कहा कि, यदि तुम सचमुच कपिरूप धारण किये हुए रावण हो ॥१४॥

उत्पादयसि मे भूयः सन्तापं तन्न शोभनम् ।
स्वं परित्यज्य रूपं यः परिव्राजकरूपवान् ॥ १५ ॥

जनस्थाने मया दृष्टस्त्वं स एव हि रावणः ।
उपवासकृशां दीनां कामरूप निशाचर ॥ १६ ॥

तो यह तूने मुझे जो पुनः शोक सन्तप्त किया है, वह अच्छा नहीं किया। तू वही रावण है जो अपना रूप बदलकर और संन्यासी का रूप धारण कर, जनस्थान में मेरा अपहरण करने गया था। हे कामरूपी निशाचर! मैं तो वैसे ही भूखी प्यासी रह कर कृश और दीन हो रही हूँ ॥१५-१६॥

सन्तापयसि मां भूयः सन्तापं तन्न शोभनम् ।
अथवा नैतदेवं हि यन्मया परिशंकितम् ॥ १७ ॥

अत: मुझ सन्तप्त को पुनः सन्तप्त करना, तुझको शोभा नहीं देता! अथवा जिस बात के लिए मुझे संदेह हो रहा है ॥१७॥

मनसो हि मम प्रीतिः उत्पन्ना तव दर्शनात् ।
यदि रामस्य दूतस्त्वमागतो भद्रमस्तु ते ॥ १८ ॥

हो सकता है उचित न हो क्योंकि तुझे देखने से मेंरे मन में तेरे प्रति स्नेह उत्पन्न हो रहा है। अत: वानर श्रेष्ठ यदि तुम श्रीराम चन्द्र जी का दूत बन कर यहाँ आये हो, तो तेरा कल्याण हो ॥१८॥

पृच्छामि त्वां हरिश्रेष्ठ प्रिया रामकथा हि मे ।
गुणान् रामस्य कथय प्रियस्य मम वानर ॥ १९ ॥

अब मैं तुमसे पूछती हूँ। हे कपिश्रेष्ठ! तुम मुझे श्रीराम चन्द्र जी का वृत्तान्त बताओ। साथ ही हे वानर ! मेरे प्यारे श्रीरामचन्द्र जी के गुणों का भी वर्णन करो ॥१९॥

चित्तं हरसि मे सौम्य नदीकूलं यथा रयः ।
अहो स्वप्नस्य सुखता याहमेव चिराहृता ॥ २० ॥

प्रेषितं नाम पश्यामि राघवेण वनौकसम् ।
स्वप्नेऽपि यद्यहं वीरं राघवं सहलक्ष्मणम् ॥ २१ ॥

हे सौम्य ! तुम मेरे मन को अपनी ओर उसी प्रकार खींच रहे हो। जिस प्रकार नदी अपने किनारे को अपनी ओर खींचती है। आहा! देखो, स्वप्न भी कैसा सुखदायी होता है, जो मैं चिरकाल से श्रीराम चन्द्र जी से बिछुड़ी हुई आज श्रीरामचन्द्र जी के भेजे हुए दूत वानर को देख रही हूँ। यदि मैं स्वप्न में भी श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण को देख पाती ॥२०-२१॥

पश्येयं नावसीदेयं स्वप्नोऽपि मम मत्सरी ।
नाहं स्वप्नमिमं मन्ये स्वप्ने दृष्ट्वा हि वानरम् ॥ २२ ॥

तो दुखी नहीं होती, किन्तु स्वप्न भी तो मुझसे ईर्ष्या रखता है। परन्तु मैं इसे स्वप्न नहीं मानती क्योंकि स्वप्न में बन्दर को देखने से ॥२२॥

न शक्योऽभ्युदयः प्राप्तुं प्राप्तश्चाभ्युदयो मम ।
किन्नु स्याच्चित्तमोहोऽयं भवेद् वातगतिस्त्वियम् ॥ २३ ॥

किसी का कल्याण नहीं होता, किन्तु मुझे तो स्वप्न में वानर देखने से संतोष रूपी कल्याण की प्राप्ति हुई है। कहीं यह मेरे चित्त का विमोह तो नहीं है अथवा भूखी रहते रहते कहीं वायु कुपित हो कर मेरा मस्तिष्क तो नहीं बिगाड़ रहा है ? ॥ २३ ॥

उन्मादजो विकारो वा स्यादयं मृगतृष्णिका ।
अथवा नायमुन्मादो मोहोऽप्युन्मादलक्षणः ॥ २४ ॥

अथवा यह विक्षिप्तता मूलक कोई उपद्रव तो नहीं है अथवा यह मृगतृष्णा की तरह मुझे अन्य वस्तु का अन्य स्थान में भास् मात्र हो रहा है ? अथवा न तो यह वित्तिप्तता है और न उससे उत्पन्न हुआ यह मोह अर्थात् ज्ञानशून्यता ही है ॥ २४ ॥

सम्बुध्ये चाहमात्मानं इमं चापि वनौकसम् ।
इत्येवं बहुधा सीता सम्प्रधार्य बलाबलम् ॥ २५ ॥

क्योंकि मैं अपने आपको और इस वानर को भली भाँति देख और समझ रही हूँ। सीता जी ने इस प्रकार बहुत कुछ सोच विचार कर, राक्षसों की प्रबलता और वानरों की निर्बलता का निश्चय करके ॥ २५ ॥

रक्षसां कामरूपत्वान्मेने तं राक्षसाधिपम् ।
एतां बुद्धिं तदा कृत्वा सीता सा तनुमध्यमा ॥ २६ ॥

हनुमान जी को कामरूपी राक्षसराज रावण ही समझा। इस प्रकार का निश्चय कर, सूक्ष्म कमर वाली सीता ॥२६॥

न प्रतिव्याजहाराथ वानरं जनकात्मजा ।
सीताया निश्चितं बुद्ध्वा हनुमान् मारुतात्मजः ॥ २७ ॥

जनकनन्दिनी ने फिर हनुमान जी से कुछ बातचीत नहीं की। तब पवननन्दन हनुमान जी सीता जी को चिन्तित जान कर, अर्थात् अपने ऊपर सन्देह करते जान कर ॥२७॥

श्रोत्रानुकूलैर्वचनैस्तदा तां सम्प्रहर्षयन् ।
आदित्य इव तेजस्वी लोककान्तः शशी यथा ॥ २८ ॥

श्रुतमधुर वचन कहकर, उनको भली भाँति प्रसन्न करने लगे। वह बोले- जो आदित्य की तरह तेजस्वी, चन्द्रमा की तरह सर्व प्रिय हैं ॥२८॥

राजा सर्वस्य लोकस्य देवो वैश्रवणो यथा ।
विक्रमेणोपपन्नश्च यथा विष्णुर्महायशाः ॥ २९ ॥

जो कुबेर की तरह सब लोगों के राजा, पराक्रम प्रदर्शन करने में महायशस्वी विष्णु के समान हैं ॥२६॥

सत्यवादी मधुरवाग् देवो वाचस्पतिर्यथा ।
रूपवान् सुभगः श्रीमान् कन्दर्प इव मूर्तिमान् ॥ ३० ॥

जो बृहस्पति की तरह सत्यवादी और मधुरभाषी हैं। जो रूप, सौभाग्य और सौन्दर्य में साक्षात् मूर्तिमान कन्दर्प की तरह हैं ॥३०॥

स्थानक्रोधे प्रहर्ता च श्रेष्ठो लोके महारथः ।
बाहुच्छायामवष्टब्धो यस्य लोको महात्मनः ॥ ३१ ॥

जो उचित क्रोध कर दण्ड देने वाले हैं, जो सर्वश्रेष्ठ और महारथी हैं, जिनकी भुजाओं की छाया में रह कर लोग सुखी रहते हैं ॥३१॥

अपक्रम्याश्रमपदान्मृन्मृगरूपेण राघवम् ।

शून्ये येनापनीतासि तस्य द्रक्ष्यसि तत्फलम् ॥ ३२ ॥

उन श्रीरामचन्द्र जी को मृगरूप धारी निशाचर द्वारा आश्रम को दूर हटा कर और एकान्त पाकर, आपका अपहरण किया है, उसे अपने पापों का फल अति शीघ्र मिलने वाला है ॥३२॥

अचिराद् रावणं सङ्ख्ये यो वधिष्यति वीर्यवान् ।
रोषप्रमुक्तैरिषुभिर्ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥ ३३ ॥

पराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी क्रुद्ध होकर अग्नि की तरह दीप्तमान् बाणों द्वारा युद्ध में रावण को अतिशीघ्र मारेंगे ॥३३॥

तेनाहं प्रेषितो दूतः त्वत्सकाशमिहागतः ।
त्वद्वियोगेन दुःखार्तः स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥ ३४ ॥

उन्ही का भेजा हुआ उनका दूत मैं तुम्हारे पास आया हूँ । भगवान श्रीराम आपके वियोग्जनित दुःख से पीड़ित हैं। उन्होंने आपके पास अपनी कुशल भिजवाई है और आपकी कुशलवार्ता पूछी है ॥३४॥

लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः ।
अभिवाद्य महाबाहुः स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

महाबाहु और सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले महातेजस्वी लक्ष्मण जी ने प्रणाम पूर्वक आपकी कुशलवार्ता पूछी है ॥३५॥

रामस्य च सखा देवि सुग्रीवो नाम वानरः ।
राजा वानरमुख्यानां स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥ ३६ ॥

हे देवी! सुग्रीव नाम के वानर ने, जो श्रीरामचन्द्र जी के मित्र हैं और वानरों के राजा है, आपकी कुशल पूछी है ॥३६॥

नित्यं स्मरति ते रामः ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ।
दिष्ट्या जीवसि वैदेहि राक्षसीवशमागता ॥ ३७ ॥

सुग्रीव और लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी नित्य आपको याद किया करते हैं। हे वैदेही! यह सौभाग्य की बात है कि, आप इन राक्षसियों के चंगुल में फंस कर भी आप अभी तक जीवित हैं ॥३७॥

नचिराद् द्रक्ष्यसे रामं लक्ष्मणं च महारथम् ।
मध्ये वानरकोटीनां सुग्रीवं चामितौजसम् ॥ ३८ ॥

हे देवी ! आप थोड़े ही दिनों बाद लक्ष्मण सहित महाबली श्रीरामचन्द्र जी को और अत्यंत पराक्रमी सुग्रीव को करोड़ों वानरों सहित यहाँ देखोगी ॥३८॥

अहं सुग्रीवसचिवो हनुमान् नाम वानरः ।
प्रविष्टो नगरीं लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम् ॥ ३९ ॥

मैं सुग्रीव का मंत्री हूँ और मेरा नाम हनुमान है। मैं समुद्र को लांघ कर लंका पुरी में आया हूँ ॥३९॥

कृत्वा मूर्ध्नि पदन्यासं रावणस्य दुरात्मनः ।
त्वां द्रष्टुमुपयातोऽहं समाश्रित्य पराक्रमम् ॥ ४० ॥

मैंने अपने बलपराक्रम पर भरोसा करके और रावण के सिर पर पैर रख कर, लंकापुरी मे आपके दर्शन करने के लिए यहाँ आया हूँ ॥४०॥

नाहमस्मि तथा देवि यथा मामवगच्छसि ।
विशङ्का त्यज्यतां एषा श्रद्धत्स्व वदतो मम ॥ ४१ ॥

है देवी ! आप मुझे जो समझ रही हैं वह मैं नहीं हूँ अर्थात मैं रावण नहीं हूँ । अत: आप अपने सन्देह को दूर कर, मेरे कथन पर विश्वास कीजिए ॥४१॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का चौतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥पञ्चत्रिंशः सर्गः पैंतीसवाँ सर्गः ॥

सीतया पृष्टेन हनुमता श्रीरामस्य शारीरिकलक्षणानां गुणानां च वर्णनं नरवानरमैत्री प्रसंग श्रावयित्वा सीताया मनसि स्वकीयविश्वासस्योत्पदनं च – सीता जी के पूछने पर श्री हनुमान जी का श्री राम और लक्ष्मण जी के शारीरिक चिन्हों का वर्णन करना तथा श्री राम सुग्रीव मैत्री का वृतांत सुना कर सीता जी को विश्वास दिलाना

तां तु रामकथां श्रुत्वा वैदेही वानरर्षभात् ।
उवाच वचनं सान्त्वं इदं मधुरया गिरा ॥ १ ॥

हनुमान जी के मुख से श्रीरामचन्द्र जी का वृत्तान्त सुनकर, सीता जी ने मधुर वाणी से यह शान्त वचन कहे ॥१॥

क्व ते रामेण संसर्गः कथं जानासि लक्ष्मणम् ।
वानराणां नराणां च कथमासीत् समागमः ॥ २ ॥

कपिवर ! तुम्हारी श्रीरामचन्द्र जो से भेंट कहां हुई ? लक्ष्मण जी को तुम कैसे जानते हुए? मनुष्यों का और वानरों का यह विचित्र मेल कैसे हुआ? ॥२॥

यानि रामस्य चिन्हानि लक्ष्मणस्य च वानर ।
तानि भूयः समाचक्ष्व न मां शोकः समाविशेत् ॥ ३ ॥

हे वानर ! श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी के जो चिन्ह हैं, उनका तुम फिर वर्णन करो, जिनको सुनने के पश्च्यात मेरे मन में शोक उत्पन्न न हो ॥३॥

कीदृशं तस्य संस्थानं रूपं रामस्य कीदृशम् ।
कथमूरू कथं बाहू लक्ष्मणस्य च शंस मे ॥ ४ ॥

उनके शरीरों की आकृति कैसी है और श्रीरामचन्द्र जी का रूप फैसा है ? लक्ष्मण जी की जंघाएँ और भुजाएँ कैसी हैं ? यह सब तुम मुझे बताओ॥४॥

एवमुक्तस्तु वैदेह्या हनुमान् मारुतात्मजः ।
ततो रामं यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ५ ॥

विदेहकुमारी सीता जी ने जब इस प्रकार पूछा तब पवननन्दन हनुमान जी, श्रीरामचन्द्र जी के स्वरुप का यथावत् वर्णन करने लगे ॥५॥

जानन्ती बत दिष्ट्या मां वैदेहि परिपृच्छसि ।
भर्तुः कमलपत्राक्षि संस्थानं लक्ष्मणस्य च ॥ ६ ॥

वह बोले-हे कमलनयनी विदेहराज कुमारी ! आप अपने पति और लक्ष्मण जी के शरीरों के विषय में जानती हुई भी, मुझसे उनके चिन्हों का वर्णन करने को कह रही हैं , यह मेरे लिये बड़े सौभाग्य की बात है ॥६॥

यानि रामस्य चिह्नानि लक्ष्मणस्य च यानि वै ।
लक्षितानि विशालाक्षि वदतः शृणु तानि मे ॥ ७ ॥

हे जानकी जी! मैंने श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी के जिन शारीरिक चिन्हों को देखा है, वह सब मैं आपसे कहता हूँ। सुनिये ॥७॥

रामः कमलपत्राक्षः पूर्णचन्द्रनिभाननः ।
रूपदाक्षिण्यसम्पन्नः प्रसूतो जनकात्मजे ॥ ८ ॥

हे जनकनन्दिनी ! श्रीरामचन्द्र जी के नेत्र प्रफुल्लित कमल के समान विशाल एवं सुन्दर हैं। वह सब का मन हरण करने वाले हैं। वह जन्मकाल से ही रूप और रूप और चातुर्य अदि गुणों से संपन्न हैं अर्थात् वह स्वभाव से सुस्वरूप और चतुर हैं॥८॥

तेजसाऽऽदित्यसङ्काशः क्षमया पृथिवीसमः ।
बृहस्पतिसमो बुद्ध्या यशसा वासवोपमः ॥ ९ ॥

वह तेज में सूर्य के समान, क्षमा में पृथिवी के समान, बुद्धिमत्ता में बृहस्पति के समान और यश में इन्द्र के तुल्य हैं ॥९॥

रक्षिता जीवलोकस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य धर्मस्य च परन्तपः ॥ १० ॥

वह समस्त प्राणियों की, स्वजनों की, सदाचार की और अपने धर्म की रक्षा करने वाले हैं। तथा अपने शत्रुओं को संताप भी देने वाले हैं ॥१०॥

रामो भामिनि लोकस्य चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ।
मर्यादानां च लोकस्य कर्ता कारयिता च सः ॥ ११ ॥

हे सुन्दरी ! श्रीरामचन्द्र जी इस लोक में चारों वर्णों के रक्षक और लोक को मर्यादा में बांधने वाले और मर्यादा की रक्षा करने वाले हैं ॥११॥

अर्चिष्मानर्चितोऽत्यर्थं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ।
साधूनामुपकारज्ञः प्रचारज्ञश्च कर्मणाम् ॥ १२ ॥

वह अति कन्तिमान हैं और पूज्यों के भी पूज्य हैं। वह सदा ब्रह्मचर्यव्रत को धारण किये रहते हैं। वह साधु महात्माओं के प्रति उपकार करने के अवसर को जानने वाले तथा साधु महात्माओं द्वारा किये हुए उपकारों को मानने वाले हैं। वह शास्त्रविहित कर्मों के प्रचार को विधि को जानते हैं अथवा शास्त्रोक्त कर्मों के
प्रयोगों को वे जानने वाले हैं ॥१२॥

राजनीत्यां विनीतश्च ब्राह्मणानामुपासकः ।
ज्ञानवाञ्शीलसम्पन्नो विनीतश्च परन्तपः ॥ १३ ॥

वह चार प्रकार की राजविद्यायों में पूर्ण शिक्षित, ब्राह्मणोपासक, ज्ञानवान्, शीलवान्, विनम्र, किन्तु शत्रुओं को संताप देने वाले हैं ॥१३॥

यजुर्वेदविनीतश्च वेदविद्भिः सुपूजितः ।
धनुर्वेदे च वेदे च वेदाङ्गेषु च निष्ठितः ॥ १४ ॥

उन्हें यजुर्वेद भली भांति शिक्षा मिली है और वह वेदवेत्ताओं से भली भांति सम्मानित अथवा प्रशंसित हैं तथा धनुर्वेद में एवं चारो वेदों और वेदाङ्गों में निपुण हैं ॥१४॥

विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवः शुभाननः ।
गूढजत्रुः सुताम्राक्षो रामो देवि जनैः श्रुतः ॥ १५ ॥

हे देवी! श्रीरामचन्द्र जी, विशाल कंधों वाले, बड़ी भुजाओं वाले, शंख के सामान गर्दन वाले हैं तथा उनका मुख, सुन्दर है। उनके गले की हड्डी मांस से ढकी हुई है तथा उनके नयनों मे लालिमा हैं और लोक में वह श्रीरामचन्द्र जी के नाम से प्रसिद्ध हैं ॥१५॥

दुन्दुभिस्वननिर्घोषः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
समश्च सुविभक्ताङ्गो वर्णं श्यामं समाश्रितः ॥ १६ ॥

उनका कण्ठस्वर दुन्दभि के समान गम्भीर है, उनके शरीर का रंग सुन्दर एवं चिकना है, वह बड़े प्रतापी हैं, उनके समस्त अंग सुडौल और बराबर हैं और उनका वर्ण श्याम है ॥१६॥

त्रिस्थिरस्त्रिप्रलम्बश्च त्रिसमस्त्रिषु चोन्नतः ।
त्रिताम्रस्त्रिषु च स्निग्धो गम्भीरस्त्रिषु नित्यशः ॥ १७ ॥

उनके तीन अंग – वक्षस्थल, कलाई और मुट्ठी अत्यंत सुदृढ़ हैं। भौंह, बाहु और मेढ़ उनके ये तीन अङ्ग लंबे हैं, केश, वृषण और घुटने यह तीनों अंग उनके समान हैं। नाभि का अभ्यन्तर भाग, उदर और छाती उनके ये तीन अंङ्ग ऊंचे हैं। नेत्रों के किनारे, नख और चरणों के तलुए और दोनों हथेली लाल हैं। उनके पाँव की रेखा, केश, और शिश्न का अगला भाग चिकने हैं । उनका स्वर, उनकी नाभि और गति गम्भीर हैं ॥१७॥

त्रिवलीमांस्त्र्यवनतश्चतुर्व्यङ्गस्त्रिशीर्षवान् ।
चतुष्कलश्चतुर्लेखश्चतुष्किष्कुश्चतुः समः ॥ १८ ॥

चतुर्दशसमद्वन्द्वश्चश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्गतिः ।
महोष्ठहनुनासश्च पञ्चस्निग्धोऽष्टवंशवान् ॥ १९ ॥

उनके उदर और कण्ठ में तीन रेखाएं पड़ती है। उनके पैर के तलुए, चरणरेखा और स्तन के अग्रभाग गहरे हैं। उनका गला, पीठ और जांघे मोटी हैं। उनके मस्तक के ऊपर तीन भवरें हैं। उनके पैरों के अंगूठे के नीचे तथा ललाट में चारों वेद की ज्ञान-सम्पादन-सूचक चार रेखाएँ हैं। उनके ललाट में महा-दीर्घायु-सूचक चार रेखाएँ हैं। चौबीस अंगुल के हाथ से हाथ चार हाथ लंबे हैं। उनके बाहु, घुटना, जंघा, और कपाल समान हैं। भौं, नथुने, नेत्र, कर्ण, होंठ, स्तनाग्र, कुहनी, गट्टा, घुटना, कटि, हाथ, पैर और कटि का पिछला भाग समान है। उनके चार दांत चिकने, परस्पर मिले हुए और पैने हैं । सिंह, शार्दूल, पक्षी, हाथी और बैल की तरह चार प्रकार की उनकी चाल है। इनके होठ, ठोड़ी और नाक विशाल है। वाणी, मुख, नख, लोम और त्वचा चिकनी हैं। हाथ की नली, तर्जनी, कनिष्ठा, गुल्फ, बाहु, अरू और जंघा दीर्घ हैं ॥१८-१९॥

दशपद्मो दशबृहत्त्रिभिर्व्याप्तो द्विशुक्लवान् ।
षडुन्नतो नवतनुस्त्रिभिर्व्याप्नोति राघवः ॥ २० ॥

उनका मुख, नेत्र, मुख विवर, जिह्वा, होठ, तालु, स्तन, नख, हाथ और पैर यह दस अंग कमल के तुल्य हैं। उनके छाती, मस्तक, ललाट, गला, बाहु, कंधे, नाभि, पैर, पीठ, और कर्ण यह दस अंग विशाल हैं। श्री, यश और तेज से वह व्याप्त हैं। उनके मातृ पितृ दोनों वंश दोनों अंत्यंत शुद्ध हैं। उनके पार्श्व भाग, पेट, वक्ष: स्थल, नासिका, कंधे और ललाट ऊँचे हैं। अंगुलियों के पोर, सिर के बाल, रोम, नख, त्वचा और दाढ़ी के बाल कोमल हैं। उनको सूक्ष्म दृष्टि और सूक्ष्म बुद्धि है ॥२०॥

सत्यधर्मरतः श्रीमान् संग्रहानुग्रहे रतः ।
देशकालविभागज्ञः सर्वलोकप्रियंवदः ॥ २१ ॥

श्रीरामचन्द्र जी सत्यधर्मपरायण, कान्तिवान्, द्रव्य के उपार्जन करने और दान करने में सदा तत्पर, समय का यथोचित विभाग जानने वाले और सब से प्रिय बोलने वाले हैं ॥२१॥

भ्राता चास्य च वैमात्रः सौमित्रिरमितप्रभः ।
अनुरागेण रूपेण गुणैश्चापि तथाविधः ॥ २२ ॥

इनके भाई श्री लक्ष्मण जी, जो सौतेली माता सुमित्रा से उत्पन्न हुए हैं। अनुराग, रूप और गुणों में अपने भाई के ही समान हैं ॥२२॥

तावुभौ नरशार्दूलौ त्वद्दर्शनकृतोत्सवौ ।
विचिन्वन्तौ महीं कृत्स्नां अस्माभिः सह सङ्गतौ ॥ २३ ॥

वह दोनों नरसिंह, आपके दर्शन की लालसा से आपको सारी पृथिवी पर खोजते हुए, हमसे आ मिले हैं ॥२३॥

त्वामेव मार्गमाणौ तौ विचरन्तौ वसुन्धराम् ।
ददर्शतुर्मृगपतिं पूर्वजेनावरोपितम् ॥ २४ ॥

ऋष्यमूकस्य पृष्ठे तु बहुपादपसंकुले ।
भ्रातुर्भयार्तमासीनं सुग्रीवं प्रियदर्शनम् ॥ २५ ॥

वह दोनों आपको ढूंढते हुए और पृथिवी पर घूमते हुए, अनेक वृक्षों से युक्त ऋष्यमूक पर्वत के समीप पहुँचे और अपने बड़े भाई वानरराज बालि द्वारा निर्वासित और भाई के डर से डरे हुए प्रिय दर्शन सुग्रीव को उस पर्वत पर बैठा हुआ उन्होंने देखा ॥२४-२५॥

वयं तु हरिराज तं सुग्रीवं सत्यसंग्रम ।
परिचर्यामहे राज्यात् पूर्वजेनावरोपितम् ॥ २६॥

हम लोग वहाँ बालि द्वारा राज्य से निर्वासित, सत्यप्रतिज्ञ वानरराज सुग्रीव को सेवा शुश्रूषा किया करते थे ॥२६॥

ततस्तौ चीरवसनौ धनुःप्रवरपाणिनौ ।
ऋष्यमूकस्य शैलस्य रम्यं देशमुपागतौ ॥ २७ ॥

वल्कल वस्त्र धारण किये और हाथों में उत्तम धनुष को लिये हुए, वह दोनों ऋष्यमूक पर्वत के रमणीय प्रदेश में पहुँचे ॥२७॥

स तौ दृष्ट्वा नरव्याघ्रौ धन्विनौ वानरर्षभः ।
अवप्लुतो गिरेस्तस्य शिखरं भयमोहितः ॥ २८ ॥

कपिश्रेष्ठ सुग्रीव इन दोनों पुरुषसिंहों को हाथ में धनुष लिये हुए आते देखकर, भयभीत हो गए तथा एक छलांग मार कर, ऋष्यमूकपर्वत के शिखर पर चढ़ गये ॥२८॥

ततः स शिखरे तस्मिन् वानरेन्द्रो व्यवस्थितः ।
तयोः समीपं मामेव प्रेषयामास सत्वरम् ॥ २९ ॥

सुग्रीव ने पर्वतशिखर पर पहुँच, उन दोनों के पास मुझे शीघ्रता पूर्वक भेजा ॥२६॥

तावहं पुरुषव्याघ्रौ सुग्रीववचनात् प्रभू ।
रूपलक्षणसम्पन्नौ कृताञ्जलिरुपस्थितः ॥ ३० ॥

मैं उन दोनों रुपवान् और शुभ लक्षणों से युक्त पुरुषसिंहों के पास अपने स्वामी सुग्रीव के कहने से, हाथ जोड़ कर उपस्थित हुआ ॥३०॥

तौ परिज्ञाततत्त्वार्थौ मया प्रीतिसमन्वितौ ।
पृष्ठमारोप्य तं देशं प्रापितौ पुरुषर्षभौः ॥ ३१ ॥

मैंने उनसे वार्तालाप कर, उनके तात्पर्य को जान लिया और वह दोनों भी मेरा अभिप्राय जानकर अत्यंत प्रसन्न हुए। तदनन्तर मैं इन दोनों नरश्रेष्ठों को अपनी पीठ पर चढ़ाकर ऋष्यमूक पर्वत के शिखर पर ले गया ॥३१॥

निवेदितौ च तत्त्वेन सुग्रीवाय महात्मने ।
तयोरन्योन्यसंभाषाद् भृशं प्रीतिरजायत ॥ ३२ ॥

वहाँ जा कर मैंने महात्मा सुग्रीव को इन दोनों बंधुओं का यथार्थ परिचय दिया। तदनन्तर उन दोनों में वापस में बातचीत हुई और दोनों में अत्यन्त प्रीति भी हो गयी ॥ ३२॥

ततस्तौ कीर्तिसम्पन्नौ हरीश्वरनरेश्वरौ ।
परस्परकृताश्वासौ कथया पूर्ववृत्तया ॥ ३३ ॥

वहां उन दोनों कीर्तिवान कपिराज और नर श्रेष्ठों ने आपस में अपना अपना पूर्व वृत्तान्त कह कर, एक दूसरे को आश्वासन दिया ॥३३॥

ततः स सान्त्वयामास सुग्रीवं लक्ष्मणाग्रजः ।
स्त्रीहेतोर्वालिना भ्रात्रा निरस्तं पुरुतेजसा ॥ ३४ ॥

उस समय लक्ष्मण के बड़े भाई, श्रीरामचन्द्र जी ने सुग्रीव को, जो स्त्री के लिए अपने महातेजस्वी भाई वालि द्वारा राज्य से निकाल दिए गये थे, आश्वासन दिया ॥ ३४॥

ततसत्वन्नाशजं शोकं राम्स्याक्लिष्टकर्मणः ।
लक्ष्मणो वानरेन्द्राय सुग्रीवाय न्यवेदयत् ॥ ३५ ॥

तत्पश्च्यात अनायास ही महान कर्म करने वाले भगवान श्रीरामचन्द्र जी को आपके वियोग से जो शोक हो रहा था, उसे लक्ष्मण जी ने वानरराज सुग्रीव को कह सुनाया ॥३५॥

स श्रुत्वा वानरेन्द्रस्तु लक्ष्मणेनेरितं वचः ।
तदासीन्निष्प्रभोऽत्यर्थं ग्रहग्रस्त इवांशुमान् ॥ ३६ ॥

वानरराज सुग्रीव, लक्ष्मण जी के मुख से सारा वृत्तान्त सुनकर शोक के मारे ऐसे तेजहीन हो गये जैसे राहु से ग्रसे हुआ सूर्य, तेजहीन हो जाता है ॥३६॥

ततस्त्वद्गात्रशोभीनि रक्षसा ह्रियमाणया ।
यान्याभरणजालानि पातितानि महीतले ॥३७॥

तब आपके शरीर को शोभित करने वाले उन सब गहनों को, जो आपने राक्षस द्वारा हरे जाने के समय ऊपर से भूमि पर फैंके थे ॥ ३७॥

तानि सर्वाणि रामाय आनीय हरियूथपाः ।
संहृष्टा दर्शयामासुर्गतिं तु न विदुस्तव ॥ ३८ ॥

वानरयूथ पति सुग्रीव ने लाकर और हर्षित होकर श्रीरामचन्द्र जी को दिखलाये। परन्तु राक्षस आपको कहाँ ले गया, यह उन्हें ज्ञात नहीं था ॥३८॥

तानि रामाय दत्तानि मयैवोपहृतानि च ।
स्वनवन्त्यवकीर्णानि तस्मिन् विहतचेतसि ॥ ३९ ॥

मैंने हो उन झनकते गहनों को, जो सुग्रीव द्वारा पीछे से श्रीरामचन्द्र जी के सामने रखे गये थे, भूमि पर से उठाया था। श्रीरामचन्द्र जी उनको देखते ही मूर्छित से हो गये थे ॥३९॥

तान्यङ्के दर्शनीयानि कृत्वा बहुविधं तदा ।
तेन देवप्रकाशेन देवेन परिदेवितम् ॥ ४० ॥

तदनन्तर देवताओं की तरह तेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी ने उन देखने योग्य आभूषणों को अपनी गोदी में रखकर, बहुत विलाप किया ॥४०॥

पश्यतस्तानि रुदतस्ताम्यतश्च पुनः पुनः ।
प्रादीपयद् दाशरथेस्तदा शोकहुताशनम् ॥ ४१ ॥

उन आभूषणों को देख देख कर वह बार बार रोते और तिलमिला उठते थे। उन आभूषणों के देखने से श्रीरामचन्द्र जी का शोकाग्नी अत्यंत प्रज्ज्वलित हो उठी ॥४१॥

शायितं च चिरं तेन दुःखार्तेन महात्मना ।
मयापि विविधैर्वाक्यैः कृच्छ्रादुत्थापितः पुनः ॥ ४२ ॥

उस दुःख से आतुर हो वह बहुत देर तक भूमि पर अचेत अवस्था के पड़े रहे। फिर मैंने विविध प्रकार से सांत्वना पूर्ण वचनों से समझा बुझा कर, बड़ी कठिनाई से उनको उठाया ॥४२॥

तानि दृष्ट्वा महार्हाणि दर्शयित्वा मुहुर्मुहुः ।
राघवः सहसौमित्रिः सुग्रीवे संन्यवेशयत् ॥ ४३ ॥

लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी ने बार बार उन मूल्यवान् गहनों को देखा और फिर देख कर उनको सुग्रीव को सौंप दिया ॥४३॥

स तवादर्शनादार्ये राघवः परितप्यते ।
महता ज्वलता नित्यमग्निनेवाग्निपर्वतः ॥ ४४॥

हे आर्ये ! श्रीरामचन्द्र जी आपको न देख पाने के कारण श्रीराम जी को बड़ा दुःख और संताप हो रहा है। जैसे ज्वालामुखी पर्वत सदा दहकता हुआ रहता है, वैसे ही श्रीराम चन्द्र जी भी आपके विरह में शोकाग्नि से सदा दहकते रहते हैं॥४५॥

त्वत्कृते तमनिद्रा च शोकश्चिन्ता च राघवम् ।
तापयन्ति महात्मानमग्न्यागारमिवाग्नयः ॥ ४५ ॥

हे देवी! आपके विरह में श्रीरामचन्द्र जी अनिद्रा, शोक और चिन्ता वैसे ही संतप्त करती हैं, जैसे अग्नि अग्निकुण्ड को संतप्त करती है॥४५॥

तवादर्शनशोकेन राघवः प्रविचाल्यते ।
महता भूमिकम्पेन महानिव शिलोच्चयः ॥ ४६ ॥

हे देवी! आपको न देख पाने का शोक, श्री रामचंद्र जी तो वैसे ही विचलित कर देता है, जैसे बड़े भारी भूकम्प के आने से पर्वतशिखर थरथराने लगते हैं ॥४६॥

काननानि सुरम्याणि नदी प्रस्रवणानि च ।
चरन् न रतिमाप्नोति त्वामपश्यन् नृपात्मजे ॥ ४७॥

हे राजपुत्री! आपको ना देख पाने ने कारण, अत्यन्त रमणीय वनों में, नदियों और भरनों के तटों पर विचारने पर भी श्री राम को आनन्द प्राप्त नहीं होता ॥४७॥

स त्वां मनुजशार्दूलः क्षिप्रं प्राप्स्यति राघवः ।
समित्रबान्धवं हत्वा रावणं जनकात्मजे ॥ ४८ ॥

हे जनकनन्दिनी! वह पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्र जी शीघ्र ही बन्धु बान्धवों सहित रावण को मारकर, आपका यहाँ से उद्धार करेंगे॥४८॥

सहितौ रामसुग्रीवावुभावकुरुतां तदा ।
समयं वालिनं हन्तुं तव चान्वेषणं प्रति ॥ ४९ ॥

तदनन्तर सुग्रीव और श्रीरामचन्द्र जी ने आपस में एक दूसरे की सहायता के लिए प्रतिज्ञा की। श्रीरामचन्द्र जी ने बालि के मारने का और सुग्रीव ने आपकी खोज करने का वचन दिया ॥ ४९॥

ततस्ताभ्यां कुमाराभ्यां वीराभ्यां स हरीश्वरः ।
किष्किन्धां समुपागम्य वाली युद्धे निपातितः ॥ ५० ॥

इसके बाद सुग्रीव उन दोनों वीर राजकुमारों को साथ लेकर, किष्किन्धा गये और श्रीरामचन्द्र जी ने वानर राज बालि को मार गिराया।॥५०॥

ततो निहत्य तरसा रामो वालिनमाहवे ।
सर्वर्क्षहरिसङ्घानां सुग्रीवमकरोत् पतिम् ॥ ५१॥

बलवान श्रीरामचन्द्र जी ने जब युद्ध में बालि को मार डाला, तब सुग्रीव को समस्त रीछों और वानरों का राजा बना दिया ॥५१॥

रामसुग्रीवयोरैक्यं देव्येवं समजायत ।

हनुमन्तं च मां विद्धि तयोर्दूतमुपागतम् ॥ ५२ ॥

हे देवी! इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी और सुग्रीव की (मनुष्य और वानरों की) मित्रता हुई। मेरे नाम हनुमान है और उन दोनों का भेजा हुआ दूत बन कर आपके समक्ष उपस्थित हुआ हूँ ॥५२॥

स्व राज्यं प्राप्य सुग्रीवः स्वानानीय महाकपीन् ।
त्वदर्थं प्रेषयामास दिशो दश महाबलान् ॥ ५३॥

अपना राज्य प्राप्त करने के पश्च्यात सुग्रीव के अपने महावीर वानरों को बुला कर, आपकी खोज के लिये दसों दिशाओं में उनको भेजा है ॥५३॥

आदिष्टा वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण महौजसः ।
अद्रिराजप्रतीकाशाः सर्वतः प्रस्थिता महीम् ॥ ५४॥

हे देवी ! वह सभी पर्वताकार वानर वानरराज सुग्रीव की आज्ञा पाकर, पृथिवी पर चारों ओर रवाना हुए ॥५४॥

ततस्ते मार्गमाणा वै सुग्रीववचनातुराः ।
चरन्ति वसुधां कृत्स्नां वयमन्ये च वानराः ॥ ५५ ॥

हम तथा अन्य समस्त वानर, सुग्रीव को आज्ञा से भयभीत होकर आपको ढूंढते हुए सारी पृथिवी पर विचर रहे हैं ॥५५॥

अङ्गदो नाम लक्ष्मीवान् वालिसूनुर्महाबलः ।
प्रस्थितः कापिशार्दूलस्त्रिभागबलसंवृतः ॥ ५६ ॥

बालि के पुत्र, शोभायमान, महावली एवं कपिश्रेष्ठ अंगद एक तिहाई सेना साथ ले कर रवाना हुए थे॥५६॥

तेषां नो विप्रणष्टानां विन्ध्ये पर्वतसत्तमे ।
भृशं शोकपरीतानामहोरात्रगणा गताः ॥ ५७॥

आपको खोजते हुए पर्वतोत्तम विन्ध्यगिरि की एक गुफा फंसने के कारण, हमने वहाँ बहुत कष्ट उठाया तथा वहां हमारे बहुत से रात दिन बीत गये ॥५७॥

ते वयं कार्यनैराश्यात् कालस्यातिक्रमेण च ।
भयाच्च कपिराजस्य प्राणांस्त्यक्तुमुपस्थिताः ॥ ५८ ॥

जब हमें अपनी कार्य सिद्धि अथवा आपको खोज निकालने की कोई आशा नहीं रही और निश्चित अवधि भी बीत गयी तब वानर राज सुग्रीव के भय से हम सभी प्राण त्यागने को उद्यत हो गए ॥५८॥

विचित्य गिरिदुर्गाणि नदीप्रस्रवणानि च ।
अनासाद्य पदं देव्याः प्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिताः ॥ ५९ ॥

क्योंकि जब हमने पर्वत, दुर्ग, पहाड़, झरने आदि समस्त स्थान छान डाले और तब भी आपका कहीं भी पता न चला; तब हमें अपने प्राण त्यागने के अलावा अन्य कुछ न सूझा ॥५९॥

दृष्ट्वा प्रायोपविष्टांश्च सर्वान् वानरपुङ्गवान् ।
भृशं शोकार्णवे मग्नः पर्यदेवयदङ्गदः ॥ ६० ॥

सभी कपिश्रेष्ठों को प्राण त्यागने का व्रत लिए हुए देखकर, अंगद शोक सागर में निमग्न हो, विलाप करने लगे। ॥ ६० ॥

तव नाशं च वैदेहि वालिनश्च तथा वधम् ।
प्रायोपवेशमस्माकं मरणं च जटायुषः ॥ ६१ ॥

वह बोले बोले- विदेहनन्दिनी! आपका हरण, वालि का वध, हमारा प्राण त्यागने का प्राण तथा जटायु का मरण- यह कैसी कैसी विपत्तियों हम लोगों पर आ पड़ी हैं ॥६१॥

तेषां नः स्वामिसन्देशात् निराशानां मुमूर्षताम् ।
कार्यहेतोरिहायातः शकुनिर्वीर्यवान् महान् ॥ ६२ ॥

सुग्रीव की कठोर आज्ञा का स्मरण करके, हम लोग अधमरे से हो रहे थे कि, इतने में मानों दैववश, हम लोगों का काम बनाने के लिये महावीर्यवान पक्षी वहाँ आ पहुंचे॥६२॥

गृध्रराजस्य सोदर्यः सम्पातिर्नाम गृध्रराट् ।
श्रुत्वा भ्रातृवधं कोपादिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६३ ॥

जो गृध्रराज जटायु के भाई थे और जिसका नाम संपाति था और जो स्वयं भी गृध्रराज थे, अपने भाई जटायु का वध का समाचार सुनकर वह क्रुद्ध होकर बोले ॥६३॥

यवीयान् केन मे भ्राता हतः क्व च निपातितः ।
एतदाख्यातुमिच्छामि भवद्भिर्वानरोत्तमाः ॥ ६४ ॥

हे वानरोत्तमों ! मेरे छोटे भाई जटायु का वध किसने किया? यह वृतांत मैं आप लोगों से सुनना चाहता हूँ ॥६४॥

अङ्गदोऽकथयत् तस्य जनस्थाने महद्वधम् ।
रक्षसा भीमरूपेण त्वामुद्दिश्य यथार्थतः ॥ ६५ ॥

तब अंगद ने जनस्थान में आपकी रक्षा करते हुए, भयंकर रूपधारी रावण ने, जटायु का कैसा वध कर डाला था, वह सब प्रसंग यथावत कह सुनाया ॥६५॥

जटायोस्तु वधं श्रुत्वा दुःखितः सोऽरुणात्मजः ।
त्वामाह स वरारोहे वसन्तीं रावणालये ॥ ६६॥

अरुणपुत्र संपाति, जटायु के वध का वृत्तान्त सुनकर दुःखी हुए और उन्होंने ही हमें बताया कीआप यहाँ रावण के घर लंकापुरी में हैं ॥६६॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सम्पातेः प्रीतिवर्धनम् ।
अङ्गदप्रमुखाः सर्वे ततः प्रस्थापिता वयम् ॥ ६७ ॥

विन्ध्यादुत्थाय संप्राप्ताः सागरस्यान्तमुत्तमम् ।
त्वद्दर्शने कृतोत्साहा हृष्टास्तुष्टाः प्लवङ्गमाः ॥ ६८ ॥

संपाति के इन आनंदमय वचनों को सुनकर, अंगद सहित हम सभी वानर अत्यंत हर्षित हुए तथा विन्ध्य पर्वत से उठकर आपको देखने के लिये उत्साहित होकर, समुद्र के उत्तरतट पर आ पहुंचे ॥६७-६८॥

अङ्गदप्रमुखाः सर्वे वेलोपान्तमुपागताः ।
चिन्तां जग्मुः पुनर्भीमां त्वद्दर्शनसमुत्सुकाः ॥ ६९ ॥

अंगदादि समस्त वानर, समुद्रतट पर पहुँच कर, समुद्र को देख कर डर गए और आपको देखने के लिये उत्सुक होने पर भी समुद्र को पार करने के लिये अत्यंत चिन्तित हुए ॥६९॥

अथाहं हरिसैन्यस्य सागरं दृश्य सीदतः ।
व्यवधूय भयं तीव्रं योजनानां शतं प्लुतः ॥ ७० ॥

जब मैंने देखा कि, वानरी सेना अपने सामने समुद्र को देख कष्ट में पड़ गयी है, तब मैं उनके भय को दूर करने के लिए, निर्भय होकर सौ योजन के इस समुद्र को लांघ, इस पार आया ॥७०॥

लङ्का चापि मया रात्रौ प्रविष्टा राक्षसाकुला ।
रावणश्च मया दृष्टस्त्वं च शोकनिपीडिता ॥ ७१ ॥

राक्षसों से पूर्ण लंका में मैंने रात में ही प्रवेश किया है और यहां आकर रावण को देखा और शोक से पीड़ित आपका भी दर्शन किया है ॥७१॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं यथावृत्तमनिन्दिते ।
अभिभाषस्व मां देवि दूतो दाशरथेरहम् ॥ ७२ ॥

हे सुन्दरी ! यह समस्त वृतांत मैंने ठीक ठीक आपको सुना दिया है। हे देवी ! मैं दशरथ नंदन श्रीरामचन्द्र जी का दूत हूँ, अत: अब आप निशंक होकर मुझसे वार्तालाप करें। ॥७२॥

तन्मां रामकृतोद्योगं त्वन्निमित्तमिहागतम् ।
सुग्रीवसचिवं देवि बुध्यस्व पवनात्मजम् ॥ ७३॥

मैंने श्री रामचंद्र जी के कार्य की सिद्धि के लिए ही यह सारा उद्योग किया है और आपके दर्शनों के लिए ही मैं यहाँ आया हूँ। हे देवी !

तुम मुझे सुग्रीव का मंत्री और वायुदेवता का का पुत्र हनुमान समझो ॥७३॥

कुशली तव काकुत्स्थः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
गुरोराराधने युक्तो लक्ष्मणः शुभलक्षणः ॥ ७४ ॥

समस्त शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ आपके पतिदेव श्रीरामचन्द्र जी प्रसन्न हैं। और बड़े भाई की सेवा में तत्पर एवं सुलक्षणों से युक्त लक्ष्मण भी कुशल पूर्वक हैं ॥७४॥

तस्य वीर्यवतो देवि भर्तुस्तव हिते रतः ।
अहमेकस्तु सम्प्राप्तः सुग्रीव वचनादिह ॥ ७५ ॥

और हे देवी! आपके पराक्रमी पति श्रीरामचन्द्र जी के हित साधन में वह सदा तत्पर रहते हैं। मैं वानरराज सुग्रीव की आज्ञा से अकेला ही यहाँ आया हूँ ॥७५॥

मयेयमसहायेन चरता कामरूपिणा ।
दक्षिणा दिगनुक्रान्ता त्वन्मार्गविचयैषिणा ॥ ७६॥

इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति से संपन्न मैंने आपको खोजने की इच्छा से, बिना किसी की सहायता के, अकेले ही घूम फिर कर इस दक्षिण दिशा का निरीक्षण किया है ॥७६॥

दिष्ट्याहं हरिसैन्यानां त्वन्नाशमनुशोचताम् ।
अपनेष्यामि सन्तापं तवाधिगमशासनात् ॥ ७७ ॥

हे देवी! दैवसंयोग ही से अब मैं उस वानरी सेना वालों को, जो आपका पता न लगने से शोकग्रस्त हो रहे हैं, आपके मिल जाने का संवाद सुना कर, सन्ताप से मुक्त करूँगा ॥७७॥

दिष्ट्या हि मम न व्यर्थं सागरस्येह लङ्घनम् ।
प्राप्स्याम्यहमिदं देवि त्वद्दर्शनकृतं यशः ॥ ७८॥

है देवी! दैव संयोग ही से मेरा समुद्र का लांघना व्यर्थ नहीं हुआ है और आपका पता लगाने का यह यश भी मुझे दैवसंयोग से ही प्राप्त हुआ है ॥७८॥

राघवश्च महावीर्यः क्षिप्रं त्वामभिपत्स्यते ।
समित्रबान्धवं हत्वा रावणं राक्षसाधिपम् ॥७९ ॥

महाबलवान् श्रीरामचन्द्र जी इस राक्षसराज रावण को पुत्र और बान्धवों सहित मार कर शीघ्र ही आपसे आकर मिलेंगे ॥७८॥

माल्यवान् नाम वैदेहि गिरीणामुत्तमो गिरिः ।
ततो गच्छति गोकर्णं पर्वतं केसरी हरिः ॥ ८० ॥

है वैदेही ! पर्वतों में एक माल्यवान नामक एक उत्तम पर्वत है जहाँ मेरे पिता केसरी निवास करते थे। वहां से मेरे पिता केसरी गोकर्ण नामक पर्वत पर जाया करते थे। ॥८०॥

स च देवर्षिभिर्दिष्टः पिता मम महाकपिः ।
तीर्थे नदीपतेः पुण्ये शम्बसादनमुद्धरन् ॥ ८१॥

देवर्षियों की आज्ञा से मेरे पिता केसरी ने समुद्र के तट पर विद्यमान उस पुण्यतीर्थ में शम्ब सादन नामक असुर का संहार किया था ॥८१॥

यस्याहं हरिणः क्षेत्रे जातो वातेन मैथिलि ।
हनुमानिति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा ॥ ८२ ॥

हे मैथिली! उन्ही कपिराज केसरी नामक वानर की अंजना नामक स्त्री के गर्भ से, पवन देव के द्वारा मेरी उत्पत्ति हुई है और मैं अपने कर्मों द्वारा ही 'हनुमान' नाम से संसार में प्रसिद्ध हूँ॥८२॥

विश्वासार्थं तु वैदेहि भर्तुरुक्ता मया गुणाः ।
अचिराद् त्वामितो देवि राघवो नयिता ध्रुवम् ॥ ८३ ॥

हे वैदेहि ! अपने विषय में आपको विश्वास दिलाने को मैंने आपके पति के गुणों का वर्णन किया है। हे अनघे! हे देवी! श्रीरामचन्द्र जी बहुत जल्दी आपको यहाँ से ले जायेंगे यह निश्चित है ॥८३॥

एवं विश्वासिता सीता हेतुभिः शोककर्शिता ।
उपपन्नैरभिज्ञानैर्दूतं तमधिगच्छति ॥ ८४॥

शोकसन्तप्ता सीताजी ने अनेक युक्तियुक्त तथा विश्वसनीय कारणों और पहचान के रूप में श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण जी के शारीरिक चिन्हों का यथार्थ वर्णन सुन कर, हनुमान जी की बातों पर विश्वास किया और उनको श्री रामचन्द्र जी का दूत समझा ॥८४॥

अतुलं च गता हर्षं प्रहर्षेण च जानकी ।
नेत्राभ्यां वक्रपक्ष्माभ्यां मुमोचानन्दजं जलम् ॥ ८५ ॥

उस समय सीताजी बहुत हर्षित हुई और उस महान हर्ष के कारण वह टेढ़ी पलकों वाले दोनों नेत्रों से आनंद के आंसू बहाने लगीं ॥८५॥

चारु तद् वदनं तस्याः ताम्रशुक्लायतेक्षणम् ।
अशोभत विशालाक्ष्या राहुमुक्त इवोडुराट् ॥ ८६ ॥

उस समय सीताजी के लाल और सफेद विशाल नेत्रों वाला मुख ऐसी शोभा को प्राप्त हुआ, जैसे राहु से मुक्त चन्द्रमा शोभित होता है ॥८६॥

हनुमन्तं कपिं व्यक्तं मन्यते नान्यथेति सा ।
अथोवाच हनूमांस्तामुत्तरं प्रियदर्शनाम् ॥ ८७ ॥

सीता जी को अब विश्वास हो गया कि, यह हनुमान नामक वानर ही है, अन्य कोई नहीं है । तदनन्तर हनुमान जी ने सीताजी से पुन: कहा ॥८७॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं समाश्वसिहि मैथिलि ।
किं करोमि कथं वा ते रोचते प्रतियाम्यहम् ॥ ८८ ॥

हे मैथिली ! इस प्रकार आपने जो कुछ पूछा मैंने वह सब आपको बता दिया। अब आप धीरज धारण करिए और मुझे बताइये कि, मैं अब आपकी क्या सेवा करूँ? इस समय आपकी इच्छा क्या है? क्योंकि यदि आप आज्ञा दें तो मैं अब लौटना चाहता हूँ ॥८८॥

हतेऽसुरे संयति शम्बसादने कपिप्रवीरेण महर्षिचोदनात् ।
ततोऽस्मि वायुप्रभवो हि मैथिलि प्रभावतस्तत्प्रतिमश्च वानरः ॥८९॥

हे विदेहकुमारी ! महर्षियों की आज्ञा से वानरोत्तम केसरी ने जब शम्बसादन नाम के असुर को मारा, तब मैं पवनदेव के प्रताप से अपनी माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ। अतः मेरा प्रभाव अर्थात् गति और पराक्रम पवनदेव के ही समान है ॥८९॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का पैतीसवाँ सर्ग पूर्ण हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥षटत्रिंशः सर्गः छतीसवाँ सर्ग॥

हनुमता सीतायै मुद्रिकाया अर्पणं कदा श्रीराघवो मामुद्धरिष्यतीति सौत्सुक्यं सीतायाः प्रश्नो हनुमता श्रीरामस्य सीताविषयकमनुरागं वर्णयित्वा सीतायाः सान्त्वनं च – हनुमान जी का सीता जी को श्रीराम की मुद्रिका देना, सीताजी का उत्सुक होकर यह पूछना कि श्रीराम मेरा उद्धार कब करेंगे तथा हनुमान जी का श्री राम के सीताविषयक प्रेम का वर्णन करके उन्हें सांत्वना देना

भूय एव महातेजा हनुमान् पवनात्मजः ।
अब्रवीत् प्रश्रितं वाक्यं सीताप्रत्ययकारणात् ॥ १ ॥

सीता जी के विश्वास को दृढ करने के लिये महातेजस्वी पवननन्दन हनुमान जी पुन: विनययुक्त वचनों से बोले ॥१॥

वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः ।
रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम् ॥ २ ॥

हे महाभागे ! मैं परम बुद्धिमान श्रीरामचन्द्र जी का दूत वानर हूँ। हे देवी! इस श्रीरामनाम अंकित मुद्रिका को देखिए ॥२॥

प्रत्ययार्थं तवानीतं तेन दत्तं महात्मना ।
समाश्वसिहि भद्रं ते क्षीणदुःखफला ह्यसि ॥ ३ ॥

आपको विश्वास दिलाने के लिये श्रीरामचन्द्र जी ने यह मुद्रिका मुझे दी थी।आपका कल्याण हो, अब आप तुम अपने चित्त को सावधान कीजिए और समझ लीजिए कि, आपके समस्त दुःख दूर हो गये ॥३॥

गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषणम् ।
भर्तारमिव सम्प्राप्तं जानकी मुदिताऽभवत् ॥ ४ ॥

अपने पति के हाथ की शोभा बढ़ाने वाली, उस मुद्रिका को अपने हाथ में लेकर और उसे देखकर जानकी जी ऐसी प्रसन्नता हुई, मानों श्रीरामचन्द्र जी ही उन्हें मिल गए हों। ॥४॥

चारु तद् वदनं तस्याऽताम्रशुक्लायतेक्षणम् ।
बभूव हर्षोदग्रं च राहुमुक्त इवोडुराट् ॥ ५ ॥

सीता जी का लाल, सफेद और विशाल नेत्रों से युक्त सुन्दर मुखमण्डल वैसे ही शोभायमान हुआ जैसे राहु के ग्रास से छूटा हुआ चन्द्रमा शोभायमान होता है ॥५॥

ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुः सन्देशहर्षिता ।
परितुष्टा प्रियं कृत्वा प्रशशंस महाकपिम् ॥ ६ ॥

तदनन्तर लज्जा से शर्माती हुई माता सीता पति के सन्देश को पाकर अत्यंत हर्षित और सन्तुष्ट हुई और बड़े प्यार से हनुमान जी को प्रशंसा करने लगी॥६॥

विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम ।
येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षितम् ॥ ७ ॥

सीता जी कहने लगीं-हे कपिश्रेष्ठ ! तुमने अकेले ही रावण की राजधानी को पद दलित कर लिया, इससे समझ आता है कि, तुम केवल पराक्रमी और शारीरक बल से सम्पन्न ही नहीं हो, अपितु बुद्धिमान भी हो ॥७॥

शतयोजनविस्तीर्णः सागरो मकरालयः ।
विक्रमश्लाघनीयेन क्रमता गोष्पदीकृतः ॥ ८ ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! तुम्हारा विक्रम प्रशंसा के योग्य है की तुमने इस सौ योजन विस्तार वाले और मगर आदि भयानक जलजन्तुओं के आवासस्थान समुद्र को गौ के खुर के सामान लांघ डाला ॥८॥

न हि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ ।

यस्य ते नास्ति सन्त्रासो रावणादपि सम्भ्रमः ॥ ९ ॥

हे वानरोत्तम! मैं तुम्हे साधारण वानर नहीं मान सकती क्योंकि तुम्हारे मन में रावण जैसे राक्षस से भी न तो भय ही उत्पन्न हुआ और न कोई घबराहट ही हुई ॥९॥

अर्हसे च कपिश्रेष्ठ मया समभिभाषितुम् ।
यद्यपि प्रेषितस्तेन रामेण विदितात्मना ॥ १० ॥

कपिश्रेष्ठ यदि उन परम प्रसिद्ध श्रीरामचन्द्र जी ने तुमको मेरे पास भेजा है। तब तुम अवश्य इस योग्य हो की मैं निसंकोच तुमसे वार्तालाप कर सकती हूँ ॥१०॥

प्रेषयिष्यति दुर्धषो रामो न ह्यपरीक्षितम् ।
पराक्रममविज्ञाय मत्सकाशं विशेषतः ॥ ११ ॥

दुर्धर्ष वीर श्रीरामचन्द्र जी, विशेषत: मेरे निकट ऐसे किसी को भी नहीं भेंजेंगे जिसके पराक्रम का उनको ज्ञान न हो और जिसके शील स्वाभाव की उन्होंने परीक्षा नहीं कर ली हो ॥११॥

दिष्ट्या च कुशली रामो धर्मात्मा सत्यसंगरः ।
लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ १२ ॥

इसे मैं अपना सौभाग्य ही समझती हूँ कि तथा यह अत्यनत हर्ष का विषय है कि वह धर्मात्मा और सत्यप्रतिज्ञ श्रीरामचन्द्र जी तथा सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले और महातेजस्वी लक्ष्मण जी कुशलपूर्वक हैं ॥१२॥

कुशली यदि काकुत्स्थः किं न सागरमेखलाम् ।
महीं दहति कोपेन युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥ १३ ॥

किन्तु जब काकुत्स्थ कुलभूषण श्रीरामचन्द्र जी कुशलपूर्वक हैं, तब वह से घिरी हुई इस लंकापुरी को कुपित हो, प्रलयकालीन अग्नि की तरह भस्म क्यों नहीं कर देते? ॥१३॥

अथवा शक्तिमन्तौ तौ सुराणामपि निग्रहे ।
ममैव तु न दुःखानामस्ति मन्ये विपर्ययः ॥ १४ ॥

अथवा देवताओं तक को दण्ड देने की शक्ति रखने पर भी, जब वह मेरे लिये कुछ नहीं करते, तब ऐसा लगता है मानो मेरे दुःखों का अन्त अभी नही आया है ॥१४॥

कच्चिन्न व्यथते रामः कच्चिन्न परितप्यते ।
उत्तराणि च कार्याणि कुरुते पुरुषोत्तमः ॥ १५ ॥

अच्छा अब यह बताओ कि उन नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी के मन मे कोई व्यथा तो नहीं है ? उनको मेरे विरह में सन्ताप तो नहीं होता? वे मेरे उद्धार के लिये यत्न तो कर रहे हैं ? ॥ १५॥

कच्चिन्न दीनः सम्भ्रान्तः कार्येषु च न मुह्यति ।
कच्चित् पुरुषकार्याणि कुरुते नृपतेः सुतः ॥ १६ ॥

उन्हें किसी प्रकार की दीनता अथवा घबराहट तो नहीं होती? वह काम करते करते मोह के वशीभूत हो नहीं हो जाते? वह राजकुमार अपने पुरुषार्थ का निर्वाह तो भली भांति करते हैं? ॥१६॥

द्विविधं त्रिविधोपायमुपायमपि सेवते ।
विजिगीषुः सुहृत् कच्चिन्मित्रेषु च परन्तपः ॥ १७ ॥

क्या शत्रुओं को संताप वाले श्रीरामचन्द्र जी, विजय की अभिलाषा कर, मित्रों के प्रति साम, दान और शत्रु के प्रति दान, भेद और दण्ड नीति का बर्ताव तो करते हैं ? ॥१७॥

कच्चिन्मित्राणि लभतेऽमित्रैश्चाप्यभिगम्यते ।
कच्चित् कल्याणमित्रश्च मित्रैश्चापि पुरस्कृतः ॥ १८ ॥

क्या श्रीरामचन्द्र जी स्वयं यत्नपूर्वक मित्रों का संग्रह तो करते हैं? क्या उनके शत्रु भी उनकी शरण ग्रहण कर उनके पास अपनी रक्षा के

लिए आते हैं ? क्या उनके मित्र उनका और वह मित्रों का आदर सम्मान करते हैं? ॥१८॥

कच्चिदाशास्ति देवानां प्रसादं पार्थिवात्मजः ।
कच्चित् पुरुषकारं च दैवं च प्रतिपद्यते ॥ १९ ॥

क्या वह नृपनन्दन ! देवताओं के अनुग्रह के लिये आशावान रहते हैं अर्थात उनकी कृपा के लिए प्रार्थना करते हैं? क्या वह पुरुषार्थ और दैव दोनों का आश्रय लेते हैं? ॥१९॥

कच्चिन्न विगतस्नेहः विवासान्मयि राघवः ।
कच्चिन्मां व्यसनादस्मान्मोक्षयिष्यति राघवः ॥ २० ॥

मेरे अन्यत्र रहने से श्रीरामचन्द्र जी मुझसे रूठ तो नहीं गये? हे हनुमान् ! इस विपदा से वह हमारा उद्धार तो करेंगे ना? ॥२०॥

सुखानामुचितो नित्यं असुखानामनूचितः ।
दुःखमुत्तरमासाद्य कच्चिद् रामो न सीदति ॥ २१ ॥

सुख से रहने योग्य और दुःख भोगने के अयोग्य श्रीरामचन्द्र जी, इस भारी विपदा के कारण कही खिन्न और शिथिल तो नहीं हो गये ? ॥२१॥

कौसल्यायास्तथा कच्चित् सुमित्रायास्तथैव च ।

अभीक्ष्णं श्रूयते कच्चित् कुशलं भरतस्य च ॥ २२ ॥

क्या उन्हें कौसल्या, सुमित्रा और भरत जी का कुशलसंवाद बराबर मिलता रहता है? ॥२२॥

मन्निमित्तेन मानार्हः कच्चिच्छोकेन राघवः ।
कच्चिन्नान्यमना रामः कच्चिन्मां तारयिष्यति ॥ २३ ॥

क्या सदा सम्मान पाने योग्य श्रीरामचन्द्र जी मेरे विरह-जन्य-शोक से अधिक संतप्त हैं? उनका मन मेरी ओर कट तो नहीं गया? क्या श्रीराम मुझे इस संकट से उबारेंगे ? ॥२३॥

कच्चिदक्षौहिणीं भीमां भरतो भ्रातृवत्सलः ।
ध्वजिनीं मन्त्रिभिर्गुप्तां प्रेषयिष्यति मत्कृते ॥ २४ ॥

क्या तुम बता सकते हो कि, भ्रातृवत्सल भरत मेरे लिये मंत्रियों से रक्षित या परिचालित अपनी अक्षौहिणी सेना को भेजेंगे? ॥२४॥

वानराधिपतिः श्रीमान् सुग्रीवः कच्चिदेष्यति ।
मत्कृते हरिभिर्वीरैर्वृतो दन्तनखायुधैः ॥ २५ ॥

क्या वानरराज श्रीमान् सुग्रीव दांत और नखों से लड़ने वाली वानरी सेना सहित मेरे उद्धार के लिये यहाँ आयेंगे? ॥२५॥

कच्चिच्च लक्ष्मणः शूरः सुमित्रानन्दवर्धनः ।
अस्त्रविच्छरजालेन राक्षसान् विधमिष्यति ॥ २६ ॥

क्या माता सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले वीर लक्ष्मण अपने अस्त्रों और बाणों से राक्षसों का वध करेंगे? ॥२६॥

रौद्रेण कच्चिदस्त्रेण रामेण निहतं रणे ।
द्रक्ष्याम्यल्पेन कालेन रावणं ससुहृज्जनम् ॥ २७ ॥

क्या थोड़े हो दिनों बाद, शरण में भयंकर और चमचमाते अस्त्रों द्वारा अपने सहायकों सहित श्री राम द्वारा मारे गये रावण को मैं देखूँगी? ॥२७॥

कच्चिन्न तद्धेमसमानवर्णं तस्याननं पद्मसमानगन्धि ।
मया विना शुष्यति शोकदीनं जलक्षये पद्ममिवातपेन ॥ २८ ॥

जैसे पानी सूख जाने पर धूप से कमल सूख जाता है, उसी प्रकार मेरे वियोग से दुखी श्रीरामचन्द्र जी का वह कमल के फूल के समान सुगन्धियुक्त तथा सुवर्ण के समान आभा वाला मुखमण्डल शोक से मलिन होकर कहीं सूख तो नहीं गया? ॥२८॥

धर्मापदेशात् त्यजतः स्वराज्यं मां चाप्यरण्यं नयतः पदातेः ।
नासीद् यथा यस्य न भीर्न शोकः कच्चित् स धैर्यं हृदये करोति
॥२९॥

धर्म पालन के लिये राज्य त्याग कर और मुझको साथ लेकर पैदल ही वन में आने पर भी, जिनका मन पीड़ित, भयभीत अथवा शोकातुर नहीं हुआ, वह श्रीरामचन्द्र इस समय अपने हृदय में धैर्य तो रखते हैं ? ॥ २९॥

न चास्य माता न पिता न चान्यः
स्नेहाद् विशिष्टोऽस्ति मया समो वा ।
तावद्ध्यहं दूत जिजीविषेयं
यावत् प्रवृत्तिं शृणुयां प्रियस्य ॥ ३० ॥

हे दूत ! क्या माता! क्या पिता! क्या कोई अन्यपुरुष-कोई भी क्यों न हो, मुझसे अधिक या बराबर उनका अनुराग किसी में नहीं है। मैं भी तभी तक जीवित हूँ जब तक में परमप्रिय श्रीरामचन्द्र जी का वृत्तान्त सुनती हूँ ॥३०॥

इतीव देवी वचनं महार्थं तं वानरेन्द्रं मधुरार्थमुक्त्वा ।
श्रोतुं पुनस्तस्य वचोऽभिरामं रामार्थयुक्तं विरराम रामा ॥ ३१ ॥

मनोरमा सीता जी वानरश्रेष्ठ हनुमान जी से इस प्रकार के युक्ति एवं मधुर वचन कहकर और हनुमान जी के मुख से श्रीराम चन्द्र जी को वृत्तान्त पुनः सुनने की अभिलाषा से, चुप हो गयी ॥३१॥

सीताया वचनं श्रुत्वा मारुतिर्भीमविक्रमः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

पराक्रमी पवन कुमार हनुमान जी सीता के इस प्रकार वचन सुनकर और हाथ जोड़ कर, उत्तर देते हुए बोले ॥३२॥

न त्वामिहस्थां जानीते रामः कमललोचने ।
तेन त्वां नानयत्याशु शचीमिव पुरन्दरः ॥ ३३ ॥

हे कमललोचने! श्रीरामचन्द्र जी को यह पता ही नहीं है कि आप यहाँ लंका में इस दशा में रह रही हो। इसी कारण वह आपको यहाँ से वैसे नहीं ले जा रहे, जैसे इन्द्र अपनो स्त्री शुचि को अनुहाद दैत्य के यहां से ले आये थे ॥३३॥

श्रुत्वैव च वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः ।
चमूं प्रकर्षन् महतीं हर्यृक्षगणसंयुताम् ॥ ३४ ॥

किन्तु जब मैं जाकर उनसे तुम्हारा वृत्तान्त कहूँगा, तब श्रीराम चन्द्र जी रीछों और वानरों की बड़ी भारी सेना अपने साथ लेकर यहाँ आयेंगे ॥३४॥

विष्टम्भयित्वा बाणौधैः अक्षोभ्यं वरुणालयम् ।
करिष्यति पुरीं लङ्कां काकुत्स्थः शान्तराक्षसाम् ॥ ३५ ॥

ककुस्त्थ कुलभूषण श्री राम अपने बाणों से इस अक्षोभ्य समुद्र को पाट कर, इस लङ्कापुरी के राक्षसों को नष्ट कर देंगे। ३५ ॥

तत्र यद्यन्तरा मृत्युः यदि देवा महासुराः ॥
स्थास्यन्ति पथि रामस्य स तानपि वधिष्यति ॥ ३६ ॥

लंका के ऊपर चढ़ाई करने पर, यदि साक्षात् यम अथवा अन्य देवता, दैत्यों सहित विघ्न डालेंगे, तो श्रीरामचन्द्र जी उनका भी संहार कर देंगे ॥३६॥

तवादर्शनजेनार्ये शोकेन परिपूरितः ।
न शर्म लभते रामः सिंहार्दित इव द्विपः ॥ ३७ ॥

हे सुन्दरी! आपको न देखने के कारण उत्पन्न हुए शोक के कारण श्रीरामचन्द्र जी सिंह द्वारा पीड़ित हाथी की तरह क्षण भर भी चैन नहीं पाते हैं ॥ ३७॥

मलयेन च विन्ध्येन मेरुणा मन्दरेण च ॥ ३८ ॥
दर्दुरेण च ते देवि शपे मूलफलेन च ।

हे देवी! मैं अपने निवास स्थान मलयाचल, विन्ध्याचल, मेरु, मन्द्राचल, दर्दुर पर्वतों की तथा अपनी जीविका से साधन फलों एवं मूलों की शपथ खा कर कहता हूँ कि, ॥३८॥

यथा सुनयनं वल्गु बिम्बोष्ठं चारुकुण्डलम् ।
मुखं द्रक्ष्यसि रामस्य पूर्णचन्द्रमिवोदितम् ॥ ३९ ॥

आप सुनयन, सुन्दर, कुंदरू फल की तरह लाल लाल अधरों से युक्त, मनोहर कुण्डलों से शोभित और उदय हुए पूर्णमासी के चन्द्रमा की तरह श्रीरामचन्द्र जी के मुखमण्डल को शीघ्र देखोगी ॥३९॥

क्षिप्रं द्रक्ष्यसि वैदेहि रामं प्रस्रवणे गिरौ ।
शतक्रतुमिवासीनं नागपृष्ठस्य मूर्धनि ॥ ४० ॥

हे वैदेही! ऐरावत हाथी पर बैठे हुए इन्द्र की तरह, तुम शीघ्र ही श्रीरामचन्द्र जी को प्रत्रवण पर्वत पर बैठा हुआ देखोगी ॥४०॥

न मांसं राघवो भुङ्क्ते न चैव मधु सेवते ।
वन्यं सुविहितं नित्यं भक्तमश्नाति पञ्चमम् ॥ ४१ ॥

कोई भी रघुवंशी न तो मांस खाता है न मधुसेवन ही करता है । श्री राम चन्द्र तो चार समय उपवास करके पांचवें समय शास्त्र विहित फल मूलों का आदर करते अर्थात् खाते हैं और शरीरधारणोपयुक्त अन्न खाया करते हैं ॥४१॥

नैव दंशान् न मशकान् न कीटान् न सरीसृपान् ।
राघवोऽपनयेद् गात्रात् त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥ ४२ ॥

श्रीरामचन्द्र जी का मन तो आप में ऐसा लगा हुआ है कि, उनके शरीर पर भले ही डॉस, मच्छर, पतंगे अथवा सर्प ही क्यों न रेंगते रहैं किन्तु उन्हें वहां से नहीं हटाते ॥४५॥

नित्यं ध्यानपरो रामो नित्यं शोकपरायणः ।
नान्यत् चिन्तयते किञ्चित् स तु कामवशं गतः ॥ ४३ ॥

श्रीरामचन्द्र जी सदा आपका ही ध्यान किया करते और आपके लिये ही शोकाकुल रहते हैं। वह आपको छोड़ कर और किसी अन्य की चिन्ता नहीं करते ॥४६॥

अनिद्रः सततं रामः सुप्तोऽपि च नरोत्तमः ।
सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन् प्रतिबुद्ध्यते ॥ ४४ ॥

नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी को वैसे तो नींद आती ही नहीं और कदाचित् कभी आँख लग भी जाती है तो "हे सीते" इस मधुर वाणी का उच्चारण करते हुए शीघ्र ही जाग जाते हैं॥४३॥

दृष्ट्वा फलं वा पुष्पं वा यच्चान्यत् स्त्रीमनोहरम् ।
बहुशो हा प्रियेत्येवं श्वसंस्त्वामभिभाषते ॥ ४५ ॥

जब वन किसी सुन्दर फल, फूल या अन्य किसी सुन्दर वस्तु को देखते हैं तब वह बहुधालम्बी सांसे लेते हुए 'हा प्रिये ! हा प्रिये" प्यारी! कहते हुए आपको पुकारने लगते हैं ॥४५॥

स देवि नित्यं परितप्यमानस्त्वामेव सीतेत्यभिभाषमाणः ।
दृढव्रतो राजसुतो महात्मा तवैव लाभाय कृतप्रयत्नः ॥ ४६ ॥

हे देवी ! विशेष कहना व्यर्थ है, वह सदा आपके वियोग में सन्तप्त रहते हैं और सीते सीते कहते हुए सदा आपको पुकारा करते हैं। धैर्यवान् महात्मा राजकुमार श्रीरामचन्द्र जी आपका उद्धार करने को सदा यत्नवान रहते हैं ॥ ४६॥

सा रामसङ्कीर्तनवीतशोका रामस्य शोकेन समानशोका ।
शरन्मुखेनाम्बुदशेषचन्द्रा निशेव वैदेहसुता बभूव ॥ ४७ ॥

श्रीरामचन्द्र जी का संवाद पाने से सीता जी जिस प्रकार हर्षित हुई थी, उसी प्रकार उनका अपने विरह में दुःखी होने का सुनकर वह पुनः दुःखी हो गयीं। मानों शारदीय रात्रि में चन्द्रमा बादलों से निकलकर पुनः मेघों से आच्छादित हो गया हो ४७॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का छत्तीसवां सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥सप्तत्रिंशः सर्गः सैंतीसवाँ सर्ग ॥

श्रीरामस्य शीघ्रं आनयनाय हनुमन्तं प्रति सीताया आग्रहो; हुमताऽऽत्मना सह चलितुं सीतां प्रत्यनुनयः; सीताया तस्यानङ्गीकरणं च - सीता जी का श्रीराम को शीघ्र ले आने का आग्रह, हनुमान जी का माता सीता को अपनी पीठ पर ले जाकर श्री राम से मिलवाने का प्रस्ताव तथा सीता जी का विभिन्न कारणों को उद्धृत करते हुआ उस प्रस्ताव को अस्वीकार करना

सीता तद्वचनं श्रुत्वा पूर्णचन्द्रनिभानना ।
हनूमन्तमुवाचेदं धर्मार्थसहितं वचः ॥ १ ॥

चन्द्रवदनी सीता हनुमान जी के यह वचन सुनकर, उनसे धर्म और अर्थ युक्त वचन बोली ॥१॥

अमृतं विषसम्पृक्तं त्वया वानर भाषितम् ।

यच्च नान्यमना रामो यच्च शोकपरायणः ॥ २ ॥

हे वानर! तुम्हारा यह कथन कि, श्रीरामचन्द्र जी का मन अन्य किसी ओर नहीं जाता और वह शोकाकुल बने रहते हैं । विष मिले हुए अमृत के समान है ॥ २॥

ऐश्वर्ये वा सुविस्तीर्णे व्यसने वा सुदारुणे ।
रज्ज्वेव पुरुषं बद्ध्वा कृतान्तः परिकर्षति ॥ ३ ॥

मनुष्य भले ही बड़े ऐश्वर्य का उपभोग करता हो अथवा महादुःख ही क्यों न भोगता हो, किन्तु मृत्यु, उस मनुष्य के गले में रस्सी बांध कर उसको अपनी ओर खींचती ही रहती है ॥३॥

विधिर्नूनमसंहार्यः प्राणिनां प्लवगोत्तम ।
सौमित्रिं मां च रामं च व्यसनैः पश्य मोहितान् ॥ ४ ॥

हे वानरश्रेष्ठ! दैव के विधान को रोकना प्राणियों के वश में नहीं है। देखो, लक्ष्मण, मैं और श्रीरामचन्द्र जी कैसे कैसे दुःख झेल रहे हैं॥४॥

शोकस्यास्य कथं पारं राघवोऽधिगमिष्यति ।
प्लवमानः परिश्रान्तो हतनौः सागरे यथा ॥ ५ ॥

समुद्र में नौका के टूट जाने पर समुद्र में तैरते हुए पराक्रमी मनुष्य की तरह, श्रीरामचन्द्र जी प्रयत्न करके भी, न जाने कब, इस शोकसागर को पार कर सकेंगे? ॥५॥

राक्षसानां वधं कृत्वा सूदयित्वा च रावणम् ।
लङ्कामुन्मथितां कृत्वा कदा द्रक्ष्यति मां पतिः ॥ ६ ॥

मेरे स्वामी श्रीरामचन्द्र जी राक्षसों को मार कर, रावण का वध कर तथा लंका का विधवंस कर, न जाने मुझे कब देखेंगे?॥६॥

स वाच्यः सन्त्वरस्वेति यावदेव न पूर्यते ।
अयं संवत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवितम् ॥ ७ ॥

हे वानर ! तुम जा कर श्रीरामचन्द्र जी से शीघ्रता करने के लिये कह देना। क्योंकि जब तक यह वर्ष पूरा नहीं होता, तभी तक मेरे जीने की अवधि है॥७॥

वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवङ्गम ।
रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम ॥ ८ ॥

इस वर्ष का यह दसवां मास चल रहा है और इसकी समाप्ति में अब केवल दो मास और रह गये हैं। निर्दयी रावण ने मेरे जीने के लिये यही अवधि निश्चित की है।॥८॥

विभीषणेन च भ्रात्रा मम निर्यातनं प्रति ।
अनुनीतः प्रयत्नेन न च तत् कुरुते मतिम् ॥ ९ ॥

रावण के साई विभीषण ने मुझे श्रीरामचन्द्र जी को लौटा देने के लिए बहुत यत्न किया था और अनुनय विनय भी की थी कि, परन्तु उस दुष्ट ने उनका कहना नहीं माना॥९॥

मम प्रतिप्रदानं हि रावणस्य न रोचते ।
रावणं मार्गते सङ्ख्ये मृत्युः कालवशं गतम् ॥ १० ॥

श्रीरामचन्द्र जी को मेरा लौटाया जाना, रावण को पसंद नहीं आया क्योंकि, उसके सिर पर उसकी मृत्यु खेल रही है और युद्धक्षेत्र में मृत्यु रावण के वध का अवसर ढूँढ रही है ॥१०॥

ज्येष्ठा कन्या कला नाम विभीषणसुता कपे ।
तया ममैतदाख्यातं मात्रा प्रहितया स्वयम् ॥ ११ ॥

हे कपे! यह बात स्वयं विभीषण को बड़ी बेटी कला ने, अपनी माता द्वारा प्रेरित करने पर, मुझसे कही थी॥११॥

आशंसेयं हरिश्रेष्ठ क्षिप्रं मां प्राप्स्यते पतिः ।
अन्तरात्मा हि मे शुद्धस्तस्मिंश्च बहवो गुणाः ॥ १२ ॥

हे वानरश्रेष्ठ ! मुझे इस बात का पूरा भरोसा है कि, श्रीराम चन्द्र जी मुझे शीघ्र मिलेंगे। क्योंकि, मेरी अन्तरात्मा शुद्ध है और श्रीरामचन्द्र जी में बहुत से गुण हैं ॥१२॥

उत्साहः पौरुषं सत्त्वमानृशंस्यं कृतज्ञता ।
विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे ॥ १३ ॥

श्रीरामचन्द्र जी उत्साही, पुरुषार्थी, वीर्यवान्, दयालु, कृतज्ञ, विक्रमी और प्रतापी हैं ॥ १३॥

चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां जघान यः ।
जनस्थाने विना भ्रात्रा शत्रुः कस्तस्य नोद्विजेत् ॥ १४ ॥

जिन्होंने जनस्थान में बात की बात में चौदह हजार राक्षसों को अकेले ही, अपने भाई लक्ष्मण को सहायता बिना मार डाला, उनसे भला कौन शत्रु भयभीत नहीं होगा ! ॥ १४ ॥

न स शक्यस्तुलयितुं व्यसनैः पुरुषर्षभः ।
अहं तस्यानुभावज्ञा शक्रस्येव पुलोमजा ॥ १५ ॥

उन श्रीरामचन्द जी के साथ इन समस्त दुःखदायी राक्षसों की बरावरी नहीं हो सकती। देवी शची जिस प्रकार इन्द्र का प्रभाव जानती हैं। उसी प्रकार मैं श्रीरामचन्द्र जी के शक्ति समार्थ्य को भली प्रकार जानती हूँ ॥१५॥

शरजालांशुमाञ्छूरः कपे रामदिवाकरः ।
शत्रुरक्षोमयं तोयमुपशोषं नयिष्यति ॥ १६ ॥

हे कपे! श्रीराम रूपी सूर्य, अपनी बाण जाल रूपी किरनों से, राक्षस रूपी जलाशय को सोख लेंगे ॥१६॥

इति सञ्जल्पमानां तां रामार्थे शोककर्शिताम् ।
अश्रुसम्पूर्णनयनामुवाच वचनं कपिः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी के विषय में बातें करती हुई दुःख से संतप्त और आँसू बहाती हुई सीता से हनुमान जी कहने लगे ॥१७॥

श्रुत्वैव तु वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः ।
चमूं प्रकर्षन् महतीं हर्यृक्षगणसङ्कुलाम् ॥ १८ ॥

हे देवी! आप धैर्य धारण करें, मेरे मुख से तुम्हारा संदेशा पाते ही श्रीरामचन्द्र जी, रीछ और वानरों से पूर्ण बड़ी भारी सेना लेकर, शीघ्र ही यहाँ आ जायेंगे ॥१८॥

अथवा मोचयिष्यामि त्वामद्यैव सराक्षसात् ।
अस्माद् दुःखादुपारोह मम पृष्ठमनिन्दिते ॥ १९ ॥

हे वरानने ! अथवा मैं स्वयं ही अभी आपको राक्षसों के अत्याचारों से छुटकारा दिला देता हूँ। हे अनिन्दिते ! आप मेरो पीठ पर बैठ जाइए ॥१९॥

त्वां तु पृष्ठगतां कृत्वा सन्तरिष्यामि सागरम् ।
शक्तिरस्ति हि मे वोढुं लङ्कामपि सरावणाम् ॥ २० ॥

आपको अपनी पीठ पर बैठा कर मैं समुद्र पार हो जाऊँगा। मुझमें इतनी शक्ति है कि, मैं रावण सहित इस समस्त लंका को भी अपनी पीठ पर ढो कर ले जा सकता हूँ॥२०॥

अहं प्रस्रवणस्थाय राघवायाद्य मैथिलि ।
प्रापयिष्यामि शक्राय हव्यं हुतमिवानलः ॥ २१ ॥

हे मैथिली! मैं आज ही तुमको श्रीरामचन्द्र जी के पास प्रत्रवण गिरि पर वैसे ही पहुंचा दूंगा, जैसे अग्निदेव, इन्द्र के पास हवन किए हुए हाविष्य को इंद्र के सेवा में पहुँचा देते हैं ॥२१॥

द्रक्ष्यस्यद्यैव वैदेहि राघवं सह लक्ष्मणम् ।
व्यवसायसमायुक्तं विष्णुं दैत्यवधे यथा ॥ २२ ॥

है वैदेही ! दैत्यों के वध के लिए तत्पर भगवान् विष्णु की भांति राक्षसों के संहार के लिए सचेत ही श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी का आप आज ही दर्शन करेंगी ॥२२॥

त्वद्दर्शनकृतोत्साहमाश्रमस्थं महाबलम् ।
पुरन्दरमिवासीनं नगराजस्य मूर्धनि ॥ २३॥

हे देवी! महाबलवान् श्रीरामचन्द्र जी आपके दर्शन की अभिलाषा से उत्साहित होकर, पर्वतराज प्रस्त्रण के शिखर पर उसी प्रकार विराजित हैं जैसे देवराज इंद्र गजराज ऐरावत की पीठ पर विराजमान होते हैं ॥२३॥

पृष्ठमारोह मे देवि मा विकाङ्क्षस्व शोभने ।
योगमन्विच्छ रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी ॥ २४ ॥

पौलोमीव महेन्द्रेण सुर्यवेण सुवर्चला ।
मत्पृष्ठमधिरोह त्वं तराकाशं महार्णवम् ॥ २५ ॥

हे सुन्दरी देवी ! अब आपको सोच विचार नहीं करना चाहिए, मेरी पीठ पर बैठ कर श्रीरामचन्द्र जी से मिलने की उसी प्रकार इच्छा करनी चाहिए, जैसे रोहिणी देवी चन्द्रमा से, शची देवी इन्द्र से और सुवर्चला देवी सूर्य से मिलने की इच्छा किया करती हैं। आप मेरी पीठ पर सवार हो जाइए, मैं आकाशमार्ग से समुद्र के पार चला जाउंगा ॥२४-२५॥

न हि मे सम्प्रयातस्य त्वामितो नयतोऽङ्गने ।
अनुगन्तुं गतिं शक्ताः सर्वे लङ्कानिवासिनः ॥ २६॥

कल्याणी! जिस समय मैं आपको लेकर यहां से चलूँगा, उस समय लंका निवासी किसी भी राक्षस में इतनी शक्ति नहीं है, जो मेरा पीछा कर सके ॥२६॥

यथैवाहमिह प्राप्तस्तथैवाहमसंशयम् ।
यास्यामि पश्य वैदेहि त्वामुद्यम्य विहायसम् ॥ २७ ॥

विदेहनंदिनी ! जिस प्रकार मैं उस पार से यहां आया हूँ, उसी प्रकार मैं आपको अपनी पीठ पर लिये हुए, निश्चय ही आकाशमार्ग से उस पार चला जाऊँगा। आप मेरा पराक्रम देखिए ॥२७॥

मैथिली तु हरिश्रेष्ठाच्छ्रुत्वा वचनमद्भुतम् ।
हर्षविस्मितसर्वाङ्गी हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥ २८ ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान जी के इन अद्भुत वचनों को सुन कर, मिथिलेश कुमारी सीता जी हर्षित और विस्मित होकर हनुमान जी से बोलीं ॥२८॥

हनुमन् दूरमध्वानं कथं मां नेतुमिच्छसि ।
तदेव खलु ते मन्ये कपित्वं हरियूथप ॥ २९॥

हे हनुमान् ! तुम मुझे लिये हुए इतनी दूर कैसे जा सकोगे! है हरियूथप ! तुम्हारी इस बात से तो तुम्हारा वान्रोचित चपलता ही प्रकट होती है ॥२९॥

कथं चाल्पशरीरस्त्वं मामितो नेतुमिच्छसि ।
सकाशं मानवेन्द्रस्य भर्तुर्मे प्लवगर्षभ ॥ ३० ॥

हे वानरोत्तम ! तुम्हारा शरीर तो इतना छोटा है तब तुम मुझे, किस प्रकार मुझे मेरे स्वामी महाराज श्री राम के पास पहुँचा सकते हो ? ॥३०॥

सीतायास्तु वचः श्रुत्वा हनुमान् मारुतात्मजः ।
चिन्तयामास लक्ष्मीवान् नवं परिभवं कृतम् ॥ ३१ ॥

लक्ष्मीवान पवननन्दन हनुमान जी, सीताजी के इन वचनों को सुन, मन ही मन सोचने लगे कि, यह मेरा प्रथम अनादर हुआ है।॥ ३१॥

न मे जानाति सत्त्वं वा प्रभावं वासितेक्षणा ।
तस्मात् पश्यतु वैदही यद् रूपं मम कामतः ॥ ३२ ॥

वह बोले हे कृष्णानयनी ! आप अभी मेरे बल और प्रभाव को नहीं जानती। इसी कारण ऐसा कह रही हो । अतः अब आप उस रूप को जिसे मैं इच्छानुसार धारण कर सकता हूँ, उसे देखिए ॥३२॥

इति संचिन्त्य हनुमांस्तदा प्लवगसत्तमः ।
दर्शयामास वैदेह्याः स्वरूपमरिमर्दनः ॥ ३३ ॥

ऐसा सोच विचार कर, वानरोत्तम हनुमान जी ने शत्रुनाशकारी अपना दिव्य रूप वैदेही को दिखाया॥३३॥

स तस्मात् पादपाद् धीमानाप्लुत्य प्लवगर्षभः ।
ततो वर्धितुमारेभे सीताप्रत्ययकारणात् ॥ ३४॥

वानरोत्तम बुद्धिमान् हनुमान जी एक छलांग में वृक्ष से नीचे उतर कर सीता जी को विश्वास कराने के लिये, अपने शरीर का विस्तार करने लगे ॥३४॥

मेरुमन्दरसङ्काशो बभौ दीप्तानलप्रभः ।
अग्रतो व्यवतस्थे च सीताया वानरर्षभः ॥ ३५ ॥

उस समय कपिश्रेष्ठ हनुमान जी मेरुपर्वत की तरह लंबे चौड़े और दहकती हुई अग्नि की तरह कान्तिमान होकर, सीता जी के समक्ष खड़े हो गये ॥३५॥

हरिः पर्वतसङ्काशस्ताम्रवक्त्रो महाबलः ।
वज्रदंष्ट्रनखो भीमो वैदेहीमिदमब्रवीत् ॥ ३६ ॥

उस समय पर्वताकार, लालमुख, महावलवान् और वज्र के समान दांतों और नखों को धारण किये हुए भयंकर रूप-धारी वानरवीर हनुमान जी जानकी जी से इस प्रकार बोले ॥३६॥

सपर्वतवनोद्देशां साट्टप्रकारतोरणाम् ।
लङ्कामिमां सनाथां व नयितुं शक्तिरस्ति मे ॥ ३७ ॥

हे देवी! पर्वत, वन, गृह, चारदिवारी और तोरण सहित इस लंका को और लंका के राजा रावण को भी यहाँ से उठा कर ले जाने की मुझमें शक्ति है ॥३७॥

तदवस्थाप्यतां बुद्धिरलं देवि विकाङ्क्षया ।
विशोकं कुरु वैदेहि राघवं सहलक्ष्मणम् ॥ ३८ ॥

हे देवी! अतः अब आप मेरे साथ चलने का निश्चय कीजिए। आपकी आकांक्षा व्यर्थ है। हे वैदेही! आप मेरे साथ चल कर, श्रीराम चन्द्र जी और लक्ष्मण जी का शोक दूर कीजिए ॥३८॥

तं दृष्ट्वा भीमसङ्काशमुवाच जनकात्मजा ।
पद्मपत्रविशालाक्षी मारुतस्यौरसं सुतम् ॥ ३९ ॥

वायु के औरस पुत्र हनुमान जी को पर्वताकार शरीर धारण किये हुए देख कर, कमल की तरह विशाल नयनी जनकनन्दिनी, पवननन्दन हनुमान जी से कहने लगी ॥३९॥

तव सत्त्वं बलं चैव विजानामि महाकपे ।
वायोरिव गतिश्चापि तेजश्चाग्नेरिवाद्भुततम् ॥ ४० ॥

हे महाकपे ! अब मैंने तुम्हारा बल पराक्रम भली भांति समझ लिया। तुम्हारी गति पवन के समान और तुम्हारा तेज अग्नि के समान अद्भुत है ॥४०॥

प्राकृतोऽन्यः कथं चेमां भूमिमागन्तुमर्हति ।
उदधेरप्रमेयस्य पारं वानरयूथप ॥ ४१ ॥

हे कपिश्रेष्ठ! अन्यथा क्या कोई अन्य साधारण वानर भी इस लांघने के अयोग्य इस अपार समुद्र को लांघ कर यहाँ आ सकता था ॥४१॥

जानामि गमने शक्तिं नयने चापि ते मम ।
अवश्यं सम्प्रधार्याशु कार्यसिद्धिरिवात्मनः ॥ ४२ ॥

मैं जानती हूँ कि, तुममें बहुत दूर चलने की और मुझको अपनी पीठ पर चढ़ा कर समुद्र पार ले जाने की शक्ति है, किन्तु शीघ्रता पूर्वक कार्य सिद्धि होने के सम्बन्ध में मुझे स्वयं भी सोच विचार लेना आवश्यक है।॥४२॥

अयुक्तं तु कपिश्रेष्ठ मम गन्तुं त्वया सह ।
वायुवेगसवेगस्य वेगो मां मोहयेत् तव ॥ ४३ ॥

मेरे विचार में तुम्हारे साथ मेरा जाना ठीक नहीं होगा, क्योंकि, वायु के समान तुम्हारी तीव्र गति मुझे मूर्छित कर देगी ॥४३॥

अहमाकाशमासक्ता उपर्युपरि सागरम् ।
प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद् भूयो वेगेन गच्छतः ॥ ४४ ॥

पतिता सागरे चाहं तिमिनक्रझषाकुले ।
भवेयमाशु विवशा यादसामन्नमुत्तमम् ॥ ४५ ॥

जब तुम मुझे लिये हुए आकाशमार्ग से बड़े वेग से जाने लगोगे, तब मैं कदाचित् भयभीत हो समुद्र में गिर पड़ी और समुद्र के मगरमच्छ मुझे पकड़ कर खा गये, तब तुम क्या करोगे? ॥४४-४५ ॥

न च शक्ष्ये त्वया सार्धं गन्तुं शत्रुविनाशन ।
कलत्रवति सन्देहस्त्वयि स्यादप्यसंशयम् ॥ ४६ ॥

हे शत्रुविनाशकारी वीर! मैं तुम्हारे साथ न जा सकूंगी क्योंकि एक स्त्री को साथ लेकर जब तुम जाने लगोगे तो यह देख कर, निश्चय ही राक्षसगण तुम पर संदेह करेंगे॥४६॥

ह्रियमाणं तु मां दृष्ट्वा राक्षसा भीमविक्रमाः ।
अनुगच्छेयुरादिष्टा रावणेन दुरात्मना ॥ ४७ ॥

और मुझे लिये जाते हुए देख कर, दुरात्मा रावण की आज्ञा पाकर भयंकर विक्रमशाली राक्षस लोग तुम्हारा पीछा करेंगे ॥४७॥

तैस्त्वं परिवृतः शूरैः शूलमुद्गरपाणिभिः ।
भवेस्त्वं संशयं प्राप्तो मया वीर कलत्रवान् ॥ ४८॥

उस समय मुझ जैसी रक्षणीया स्त्री के साथ होने के कारण, जब तुम शूल, मुद्गरधारी वीर राक्षसों द्वारा घेर लिये जाओगे, तब तुम बड़े संकट में पड़ जाओगे ॥४८॥

सायुधा बहवो व्योम्नि राक्षसास्त्वं निरायुधः ।
कथं शक्ष्यसि संयातुं मां चैव परिरक्षितुम् ॥ ४९ ॥

फिर राक्षसों के पास तो तरह तरह के अस्त्र-शस्त्र होंगे और तुम्हारे हाथों में कोई भी अस्त्र नहीं रहेगा। ऐसी दशा होने पर, तुम उनके साथ युद्ध तथा मेरी रक्षा दोनों कार्य एक साथ कैसे कर सकोगे ॥४९॥

युद्ध्यमानस्य रक्षोभिस्ततस्तैः क्रूरकर्मभिः।
प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद् भयार्ता कपिसत्तम ॥ ५० ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! उन क्रूरकर्मा भयंकर राक्षसों से जब तुम सामना करोगे, तब भयभीत होकर मैं अवश्य तुम्हारी पीठ से नीचे गिर पडूँगी ॥५०॥

अथ रक्षांसि भीमानि महान्ति बलवन्ति च ।

कथंचित् साम्पराये त्वां जयेयुः कपिसत्तम ॥ ५१ ॥

अथवा युध्यमानस्य पतेयं विमुखस्य ते ।
पतितां च गृहीत्वा मां नयेयुः पापराक्षसाः ॥ ५२ ॥

हे कपिश्रेष्ठ! फिर यदि उन भयंकर और महाबली राक्षसों ने कदाचित युद्ध में तुम्हें जीत ही लिया अथवा युद्ध करते समय मेरी रक्षा की ओर तुम्हारा ध्यान नहीं रहा और मैं नीचे गिर पड़ी और उन पापी राक्षसों ने मुझे पुन: पकड़ लिया, तब क्या होगा? ॥५१-५२॥

मां वा हरेयुस्त्वद्धस्ताद् विशसेयुरथापि वा ।
अव्यवस्थौ हि दृश्येते युद्धे जयपराजयौ ॥ ५३ ॥

अथवा यह भी सम्भव है कि वह राक्षस तुम्हारे हाथ से मुझे छीन कर ले जाएँ अथवा मेरा वध ही कर डालें तब क्या होगा? क्योंकि, युद्ध में कौन जीते, कौन हारे, इसका पहले से कुछ भी निश्चय नहीं हो सकता ॥५३॥

अहं वापि विपद्येयं रक्षोभिरभितर्जिता ।
त्वत्प्रयत्नो हरिश्रेष्ठ भवेन्निष्फल एव तु ॥ ५४ ॥

फिर यदि राक्षसों की डांट डपट से मेरे प्राण निकल गये तो, हे कपिश्रेष्ठ ! तुम्हारा सारा परिश्रम व्यर्थ ही हो जाएगा ॥५४॥

कामं त्वमपि पर्याप्तौ निहन्तुं सर्वराक्षसान् ।
राघवस्य यशो हीयेत् त्वया शस्तैस्तु राक्षसैः ॥ ५५ ॥

यद्यपि तुम निस्सन्देह अकेले सम्पूर्ण राक्षसों का वध करने में सक्षम हो; तथापि तुम्हारे द्वारा राक्षसों का वध हो जाने पर श्री राम जी के सुयश में बाधा आएगी ॥५५॥

अथवाऽऽदाय रक्षांसि न्यसेयुः संवृते हि माम् ।
यत्र ते नाभिजानीयुर्हरयो नापि राघवः ॥ ५६॥

इसमें एक दोष यह भी है कि, यदि राक्षसों ने मुझे पकड़ लिया और लंका में वापस ले आए तो फिर वह मुझे किसी ऐसे गुप्त स्थान में छिपा देंगे, जहाँ कोई वानर अथवा श्रीरामचन्द्र जी मुझे देख ही न पाएं ॥५६॥

आरम्भस्तु मदर्थोऽयं ततस्तव निरर्थकः ।
त्वया हि सह रामस्य महानागमने गुणः ॥। ५७॥

यदि ऐसा कुछ हुआ तो मेरे लिए तुम्हारा किया हुआ समस्त परिश्रम व्यर्थ चला जायगा। अतः यही ठीक होगा कि, तुम श्रीरामचन्द्र जी को साथ लेकर यहाँ पधारो॥५७॥

मयि जीवितमायत्तं राघवस्यामित्तौजसः ।
भ्रातृणां च महाबाहो तव राजकुलस्य च ॥ ५८ ॥

महाबलवानअमित पराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी का और उनके सभी भाइयों का तथा तुम्हारे वानरराज सुग्रीव के कुल का भी जीवन भी मेरे ही ऊपर निर्भर है। ॥५८॥

तौ निराशौ मदर्थं तु शोकसन्तापकर्शितौ ।
सह सर्वर्क्षहरिभिस्त्यक्ष्यतः प्राणसंग्रहम् ॥५९ ॥

यदि वे दोनों भ्राता जो इस समय सन्तप्त और शोक से विकल हो रहे हैं, मेरी प्राप्ति की ओर से हताश हो गये तो फिर निश्चय ही उनका जीना असम्भव है। उनके मरने पर वानरी सेना भी अपने प्राण त्याग देगी ॥५९॥

भर्तृभक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर ।
न स्पर्शामि शरीरं तु पुंसो वानरपुंगव ॥ ६० ॥

हे वानरश्रेष्ठ ! तुम्हारे साथ न चलने में एक यह आपत्ति यह भी है कि, मैं पतिव्रता हूँ-अतः श्रीरामचन्द्र जी छोड़ कर किसी अन्य पुरुष के शरीर को अपनी इच्छा से स्पर्श करना नहीं चाहती ॥६०॥

यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य गता बलात् ।
अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती ॥ ६१॥

मुझे जो रावण के शरीर का स्पर्श हुआ वह बलपूर्वक हुआ था। क्योंकि उस समय मैं कर ही क्या सकती थी। मैं असमर्थ थी और उस समय मुझ पतिव्रता को बचाने वाला भी कोई नहीं था ॥६१॥

यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम् ।
मामितो गृह्य गच्छेत तत् तस्य सदृशं भवेत् ॥ ६२ ॥

यदि श्रीरामचन्द्र जी बन्धु बांधवों सहित रावण को मार मुझे लेकर यहां से जाएँ तो यह कार्य उनकी पदमर्यादा के अनुकूल होगा ॥६२॥

श्रुताश्च दृष्टा हि मया पराक्रमा महात्मनस्तस्य रणावमर्दिनः ।
न देवगन्धर्वभुजङ्गराक्षसा भवन्ति रामेण समा हि संयुगे ॥६३॥

उन शत्रुओं का नाश करने वाले महात्मा श्रीरामचन्द्र जी का पराक्रम मैंने अनेक बार सुना भी है और देखा भी है। अत: मैं कह सकती हूँ कि, युद्ध में क्या देवता, क्या गन्धर्व, क्या सर्प और क्या राक्षस-कोई भी उनका सामना नहीं कर सकता ॥६३॥

समीक्ष्य तं संयति चित्रकार्मुकं महाबलं वासवतुल्यविक्रमम् ।
सलक्ष्मणं को विषहेत राघवं हुताशनं दीप्तमिवानिलेरितम् ॥६४॥

हे कपिश्रेष्ठ ! जब वह महाबली और इन्द्र के समान विक्रम वाले श्रीरामचन्द्र जी युद्धक्षेत्र में अपना अदभुत धनुष हाथ में ले खड़े हो जाते हैं और लक्ष्मण उनकी सहायता में सावधान रहते हैं, तब किसका सामर्थ है, जो उनके सामने खड़ा रह सके । भला वायु से बढ़ाई हुई आग की लपटों के सामने भी कोई खड़ा रह सकता है ॥६४॥

सलक्ष्मणं राघवमाजिमर्दनं दिशागजं मत्तमिव व्यवस्थितम् ।
सहेत को वानरमुख्य संयुगे युगान्तसूर्यप्रतिमं शरार्चिषम् ॥६५॥

वानर शिरोमणे! जब शत्रुमर्दनकारी श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण सहित, मतवाले दिग्गज की तरह युद्धक्षेत्र में खड़े हो जाते हैं और प्रलयकालीन सूर्य की तरह बाणों रूपी किरणों से आग बरसाने लगते हैं। तब उनके सामने ठहरने की किस में शक्ति है ॥६५॥

स मे कपिश्रेष्ठ सलक्ष्मणं प्रियं सयूथपं क्षिप्रमिहोपपादय ।
चिराय रामं प्रति शोककर्शितां कुरुष्व मां वानरवीर हर्षिताम् ॥६६॥

हे वानरश्रेष्ठ! अतएव तुम लक्ष्मण और सुग्रीव सहित मेरे प्यारे श्रीरामचन्द्र जी को शीघ्र ही यहाँ बुला लाओ। हे वानर वीर! मैं श्रीरामचन्द्र जी के वियोगजन्य शोक से चिरकाल से शोकाकुल हो रही हूँ। अत: तुम मुझे अब उनके शुभागमन से शीघ्र हर्षित करो ॥६६॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दर काण्ड का सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥अष्टात्रिंशः सर्गः अड़तीसवाँ सर्ग ॥

सीताया प्रत्यभिज्ञानतया चित्रकूटे घटितस्य काकप्रसंगस्य श्रावणं श्रीरामस्य शीघ्रमानयनयाग्रहकरणं हनुमते चूडामणेः समर्पणं च - सीता जी पहचान स्वरुप चित्रकूट पर्वत पर घटित हुए एक कौए के प्रसंग का वर्णन, हनुमान जी को चूड़ामणि देना तथा श्री राम को शीघ्र बुला लाने करने का अनुरोध

ततः सकपिशार्दूस्तेन वाक्येन तोषितः ।
सीतामुवाच तच्छ्रुत्वा वाक्यं वक्यविशारदः ॥ १ ॥

सीता जी के इन वचनों को सुन, वाक्य विशारद वानरश्रेष्ठ हनुमान जी सीता जी से प्रसन्नता पूर्वक इस प्रकार बोले ॥१॥

युक्तरूपं त्वया देवि भाषितं शुभदर्शने ।
सदृशं स्त्रीस्वभावस्य साध्वीनां विनयस्य च ॥ २ ॥

हे देवी! आपका कहना बिलकुल ठीक तथा युक्ति संगत है। शुभदर्शने ! आपने स्त्री-स्वभाव-सुलभ और पतिव्रता स्त्रियों के चरित्रानुकुल ही वचन कहे हैं ॥२॥

स्त्रीत्वान्न त्वं समर्थासि सागरं व्यतिवर्तितुम् ।
मामधिष्ठाय विस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥ ३ ॥

आप स्त्री हैं, अतः आप मेरी पीठ पर सवार होकर, सौ योजन चौड़े समुद्र को पार नहीं कर सकती ॥३॥

द्वितीयं कारणं यच्च ब्रवीषि विनयान्विते ।
रामादन्यस्य नार्हामि संसर्गमिति जानकि ॥ ४ ॥

हे विनयान्विते ! हे सुशीले ! आपने जो दूसरा कारण बताते हुए कहा है कि आप श्रीरामचन्द्र जी को छोड़ अन्य किसी पुरुष को अपनी स्वेच्छा पूर्वक नहीं छू सकतीं ॥४॥

एतत् ते देवि सदृशं पत्न्यास्तस्य महात्मनः ।
का ह्यन्या त्वामृते देवि ब्रूयाद् वचनमीदृशम् ॥ ५ ॥

वह भी हे देवी ठीक ही है और उन श्री रामचन्द्र जी पत्नी द्वारा ही कहने योग्य है। भला आप को छोड़ कर दूसरी कौन सी स्त्री ऐसा वचन कह सकती है। ॥५॥

श्रोष्यते चैव काकुत्स्थः सर्वं निरवशेषतः ।
चेष्टितं यत् त्वया देवि भाषितं न ममाग्रतः ॥ ६ ॥

हे देवि! आपने मेरे समक्ष जो पवित्र चेष्टाएँ की हैं और जैसी उत्तम अर्थ से युक्त बातें कहीं है, वह मैं इसी प्रकार सम्पूर्ण रूप से श्री रामचन्द्र जी से कहूँगा ॥६॥

कारणैर्बहुभिर्देवि रामप्रियचिकीर्षया ।
स्नेहप्रस्कन्नमनसा मयैतत् समुदीरितम् ॥ ७ ॥।

हे देवी ! मैंने आपसे अपने साथ चलने का जो आग्रह किया, उसके बहुत से कारण हैं। एक तो यह की मैं शीघ्र ही श्री रामचन्द्र जी का प्रिय करना चाहता था। दूसरा यह की आपको दुखी देखकर मेरा हृदय स्नेह से शिथिल हो रहा था। ॥७॥

लङ्काया दुष्प्रवेशत्वाद् दुस्तरत्वान्महोदधेः ।
सामर्थ्यादात्मनश्चैव मयैतत् समुदीरितम् ॥ ८ ॥

तीसरा, सभी के लिए लंका मे प्रवेश करना इतना सरल नहीं है और चौथा महासागर को पार करना अत्यंत दुष्कर कार्य है। इन्ही सभी कारणों से तथा अपने में आपको ले जाने की शक्ति के कारण मैंने ऐसा प्रस्ताव किया था। ॥८॥

इच्छामि त्वां समानेतुं अद्यैव रघुनन्दिना ।

गुरुस्नेहेन भक्त्या च नान्यथा तदुदाहृतम् ॥ ९ ॥

हे रघुनन्दिनी ! मैंने जो भी कुछ कहा उसको अन्यथा मत समझिये क्योंकि श्रीरामचन्द्र जी के मेरे प्रति स्नेह और उनके प्रति जो मेरी भक्ति है, उसी से प्रेरित हो कर मेरी यह इच्छा हुई कि, मैं आज ही आप को ले जा कर श्रीरामचन्द्र जी से मिला हूँ॥९॥

यदि नोत्सहसे यातुं मया सार्धमनिन्दिते ।
अभिज्ञानं प्रयच्छ त्वं जानीयाद् राघवो हि यत् ॥ १० ॥

हे सती साध्वी देवी ! किन्तु यदि मेरे साथ चलने की आपकी इच्छा नहीं है, तो मुझे अपनी कोई पहचान ही बता दीजिए जिससे श्रीरामचन्द्र यह मान लें की मैंने सचमुच आपके दर्शन किए हैं ॥१०॥

एवमुक्ता हनुमता सीता सुरसुतोपमा ।
उवाच वचनं मन्दं बाष्पप्रग्रथिताक्षरम् ॥ ११ ॥

जब हनुमान जी ने इस प्रकार कहा, तब देवकन्या के समान तेजस्विनी सीता जी आँखों में आंसू भर अर्थात गदगद कंठ से धीरे धीरे बोलीं ॥११॥

इदं श्रेष्ठमभिज्ञानं ब्रूयास्त्वं तु मम प्रियम् ॥
शैलस्य चित्रकूटस्य पादे पूर्वोत्तरे पदे ॥ १२ ॥

तापसाश्रमवासिन्याः प्राज्यमूलफलोदके ।
तस्मिन् सिद्धाश्रमे देशे मन्दाकिन्यविदूरतः ॥ १३ ॥

मेरी यही सर्वश्रेष्ठ पहचान तुम श्रीरामचन्द्र जी को कह देना कि, चित्रकूट पर्वत के ईशान कोण पर जो अनेकों फल-मूल से युक्त, सिद्धों स्वर सेवित, मन्दाकिनी नदी के समीप, तापस आश्रम में जब हम लोग रहते थे॥१२-१३॥

तस्योपवनखण्डेषु नानापुष्पसुगन्धिषु ।
विहृत्य सलिले क्लिन्ना ममाङ्के समुपाविशः ॥ १४ ॥

तब वहाँ के विविधपुष्पों की सुगन्धि से सुवासित उपवनों में जलविहार करके भीगी देह से श्रीराम मेरी गोद में सो गये ॥१४॥

ततो मांससमायुक्तो वायसः पर्यतुण्डयत् ।
तमहं लोष्टमुद्यम्य वारयामि स्म वायसम् ॥ १५ ॥

उसी समय एक कौआ आकर मांस के लालच में मुझे चोंच मारने लगा । मैंने मिट्टी के ढेले फेंककर उसे उड़ने की चेष्टा की ॥१५॥

दारयन् स च मां काकस्तत्रैव परिलीयते ।
न चाप्युपारमन्मांसाद् भक्षार्थी बलिभोजनः ॥ १६ ॥

किन्तु वह मुझ पर चोंच से घाव करके, वहीँ कहीं छिप जाया करता था। मैंने उसे बहुत उड़ाया, किन्तु वह मांसभक्षी और बलि खाने वाला वह कौआ नहीं माना ॥१६॥

उत्कर्षन्त्यां च रशनां क्रुद्धायां मयि पक्षिणे ।
स्रंसमाने च वसने ततो दृष्टा त्वया ह्यहम् ॥ १७ ॥

तब मुझे उस कौए पर बड़ा क्रोध आया। इतने में मेरी करधनी खिसक गयी । मैं उसे ऊपर चढ़ाने लगी कि, इतने में मेरा वस्त्र खिसक गया और उसी अवस्था में श्रीरामचन्द्र जी की दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी ॥ १७ ॥

त्वया विहसिता चाहं क्रुद्धा संलज्जिता तदा ।
भक्ष्यगृध्रेन काकेन दारिता त्वामुपागता ॥ १८ ॥

आसीनस्य च ते श्रान्ता पुनरुत्संगमाविशम् ।
क्रुद्ध्यन्ती च प्रहृष्टेन त्वयाहं परिसान्त्विता ॥ १९ ॥

और श्री राम मुझे देख कर हँस दिये। इससे पहले तो मैं कुपित हुई और फिर लज्जित हो गयी। इतने में ही उस भक्ष्य लोलुप कौए ने फिर चोंच मार कर मुझे क्षत विक्षत कर दिया, उसी घायल तथा थकी हुई अवस्था में मैं श्री राम के पास आई और आकर उनको गोद में बैठ गयी। मुझे कुपित देखकर श्री राम ने प्रसन्न होकर मुझे समझाया ॥१८-१९॥

बाष्पपूर्णमुखी मन्दं चक्षुषी परिमार्जती ।
लक्षिताहं त्वया नाथ वायसेन प्रकोपिता ॥ २० ॥

उस समय अश्रुओं से मेरा मुख तर हो रहा था और धीरे धीरे आंसू पोंछ रही थी । इतने में ही श्री राम ने जान लिया कि कौए ने मुझे कुपित कर दिया है ॥२०॥

परिश्रमाच्च सुप्ता हे राघवाङ्केऽस्म्यहं चिरम् ।
पर्यायेण प्रसुप्तश्च ममाङ्के भरताग्रजः ॥ २१ ॥

थक जाने के कारण मैं बहुत देर तक श्रीरामचन्द्र जी की गोद में सोती रही, और फिर वह भरत के बड़े भाई श्रीरामचन्द्र जी मेरी गोद में सिर रखकर सोये ॥२१॥

स तत्र पुनरेवाथ वायसः समुपागमत् ।
ततः सुप्तप्रबुद्धां मां रामवाङ्कात् समुत्थिताम् । ॥ २२ ॥

इतने में वही कौआ पुनः वहाँ आया। मैं उसी क्षण श्रीरामचन्द्र जी को गोद से सोकर उठी थी॥२२॥

वायसः सहसागम्य विददार स्तनान्तरे
पुनः पुनरथोत्पत्य विददार स मां भृशम् । ॥ २३ ॥

कि उस काक ने अचानक था मेरी छाती में चोंच मारी और बार बार उड़ कर मुझे अत्यंत घायल कर डाला ॥२३॥

ततः समुक्षितो रामो मुक्तैः शोणितबिन्दुभिः ।
स मां दृष्ट्वा महाबाहुर्वितुन्नां स्तनयोस्तदा ॥ २४ ॥

जिससे मेरी छाती से रक्त की बूंदे टपकने लगीं, तब रक्त की बूंदे श्रीरामचन्द्र जी के शरीर पर गिरने से श्री रामचन्द्र जी की नींद खुली और वह जाग कर उठ बैठे और मेरी छाती पर हुए घाव को देखकर ॥ २४ ॥

आशीविष इव क्रुद्धः श्वसन् वाक्यमभाषत ।
केन ते नागनासोरु विक्षतं वै स्तनान्तरम् ॥ २५ ॥

श्रीरामचन्द्र जी सर्प की तरह कुपित और लम्बी लम्बी साँसों से फुफकारते हुए बोले- हे सुन्दरी! तुम्हारी छाती को किसने घायल कर दिया है? ॥२५॥

कः क्रीडति सरोषेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना ।
वीक्षमाणस्ततस्तं वै वायसं समवैक्षत ॥ २६ ॥

कौन है जो रोष से भरे हुए पाँच फन वाले सांप के साथ यह खेल रहा है इतना कहकर जैसे ही श्रीरामचन्द्र जी ने इधर उधर दृष्टि डाली, तभी उन्हें वह कौवा दिखाई दिया ॥२६॥

नखैः सरुधिरैस्तीक्ष्णैर्मामेवाभिमुखं स्थितम् ।
पुत्रः किल स शक्रस्य वायसः पततां वरः ॥ २७ ॥

उस कौवे के नख, रक्त में सने हुए थे और वह मेरी ओर मुख कर बैठा हुआ था ! वह पक्षी श्रेष्ठ निश्चय ही इन्द्र का पुत्र था ॥२७॥

धरान्तरगतः शीघ्रं पवनस्य गतौ समः ।
ततस्तस्मिन् महाबाहुः कोपसंवर्तितेक्षणः ॥ २८ ॥

श्रीरामचन्द्र जी की दृष्टि पड़ते ही वह पवन के समान वेग से तुरंत पृथिवी में समा गया। उस समय श्रीरामचन्द्र जी मारे क्रोध के नेत्र टेढ़े कर, ॥२८॥

वायसे कृतवान् क्रूरां मतिं मतिमतां वरः ।
स दर्भं संस्तराद् गृह्य ब्रह्मणोऽस्त्रेण योजयत् ॥ २९ ॥

उस कौए को कठोर दण्ड देने का विचार किया, और कुश की चटाई से एक कुश खींच, उसको ब्रह्मास्त्र के मन्त्र से अभिमंत्रित किया ॥२९॥

स दीप्त इव कालाग्निर्जज्वलाभिमुखो द्विजम् ।
स तं प्रदीप्तं चिक्षेप दर्भं तं वायसं प्रति ॥ ३० ॥

तब वह कुश कालाग्नि के समान प्रज्वलित हो उठा। उस कुश को श्रीरामचन्द्र जी ने कौवे के ऊपर छोड़ दिया ॥३०॥

ततस्तं वायसं दर्भः सोऽम्बरेऽनुजगाम ह ।
अनुसृष्टस्तदा काको जगाम विविधां गतिम् ॥ ३१ ॥

यह देख कर वह कौवा उड़ कर आकाश में गया और वह प्रज्वल्लित कुश उसका पीछा करने लगा। उस ब्रह्मास्त्र से पीड़ित वह कौवा अनेक प्रकार की उड़ाने लगता हुआ अपने प्राण बचाने के लिए अनेकों जगहों पर भागता रहा ॥३१॥

त्राणकाम इमं लोकं सर्वं वै विचचार ह ।
स पित्रा च परित्यक्तः सर्वैश्च परमर्षिभिः ॥ ३२ ॥

अपनी रक्षा के लिये वह कौवा इस पृथिवी पर सर्वत्र घूमा पर उसकी रक्षा न हो सकी। तब वह अपने पिता इंद्र तथा अन्य देवताओं और देवर्षियों के पास अपनी रक्षा के लिये गया, किन्तु सभी के उसका परित्याग कर दिया ॥३२॥

त्रीँल्लोकान् सम्परिक्रम्य तमेव शरणं गतः ।
स तं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम् ॥ ३३ ॥

तीनों लोकों में घूम फिर कर अन्त में वह श्रीरामचन्द्र जी की ही शरण में आया । शरणागत-वत्सल श्रीरामचन्द्र जी ने उस शरण पाये हुए कौवे को अपने सामने पृथिवी पर पड़ा हुआ देखकर ॥३३॥

वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया पर्यपालयत् ।
न शर्म लब्ध्वा लोकेषु तमेव शरण गत: ॥ ३४॥

उस वध करने योग्य कौवे को दयावश छोड़ दिया क्योंकि वह सब लोकों में घूमा फिरा, किन्तु कही भी उसे शरण नहीं मिली तो वह श्रीरामचन्द्र जी की शरण में आया था ॥३४॥

परिद्यूनं विवर्णं च पतमानं तमब्रवीत् ।
मोघमस्त्रं न शक्यं तु ब्राह्मं कर्तुं तदुच्यताम् ॥ ३५ ॥

उस कौवे को सन्तप्त और दुःखी देखकर, श्रीराम चन्द्र जी ने उससे कहा-यह ब्रह्मास्त्र तो व्यर्थ नहीं जा सकता। अतः तुम बताओ उसके द्वारा तुम्हारा कौन सा अंग भंग किया जाय ॥३५॥

हिन्स्तु दक्शिणाक्षी त्वच्छर इत्यास्थ सोऽब्रवीत ।
ततस्तस्याक्षि काकस्य हिनस्ति स्म स दक्षिणम् ॥ ३६ ॥

इस पर उसने कहा कि, जब यही बात है, तब मेरी दहिनी आँख इसकी भेंट है। श्रीरामचन्द्र जी ने उस ब्रह्मास्त्र से उसकी दहिनी आँख फोड़ दी ॥३६॥

दत्त्वा स दक्षिणं नेत्रं प्राणेभ्यः परिरक्षितः ।
स रामाय नमस्कृत्वा राज्ञे दशरथाय च ॥ ३७ ॥

विसृष्टस्तेन वीरेण प्रतिपेदे स्वमालयम् ।
मत्कृते काकमात्रेऽपि ब्रह्मास्त्रं समुदीरितम् ॥ ३८ ॥

उस कौए ने अपनी दाहिनी आँख देकर अपने प्राण बचाए और श्रीरामचन्द्र जी तथा महाराज दशरथ जी को प्रणाम कर उन वीरशिरोमणि से विदा लेकर अपने घर चला गया। हे कपिश्रेष्ठ! तुम उनसे कहना कि हे प्राणनाथ ! पृथ्वीपते आपने मेरे लिए एक साधारण कौए पर ब्रह्मास्त्र चलाया था ॥३७-३८॥

कस्माद् यो माहरत् त्वत्तः क्षमसे तं महीपते ।
स कुरुष्व महोत्साहां कृपां मयि नरर्षभ ॥ ३९ ॥

फिर हे महाराज ! जो मुझे अपहृत करके ले गया उसे आपने क्षमा क्यों कर रहे हैं ? हे नरश्रेष्ठ ! आप अति प्रबल उत्साह, का अवलंबन करके, मेरे ऊपर कृपा कीजिये ॥३९॥

त्वया नाथवती नाथ ह्यनाथा इव दृश्यते ।
आनृशंस्यं परो धर्मस्त्वत्त एव मया श्रुतम् ॥ ४० ॥

आप जैसे नाथ के रहते; इस समय मैं अनाथिनो जैसी यहाँ पडी हूँ। मैंने तो आप ही से सुना है कि, दया से बढ़ कर कोई अन्य धर्म नहीं है ॥४०॥

जानामि त्वां महावीर्यं महोत्साहं महाबलम् ।
अपारवरमक्षोभ्यं गाम्भीर्यात् सागरोपमम् ॥ ४१ ॥

फिर मुझे यह भी विदित है कि, आप महापराक्रमी, महोत्साही और महाबलवान हो। आपका कोई आर पार नहीं हैं अर्थात आप असीम हैं तथा आपको कोई भी क्षुब्ध अथवा पराजित नहीं कर सकता क्योंकि आप समुद्र की तरह गम्भीर हैं ॥४१॥

भर्तारं ससमुद्रायाधरण्या वासवोपमम् ।
एवमस्त्रविदां श्रेष्ठः बलवान् सत्त्ववानपि ॥ ४२ ॥

किमर्थमस्त्रं रक्षःसु न योजयसि राघवः ।
न नागा नापि गन्धर्वा नासुरा न मरुद्ऽगणाः ॥ ४३ ॥

तथा इन्द्र की तरह समुद्रपर्यंत समस्त पृथिवी के स्वामी हैं। आप अस्त्र वेत्ताओं में सर्वश्रेष्ठ, सत्यवादी और होते हुए भी आप अपने उन अस्त्रों को राक्षसों पर क्यों नहीं चलाते। न तो नाग, न गन्धर्व, न असुर, न मरुदगण ॥४२-४३॥

रामस्य समरे वेगं शक्ताः प्रतिसमीहितुम् ।

तस्य वीर्यवतः कश्चिद् यद्यस्ति मयि संभ्रमः ॥ ४४ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के समरवेग को नहीं सह सकते। अतः यदि श्रीरामचन्द्र जी के मन में मेरा कुछ भी आदर है ॥४४॥

किमर्थं न शरैस्तीक्ष्णैः क्षयं नयति राक्षसान् ।
भ्रातुरादेशमादाय लक्ष्मणो वा परन्तपः ॥ ४५ ॥

कस्य हेतोर्न मां वीरः परित्राति महाबलः ।
यदि तौ पुरुषव्याघ्रौ वाय्विन्द्रसमतेजसौ ॥ ४६ ॥

तो वह अपने तीव्र और तीक्ष्ण बाणों से राक्षसों का नाश क्यों नहीं कर डालते। अथवा बड़े भाई से आज्ञा लेकर शत्रुदमन महाबलवान वीर, लक्ष्मण ही मेरी उद्धार क्यों नहीं करते ? वायु और अग्नि के समान तेजस्वी वह दोनों पुरुषसिंह ॥४५-४६॥

सुराणामपि दुर्धर्षौ किमर्थं मामुपेक्षतः ।
ममैव दुष्कृतं किंचिन्महदस्ति न संशयः ॥ ४७ ॥

जो देवताओं के लिये भी दुर्धर्ष हैं अर्थात् अजेय हैं, क्यों मेरी उपेक्षा कर रहे हैं। इसका कारण यदि कुछ हो सकता है तो यही कि, निस्सन्देह मेरे किसी जन्मान्तर कृत बड़े पाप का यह फल यह उपस्थित हुधा है॥४७॥

समर्थावपि तौ यन्मां नावेक्षते परन्तपौ ।
वैदह्या वचनं श्रत्वा करुणं साश्रु भाषितम् ॥ ४८ ॥

क्योंकि वह दोनों शत्रुहन्ता समर्थ होकर भी मेरी ओर अपनी कृपादृष्टि नहीं कर रहे। सीता जी के करुणा युक्त और रोते हुए कहे हुए इन वचनों को सुनकर ॥४८॥

अथाब्रवीन्महातेजा हनूमान् हरियूथपः ।
त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन मे शपे ॥ ४९ ॥

महातेजस्वी पवनपुत्र हनुमान जी कहने लगे है देवी ! में शपथपूर्वक सत्य कहता हूँ कि, श्रीरामचन्द्र जी तुम्हारे वियोग जन्य शोक के कारण अन्य सभी कार्यों से विमुख हो गए हैं और केवल आपका ही चिन्तन करते रहते हैं ॥४९॥

रामे दुःखाभिपन्ने च लक्ष्मणः परितप्यते ।
कथंचिद् भवती दृष्टा न कालः परिशोचितुम् ॥५० ॥

और बहुत दुःखी हैं। लक्ष्मण भी उनके दुखी रहने के कारण दुखी रहते हैं। किसी प्रकार मुझे आपका दर्शन हो गया। अब यह समय शोक करने का नहीं है ॥५०॥

इमं मुहूर्तं दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि शोभने ।
तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ राजपुत्रौ महाबलौ ॥५१ ॥

हे सुन्दरी ! यद्यपि इस समय आप कष्ट में है, परन्तु शीघ्र ही आपके दुखों का छुटकारा होगा । वह दोनों महाबली पुरुषसिंह राजकुमार ॥५१॥

त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लोकान् भस्मीकरिष्यतः ।
हत्वा च समरक्रूरं रावणं सहबान्धवम् ॥ ५२ ॥

आपके दर्शन की लालसा से बंधु बान्धव सहित दुष्ट रावण को युद्ध में मार कर और लंका को जला कर, भस्म कर डालेंगे ॥५२॥

राघवस्त्वां विशालाक्षि स्वां पुरीं प्रति नेष्यषति ।
ब्रूहि यद् राद्राघवो वाच्यो लक्ष्मणश्च महाबलः ॥ ५३ ॥

और हे विशाल लोचना ! श्रीरामचन्द्र आपको अयोध्या ले जायंगे। अब आपको महाबली श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण जी से जो कुछ कहना हो, वह बताइए ॥५३॥

सुग्रीवो वापि तेजस्वी हरयो वा समागताः ।
इत्युक्तवति तस्मिंश्च सीता पुनरथाब्रवीत् ॥ ५४ ॥

और तेजस्वी सुग्रीव तथा समस्त वानरों से भी जो कुछ कहना हो से वह भी बताइये। हनुमान जी का वचन सुन कर, देवी सीता जी ॥५४॥

उवाच शोक संतप्ता हनुमन्तं पल्वंगमम ।
कौसल्या लोकभर्तारं सुषुवे यं मनस्विनी ॥ ५५ ॥

शोकसन्तप्त होकर वानर हनुमान जी से बोली- कपिश्रेष्ठ ! मनस्विनी कौशल्या देवी ने जिन लोक-प्रति-पालक पुत्र को उत्पन्न किया है ॥५५॥

तं ममार्थे सुखं पृच्छ शिरसा चाभिवादय ।
स्त्रजश्च सर्वरत्नानि प्रिया याश्च वारांगना ॥ ५६ ॥

ऐश्वर्यं च विशालायां पृथिव्यामपि दुर्लभम् ।
पितरं मातरं चैव सम्मान्याभिप्रसाद्य च ॥ ५७ ॥

अनुप्रव्रजितो रामं सुमित्रा येन सुप्रजाः ।
आनुकूल्येन धर्मात्मा त्यक्त्वा सुखमनुत्तमम् ॥ ५८॥

उनको पहले प्रणाम करना और मेरी ओर से उनका कुशल समाचार पूछना। तत्पश्च्यात विशाल भूमंडल में जिनका मिलना कठिन है, ऐसे उत्तम ऐश्वर्य का, विभिन्न प्रकार के हारों, रत्नों, मनोहर स्त्रियों और पृथिवी के दुर्लभ ऐश्वर्य को त्यागकर तथा माता एवं पिता को प्रसन्न करके जो श्रीराम के अनुगामी बनकर, वन में चले आये और जिनके कारण सुमित्रा देवी सुपुत्रवती कहलाती हैं, जिन्होंने भाई के भक्ति वश होकर, उत्तम सुखों को त्याग कर, ॥५६-५८॥

अनुगच्छति काकुत्स्थं भ्रातरं पालयन् वने ।
सिंहस्कन्धो महाबाहुर्मनस्वी प्रियदर्शनः ॥ ५९॥

और जो श्री राम की रक्षा करते हुए वन में उनके पीछे पोछे चलते हैं, जो सिंह के समान कंधे वाले, महान भुजाओं वाले, मनस्वी और देखने में सुन्दर हैं ॥५९॥

पितृवद् वर्तते रामे मातृवन्मां समाचरन् ।
ह्रियमाणां तदा वीरो न तु मां वेद लक्ष्मणः ॥६० ॥

जो श्रीराम को पिता और मुझे माता समझ कर बर्ताव करते हैं, उन वीर लक्ष्मण को, उस समय रावण द्वारा मेरा अपहृत किया जाना विदित नहीं हुआ ॥६०॥

वृद्धोपसेवी लक्ष्मीवाञ्शक्तो न बहुभाषिता ।
राजपुत्रप्रियश्रेष्ठः सदृशः श्वशुरस्य मे ॥ ६१ ॥

जो वृद्धों की सेवा में संलग्न रहने वाले, शोभावान्, समर्थ, कम बोलने वाले, राजकुमार, श्री राम के प्रिय, श्रेष्ठ और मेरे ससुर के समान पराक्रमी ॥६१॥

मम प्रियतरो नित्यं भ्राता रामस्य लक्ष्मणः ।
नियुक्तो धुरि यस्यां तु तामुद्वहति वीर्यवान् ॥ ६२ ॥

और जो श्री राम के अनुज लक्ष्मण मुझसे भी अधिक श्रीराम को प्यारे हैं और जो किसी कार्य में नियुक्त किये जाने पर उस कार्य को बड़ी चतुराई से पूरा करते हैं ॥६२॥

यं दृष्ट्वा राघवो नैव वृत्तमार्यमनुस्मरत् ।
स ममार्थाय कुशलं वक्तव्यो वचनान्मम ॥ ६३ ॥

जिनको देखने से श्रीरामचन्द्र जी को पिता की याद नहीं आती, उन लक्ष्मण से मेरे कथनानुसार कुशल कहना ॥६३॥

मृदुर्नित्यं शुचिर्दक्षः प्रियो रामस्य लक्ष्मणः ।
यथा हि वानरश्रेष्ठ दुःखक्षयकरो भवेत् ॥ ६४ ॥

हे वानरश्रेष्ठ ! जो लक्ष्मण मृदुल स्वभाव, पवित्र, चतुर और श्रीरामचन्द्र के प्यारे हैं, उनसे इस प्रकार तुम कहना, जिससे वह मेरे दुःख का नाश करने को तैयार हो जाएँ ॥६४॥

त्वमस्मिन् कार्यनिरवाहे प्रमाणं हरियूथपसत्तम ।
राघवस्त्वत्समारम्भान्मयि यत्नपरो भवेत् ॥ ६५ ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! अधिक क्या कहूँ, तुम इस विषय में प्रमाण हो। तुम्हे इस कार्य के पूरा कराने के लिये जो भी आवश्यक हो उसे इस प्रकार कहना जिससे श्रीरामचन्द्र जी मेरे उद्धार के लिये शीघ्र प्रयत्न करें ॥६५॥

इदं ब्रूयाश्च मे नाथं शूरं रामं पुनः पुनः ।
जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज ॥ ६६ ॥

तुम मेरे शूर स्वामी शूरवीर श्री राम से यह बार बार कहना - हे दशरथात्मज ! मैं एक मास तक और जीवित रहँगी ॥६६॥

ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं सत्येनाहं ब्रवीमि ते ।
रावणेनोपरुद्धां मां निकृत्या पापकर्मणा । ॥ ६७ ॥

मैं तुमसे सत्य सत्य कहती हूँ कि, एक मास से अधिक बीतने पर मैं जीवित नहीं रहूंगी। क्योंकि इस पापी रावण ने मुझे कैद कर रखा है और राक्षसियों के व्यवहार से मुझे बड़ी पीड़ा हो रही है॥६७॥

त्रातुमर्हसि वीर त्वं पातालादिव कौशिकीम् ।
ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम् ॥ ६८ ॥

जिस प्रकार वाराह भगवान ने, पाताल से पृथिवी का उद्धार किया था, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्र जी मेरा यहाँ से उद्धार करें। तदनन्तर जानकी जी ने अपनी ओढ़नी के आंचल से खोल कर सुन्दर चूडामणि ॥६८॥

प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ ।
प्रतिगृह्य ततो वीरो मणिरत्नमनुत्तमम् ॥ ६९ ॥

हनुमान जी को दी और कहा इसे श्रीरामचन्द्र जी को दे देना। उस उत्तम मणि को ले हनुमान जी ने ॥६८॥

अङ्गुल्या योजयामास न ह्यस्य प्राभवद् भुजः।
मणिरत्नं कपिवरः प्रतिगृह्याभिवाद्य च ।
सीतां प्रदक्षिणं कृत्वा प्रणतः पार्श्वतः स्थितः ॥ ७० ॥

उसे अपनी अँगुली में पहन लिया। क्योंकि वह उनकी भुजा में नहीं आ सकी। उस मणिश्रेष्ठ को लेकर और प्रणाम कर कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने सीता जी की परिक्रमा की और वह हाथ जोड़ कर, उनके समीप खड़े हो गये ॥६९॥

हर्षेण महता युक्तः सीतादर्शनजेन सः ।
हृदयेन गतो रामं लक्ष्मणं च सलक्षणम् ॥ ७१ ॥

हनुमान जी को सीता जी के दर्शन से अत्यन्त हर्ष प्राप्त हुआ। उनका शरीर तो सीता ही के पास था । किन्तु मन द्वारा वह श्रीरामचन्द्र जी और शुभ लक्षण संपन्न श्री रामचन्द्र जी के पास पहुँच कर उन दोनों का चिंतन करने लगे ॥७०॥

मणिवरमुपगृह्य तं महार्हं जनकनृपात्मजया धृतं प्रभावात् ।
गिरिवरपवनावधूतमुक्तः सुखितमनाः प्रतिसंक्रमं प्रपेदे ॥ ७२ ॥

राजा जनक की पुत्री श्री जानकी जी ने विशेष यत्न से जिसे छिपा कर धारण कर रखा था, उस बहुमूल्य मणि रत्न को पाकर हनुमान जी मन ही मन पर्वत पर पवन के झोंको से मुक्त हुए पुरुष की तरह प्रसन्न हुए। तदनन्तर उन्होंने वहाँ से लौटने की इच्छा की ॥७१॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
अष्टात्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ एकोनचत्वारिंशः सर्गः उन्तालिसवाँ सर्ग ॥

चूडामणिमादाय यान्तं हनुमन्तं प्रति सीतया श्रीरामप्रभृतीनुत्सायितुमाग्रहकरणं समुद्रतरणे संशयानायाः सीताया हनुमता वानराणां पराक्रमं वर्णयित्वाऽऽश्वासनम् – चूड़ामणि लेकर जाते हुए हनुमान जी से माता सीता का श्री राम और लक्ष्मण को उत्साहित करने लिए उपदेश, सेना द्वारा समुद्र उल्लंघन के विषय में शंका तथा हनुमान जी द्वारा वानरों का पराक्रम बता कर सीता जी को सांत्वना देना

मणिं दत्त्वा ततः सीता हनुमन्तमथाब्रवीत् ।
अभिज्ञानमभिज्ञातमेतद् रामस्य तत्त्वतः ॥ १ ॥

तदान्तर चूड़ामणि देने के पश्च्यात सीता जी हनुमान जी से बोलीं – मेरे इस चिन्ह को श्री राम भली भांति पहचानते हैं। ॥१॥

मणिं दृष्ट्वा तु रामो वै त्रयाणां संस्मरिष्यति ।
वीरो जनन्या मम च राज्ञो दशरथस्य च ॥ २ ॥

इस चूड़ामणि को देख कर श्री रामचन्द्र जी को तीन जनों का एक साथ स्मरण होगा – मेरी माता का, मेरा तथा महाराज दशरथ का ॥२॥

स भूयस्त्वं समुत्साहचोदितो हरिसत्तम ।
अस्मिन् कार्यसमुत्साहे प्रचिन्तय यदुत्तरम् ॥ ३ ॥

हे कपिश्रेष्ठ! तुम इस कार्य में भली भांति प्रयत्न करना। क्योंकि चूड़ामणि देख कर वह युद्ध करने के लिये तुमको प्रेरित करेंगे। अतः इस कार्य में उत्साह की वृद्धि करने के लिये आगे तुम्हारा क्या कर्तव्य कर्म होगा, उसी का विचार अभी से कर लो ॥३॥

त्वमस्मिन् कार्यनिर्योगे प्रमाणं हरिसत्तम ।
हनुमन् यत्नमास्थाय दुःखक्षयकरो भव ॥ ४ ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! इस कार्य को पूरा कराने के लिये तुम्ही व्यवस्थापक हो। हे हनुमान ! तुम यत्नपूर्वक होकर मेरा दुःख दूर करो ॥४॥

तस्य चिन्तय यो यत्नो दुःखक्षयकरो भवेत् ।
स तथेति प्रतिज्ञाय मारुतिर्भीमविक्रमः ॥ ५ ॥

अब ऐसे किसी यत्न का विचार करो जिससे मेरा दुःख दूर हो सके। सीता का ऐसा वचन सुन, भीम पराक्रमी हनुमान जी तो बहुत अच्छा ऐसा ही करूँगा कह कर, ॥५॥

शिरसाऽऽवन्द्य वैदेहीं गमनायोपचक्रमे ।
ज्ञात्वा संप्रस्थितं देवी वानरं पवनात्मजम् ॥ ६ ॥

और सीता जी के चरणों में मस्तक झुका कर प्रणाम करके वहां से चलने को तैयार हुए । तब पवननन्दन हनुमान जी को वहां से लौटने के लिये तैयार जान कर॥६॥

बाष्पगद्गदया वाचा मैथिली वाक्यमब्रवीत् ।
कुशलं हनुमन् ब्रूयाः सहितौ रामलक्ष्मणौ ॥ ७ ॥

जानकी जी ने गदगद कण्ठ से हनुमान जी, से कहा हे हनुमान् श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी से मेरी कुशल समाचार बता देना ॥७॥

सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान् वृद्धांश्च वानरान् ।
ब्रूयास्त्वं वानरश्रेष्ठ कुशलं धर्मसंहितम् ॥ ८ ॥

हे वानरश्रेष्ठ! मन्त्रियों सहित सुग्रीव तथा अन्य बूढ़े बड़े वानरों से भी मेरा धर्म युक्त कुशल समाचार कह देना ॥८॥

यथा स च महाबाहुर्मां तारयति राघवः ।

अस्माद् दुःखाम्बुसंरोधात् त्वं समाधातुमर्हसि ॥ ९ ॥

और जिस तरह वे महाबाहु श्रीरामचन्द्र जी मुझे इस शोक सागर से मेरा उद्धार करें, वैसा ही यत्न कर उनको भली भांति समझाना ॥९॥

जीवन्तीं मां यथा रामः सम्भावयति कीर्तिमान् ।
तत्तथा हनुमन् वाच्यं वाचा धर्ममवाप्नुहि ॥ १० ॥

हे हनुमान! तुम इस प्रकार के वचन उनसे कहना, जिससे यशस्वी श्रीरामचन्द्र जी मेरे जीवित रहते हुए, मुझे मिल सकें। ऐसे बचन कहने से तुमको धर्माचरण का फल प्राप्त होगा ॥१०॥

नित्यमुत्साहयुक्तस्य वाचः श्रुत्वा मयेरिताः ।
वर्धिष्यते दाशरथेः पौरुषं मदवाप्तये ॥ ११ ॥

यद्यपि श्रीरामचन्द्र जी तो सदा उत्साहवान रहते ही हैं, तो भी तुम्हारे मुख से मेरे संदेशे को सुन कर, मेरी प्राप्ति के लिये उनका पुरुषार्थ और अधिक बढेगा ॥११॥

मत्सन्देशयुता वाचः त्वत्तः श्रुत्वैव राघवः ।
पराक्रमे मतिं वीरो विधिवत् संविधास्यति ॥ १२ ॥

और मेरे सन्देश युक्त तुम्हारे वचन सुन कर, वीर श्रीरामचन्द्र जी यथाविधान अपना पराक्रम प्रकट करने को कटिवद्ध होंगे ॥१२॥

सीतायास्तद् वचनं श्रुत्वा हनुमान् मारुतात्मजः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरब्रवीत् ॥ १३ ॥

सीता जी के इन वचनों को सुन कर, पवननन्दन हनुमान जी ने अपने मस्तक पर हाथ जोड़ कर कहा ॥१३॥

क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्वृतः ।
यस्ते युधि विजित्यारीञ्शोकं व्यपनयिष्यति ॥ १४ ॥

हे देवी! काकुत्स्थ कुलभूषण श्रीरामचन्द्र जी शीघ्र ही बड़े बड़े बलवान वानरों और रीछों की सेना साथ लेकर यहां आयेंगे और शत्रुओं का संहार कर आपका शोक दूर करेंगे ॥१४॥

नहि पश्यामि मर्त्येषु नासुरेषु सुरेषु वा ।
यस्तस्य वमतो बाणान् स्थातुमुत्सहतेऽग्रतः ॥ १५ ॥

क्योंकि मनुष्यों, देवताओं, अथवा दैत्य में मुझे ऐसा कोई दिखाई नहीं देता, जो बाणों की वर्षा करते हुए श्रीरामचन्द्र जी के सामने खड़ा रह सके ॥१५॥

अप्यर्कमपि पर्जन्यमपि वैवस्वतं यमम् ।
स हि सोढुं रणे शक्तस्तव हेतोर्विशेषतः ॥ १६ ॥ '

हे देवी! श्रीरामचन्द्र जी विशेषत: आपके लिए तो संग्राम में सूर्य, इन्द्र और यमराज का भी सामना कर सकते हैं ॥१६॥

स हि सागरपर्यन्तां महीं शासितुमर्हति ।
त्वन्निमित्तो हि रामस्य जयो जनकनन्दिनि ॥ १७ ॥

हे जानकी ! वह आपके लिए समुद्र पर्यंत अखिल भूमण्डल को जीतने के लिये तैयार हुए हैं और विजय भी उन्हीं की होगी ॥१७॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सम्यक् सत्यं सुभाषितम् ।
जानकी बहुमेने तं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १८ ॥

हनुमान जी के युक्तियुक्त, परमार्थयुक और श्रुतमधुर वचनों को सुनकर, जानकी जी ने अति आदरपूर्वक यह वचन कहे ॥१८॥

ततस्तं प्रस्थितं सीता वीक्षमाणा पुनः पुनः ।
भर्तृस्नेहान्वितं वाक्यं सौहार्दादनुमानयत् ॥ १९ ॥

सीता जी ने प्रस्थान करने के लिये तैयार खड़े हनुमान जी की ओर बार बार देखते हुए, अपने स्वामी के प्रति स्नेह प्रकट करने वाले सम्मानसूचक वचन कहे ॥१९॥

यदि वा मन्यसे वीर वसैकाहमरिन्दम ।
कस्मिंश्चित् संवृते देशे विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि ॥ २० ॥

हे शत्रुओं का दमन करने वाले वीर! यदि तुम ठीक समझो तो एक दिन और यहीं किसी गुप्त स्थान में निवास करो और विश्राम करके कल चले जाना ॥२०॥

मम चैवाल्पभाग्यायाः सान्निध्यात् तव वानर ।
अस्य शोकस्य महतो मुहूर्तं मोक्षणं भवेत् ॥ २१ ॥

क्योंकि तुम्हारे मेरे निकट रहने से मुझ अभागी का यह अपार दुःख, कुछ समय के लिये अवश्य घट जायगा ॥२१॥

गते हि हरिशार्दूल पुनरागमनाय तु ।
प्राणानामपि सन्देहो मम स्यान्नात्र संशयः ॥ २२ ॥

हे कपिश्रेष्ठ! तुम्हारे यहां से वापस लौट जाने पर और पुनः यहाँ आने के समय तक मुझे सन्देह है कि, मैं जीवित रहूँ अथवा न रहूँ ॥२२॥

तवादर्शनजः शोको भूयो मां परितापयेत् ।
दुःखादुःखपरामृष्टां दीपयन्निव वानर ॥ २३ ॥

हे वानर ! मैं दुःख पर दुःख उठा रही हूँ और तुम्हारे चले जाने पर, तुम्हे नहीं देख पाने यह शोक न केवल मुझे सन्तत करेगा अपितु भस्म कर डालेगा ॥२३॥

अयं च वीर सन्देहः तिष्ठतीव ममाग्रतः ।
सुमहांस्त्वत्सहायेषु हर्यृक्षेषु हरीश्वर ॥ २४ ॥

हे वीर ! मुझे एक सन्देह और भी है। वह यह कि, वानरराज सुग्रीव अपनी वानरी और रीछों की बड़ी भारी सेना लेकर ॥२४॥

कथं नु खलु दुष्पारं तरिष्यन्ति महोदधिम् ।
तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ ॥ २५ ॥

कैसे इस अपार महासागर के पार आ पाएंगे, वह दोनों भाई श्री राम और लक्ष्मण और रीछ वानरों की सेना किस प्रकार इस समुद्र के पार होगी ॥२५॥

त्रयाणामेव भूतानां सागरस्यास्य लङ्घने ।
शक्तिः स्याद् वैनतेयस्य तव वा मारुतस्य वा ॥ २६ ॥

इस संसार में इस समुद्र को लांघने की शक्ति केवल तीन ही प्राणियों में है। गरुड़ जी, तुम तथा पवनदेव ॥२६॥

तस्मिन्कार्यनिर्योगे वीरैवं दुरतिक्रमे ।
किं पश्यसि समाधानं त्वं हि कार्यविदां वरः ॥ २७ ॥

अत: हे वीर । इसलिये इस कठिन कार्य की सिद्धि के लिए तुमने कौन से उपाय पर विचार किया है। क्योंकि तुम कार्य को सफल करने वाले श्रेष्ठजनों में सर्वश्रेष्ठ हो ॥२७॥

कामस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने ।
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते फलोदयः ॥ २८ ॥

हे शत्रहन्ता ! इसमें संदेह नहीं है की केवल तुम्ही इस कार्य को पूरा करने में समर्थ हो। अत: यश को प्रदान करने वाली सफलता केवल तुम्हीं को प्राप्त होगी, श्री राम को नहीं ॥२८॥

बलैः समग्रैरयुधि मां रावणं जित्य संयुगे ।
विजयी स्वपुरीं यायात् तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥ २९ ॥

जब श्रीरामचन्द्र जी सेना सहित रावण को युद्ध में परास्त कर और विजयी होकर, मुझे अपनी राजधानी में ले जायेंगे, तभी यह कार्य उनके स्वरूप के अनुरूप होगा ॥२६॥

बलैस्तु संकुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः ।
मां नयेद् यदि काकुत्स्थस्तत् तस्य सदृशं भवेत् ॥ ३० ॥

शत्रुहन्ता श्रीरामचन्द्र जी जब अपने तीरों से लंकापुरी को पददलित करके मुझे यहां से ले चलें, तब उनका यह कार्य उनके स्वरूप के अनुरूप होगा ॥३०॥

तद्यथा तस्य विक्रान्तं अनुरूपं महात्मनः ।
भवेदाहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥ ३१ ॥

अत: हे वीर! जिससे महात्मा रणविजयी श्रीरामचन्द्र जी का पराक्रम उनके अनुरूप प्रकट हो सके, तुम्हे वैसा ही प्रयत्न करना चाहिए ॥३१॥

तदर्थोपहितं वाक्यं सहितं हेतुसंहितम् ।
निशम्य हनुमाञ्शेषं वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

इस प्रकार सीता जी के स्नेहयुक्त तथा युक्तियुक्त उपर्युक्त वचनों को सुनकर, हनुमान जी ने इस प्रकार उत्तर दिया ॥३२॥

देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः ।
सुग्रीवः सत्यसम्पन्नस्तवार्थे कृतनिश्चयः ॥ ३३ ॥

देवी! वानर और रीछों की सेना के स्वामी कपिश्रेष्ठ सुग्रीव जी सत्यवादी हैं। वह आपके उद्धार का दृढ निश्चय कर चुके हैं। ॥३३॥

स वानरसहस्राणां कोटीभिरभिसंवृतः ।
क्षिप्रमेष्यति वैदेहि राक्षसानां निबर्हणः ॥ ३४ ॥

अत: वह सहस्त्रों कोटि वानरों को साथ लेकर, राक्षसों का विनाश करने के लिए, यहाँ बहुत शीघ्र आयेंगे ॥३४॥

तस्य विक्रमसम्पन्नाः सत्त्ववन्तो महाबलाः ।
मनस्सङ्कल्पसम्पाता निदेशे हरयः स्थिताः ॥ ३५ ॥

उनकी आज्ञा में रहने वाले महाबली वानर बड़े शूरवीर, विक्रमी और मन के समान शीघ्रगामी हैं ॥३५॥

येषां नोपरि नाधस्तान्न तिर्यक् सज्जते गतिः ।
न च कर्मसु सीदन्ति महत्स्वमिततेजसः ॥ ३६ ॥

वह सभी ऊपर नीचे, इधर उधर सभी ओर जा सकते हैं। वह अतुलित तेज से सम्पन्न वानरगण बड़े बड़े काम सहजता से ही कर डालते हैं ॥३६॥

असकृत् तैर्महोत्साहैः ससागरधराधरा ।
प्रदक्षिणीकृता भूमिर्वायुमार्गानुसारिभिः ॥ ३७ ॥

उन महोत्साही वानरों ने आकाशमार्ग से चल कर कितनी ही बार इस समुद्र और पर्वतों सहित इस समस्त पृथिवी की परिक्रमा कर डाली है ॥३७॥

मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः ।
मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसन्निधौ ॥ ३८ ॥

सुग्रीव के पास मुझसे बढ़ कर और मेरे समान ही पराक्रमी वानर हैं। उनके पास ऐसा कोई वानर नहीं है जो बल पराक्रम में मुझसे कम हो ॥३८॥

अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः ।
नहि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः ॥ ३९ ॥

अत: जब मैं ही यहां पर आ गया, तब उन महाबलवान् वानरों का तो कहना ही क्या है। ऐसे कामों में अर्थात् दूत बना कर केवल साधारण श्रेणी के लोग ही भेजे जाते हैं, श्रेष्ठ नहीं ॥३९॥

तदलं परितापेन देवि शोको व्यपैतु ते ।
एकोत्पातेन ते लङ्कामेष्यन्ति हरियूथपाः ॥ ४० ॥

हे देवी! इसके लिए आपको चिन्ता नहीं करी चाहिए और आपका शोक दूर हो जाना चाहिए। वह वानरयूथपति एक ही छलांग में लंका में आ पहुंचेंगे ॥४०॥

मम पृष्ठगतौ तौ च चन्द्रसूर्याविवोदितौ ।
त्वत्सकाशं महासत्त्वौ नृसिंहावागमिष्यतः ॥ ४१ ॥

चन्द्र और सूर्य के समान शोभायमान वह महाबलवान और पुरुषसिंह दोनों भाई मेरी पीठ पर सवार होकर आपके पास आयेंगे ॥४१॥

तौ हि वीरौ नरवरौ सहितौ रामलक्ष्मणौ ।
आगम्य नगरीं लङ्कां सायकैर्विधमिष्यतः ॥ ४२ ॥

वह दोनों पुरुषोत्तम वीर श्रीराम और लक्ष्मण एक साथ लङ्का में आकर इस लंकापुरी को अपने पैने बाणों से तहस नहस कर डालेंगे ॥४२॥

सगणं रावणं हत्वा राघवो रघुनन्दनः ।
त्वामादाय वरारोहे स्वपुरं प्रति यास्यति ॥ ४३ ॥

हे सुन्दरी ! रघुनन्दन श्रीरामचन्द्र सपरिवार रावण को मारकर और आपको साथ लेकर अयोध्या को जायेंगे ॥४३॥

तदाश्वसिहि भद्रं ते भव त्वं कालकांक्षिणी ।
नचिराद् द्रक्ष्यसे रामं प्रज्वलन्तिमिवानलम् ॥ ४४ ॥

इसलिए आप धैर्य धारण करें और समय की प्रतीक्षा करें। आपका कल्याण हो। आप बहुत शीघ्र प्रज्ज्वलित अग्नि की तरह तेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी का दर्शन करेंगी ॥४४॥

निहते राक्षसेन्द्रे च सपुत्रामात्यबान्धवे ।
त्वं समेष्यसि रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी ॥ ४५ ॥

पुत्रों, मन्त्रियों और बन्धुवान्धव सहित रावण के मारे जाने पर आप उसी प्रकार श्रीरामचन्द्र जी से मिलेंगी जिस प्रकार रोहिणी, चन्द्रमा से मिलती है ॥४५॥

क्षिप्रं त्वं देवि शोकस्य पारं द्रक्ष्यसि मैथिलि ।
रावणं चैव रामेण द्रक्ष्यसे निहतं बलात् ॥ ४६ ॥

हे मैथिली! हे देवी ! आप बहुत शीघ्र अपने इस शोकसागर और श्री राम द्वारा रावण के अंत को देखेंगी ॥४६॥

एवमाश्वास्य वैदेहीं हनुमान् मारुतात्मजः ।
गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीं पुनरब्रवीत् ॥ ४७ ॥

पवननन्दन हनुमान जी इस प्रकार विदेहनंदनी सीता जी को आश्वासन दे कर तथा लौटने का निश्चय करके, सीता जी से पुनः बोले ॥४७॥ '

तमरिघ्नं कृतात्मानं क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् ।
लक्ष्मणं च धनुष्पाणिं लङ्काद्वारमुपागतम् ॥ ४८ ॥

हे देवी! आप हाथ में धनुष लिये हुए उन शत्रुहन्ता विजयी श्रीरामचन्द्र जी तथा लक्ष्मण जी को अत्यंत शीघ्र लंका के द्वार पर आया हुआ देखेंगी ॥४८॥

नखदंष्ट्रायुधान् वीरान् सिंहशार्दूलविक्रमान् ।

वानरान् वारणेन्द्राभान् क्षिप्रं द्रक्ष्यसि सङ्गतान् ॥ ४९ ॥

आप लङ्का में एकत्र हुए, नखों और दांतों से लड़ने वाले सिंह और शार्दूल के समान विक्रमी और हाथियों के समान विशाल शरीरधारी वीर वानरों को भी शीघ्र देखेंगी ॥४९॥

शैलाम्बुदनिकाशानां लङ्कामलयसानुषु ।
नर्दतां कपिमुख्यानामार्ये यूथान्यनेकशः ॥ ५० ॥

आर्ये ! पर्वत और मेघ के समान बड़े बड़े शरीरधारी और लंका के इस मलयाचल पर गर्जना करते हुए वानरों के शब्द को आप तुम बहुत जल्द सुनेंगी॥५०॥

स तु मर्मणि घोरेण ताडितो मन्मथेषुणा ।
न शर्म लभते रामः सिंहार्दित इव द्विपः ॥ ५१ ॥

हे देवी! श्रीरामचन्द्र जी आपके वियोग में कामदेव के बाणों से पीड़ित होकर, सिंह द्वारा घायल हाथी की तरह पीड़ित हुए एक पल भी चैन नहीं पाते हैं॥५१॥

मा रुदो देवि शोकेन मा भूत् ते मनसो भयम् ।
शचीव भर्त्रा शक्रेण संगमेष्यसि शोभने ॥ ५२ ॥

हे देवी! अब न तो आप शोक के कारण रोदन न करें और न ही किसी बात से भयभीत हों। आप शीघ्र ही अपने पतिदेव श्री रामचन्द्र जी से उसी प्रकार मिलेंगी जैसे शची अपने पतिदेव इन्द्र से मिलती हैं॥५२॥

रामाद् विशिष्टः कोऽन्योऽस्ति कश्चित् सौमित्रिणा समः ।
अग्निमारुतकल्पौ तौ भ्रातरौ तव संश्रयौ ॥ ५३ ॥

भला श्रीरामचन्द्र जी से बढ़ कर और लक्ष्मण जी के समान जगत् में दूसरा और है कौन है? वह दोनों भाई, जो अग्नि और वायु के तुल्य तेजस्वी हैं, वह दोनों भाई आपके आश्रय हैं ॥५३॥

नास्मिंश्चिरं वत्स्यसि देवि देशे रक्षोगणैरध्युषितेऽतिरौद्रे ।
न ते चिरादागमनं प्रियस्य क्षमस्व मत्संगमकालमात्रम् ॥ ५४ ॥

हे देवी! राक्षसों की इस अत्यन्त भयंकर पुरी में अब आपको अधिक समय तक निवास नहीं करना पड़ेगा। आपकर प्रियतम के आने में अब विलम्ब नहीं होगा। बस आप तभी तक प्रतीक्षा के लिए मुझे क्षमा करें जब तक मेरी भेंट उनसे न हो। ॥५४॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
एकोनचत्वारिंश सर्गः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का उनतालिसवां सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ चत्वारिंशः सर्गः चालीसवाँ सर्गः ॥

श्रीरामस्य कृते सीतया पुनः सन्देशस्य दानं तामाश्वास्य हनुमत उत्तरदिशायां प्रस्थानम् - सीता जी का श्री राम के प्रति पुन: सन्देश तथा हनुमान जी उन्हें आश्वासन देकर उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान

श्रुत्वा तु वचनं तस्य वायुसूनोर्महात्मनः ।
उवाचात्महितं वाक्यं सीता सुरसुतोपमा ॥ १ ॥

पवननन्दन महात्मा श्री हनुमान जी के बचन सुनकर, देवकन्या के समान तेजस्विनी सीता जी ने अपने हित के विचार से इस प्रकार कहा ॥१॥

त्वां दृष्ट्वा प्रियवक्तारं सम्प्रहृष्यामि वानर ।
अर्धसञ्जातसस्येव वृष्टिं प्राप्य वसुन्धरा ॥ २ ॥

हे वानर ! तुम्हारे अत्यंत ही प्रिय और मनोहर संवाद को सुनकर तथा तुम्हे देखकर, मुझे वैसा ही हर्ष प्राप्त हुआ है जैसा कि, आधे उगे धान्य से युक्त पृथिवी को जलवृष्टि से होता है ॥२॥

यथा तं पुरुषव्याघ्रं गात्रैः शोकाभिकर्शितैः ।
संस्पृशेयं सकामाहं तथा कुरु दयां मयि ॥ ३ ॥

तुम मुझ पर ऐसी दया करना, जिससे उत्कट इच्छा रखने वाली मैं, शोक के कारण दुर्बल हुए अपने अंगों द्वारा उन पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्र जी का प्रेमपूर्वक स्पर्श कर सकूँ ॥३॥

अभिज्ञानं च रामस्य दद्या हरिगणोत्तम ।
क्षिप्तामिषीकां काकस्य कोपादेकाक्षिशातनीम् ॥ ४ ॥

मनःशिलायास्तिलको गण्डपार्श्वे निवेशितः ।
त्वया प्रनष्टे तिलके तं किल स्मर्तुमर्हसि ॥ ५ ॥

हे वानरोत्तम! तुम श्रीरामचन्द्र जी को सींक द्वारा उस कौवे की आंख फोड़ने वाली पहचान अवश्य बता देना और इसका भी स्मरण दिला देना कि, जब एक बार मेरा तिलक मिट गया था, तब उन्होंने मेरे गालों पर मैनसिल का तिलक लगा दिया था ॥४-५॥

स वीर्यवान् कथं सीतां हृतां समनुमन्यसे ।
वसन्तीं रक्षसां मध्ये महेन्द्रवरुणोपमः ॥ ६ ॥

तथा यह भी कह देना की आप इन्द्र और वरुण के समान पराक्रमी हो कर भी राक्षसों के बीच रहने वाली सीता जी उपेक्षा क्यों करते हो ? ॥६॥

एष चूडामणिर्दिव्यो मया सुपरिरक्षितः ।
एतं दृष्ट्वा प्रहृष्यामि व्यसने त्वामिवानघ ॥ ७ ॥

देखो, यह दिव्य चूड़ामणि, मैंने अपने पास बड़े यत्न से सुरक्षित रक्खी थी और संकट के समय इसे देखकर मुझे इस दुःख में भी वैसा ही आनन्द प्राप्त होता था, जैसा आपको प्रत्यक्ष देखने से होता ॥७॥

एष निर्यातितः श्रीमान् मया ते वारिसम्भवः ।
अतः परं न शक्ष्यामि जीवितुं शोकलालसा ॥ ८ ॥

अब मैं समुद्र के जल से उत्पन्न हुए इस दिव्य मणि को तुम्हारे पास निशानी के रूप में भेज रही हूँ। इसको तुम्हारे पास भेजकर शोक से आतुर मैं दुखियारी अधिक समय तक जीवित नहीं रहूंगी ॥८॥

असह्यानि न दुःखानि वाचश्च हृदयच्छिदः ।
राक्षसीनां सुघोराणां त्वत्कृते मर्षयाम्यहम् ॥ ९ ॥

यहाँ मुझे असह्य दुःख झेलने पड़ते हैं और भयंकर राक्षसियों के मर्मभेदी वचन सुनने पड़ते हैं। यह सब मैं आपके लिये ही सह रही हूँ ॥९॥

धारयिष्यामि मासं तु जीवितं शत्रुसूदन ।
मासादूर्ध्वं न जीविष्ये त्वया हीना नृपात्मज ॥ १० ॥

हे शत्रुसुदन ! अब से एक मास तक और मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करती हुई जीवित रहूंगी। हे राजकुमार! एक मास बीतने बाद यदि तुम्हारे दर्शन नहीं हुए; तो मैं प्राण त्याग दूंगी ॥१०॥

घोरो राक्षसराजोऽयं दृष्टिश्च न सुखा मयि ।
त्वां च श्रुत्वा विषज्जन्तं न जीवेयमपि क्षणम् ॥ ११ ॥

राक्षसराज रावण अत्यन्त निष्ठुर और क्रूर है। मेरे प्रति इसकी दृष्टि भी ठीक नहीं है। यदि आपने यहाँ आने में विलम्ब किया और यह बात मैंने सुन ली, तो मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रहूँगी ॥११॥

वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साश्रुभाषितम् ।
अथाब्रवीन्महातेजा हनुमान् मारुतात्मजः ॥ १२ ॥

जानकी जी के रुदनपूर्वक कहे हुए इन करुणाजनक वचनों को सुनकर, महातेजस्वी पवननन्दन हनुमान जी कहने लगे ॥१२॥

त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन ते शपे ।
रामे दुःखाभिभूते तु लक्ष्मणः परितप्यते ॥ १३ ॥

हे देवी! मैं शपथपूर्वक सत्य सत्य कहता हूँ कि, श्रीरामचन्द्र जी आपके वियोग-जन्य-शोक से उदास हैं और उनकी यह दशा देख लक्ष्मण भी सन्तप्त रहा करते हैं॥१३॥

दृष्टा कथंचिद् भवती न कालः परिदेवितुम् ।
इमं मुहूर्तं दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि भामिनि ॥ १४ ॥

संयोगवश मैंने किसी तरह अब आपका दर्शन कर लिया है। अत: हे भामिनी ! अब आप इसी मुहूर्त में अपने सारे दु:खों का अन्त हुआ समझो॥१४॥

तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ राजपुत्रावनिन्दितौ ।
त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लङ्कां भस्मीकरिष्यतः ॥ १५ ॥

वह दोनों पुरुषसिंह, शत्रुहन्ता प्रशंसित राजकुमार तुम्हारे देखने के लिये उत्साहित होकर, लङ्का को जला कर भस्म कर डालेंगे ॥१५॥

हत्वा तु समरे रक्षो रावणं सहबान्धवैः ।
राघवौ त्वां विशालाक्षि स्वां पुरीं प्रति नेष्यतः ॥ १६ ॥

हे विशाल लोचना! बन्धुवान्धव सहित निष्ठुर रावण को मार कर, वह दोनों रघुवंशी भाई आपको अपनी पुरी अयोध्या में ले जायँगे ॥१६॥

यत्तु रामो विजानीयादभिज्ञानमनिन्दिते ।

प्रीतिसञ्जननं भूयः तस्य त्वं दातुमर्हसि ॥ १७ ॥

हे सुन्दरी ! जिस निशानी को श्रीरामचन्द्र जी जानते हों और जिसको देखते ही उनके मन में विश्वास और ह्रदय में प्रसन्नता उत्पन्न हो, ऐसी यदि कोई अन्य पहचान भी आपके पास हो तो वह भी आप मुझे दीजिए॥१७॥

साब्रवीद् दत्तमेवाहो मयाभिज्ञानमुत्तमम् ।
एतदेव हि रामस्य दृष्ट्वा यत्नेन भूषणम् ॥ १८ ॥

तब सीता जी ने कहा, हे वीर ! मैंने तुम्हे उत्तम से उत्तम पहचान तो दे ही दी है। इसी श्रेष्ठ चूडामणि को यत्न पूर्वक देख लेने पर॥१८॥

श्रद्धेयं हनुमन् वाक्यं तव वीर भविष्यति ।
स तं मणिवरं गृह्य श्रीमान् प्लवगसत्तमः ॥ १९ ॥

हे वीर! श्रीरामचन्द्र जी तुम्हारे वचनों पर विश्वास कर लेंगे। तब शोभायमान वानरश्रेष्ठ हनुमान जी उस मणिश्रेष्ठ को लेकर, ॥१९॥

प्रणम्य शिरसा देवीं गमनायोपचक्रमे ।
तामुत्पातकृतोत्साहमवेक्ष्य हरिपुंगव ॥ २० ॥

वर्धमानं महावेगमुवाच जनकात्मजा ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना बाष्पगद्गगदया गिरा ॥ २१ ॥

और जानकी जी को सिर झुका कर प्रणाम करने के पश्च्यात, वहाँ से चलने को तैयार हुए। हनुमान जी को छलांग मारने के लिये उत्साहित और बड़ी तेजी के साथ शरीर को बढ़ाते हुए देख कर, सीता जी आँखों में भर गदगद कंठ से बोलीं ॥२०-२१॥

हनुमन् सिंहसङ्काशौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान् ब्रूया अनामयम् ॥ २२ ॥

हे हनुमान ! सिंह समान पराक्रमो दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण से और मंत्रियों सहित सुग्रीवादि सव वानरों से मेरा कुशल वृत्तान्त कह देना। ॥२२॥

यथा च स महाबाहुः मां तारयति राघवः ।
अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात् त्वं समाधातुमर्हसि ॥ २३ ॥

और जैसे महाबाहु श्रीरामचन्द्र जी मुझे इस शोकसागर से उबार सकें, वैसे ही तुम उनको समझा देना। ॥२३॥

इमं च तीव्रं मम शोकवेगं रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च ।
ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपं शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर ॥ २४ ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! मेरे इस तीव्र शोक के वेग का तथा राक्षसों द्वारा मेरी दुर्दशा का वृतान्त तुम श्रीरामचन्द्र जी के पास जा कर कह देना। मैं आशीर्वाद देती हूँ कि, तुम्हारी यात्रा निर्विघ्न पूरी हो॥२४॥

स राजपुत्र्या प्रतिवेदितार्थः कपिः कृतार्थः परिहृष्टचेताः ।
अल्पावशेषं प्रसमीक्ष्य कार्यं दिशं ह्युदिचीं मनसा जगाम ॥२५॥

श्री हनुमान जी राजपुत्री सीता के समस्त हाल जान लेने से, सफलमनोरथ होने के कारण परम प्रसन्न हुए और मन में थोड़े से बचे हुए कार्य के विषय में विचार करते हुए वहाँ से उत्तर दिशा को प्रस्थानित हो गये ॥ २५॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का चालीसवां सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ एकचत्वारिंशः सर्गः इकतालिसवाँ सर्ग॥

हनुमता प्रमदावनस्य विध्वंसः - हनुमान जी के द्वारा प्रमादवन अर्थात अशोक वाटिका का विध्वंस

स च वाग्भिः प्रशन्ताभिर्गमिष्यन् पूजितस्तया ।
तस्माद् देशादपक्रम्य चिन्तयामास वानरः ॥ १ ॥

वहाँ से प्रस्थान के समय सीता जी के सुन्दर वचनों द्वारा सम्मानित होकर, गमन करने की इच्छा से, हनुमान जी उस स्थान से हट कर दूसरे स्थान पर जा कर विचार करने लगे॥१॥

अल्पशेषमिदं कार्यं दृष्टेयमसितेक्षणा ।
त्रीन् उपायानतिक्रम्य चतुर्थ इह दृश्यते ॥ २ ॥

इन कृष्ण-नेत्र-वाली जानको जी का दर्शन तो मैंने कर लिया। किन्तु एक छोटा कार्य करना अर्थात शत्रु की शक्ति का पता लगाना और

रह गया है। अतः उसके करने के लिये पहले तीन उपायों अर्थात् साम, दान और भेद से तो काम हो नहीं सकता, हाँ चौथे उपाय अर्थात् दण्ड का प्रयोग ही उपयोगी दिखाई देता है ॥२॥

न साम रक्षःसु गुणाय कल्पते न दानमर्थोपचितेषु युज्यते ।
न भेदसाध्या बलदर्पिता जनाः पराक्रमस्त्वेव ममेह रोचते ॥ ३ ॥

ये राक्षस अत्यंत क्रूर स्वभाव वाले हैं, अतः साम नीति का प्रयोग करने का यहाँ कोई फायदा नहीं है। इनके पास धन सम्पत्ति की भी कमी नहीं है; अतः उनको धन सम्पत्ति देने का लालच दिखाना भी व्यर्थ ही है। यह बल के अभिमान में दर्पित पुरुषों में भेद डाल कर भी काम निकालना कठिन है। अतः शेष कार्य को करने के लिये दण्डनीति रूप पराक्रम दिखाना ही मुझे उचित दिखाई पड़ता है ॥३॥

न चास्य कार्यस्य पराक्रमादृते विनिश्चयः कश्चिदिहोपपद्यते ।
हतप्रवीराश्च रणे तु राक्षसाः कथंचिदीयुर्यदिहाद्य मार्दवम् ॥ ४ ॥

इनके बल की जांच करने के लिये पराक्रम दिखाने के अतिरिक मुझे अन्य कोई उपाय कार्यसिद्धि करने वाला दिखाई नहीं देता। जब राक्षसों के पक्ष के मुख्य वीर मारे जायेंगे तो सम्भव है, राक्षस आगे के युद्ध में कुछ ढीले पड़ सकते हैं ॥४॥

कार्ये कर्मणि निर्दिष्टे यो बहून्यपि साधयेत् ।
पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति ॥ ५ ॥

जो मुख्य कार्य को प्रथम कर के और मुख्य कार्य को हानि न पहुँचाते हुए जो दूत अन्य भी कई कार्यों को पूरा कर डालता है वही दूत वास्तव में कार्य करने के योग्य कहा जा सकता है ॥५॥

न ह्येकः साधको हेतुः स्वल्पस्यापीह कर्मणः ।
यो ह्यर्थं बहुधा वेद स समर्थोऽर्थसाधने ॥ ६ ॥

जो व्यक्ति छोटे से छोटे किसी एक काम को बड़े यत्न से पूरा करता है, वह कार्यसाधक नहीं कहा जा सकता। किन्तु जो सामान्य प्रयास से अपने कार्यों को सिद्ध करने की कला जानता हो, वही कार्य साधन मे समर्थ हो सकता है ॥६॥

इहैव तावत् कृतनिश्चयो ह्यहं व्रजेयमद्य प्लवगेश्वरालयम् ।
परात्मसंमर्दविशेषतत्त्ववित् ततः कृतं स्यान्मम भर्तृशासनम् ॥७॥

हालाँकि मैंने अब सुग्रीव के समीप जाने का निश्चय कर ही लिया है; तब भी शत्रु के साथ जब मेरा युद्ध होगा; तब अपने और शत्रु के बलावल का ठीक ठीक विचार कर लूंगा । इस प्रकार भविष्य के कार्य का भी निश्चय करके यदि मैं यहाँ से जाऊँगा तो स्वामी के आज्ञा का पूर्ण रूप से यथावत् पालन हो सकेगा ॥७॥

कथं नु खल्वद्य भवेत् सुखागतं प्रसह्य युद्धं मम राक्षसैः सह ।
तथैव खल्वात्मबलं च सारवत् समानयेन्मां च रणे दशाननः ॥८॥

परन्तु मेरा यहाँ तक आना कैसे शुभ परिणाम जनक होगा, इस समय मैं क्या करूँ जिससे राक्षसों के साथ सहज में मेरा युद्ध ठन जाए और कैसे रावण मुझको रणक्षेत्र में खड़ा देखकर, अपनी सेना के और मेरे बल की उत्कृष्टता अपकृष्टता को जान ले॥८॥

ततः समासाद्य रणे दशाननं समन्त्रिवर्गं सबलं सयायिनम् ।
हृदि स्थितं तस्य मतं बलं च वै सुखेन मत्वाहमितः पुनर्व्रजे ॥९॥

उस युद्ध में मन्त्री, सेना तथा अपने सुहृदों के सहित रावण का समाना करके मैं उसके हृद्गत भावों को तथा उसके सैन्य शक्ति को जान कर मैं फिर सुखपूर्वक यहां से चला जाऊँगा ॥९॥

इदमस्य नृशंसस्य नन्दनोपममुत्तमम् ।
वनं नेत्रमनःकान्तं नानाद्रुमलतायुतम् ॥ १० ॥

इदं विध्वंसयिष्यामि शुष्कं वनमिवानलः ।
अस्मिन् भग्ने ततः कोपं करिष्यति दशाननः ॥ ११ ॥

तदनन्तर हनुमान जी मन ही मन कहने लगे कि, सबसे सहज उपाय यह है कि, इस निष्ठुर रावण के नन्दन कानन तुल्य, नेत्रों और मन को सुखी करने वाले, नाना लताओं और विविध प्रकार के वृक्षों से भरे पूरे अशोक वन को, मैं वैसे ही नष्ट कर डालूँ जैसे सूखे वन को

अग्निदेव नष्ट करते हैं । इस वन के नष्ट होने पर रावण अवश्य ही क्रुद्ध होगा ॥१०-११॥

ततो महत्साश्वमहारथद्विपं बलं समानेष्यति राक्षसाधिपः ।
त्रिशूलकालायसपट्टिशायुधं ततो महद्युद्धमिदं भविष्यति ॥१२॥

तब वह राक्षसराज घोड़े, विशाल रथ और हाथियों से युक्त, तथा त्रिशूल, खडग एवं पट्टिश आदि से सुज्जजित अपनी बहुत बड़ी सेना मुझसे लड़ने के लिये भेजेगा। तव बड़ी भारी लड़ाई होगी ॥१२॥

अहं तु तैः संयति चण्डविक्रमैः समेत्य रक्षोभिरसह्यविक्रमः ।
निहत्य तद् रावणचोदितं बलं सुखं गमिष्यामि हरीश्वरालयम् ॥१३॥

मैं भी उन प्रचण्ड पराक्रमी राक्षसों का भयंकर पराक्रम के साथ सामना करूँगा और युद्ध कर के रावण द्वारा भेजी हुई समस्त सेना का नाश कर सुखपूर्वक सुग्रीव के निवासस्थान किष्किन्धा पुरी को चला जाऊँगा ॥१३॥

ततो मारुतवत् क्रुद्धो मारुतिर्भीमविक्रमः ।
उरुवेगेन महता द्रुमान् क्षेप्तुमथारभत् ॥ १४ ॥

तदनन्तर भयंकर विक्रमशाली पवननन्दन हनुमान जी क्रुद्ध होकर पवन की तरह बड़े वेग से अशोकवन के वृक्षों को उखाड़ने लगे॥१४॥

ततस्तु हनुमान् वीरो बभञ्ज प्रमदावनम् ।
मत्तद्विजसमाघुष्टं नानाद्रुमलतायुतम् ॥ १५ ॥

देखते हे देखते, वीर हनुमानजी ने मतवाले पक्षियों से कून्जित और विविध प्रकार के वृक्षों से सुशोभित रावण के उस प्रमाद वन अर्थात अन्तःपुर के वन का विध्वंस कर डाला ॥१५॥

तद्वनं मथितैर्वृक्षैर्भिन्नैश्च सलिलाशयैः ।
चूर्णितैः पर्वताग्रैश्च बभूवाप्रियदर्शनम् ॥ १६ ॥

वह वन वृक्षों के गिर जाने, जलाशयों के नष्ट हो जाने तथा पर्वतशिखरों के टूट जाने से बहुत ही निष्कृष्ट दिखाई देने लगा ॥१६॥

नानाशकुन्तविरुतैः प्रभिन्नसलिलाशयैः ।
ताम्रैः किसलयैः क्लान्तैः क्लान्तद्रुमलतायुतैः ॥ १७ ॥

विविध प्रकार के जलचर पत्तियों के तितर बितर हो जाने से, पुष्करणियों के टूट जाने से, लाल लाल नवीन पत्तों के मुरझाने से तथा लता सहित वृक्षों के रौंद दिए जाने से ॥१७॥

न बभौ तद् वनं तत्र दावानलहतं यथा ।
व्याकुलावरणा रेजुर्विह्वला इव ता लताः ॥ १८ ॥

वह प्रमादवन ऐसा दिखाई पडता था मानो दावानल से भस्म हो गया हो। वहाँ की लताएँ अपने आवरणों के नष्ट भ्रष्ट हो जाने के कारण व्याकुल स्त्रियों की तरह, दिखाई देती थीं ॥१८॥

लतागृहैश्चित्रगृहैश्च नाशितैर्व्यालैर्मृगैरार्तरवैश्च पक्षिभिः ।
शिलागृहैरुन्मथितैस्तथा गृहैः प्रनष्टरूपं तदभून्महद् वनम् ॥१९॥

वहां के लतामंडप, चित्रमंडप सब नष्ट हो गये और वहां के सिंह शार्दूल, मृग तथा पक्षी पीड़ित होकर कोलाहल करने लगे। वहां जो पत्थर के बने घर थे उनको भी हनुमान जी ने गिरा दिया। इससे उस महान उपवन की सुन्दरता बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट हो गयी ॥१९॥

सा विह्वलाशोकलताप्रताना वनस्थली शोकलताप्रताना ।
जाता दशास्यप्रमदावनस्य कपेर्बलाद्धि प्रमदावनस्य ॥ २० ॥

हनुमान जी ने वहाँ के अशोक लतामण्डपों को नष्ट करके, उस उपवन की भूमि को शोभाहीन कर दिया। अपने बल से राक्षसराज के उस प्रमदवन को हनुमान जी ने शोक वन बना डाला ॥२०॥

ततः स कृत्वा जगतीपतेर्महान् महद् व्यलीकं मनसो महात्मनः ।
युयुत्सुरेको बहुभिर्महाबलैः श्रियाज्वलंस्तोरणमास्थितः कपिः ॥२१॥

इस प्रकार महाबलवान हनुमान जी रावण के मन को व्यथा पहुँचाने वाले कार्य को करके, अथवा रावण की बड़ी भारी हानि कर, अनेक राक्षसों के साथ युद्ध करने की कामना से, उस वन के बड़े फाटक के ऊपर जा बैठे। उस समय वह अपने अद्‌भुत तेज से प्रकाशित हो रहे थे ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का इकतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ द्विचत्वारिंशः सर्गः बयालिसवाँ सर्ग॥

राक्षसीभ्यो वनविध्वंसवार्तामाकर्ण्य रावणेन किंकराणां प्रेषणं; हनुमता तेषां संहारश्च - राक्षसियों द्वारा अशोकवन के विध्वंस की रावण को सूचना, रावण का किंकर नामधारी राक्षसों को भेजना तथा हनुमान जी द्वारा उनका संहार

ततः पक्षिनिनादेन वृक्षभङ्गस्वनेन च ।
बभूवुस्त्राससम्भ्रान्ताः सर्वे लङ्कानिवासिनः ॥ १ ॥

अशोकवन के पक्षियों के कोलाहल तथा वहाँ के वृक्षों के टूटने का शब्द सुनकर समस्त लंकावासी भयभीत हो गये ॥१॥

विद्रुताश्च भयत्रस्ता विनेदुर्मृगपक्षिणः ।
रक्षसां च निमित्तानि क्रूराणि प्रतिपेदिरे ॥ २ ॥

उस अशोक वन के मृग और पक्षी भयभीत होकर भागने तथा अंतर्नाद करने लगे। राक्षसों को भी विविध प्रकार के अपशकुन प्रकट होने लगे ॥२॥

ततो गतायां निद्रायां राक्षस्यो विकृताननाः ।
तद्वनं ददृशुर्भग्नं तं च वीरं महाकपिम् ॥ ३ ॥

इतने में प्रमाद वन में सोयी हुई उन भयंकर आकृति वाली राक्षसियों जाग गयीं और उन्होंने उस वन को सब प्रकार से ध्वस्त देखा । साथ ही उनकी दृष्टि वीर हनुमान जी पर भी पडी ॥३॥

स ता दृष्ट्वा महाबाहूर्महासत्त्वो महाबलः ।
चकार सुमहद्रूपं राक्षसीनां भयावहम् ॥ ४ ॥

महाबलवान हनुमान जी ने राक्षसियों को देखकर, उनको डराने के लिये भयंकर विशाल रूप धारण कर लिया ॥४॥

ततस्तं गिरिसङ्काशंमतिकायं महाबलम् ।
राक्षस्यो वानरं दृष्ट्वा पप्रच्छुर्जनकात्मजाम् ॥ ५ ॥

तदनन्तर उन पर्वताकार महाविशाल शरीरधारी महाबलवान हनुमान जी को देखकर राक्षसियां जनकनन्दिनी सीता जी से पूछने लगीं ॥५॥

कोऽयं कस्य कुतो वायं किंनिमित्तमिहागतः ।
कथं त्वया सहानेन संवादः कृत इत्युत ॥ ६ ॥

हे सीते ! यह कौन है, किसका भेजा हुआ है, कहाँ से आया है और किस लिये यहां आया है, इसने केवल तुम्हारे साथ बातचीत क्यों की है ॥६॥

आचक्ष्व नो विशालाक्षि मा भूत्ते सुभगे भयम् ।
संवादमसितापाङ्गि त्वया किं कृतवानयम् ॥ ७ ॥

हे विशाल लोचना! डरो मत और हमें बता दो कि, इसने तुमसे क्या कहा है ॥७॥

अथाब्रवीत् तदा साध्वी सीता सर्वाङ्गशोभना ।
रक्षसां कामरूपाणां विज्ञाने का गतिर्मम ॥ ८ ॥

इस पर सती एवं सर्वांग सुन्दरी सीताजी ने उनको उत्तर देते हुए कहा-कामरूपी भयंकर राक्षसों की माया भला मैं कैसे जान सकती हूँ॥८॥

यूयमेवास्य जानीत योऽयं यद् वा करिष्यति ।
अहिरेव ह्यहेः पादान् विजानाति न संशयः ॥ ९ ॥

यह तो तुम्हीं जान सकती हो कि, यह कौन है और क्या करने वाला है। क्योंकि निस्सन्देह सांप के पैर को तो सांप ही पहचान सकता है ॥९॥

अहमप्यतिभीतास्मि नैनं जानामि को ह्ययम् ।
वेद्मि राक्षसमेवैनं कामरूपिणमागतम् ॥ १० ॥

मैं स्वयं बहुत भयभीत हो रही हैं। मैं क्या जानूं यह कौन है, किन्तु अनुमान से तो मैं यहो समझती हूँ कि, यह कोई कामरूपी राक्षस है ॥१०॥

वैदेह्या वचनं श्रुत्वा राक्षस्यो विद्रुता द्रुतम् ।
स्थिताः काश्चिद् गताः काश्चिद् रावणाय निवेदितुम् ॥ ११ ॥

सीता जी की बातें सुनकर राक्षसियां चारों ओर भाग खड़ी हुई। कोई भयभीत हो कुछ दूर वहाँ से हट कर खड़ी हो गयी और कुछ यह सूचना देने के लिए रावण के पास चली गयीं ॥११॥

रावणस्य समीपे तु राक्षस्यो विकृताननाः ।
विरूपं वानरं भीमं रावणाय न्यवेदिषुः ॥ १२ ॥

उन भयंकर आकृति वाली राक्षसियों ने रावण के पास जाकर प्रमादवन में विकराल रूपधारी वानर के आने की सूचना दी ॥१२॥

अशोकवनिकामध्ये राजन् भीमवपुः कपिः ।
सीतया कृतसंवादस्तिष्ठत्यमितविक्रमः ॥ १३ ॥

वह कहने लगी-हे राजन्! अशोक वाटिका में एक भयंकर रूप धारी वानर आया हुआ है। वह अमित बल से सम्पन्न है। उसने सीता जी से बातचीत भी की और अभी भी वह वहीँ विराजमान है ॥१३॥

न च तं जानकी सीता हरिं हरिणलोचना ।
अस्माभिर्बहुधा पृष्टा निवेदयितुमिच्छिति ॥ १४ ॥

हम लोगों ने उस मृगनयनी सीता से बार बार पूछा कि, यह वानर कौन है, तुम्हारी और वानर की क्या बातचीत हुई, किन्तु उस वानर के विषय में वह हमें कुछ बताना नहीं चाहती ॥१४॥

वासवस्य भवेद् दूतो दूतो वैश्रवणस्य वा ।
प्रेषितो वापि रामेण सीतान्वेषणकाङ्क्षया ॥ १५ ॥

हमारी समझ में तो वह सम्भवतः इन्द्र अथवा कुबेर का दूत है अथवा राम का भेजा हुआ दूत है जो सीता जी को खोजने के लिये आया है ॥१५॥

तेनैवाद्भुतरूपेण यत्तत्तव मनोहरम् ।
नानामृगगणाकीर्णं प्रमृष्टं प्रमदावनम् ॥ १६ ॥

हे महाराज! उस अद्भुत रूप धारण करने वाले वानर ने तुम्हारे सुन्दर, अनेक पशु पक्षियों से सुशोभित प्रमाद वन को नष्ट कर डाला है॥१६॥

न तत्र कश्चिदुद्देशो यस्तेन न विनाशितः ।

यत्र सा जानकी सीता स तेन न विनाशितः ॥ १७ ॥

उस वाटिका में ऐसा कोई भी स्थान नहीं बचा है, जो उसने नष्ट नहीं कर डाला हो, परन्तु जहाँ पर सीता बैठी है, केवल उस स्थान को उसने नष्ट नहीं किया है ॥१७॥

जानकीरक्षणार्थं वा श्रमाद् वा नोपलक्ष्यते ।
अथवा कः श्रमस्तस्य सैव तेनाभिरक्षिता ॥ १८ ॥

यह नहीं कहा जा सकता कि, ऐसा उसने जानकी की रक्षा करने के लिये किया है अथवा थक जाने के कारण उसने वह स्थान अछूता छोड़ दिया है। हालाँकि ऐसा प्रतीत तो नहीं होता की वह थक गया है, हो न हो सीता की रक्षा के लिये ही उसने उस स्थान को छोड़ दिया है ॥१८॥

चारुपल्लवपत्राढ्यं यं सीता स्वयमास्थिता ।
प्रवृद्धः शिंशुपावृक्षः स च तेनाभिरक्षितः ॥ १९ ॥

सीता जी जिस मनोहर पल्लवपत्र युक्त शोभायमान विशाल अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हैं, बस उसी पेड़ को उसने सुरक्षित छोड़ दिया है ॥१९॥

तस्योग्ररूपस्योग्रं त्वं दण्डमाज्ञातुमर्हसि ।
सीता संभाषिता येन वनं तेन विनाशितम् ॥ २० ॥

हे राजन् ! सीता से वार्तालाप करने तथा अशोक वन को उजाड़ने की उदण्डता करने के लिये तुम्हे उस उग्ररूपी वानर को कठोर दण्ड देना चाहिए ॥२०॥

मनःपरिगृहीतां तां तव रक्षोगणेश्वर ।
कः सीतामभिभाषेत यो न स्यात् त्यक्तजीवितः ॥ २१ ॥

हे राक्षसेश्वर ! आपकी मनोनीता सीता से बातचीत करके कौन जीवित रह सकता है ? ॥२१॥

राक्षसीनां वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
चिताग्निरिव जज्वाल कोपसंवर्तितेक्षणः ॥ २२ ॥

राक्षसियों के इन वचनों को सुन कर, राक्षसगज रावण हुताग्नि अर्थात प्रज्वल्लित चिता की तरह प्रज्वल्लित ज्वनित हो उठा और मारे क्रोध के उसकी आँखें घूमने लगी ॥२२॥

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः ।
दीप्ताभ्यामिव दीपाभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः ॥ २३ ॥

क्रोध के कारण उसके नेत्रों से आंसू टपकने लगे, मानों जलते हुप दो दीपकों में से जलते हुए तेल की बूँदें टपक रही हों ॥२३॥

आत्मनः सदृशान् वीरान् किङ्करान्नाम राक्षसान् ।

व्यादिदेश महातेजा निग्रहार्थं हनूमतः ॥ २४ ॥

उस महातेजस्वी रावण ने हनुमान जी के पकड़ने के लिए अपने समान शूरवीर किंकर नामधारी राक्षसों को, आज्ञा दी ॥२४॥

तेषामशीतिसाहस्रं किङ्‌कराणां तरस्विनाम् ।
निर्ययुर्भवनात् तस्मात् कूटमुद्‌गरपाणयः ॥ २५ ॥

राजा की आज्ञा पाकर अस्सी हज़ार वेगवान किंकर राक्षस कूटमुद्गरों अर्थात ऐसे मुगदर जिनकी नोंकों पर लोहा लगा था, को हाथों में ले वहाँ से निकले पड़े ॥२५॥

महोदरा महादंष्ट्रा घोररूपा महाबलाः ।
युद्धाभिमनसः सर्वे हनुमद्‌ग्रहणोन्मुखाः ॥ २६ ॥

उन सभी के बड़े बड़े पेट और बड़े बड़े दांत थे। उनका रूप अत्यंत विकराल था। वह महावली राक्षस युद्ध के लिये तैयार होकर, हनुमानजी को पकड़ने की कामना ले कर वहाँ से चले ॥२६॥

ते कपिं तं समासाद्य तोरणस्थमवस्थितम् ।
अभिपेतुर्महावेगाः पतङ्‌गा इव पावकम् ॥ २७ ॥

अशोक वन के तोरणद्वार पर, जहाँ हनुमान जी खड़े थे, पर पहुँच कर वह वेगवान राक्षस हनुमान जे पर इस प्रकार झपटे, जैसे पतंगे दीपक की लौ के ऊपर झपटते हैं ॥ २७॥

ते गदाभिर्विचित्राभिः परिघैः काञ्चनाङ्गदैः ।
आजग्मुर्वानरश्रेष्ठं शरैरादित्यसन्निभैः ॥ २८ ॥

वह अद्भुत गदाओं और सोने के बंदों से भूपित परिघों और सूर्य की तरह प्रज्वलित पैने बाणों से वानरश्रेष्ठ हनुमान जी के ऊपर आक्रमण करने लगे ॥२८॥

मुद्गरैः पट्टिशैः शूलैः प्रासतोमरपाणयः ।
परिवार्य हनूमन्तं सहसा तस्थुरग्रतः ॥ २९ ॥

उनमें से बहुत से मुगदर, पट्टिश, प्रास फरसा और तोमर शस्त्रों को हाथ में लेकर, हनुमान जी को चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये ॥२९॥

हनुमानपि तेजस्वी श्रीमान् पर्वतसन्निभः ।
क्षितावाविध्य लांगूलं ननाद च महाध्वनिम् ॥ ३० ॥

पर्वताकार विशाल शरीरधारी श्रीमान् हनुमान जी अपनी पूँछ को पृथिवी पर पटक कर बड़े जोर से गर्जना करने लगे ॥३०॥

स भूत्वा तु महाकायो हनुमान् मारुतात्मजः ।

धृष्टमास्फोटयामास लङ्कां शब्देन पूरयन् ॥ ३१ ॥

पवननन्दन हनुमान जी ने विशाल शरीर धारण कर अपनी पूँछ को जो फटकार कर लंका को प्रतिध्वनित करने लगे ॥३१॥

तस्यास्फोटितशब्देन महता चानुनादिना ।
पेतुर्विहङ्गा गगनादुच्चैश्चेदमघोषयत् ॥ ३२ ॥

उनके उस भयंकर नाद और पूंछ फटकारने के शब्द से आकाश में उड़ते हुए पक्षी मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़े। उस समय हनुमान जी गरज कर कहने लगे ॥३२॥

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥ ३३ ॥

अति बलवान् श्रीरामचन्द्र जी की जय, महाबलवान लक्ष्मणा जी की जय, श्रीरामचन्द्र द्वारा पालित सुग्रीव जी की जय ॥३३॥

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
हनुमान् शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ॥ ३४ ॥

मैं उन कोसलपति श्रीरामचन्द्र जी का दास हूँ, जिनके लिये कोई काम करना कठिन नहीं है। मेरा नाम हनुमान है और युद्ध में शत्रुसैन्य का नाश करने वाला मैं पवन का पुत्र हूँ॥३४॥

न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत् ।
शिलाभिस्तु प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः ॥ ३५ ॥

जव मैं चट्टानों और पेड़ों से बार बार प्रहार करने लगूंगा, तब एक रावण तो क्या, सहस्रों रावण भी मेरा सामना नहीं कर सकेंगे ॥३५॥

अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम् ।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥ ३६ ॥

मैं समस्त राक्षसों के सामने, लंकापुरी का विध्वंस कर और जनकनन्दिनी सीता जी को प्रणाम कर तथा अपना कार्य पूरा करके चला जाऊँगा ॥३६॥

तस्य संनादशब्देन तेऽभवन् भयशङ्किताः ।
ददृशुश्च हनूमन्तं सन्ध्यामेघमिवोन्नतम् ॥ ३७ ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान जी के इस सिंहनाद को सुनकर, राक्षस भय के मारे त्रस्त हो गये और सन्याकालीन मेघ के समान विशालकाय हनुमान जी के रक्तवर्ण शरीर को देखने लगे ॥३७॥

स्वामिसन्देशनिश्शङ्कास्ततस्ते राक्षसाः कपिम् ।
चित्रैः प्रहरणैर्भीमैरभिपेतुस्ततस्ततः ॥ ३८ ॥

हनुमान जी ने अपने स्वामी का नाम लेकर स्वयं ही उन्हें अपना परिचय दे दिया था, इसलिए रावण की आज्ञा से निशंक होकर वह राक्षस विविध प्रकार के अस्त्रों-शस्त्रों को लेकर चारों ओर से हनुमान जी के ऊपर टूट पड़े ॥ ३८॥

स तैः परिवृतः शूरैः सर्वतः स महाबलः ।
आससादायसं भीमं परिघं तोरणाश्रितम् ॥ ३९ ॥

जब हनुमान जी को उन शूरवीर राक्षसों ने चारों ओर से घेर लिया, तब हनुमान जी ने तोरणद्वार पर लगा हुआ लोहे का एक बड़ा भारी परिघ निकाल लिया ॥३६॥

स तं परिघमादाय जघान रजनीचरान् ।
स पन्नगमिवादाय स्फुरन्तं विनतासुतः ॥ ४० ॥

विचचाराम्बरे वीरः परिगृह्य च मारुतिः ।
स हत्वा राक्षसान् वीरः किंकरान् मारुतात्मजः ।
युद्धाकाङ्क्षी महावीरः तोरणं समवस्थितः ॥ ४१ ॥

उस परिघ से वह उन राक्षसों पर प्रहार करने लगे और विनतानन्दन गरुड़ जी जिस प्रकार फड़फड़ाते सर्पों को पकड़ कर आकाश में उड़ते हैं, उसी प्रकार हनुमान जी उस परिघ को लिये आकाश में पैतरे बदलने लगे। पवननन्दन हनुमान जी उन वीर किन्कारों का

संहार कर, फिर युद्ध की इच्छा से उसी सो तोरणद्वार पर जाकर बैठ गए ॥४०-४१॥

ततस्तस्माद् भयान्मुक्ताः कतिचित्तत्र राक्षसाः ।
निहतान् किंकरान् सर्वान् रावणाय न्यवेदयन् ॥ ४२ ॥

तदनन्तर जो थोड़े से राक्षस मारे जाने से बच गये थे, उन्होंने रावण के पास जाकर कहा कि, किंकर नाम के समस्त राक्षसों का कपि ने वध कर डाला ॥४२॥

स राक्षसानां निहतं महद्बलं निशम्य राजा परिवृत्तलोचनः ।
समादिदेशाप्रतिमं पराक्रमे प्रहस्त पुत्रं समरे सुदुर्जयम् ॥ ४३ ॥

राक्षसों की उस विशाल सेना के मारे जाने का संवाद सुनकर राक्षसराज रावण की आखें चढ़ गयी और हनुमान जी से लड़ने के लिये उसने प्रहस्त के दुर्जय और अमित पराक्रमी पुत्र को आज्ञा दी ॥४३॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का बयालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥त्रिचत्वारिंशः सर्गः तिरालिसवाँ सर्ग॥

हनुमता चैत्यप्रासादस्य विध्वंसस्तद् रक्षकाणां वधश्च –हनुमान जी द्वारा चैत्य प्रासाद का विध्वंस तथा उसके रक्षकों का वध

ततः स किङ्करान् हत्वा हनुमान् ध्यानमास्थितः ।
वनं भग्नं मया चैत्यप्रासादो न विनाशितः ॥ १ ॥

उन किंकर नामधारी राक्षसों का संहार करने की पश्च्यात हनुमान जी सोचने लगे कि, मैंने इस अशोक वन को तो नष्ट कर डाला किन्तु इस चैत्य प्रसाद अर्थात देव मन्दिर के आकार के महल को तो नष्ट किया ही नहीं ॥१॥

तस्मात् प्रासादमद्यैवमिमं विध्वंसयाम्यहम् ।
इति सञ्चिन्त्य हनुमान् मनसादर्शयन् बलम् ॥ २ ॥

अतः इस चैत्य प्रसाद को भी लगे हाथ उजाड़ देता हूँ। इस प्रकार विचार कर हनुमान जी ने अपना बल प्रकट किया ॥२॥

चैत्यप्रासादमाप्लुत्य मेरुशृङ्गमिवोन्नतम् ।
आरुरोह हरिश्रेष्ठो हनुमान् मारुतात्मजः ॥ ३ ॥

कपिश्रेष्ठ पवननन्दन हनुमान जी एक ही छलांग में मेरुपर्वत के शिखर का तरह ऊँचे उस चैत्य प्रासाद पर चढ़ गये ॥३॥

आरुह्य गिरिसङ्काशं प्रासादं हरियूथपः ।
बभौ स सुमहातेजाः प्रतिसूर्य इवोदितः ॥ ४ ॥

अत्यंत तेज से सम्पन्न कपियूथपति हनुमान जी, उस पर्वत समान ऊंचे प्रासाद पर चढ़ने के कारण, उगे हुए दूसरे सूर्य के समान शोभा पाने लगे ॥४॥

संप्रधृष्य तु दुर्धर्षचैत्यप्रासादमुन्नतम् ।
हनुमान् प्रज्वलंल्लक्ष्म्या पारियात्रोपमोऽभवत् ॥ ५ ॥

उस ऊंचे और श्रेष्ठ चैत्य प्रासाद को अच्छी तरह से नष्ट करके, दुर्धुष वीर हनुमान जी अपनी स्वाभाविक कान्ति से, पारियात्र पर्वत के समान प्रतीत होने लगे ॥५॥

स भूत्वा सुमहाकायः प्रभावान् मारुतात्मजः ।

धृष्टमास्फोटयामास लङ्कां शब्देन पूरयन् ॥ ६ ॥

फिर हनुमान जी ने अपना शरीर और भो विशाल कर लिया और निर्भय हो ऐसे गर्जे कि, उनकी वह गर्जना सारी लंका में व्याप्त हो गयी ॥६॥

तस्यास्फोटितशब्देन महता श्रोत्रघातिना ।
पेतुर्विहङ्गमास्तत्र चैत्यपालाश्च मोहिताः ॥ ७ ॥

उनके उस श्रवण कठोर बड़े सिंहनाद से भयभीत होकर आकाश में उड़ते हुए पक्षी तथा चैत्य प्रासाद के रक्षक मूर्छित होकर नीचे गिर पड़े ॥७॥

अस्त्रविज्जयतां रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥ ८ ॥

अस्त्र वेत्ता श्रीरामचन्द्र की जय हो, महाबली लक्ष्मण जी की जय हो, श्रीरामचन्द्र जी द्वारा रक्षित वानरराज सुग्रीव जी की जय हो ॥८॥

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
हनुमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ॥ ९ ॥

मैं उन कौशलापति श्रीरामचन्द्र जी का दास हूँ जिनके लिये कोई कार्य कठिन नहीं है। मैं शत्रु सेना का नाश करने वाला पवननन्दन हनुमान हूँ ॥९॥

न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत् ।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः ॥ १० ॥

सहस्त्रों शिलाओं और पेड़ों से प्रहार करते समय, सहस्रों रावण भी मेरा सामना नहीं कर सकते ॥१०॥

अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम् ।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥ ११ ॥

मैं समस्त राक्षसों के सामने ही लंका पुरी को तहस नहस कर डालूँगा और जानकी जी को प्रणाम करने के उपरान्त अपना कार्य सिद्ध करके चला जाऊँगा ॥११॥

एवमुक्त्वा महाकायः चैत्यस्थो हरियूथपः ।
ननाद भीमनिर्ह्रादो रक्षसां जनयन् भयम् ॥। १२ ॥

ऐसा कह कर चैत्य प्रासाद पर बैठे हुए, कपियूथपति हनुमान जी ने ऐसा भयंकर सिंहनाद किया कि, उसे सुनकर राक्षसों के मन में भय उत्पन्न हो गया ॥१२॥

तेन नादेन महता चैत्यपालाः शतं ययुः ।
गृहीत्वा विविधानस्त्रान् प्रासान् खड्गान् परश्वधान् ॥ १३ ॥

उस सिंहनाद को सुन उस चैत्य प्रासाद के सैकड़ों रक्षक राक्षस, विविध प्रकार के प्रख-प्रास, खड्ग और फरसा लेकर श्री हनुमान जी की ओर दौड़ पड़े ॥१३॥

विसृजन्तो महाकाया मारुतिं पर्यवारयन् ।
ते गदाभिर्विचित्राभिः परिघैः काञ्चनाङ्गदैः ॥ १४ ॥

आजग्मुर्वानरश्रेष्ठं बाणैश्चादित्यसन्निभैः ।
आवर्त इव गङ्गायास्तोयस्य विपुलो महान् ॥ १५ ॥

परिक्षिप्य हरिश्रेष्ठं स बभौ रक्षसां गणः ।
ततो वातात्मजः क्रुद्धो भीमरूपं समास्थितः ॥ १६ ॥

और महाकाय हनुमान जी को चारों ओर से घेर कर उन पर प्रहार करने लगे। वह अद्भुत गदाओं और सोने के बुन्दो से भूषित परिघों से तथा सूर्य के समान चमचमाते बाणों से कपिश्रेष्ठ हनुमान जी पर प्रहार करने लगे। इस समय हनुमान जी को घेर कर खड़े हुए राक्षस ऐसे दिखाई देते थे, जैसे गंगा जी के जल में उठा हुआ कोई बड़ा भारी जलभंवर हो। तब पवननन्दन हनुमान जी अत्यंत कुपित हुए तथा भयंकर रूप धारण किए हुए ॥१४-१६॥

प्रासादस्य महांस्तस्य स्तम्भं हेमपरिष्कृतम् ।
उत्पाटयित्वा वेगेन हनुमान् मारुतात्मजः ॥ १७ ॥

पवननन्दन हनुमान जी ने उस विशाल प्रासाद का सुवर्ण का बना एक खंभा बड़े वेग से उखाड़ लिया ॥१७॥

ततस्तं भ्रामयामास शताधारं महाबलः ।
तत्र चाग्निः समभवत् प्रासादश्चाप्यदह्यत ॥ १८ ॥

महाबली हनुमान उस सौ धारों वाले खम्बे को घुमाने लगे। अत्यंत वेग से घुमाने पर उससे आग उत्पन्न हो गई और उसमें से निकली हुई आग की चिनगारियों से वह भवन भस्म हो गया ॥१८॥

दह्यमानं ततो दृष्ट्वा प्रासादं हरियूथपः ।
स राक्षसशतं हत्वा वज्रेणेन्द्र इवासुरान् ॥ १९ ॥

कपियूथपति ने उस प्रासाद को भस्म होते हुए देख कर, सैकड़ों राक्षसों को उस खम्बे से वैसे ही मार डाला, जैसे इन्द्र अपने वज्र से असुरों को मारते हैं ॥१९॥

अन्तरिक्षे स्थितः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ।
मादृशानां सहस्राणि विसृष्टानि महात्मनाम् ॥ २० ॥

आकाश में स्थित श्रीमान् हनुमान जी कहने लगे कि, मेरे जैसे बलवान तथा धैर्यवान सहस्रों वानर उत्पन्न हो चुके हैं ॥२०॥

बलिनां वानरेन्द्राणां सुग्रीववशवर्तिनाम् ।
अटन्ति वसुधां कृत्स्नां वयमन्ये च वानराः ॥ २१ ॥

वह सभी बलवान् वानरश्रेष्ठ सुग्रीव के वश में हैं तथा मैं और तथा वे सब अन्य वानर अखिल पृथिवीमण्डल पर विचरण करते हैं॥२१॥

दशनागबलाः केचित् केचिद् दशगुणोत्तराः ।
केचिन्नागसहस्रस्य बभूवुस्तुल्यविक्रमाः ॥ २२ ॥

उनमें से किसी में दस हाथी के समान, किसी में सौ हाथी के समान, और किसी में हज़ार हाथी के समान बल है ॥२२॥

सन्ति चौघबलाः केचित् सन्ति वायुबलोपमाः ।
अप्रमेयबलाः केचित् तत्रासन् हरियूथपाः ॥ २३ ॥

और कितने ही वानरों का बल जल के भीषण प्रवाह की भांति है और कितने ही वायु के समान बलवाले हैं। अन्य वानर यूथपति ऐसे भी हैं जिनके बल का पारावार नहीं है। ॥२३ ॥

ईदृग्विधैस्तु हरिभिर्वृतो दन्तनखायुधैः ।
शतैः शतसहस्रैश्च कोटीभिश्चायुतैरपि ॥ २४ ॥

इस प्रकार के नख और दांत ही जिनके आयुध हैं ऐसे अनंत बलशाली सैकड़ों, हजारों, लाखों और करोडों है ॥२४॥

आगमिष्यति सुग्रीवः सर्वेषां वो निषूदनः ।
नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूयं न च रावणः ।
यस्य त्विक्ष्वाकुवीरेण बद्धं वैरं महात्मना ॥ २५ ॥

उनको लेकर सुग्रीव शीघ्र ही यहां आयेंगे और वह तुम्हारा समूल नाश करेंगे। अब तो यह लंका रहेगी, न तुम रहोगे और न रावण ही बचेगा। क्योंकि तुमने इक्ष्वाकुवंश के स्वामी महात्मा श्रीरामचन्द्र से बैर बाँध रखा है ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का तिरालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥चतुश्चत्वारिंशः सर्गः चवालिसवाँ सर्ग ॥

प्रहस्तपुत्रस्य जम्बुमालिनो वधः – हनुमान जी द्वारा प्रहस्त पुत्र जम्बुमाली का वध

सन्दिष्टो राक्षसेन्द्रेण प्रहस्तस्य सुतो बली ।
जम्बुमाली महादंष्ट्रो निर्जगाम धनुर्धरः ॥ १ ॥

राक्षसराज रावण की आज्ञा से प्रहस्त का बलवान पुत्र जम्बुमाली, जिसकी बड़ी बड़ी डाढ़ें थीं, धनुष लेकर नगर से बाहर निकला ॥१॥

रक्तमाल्याम्बरधरः स्रग्वी रुचिरकुण्डलः ।
महान् विवृत्तनयनश्चण्डः समरदुर्जयः ॥ २ ॥

वह लाल रंग के फूलों की माला और लाल वस्त्र पहने हुए था। उसके गले में हार था और कानों में सुन्दर कुण्डल थे। उसके गोल गोल नेत्र थे और वह प्रचण्ड पराक्रमी तथा युद्ध में दुर्जेय था ॥२॥

दग्धत्रिकूटप्रतिमा महाजलदसन्निभः ।
महाभुजशिरस्कन्धो महादंष्ट्रो महाननः ॥ ३ ॥

वह भस्म हुए पहाड़ की तरह अथवा महामेघ की तरह कृष्ण वर्ण और विशालकाय था। उसकी बड़ी बड़ी भुजाएँ, बड़ा सिर और बड़े बड़े कन्धे थे। उसकी डाढ़े और उसका मुख भी अत्यंत विशाल था ॥३॥

महाजवो महोत्साहो महासत्त्वोरुविक्रमः ।
आजगामातिवेगेन सायुधः स महारथः ॥४॥

वह बड़ा वेगवान्, बड़ा उत्साही, बड़ा बलवान् और बड़ा परा क्रमी या । वह एक बड़े रथ में बैठ तथा आयुधों को लेकर बड़े वेग से आया ॥४॥

धनुः शक्रधनुःप्रख्यं महद् रुचिरसायकम् ।
विस्फारयाणो वेगेन वज्राशनिसमस्वनम् ॥ ५॥

उसका धनुष इन्द्रधनुष के समान था और वह अति सुन्दर बाणों को लिये हुए था। जब वह अपने धनुष को को खींचता था तो उसमें से वज्र गिरने के समान बड़ी भारी ध्वनि पैदा होती थी ॥५॥

तस्य विस्फारघोषेण धनुषो महता दिशः ।
प्रदिशश्च नभश्चैव सहसा समपूर्यत ॥ ६ ॥

उसके महाधनुष की टंकार के शब्द से प्राकाश सहित समस्त दिशाएँ और विदिशाएँ सहसा पूर्ण हो गयीं॥६॥

रथेन खरयुक्तेन तमागतमुदीक्ष्य सः ।
हनुमान् वेगसम्पन्नौ जहर्ष च ननाद च ॥ ७॥

वेगवान हनुमान जी, जम्बुमाली को गधों के रथ पर सवार देख, अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने सिंहनाद किया ॥७॥

तं तोरणविटङ्कस्थं हनुमन्तं महाकपिम् ।
जम्बुमाली महातेजा विव्याध निशितैः शरैः ॥ ८॥

महाकपि हनुमान जी को तोरणद्वार के छज्जे पर बैठा देखकर, महाबाहु जम्बुवाली ने उनको पैने बाणों से बींधना आरम्भ कर डाला ॥८॥

अर्धचन्द्रेण वदने शिरस्येकेन कर्णिना ।
बाह्वोर्विव्याध नाराचैर्दशभिस्तु कपीश्वरम् ॥ ९ ॥

उसने अर्धचन्द्र नामक बाण हनुमान जी के मुख पर, कर्णी नामक एक बाण उनके मस्तक में मारा और दस नाराचों से उन कपीश्वर के दोनों भुजाओं पर गहरी चोट की ॥९॥

तस्य तच्छुशुभे ताम्रं शरेणाभिहतं मुखम् ।
शरदीवाम्बुजं फुल्लं विद्धं भास्कररश्मिना ॥ १०॥

उस बाण के लगने से हनुमान जी का लाल मुख ऐसा शोभायमान हुआ जैसा कि, शरदऋतु में सूर्य की किरणों के पड़ने से लाल कमल शोभायमान होता है॥१०॥

तत्तस्य रक्तं रक्तेन रञ्जितं शुशुभे मुखम् ।
यथाऽऽकाशे महापद्मं सिक्तं काञ्चनबिन्दुभिः ॥ ११ ॥

हनुमान जी का रक्त से रंजित हुआ मुख, ऐसा सुशोभित हुआ मानों आकाश में एक लाल रंग के विशाल कमल का फूल को स्वर्णमय जल की बूंदों से सींच दिया हो अर्थात उस पर सोने का पानी चढ़ा दिया हो ॥११॥

चुकोप बाणाभिहतो राक्षसस्य महाकपिः ।
ततः पार्श्वेऽतिविपुला ददर्श महतीं शिलाम् ॥ १२ ॥

राक्षस जम्बुमाली के बाणों के चोट खाकर महाकपि हनुमान जी कुपित को उठे। उस समय उन्हें पास में पड़ी हुई एक बड़ी शिला दिखाई पड़ी ॥१२॥

तरसा तां समुत्पाट्य चिक्षेप जववद् बली ।
तां शरैर्दशभिः क्रुद्धः ताडयामास राक्षसः ॥ १३ ॥

बलवान हनुमान जी ने तुरन्त उसे उखाड़ कर बड़े जोर से उसे उस राक्षस के ऊपर फैंका। तब उस राक्षस ने उस शिला के दस बाण मारकर उसे चूर चूर कर डाला ॥१३॥

विपन्नं कर्म तद् दृष्ट्वा हनुमांश्चण्डविक्रमः ।
सालं विपुलमुत्पाट्य भ्रामयामास वीर्यवान् ॥ १४ ॥

प्रचण्ड पराक्रमी हनुमान जी ने उस शिला का फैंकना व्यर्थ हुआ देख, एक विशाल साल का वृक्ष उखाड़ लिया। फिर महाबलवान हनुमान जी ने उसे अच्छी तरह घुमाया ॥१४॥

भ्रामयन्तं कपिं दृष्ट्वा सालवृक्षं महाबलम् ।
चिक्षेप सुबहून् बाणाञ्जम्बुमाली महाबलः ॥ १५ ॥

उन महाबली हनुमान जी को उस साल वृक्ष को घुमाते देखकर, महाबली जम्बुमाली ने बहुत से बाणों की वर्षा की ॥१५॥

सालं चतुर्भिश्चिच्छेद वानरं पञ्चभिर्भुजे ।
शिरस्येकेन बाणेन दशभिस्तु स्तनान्तरे ॥ १६ ॥

उसने चार बाणों से उस साल वृक्ष के टुकड़े कर डाले और पांच बाण उसने हनुमान जी की भुजाओं में, एक सिर में और दस बाण छाती में मारे ॥१६॥

स शरैः पूरिततनुः क्रोधेन महता वृतः ।
तमेव परिघं गृह्य भ्रामयामास वेगतः ॥ १७ ॥

उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर बाणों से हनुमान जी का शरीर भर दिया । तब हनुमान जी ने उसी परिघ को उठा कर घुमाया ॥१७॥

अतिवेगोऽतिवेगेन भ्रामयित्वा बलोत्कटः ।
परिघं पातयामास जम्बुमालेर्महोरसि ॥ ८ ॥

अत्यन्त वेगवान और उत्कट बलशाली हनुमान जी ने उस परिघ को अत्यंत वेग से घुमा कर, जम्बुमाली की छाती पर दे मारा ॥१८॥

तस्य चैव शिरो नास्ति न बाहू न च जानुनी ।
न धनुर्न रथो नाश्वास्तत्राद्दश्यन्त नेषवः ॥ १९ ॥

उस परिघ की चोट से जम्बुमाली के सिर, भुजा, जांघ, धनुष, रथ, तीर और रथ के घोड़ों का पता ही न चला कि, वह सब के सब कहाँ चले गये ॥१९॥

स हतस्तरसा तेन जम्बुमाली महारथः ।
पपात निहतो भूमौ चूर्णिताङ्ग इव द्रुमः ॥ २० ॥

महाबलवान जम्बुमाली हनुमान जी के परिघ के आघात से मर कर पृथ्वी पर गिर गया और उसका शरीर तथा आभूषण चूर चूर हो गये ॥२०॥

जम्बुमालिं सुनिहतं किङ्करांश्च महाबलान् ।
चुक्रोध रावणः श्रुत्वा कोपसंरक्तलोचनः ॥२१ ॥

जम्बुमाली और अस्सी हजार महाबली किंकर नामक राक्षसों के मारे जाने का संवाद सुनकर, रावण के दोनों नेत्र मारे क्रोध से लाल हो गये ॥२१॥

स रोषसंवर्तितताम्रलोचनः प्रहस्तपुत्रे निहते महाबले ।
अमात्यपुत्रानतिवीर्यविक्रमान् समादिदेशाशु निशाचरेश्वरः ॥२२॥

प्रहस्तपुत्र महाबली जम्बुमाली के मारे जाने पर राक्षसराज राषण ने अत्यन्त पराक्रमी और बलवान मन्त्रिपुत्रों को युद्ध के लिये तुरन्त जाने की आज्ञा दी ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का चवालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ पञ्चचत्वारिंशः सर्गः पैंतालिसवाँ सर्ग॥

मन्त्रिणः सप्तपुत्राणां वधः – हनुमान जी द्वारा रावण के सात मन्त्रीपुत्रों का वध

ततस्ते राक्षसेन्द्रेण चोदिता मन्त्रिणः सुताः ।
निर्युयुर्भवनात् तस्मात् सप्त सप्तार्चिवर्चसः ॥ १ ॥

तव राक्षसराज रावण की प्रेरणा से वह अग्नि के समान कान्तिवाले सात मन्त्रिपुत्र रावण के भवन से बाहर निकले ॥१॥

महद्बलपरीवारा धनुष्मन्तो महाबलाः ।
कृतास्त्रास्त्रविदां श्रेष्ठाः परस्परजयैषिणः ॥ २ ॥

वह सभी अत्यंत बलवान, अस्त्र विद्या में कुशल, अस्त्र वेत्ताओं में श्रेष्ठ, हनुमान जी को जीतने के अभिलाषी, अतुल पराक्रमी और धनुषधारी थे ॥२॥

हेमजालपरिक्षिप्तैर्ध्वजवद्भिः पताकिभिः ।
तोयदस्वननिर्घोषैर्वाजियुक्तैर्महारथैः ॥ ३ ॥

वह ऐसे रथों में बैठ कर चले, जिनके ऊपर सोने की जाली लगी हुई थी, ध्वजा पताकाएँ लगी हुई थीं, घोड़े जुते हुए थे और उनके चलने पर बादलों की गड़गड़ाहट जैसी ध्वनि होती थी ॥३॥

तप्तकाञ्चनचित्राणि चापान्यमितविक्रमाः ।
विस्फारयन्तः संहृष्टास्तडिद्वन्त इवाम्बुदाः ॥ ४ ॥

वह अमित विक्रमशाली मन्त्रिपुत्र प्रसन्न होकर सुवर्णरचित विचित्र धनुषों को टंकारते हुए अत्यंत वेग और उत्साह से आगे बढे। उस समय वह सभी दामिनीयुक्त मेघों की तरह शोभायमान हो रहे थे ॥४॥

जनन्यस्तास्ततस्तेषां विदित्वा किंकरान् हतान् ।
बभूवुः शोकसम्भ्रान्ताः सबान्धवसुहृज्जनाः ॥ ५ ॥

किंकरों का मारा जाना सुनकर उन मन्त्रिपुत्रों की माताएँ बन्धुबांधव और सुहृदयों सहित अमंगल की आशंका से अत्यन्त शोकसन्तप्त हो उठीं ॥५॥

ते परस्परसङ्घर्षात् तप्तकाञ्चनभूषणाः ।
अभिपेतुर्हनूमन्तं तोरणस्थमवस्थितम् ॥ ६ ॥

विशुद्ध सुवर्ण के आभूषण धारण किये हुए और परस्पर एक दुसरे से होड़ लगते हुए, वह सातों मंत्री कुमार तोरणद्वार पर बैठे हुए हनुमान जी के पास जा पहुँचे ॥६॥

सृजन्तो बाणवृष्टिं ते रथगर्जितनिःस्वनाः ।
प्रावृट्काल इवाम्भोदा विचेरुर्नैर्ऋताम्बुदाः ॥ ७ ॥

वे राक्षस रुपी बादल अपने धनुषों से बादल से जल की वृष्टि की तरह बाणवृष्टि करते और रथों की गड़गड़ाहट सुनाते वर्षाकालीन मेघों की तरह घूमते थे ॥७॥

अवकीर्णस्ततस्ताभिर्हनुमाञ्शरवृष्टिभिः ।
अभवत् संवृताकारः शैलराडिव वृष्टिभिः ॥ ८ ॥

उस बाण वृष्टि से हनुमान जी बाणों के भीतर ऐसे छिप गये जैसे पर्वतराज जल की वृष्टि से छिप जाता है ॥८॥

स शरान् वञ्चयामास तेषामाशुचरः कपिः ।
रथवेगांश्च वीराणां विचरन् विमलेऽम्बरे ॥ ९ ॥

तदनन्तर हनुमान जी ऐसी शीघ्रता से आकाश में जाकर पैतरें बदलते हुए, उनके वेगपूर्वक रथों का चलाना और बाणों का लक्ष्य व्यर्थ करने लगे। अर्थात् उनके चलाये वाणों में से एक भी हनुमान जी के शरीर से नहीं लगता था ॥९॥

स तैः क्रीडन् धनुष्मद्भिर्व्योम्नि वीरः प्रकाशते ।
धनुष्मद्भिर्यथा मेघैर्मारुतः प्रभुरम्बरे ॥ १० ॥

इस प्रकार पवननन्दन हनुमान जी उन धनुर्धारियों के साथ कुछ समय तक खेलते रहे। उस समय आकाश में, हनुमान जी इन्द्रधनुष से भूषित मेघों के तरह क्रीडा करते हुए आकाशचारी पवनदेव की तरह दिखाई देते थे ॥१०॥

स कृत्वा निनदं घोरं त्रासयंस्तां महाचमूम् ।
चकार हनुमान् वेगं तेषु रक्षःसु वीर्यवान् ॥ ११ ॥

पराक्रमी हनुमान जी ने उस सेना को डराने के लिये भयङ्कर सिंहनाद किया और वे उन राक्षसों की ओर अत्यंत वेग से झपटे ॥११॥

तलेनाभिहनत् कांश्चित् पादैः कांश्चित् परन्तपः ।
मुष्टिभिश्चाहनत् कांश्चिन्नखैः कांश्चिद् व्यदारयत् ॥ १२ ॥

शत्रुहन्ता हनुमान जी ने राक्षसी सेना में से किसी को थप्पड़ से, किसी को लातों से, किसी को घूसों से मारा और किसो को नखों से चीर डाला ॥१२॥

प्रममाथोरसा कांश्चिदूरुभ्यामपरानपिः ।
केचित् तस्यैव नादेन तत्रैव पतिता भुवि ॥ १३ ॥

हनुमान जी ने किसी को छाती की ठेस से और किसी को जांघों में रगड़ कर मार डाला। कितने ही राक्षस तो हनुमान जी के सिंहनाद को सुन कर हो पृथिवी पर गिर कर मर गये ॥१३॥

ततस्तेष्ववसन्नेषु भूमौ निपतितेषु च ।
तत्सैन्यमगमत् सर्वं दिशो दश भयार्दितम् ॥ १४ ॥

जब वे सातो मंत्री पुत्र इस प्रकार मारे जाने से पृथिवी पर गिर गये, तब उनकी सेना भयभीत होकर दसों दिशाओं में भाग गयी ॥१४॥

विनेदुर्विस्वरं नागा निपेतुर्भुवि वाजिनः ।
भग्ननीडध्वजच्छत्रैः भूश्च कीर्णाभवद् रथैः ॥ १५ ॥

उस समय सेना के हाथी बुरी तरह से चिंघाड़ रहे थे, घोड़े भूमि पर मरे पड़े थे। रथों की टूटी हुई ध्वजाओं, ध्वजाओं के डंडों और छत्रों से रणक्षेत्र भर गया ॥१५॥

स्रवता रुधिरेणाथ स्रवन्त्यो दर्शिताः पथि ।
विविधैश्च स्वरैर्लङ्का ननाद विकृतं तदा ॥ १६ ॥

मार्ग में रक्त की नालियां बहने लगीं । सारी लंका में विविध प्रकार के विकट स्वरों में अंतर्नाद सुनाई देने लगे जैसे लंका विकृत स्वर से चिल्ला रही हो ॥१६॥

स तान् प्रवृद्धान् विनिहत्य राक्षसान्
महाबलश्चण्डपराक्रमः कपिः ।
युयुत्सुरन्यैः पुनरेव राक्षसै-
स्तमेव वीरोऽभिजगाम तोरणम् ॥ १७ ॥

महावली, प्रचण्ड पराक्रमी वीर हनुमान जी उन प्रधान राक्षसों को मार, पुनः युद्ध करने की इच्छा से, छलाँग मार फिर फाटक पर जा बैठे ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का पैंतालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥षट्चत्वारिंशः सर्गः छियालिसवाँ सर्ग॥

रावणस्य पंचसेनापतीनां वधः – हनुमान जी द्वारा रावण के पांच सेनापतियो का वध

हतान् मन्त्रिसुतान् बुद्ध्वा वानरेण महात्मना ।
रावणः संवृताकारश्चकार मतिमुत्तमाम् ॥ १॥

जव रावण ने सुना कि, वीर हनुमान जी ने सातों मन्त्रिपुत्रों को मार डाला, तब वह भयभीत होने पर भी, अपने भय को प्रयत्नपूर्वक छिपाकर, पुनः उत्तम बुद्धि का आश्रय लेकर सोचने लगा ॥१॥

स विरूपाक्षयूपाक्षौ दुर्धरं चैव राक्षसम् ।
प्रघसं भारकर्णं च पञ्च सेनाग्रनायकान् ॥ २॥

रावण ने विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रघस और भासकर्ण नामक पांच सेनापतियों को ॥२॥

सन्दिदेश दशग्रीवो वीरान् नयविशारदान् ।
हनुमद्ग्रहणेऽव्यग्रान् वायुवेगसमान् युधि ॥ ३॥

जो युद्ध में वायु की तरह वेगवान, रण-नीति-विशारद , धैर्यवान एवं शूर थे, हनुमान जी को पकड़ने की आज्ञा दी ॥३॥

यात सेनाग्रगाः सर्वे महाबलपरिग्रहाः ।
सवाजिरथमातङ्गाः स कपिः शास्यतामिति ॥ ४॥

और कहा कि, तुम सभी बड़े बलवान सेनापति हो। घोड़ों, रथों तथा हाथियों से युक्त बड़ी भारी सेना अपने साथ लेकर जाओ और उस वानर को बलपूर्वक पकड़ कर, उसको अपने कर्मों के लिए शिक्षा दो ॥४॥

यत्तैश्च खलु भाव्यं स्यात् तमासाद्य वनालयम् ।
कर्म चापि समाधेयं देशकालविरोधिनम् ॥ ५॥

तुम सभी को बड़ी सावधानी से उस वनचर के पास जाकर, देश काल का विचार रखते हुए काम को पूरा करना चाहिए॥५॥

न ह्यहं तं कपिं मन्ये कर्मणा प्रति तर्कयन् ।
सर्वथा तन्महद् भूतं महाबलपरिग्रहम् ॥ ६॥

जब मैं उसके कर्मों पर विचार करते हुए उसके स्वरुप पर विचार करता हूँ, तब वह मुझे वानर नहीं दिखाई देता बल्कि वह तो कोई महान बल से संपन्न प्राणी दिखाई देता है ॥६॥

भवेदिन्द्रेण वा सृष्टं अस्मदर्थं तपोबलात् ।
सनागयक्षगन्धर्वदेवासुरमहर्षयः ॥ ७ ॥

मेरी समझ में तो इन्द्र ने इसको अपने तपोवल से हमारा नाश करने के लिये उत्पन्न किया है। नाग, गन्धर्व, यक्षों सहित, देवताओं, दैत्यों और महर्षियों को ॥७॥

युष्माभिः सहितैः सर्वैर्मया सह विनिर्जिताः ।
तैरवश्यं विधातव्यं व्यलीकं किंचिदेव नः ॥ ८ ॥

मेरी आज्ञा से तथा मेरे साथ भी तुम लोगों ने उन देवताओं को जीता है। इसी कारण वह हमारा अनिष्ट करना चाहते हैं। अवश्य ऐसा ही है ॥८॥

तदेव नात्र सन्देहः प्रसह्य परिगृह्यताम् ।
यात सेनाग्रगाः सर्वे महाबलपरिग्रहाः ॥ ९ ॥

यह उन्ही का रचा हुआ प्राणी है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, अतः तुम उसको बलपूर्वक पकड़ कर ले आओ। वह वानर धीर और वीर

है । अतः तुम्हे उसको तुच्छ वानर समझ कर उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए ॥९॥

दृष्टा हि हरयः पूर्वे मया विपुलविक्रमाः ।
वाली च सहसुग्रीवो जाम्बवांश्च महाबलः ॥ १० ॥

पूर्वकाल में मैं बड़े बड़े पराक्रमी एवं बलवान् बालि, सुग्रीव, जामवान आदि वानरों और रीछों को देख चुका हूँ॥१०॥

नीलः सेनापतिश्चैव ये चान्ये द्विविदादयः ।
नैवं तेषां गतिर्भीमा न तेजो न पराक्रमः ॥ ११ ॥

सेनापति नील तथा द्विविदादि जो और दूसरे अन्य वानर हैं, उनमें न तो ऐसा भयंकर वेग है, न ऐसा तेज है और न ऐसा पराक्रम ही है॥११॥

न मतिर्न बलोत्साहौ न रूपपरिकल्पनम् ।
महत्सत्त्वमिदं ज्ञेयं कपिरूपं व्यवस्थितम् ॥ १२ ॥

उनमें से किसी में न ऐसी बुद्धि है, न ऐसा बल है, न ऐसा उत्साह है और न उनमें रूप धारण करने की ऐसी शक्ति है। अतः हे राक्षसों! यह तो वानर-रूप-धारी कोई बड़ा बलिष्ट प्राणी है ॥१२॥

प्रयत्नं महदास्थाय क्रियतामस्य निग्रहः ।
कामं लोकास्त्रयः सेन्द्राः ससुरासुरमानवाः ॥ १३ ॥

अत: तुम्हे उसको महान प्रयत्न करके पकड़ना चाहिए। मुझे विश्वास है कि, इन्द्र प्रमुख देवता, दैत्य और मनुष्यों के सहित तीनों लोक ॥१३॥

भवतामग्रतः स्थातुं न पर्याप्ता रणाजिरे ।
तथापि तु नयज्ञेन जयमाकाङ्क्षता रणे ॥ १४ ॥

युद्धक्षेत्र में तुम्हारा सामना नहीं कर सकते। तब भी रणनीति का ज्ञाता जो जयाभिलाषी हो, उसको उचित है कि, ॥ १४ ॥

आत्मा रक्ष्यः प्रयत्नेन युद्धसिद्धिर्हि चञ्चला ।
ते स्वामिवचनं सर्वे प्रतिगृह्य महौजसः ॥ १५ ॥

प्रयत्नपूर्वक अपनी रक्षा करे। क्योंकि विजयश्री बड़ी चञ्चला होती है। अर्थात् यह कोई भी निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता कि, किसकी जीत होगी; रावण की आज्ञा स्वीकार करके यह सभी महाबलशाली ॥१५॥

समुत्पेतुर्महावेगा हुताशसमतेजसः ।
रथैर्मत्तैश्च मातङ्‌गैः वाजिभिश्च महाजवैः ॥ १६ ॥

श्स्त्रैश्च विविधैस्तीक्ष्णैः सर्वैश्चोपहिता बलैः ।
ततस्तु ददृशुर्वीरा दीप्यमानं महाकपिम् ॥ १७ ॥

तथा अग्नि के समान तेजस्वी राक्षस सेनापति रथ, मतवाले हाथी, शीघ्रगामी घोड़े और विविध प्रकार के पैने शस्त्रों से युक्त अपनी अपनी सुसज्जित सेना के साथ प्रस्थानित हुए और यद्धक्षेत्र में जाकर उन लोगों ने अत्यन्त दीप्तिमान वीर हनुमान जी को देखा ॥१६-१७॥

रश्मिमन्तमिवोद्यन्तं स्वतेजोरश्मिमालिनम् ।
तोरणस्थं महावेगं महासत्त्वं महाबलम् ॥ १८॥

महामतिं महोत्साहं महाकायं महाभुजम् ।
तं समीक्ष्यैव ते सर्वे दिक्षु सर्वास्ववस्थिताः ॥१९ ॥

उस समय उस फाटक के ऊपर बैठे हुए, उदित सूर्य की तरह दीप्तिमान, महाबलवान, महावेगवान, महाविक्रमवान, महाबुद्धिमान महाउत्साही, महाकपि और महाभुज हनुमान जी को देख कर और उनसे भयभीत होकर वह सभी सब राक्षस दूर हट कर खड़े हो गए ॥१८-१९॥

तैस्तैः प्रहरणैर्भीमैरभिपेतुस्ततस्ततः ।
तस्य पञ्चायसास्तीक्ष्णाः सिताः पीतमुखाः शराः ॥ २० ॥

और चारों ओर से भयंकर अस्त्र शस्त्र चलाने लगे। लोहे के बने हुए पैने, पीले रंग के पांच बाण ॥२०॥

शिरस्युत्पलपत्राभा दुर्धरेण निपातिताः ।
स तैः पञ्चभिराविद्धः शरैः शिरसि वानरः ॥ २१ ॥

जो कमलपुष्प के आकार के थे, दुर्धर नामक राक्षस ने हनुमान जो को मारे । वह पांच बाण हनुमान जी के मस्तक में जा कर लगे ॥२१॥

उत्पपात नदन् व्योम्नि दिशो दश विनादयन् ।
ततस्तु दुर्धरो वीरः सरथः सज्जकार्मुकः ॥ २२॥

तब तो हनुमान जी सिंहनाद करते और उस सिंहनाद से दसों दिशाओं को प्रतिध्वनित करते, छलांग मार कर आकाश में पहुँच गये। यह देखकर रथ में बैठा हुए दुर्धर अपने धनुष को चढ़ा कर ॥२२॥

किरञ्शरशतैर्नैकैरभिपेदे महाबलः ।
स कपिर्वारयामास तं व्योम्नि शरवर्षिणम् ॥ २३॥

सैकड़ों बाण छोड़ता हुआ हनुमान जी का पीडा पहुंचाने लगा। उस बाणवृष्टि करने वाले राक्षस के चलाये बाणों को आकाश में रह कर हनुमान जी ने अपनी हुंकार से वैसे ही रोक दिया ॥२३॥

वृष्टिमन्तं पयोदान्ते पयोदमिव मारुतः ।
अर्द्यमानस्ततस्तेन दुर्धरेणानिलात्मजः ॥ २४॥

जैसे शरदऋतु में पवन, बादलों को जल वर्षा करने से रोकता है। किन्तु जब दुर्धर राक्षस बाण वृष्टि से हनुमान जी को अधिक पीड़ा देने लगा ॥२४॥

चकार निनदं भूयो व्यवर्धत च वीर्यवान् ।
स दूरं सहसोत्पत्य दुर्धरस्य रथे हरिः ॥ २५॥

तब वेगवान हनुमान जी पुनः विकट गर्जना करते हुए अपने शरीर को बढ़ाने लगे। तदनन्तर वह महावेग शाली वानरवीर एक साथ बहुत तक उछल कर दुर्धर के रथ पर ऐसे कूद पड़े॥२५॥

निपपात महवेगो विद्युद्राशिर्गिराविव ।
ततः स मथिताष्टाश्वं रथं भग्नाक्षकूबरम् ॥ २६॥

जैसे बिजली समूह पहाड़ पर गिरता है। उनके भार से आठों घोड़ों सहित वह रथ धुरी और कूबर सहित चकना चूर हो गया ॥२६॥

विहाय न्यपतद् भूमौ दुर्धरस्त्यक्तजीवितः ।
तं विरूपाक्षयूपाक्षौ दृष्ट्वा निपतितं भुवि ॥ २७॥

और दुर्धर राक्षस रथ से पृथिवो पर गिर कर मर गया। तब दुर्धर को पृथिवी पर मरा हुआ पड़ा देख, शत्रुओं का दमन करने वाले दुर्धुष वीर विरूपाक्ष और यूपाक्ष ॥२७॥

तौ जातरोषौ दुर्धर्षावुत्पेततुररिन्दमौ ।
स ताभ्यां सहसोत्प्लुत्य विष्ठितो विमलेऽम्बरे ॥ २८॥

दोनों राक्षस महाक्रुद्ध होकर उछले और हनुमान जी को निर्मल आकाश में जाकर घेर लिया ॥२८॥

मुद्गराभ्यां महाबाहुर्वक्षस्यभिहतः कपिः ।
तयोर्वेगवतोर्वेगं निहत्य स महाबलः ॥ २९ ॥

और उन दोनों ने मुद्गरों से हनुमान जी की छाती पर प्रहार किया। तब हनुमान जी ने उनके प्रहार को सह कर और उन वेगवान वीरों के घात को बचा कर ॥२६॥

निपपात पुनर्भूमौ सुपर्ण इव वेगितः ।
स सालवृक्षमासाद्य तमुत्पाट्य च वानरः ॥ ३०॥

गरुड़ की समान वेग के साथ पुन: पृथिवी पर कूद पड़े। तदनन्तर उन्होंने एक साल के पेड़ को पकड़ कर उखाड़ लिया ॥३०॥

तावुभौ राक्षसौ वीरौ जघान पवनात्मजः ।
ततस्तांस्त्रीन् हताञ्ज्ञात्वा वानरेण तरस्विना ॥ ३१॥

और फिर उसी पेड़ के आघात से उन्होंने उन दोनों राक्षसों को मार डाला। बलवान् हनुमान जी द्वारा उन तीनों राक्षसों को मरा हुआ देखकर, ॥३१॥

अभिपेदे महावेगः प्रसह्य प्रघसो बलि ।
भासकर्णश्च संक्रुद्धः शूलमादाय वीर्यवान् ॥ ३२॥

महावेगवान प्रघस नामक राक्षससेनापति अट्टहास करता हुआ, हनुमान जी के निकट गया और दूसरी ओर से बलशाली भासकर्ण भी शूल हाथ में ले और प्रत्यन्त क्रुद्ध होकर ॥३६॥

एकतः कपिशार्दूलं यशस्विनमवस्थितौ ।
पट्टिशेन शिताग्रेण प्रघसः प्रत्ययोथयत् ॥ ३३॥

यशस्वी हनुमान जी के एक ओर जाकर खड़ा हो गया। तब प्रघस तेज धार वाले पट्टिश से हनुमान की से लड़ने लगा ॥३३॥

भासकर्णश्च शूलेन राक्षसः कपिकुञ्जरम् ।
स ताभ्यां विक्षतैर्गात्रैरसृग्दिग्धतनूरुहः ॥ ३४॥

और राक्षस भासकर्ण ने भी हाथ में त्रिशूल लेकर कपिकुंजर हनुमान जी पर आक्रमण किया। उन दोनों के संयुक्त आघात से हनुमान जी के शरीर में कई जगह घाव हो गये और उनसे रुधिर बहने लगा ॥३४॥

अभवद् वानरः क्रुद्धो बालसूर्यसमप्रभः ।
समुत्पाट्य गिरेः शृङ्गं समृगव्यालपादपम् ॥ ३५॥

तब प्रातःकालीन सूर्य के समान कान्ति वाले हनुमान जी अत्यन्त कुपित हुए और मृग, सांप और पेड़ों सहित एक पहाड़ के शिखर को उखाड़ कर ॥३५॥

जघान हनुमान् वीरो राक्षसौ कपिकुञ्जरः ।
ततस्तेष्ववसन्नेषु सेनापतिषु पञ्चसु ॥ ३६॥

वीर कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने उन दोनों पर दे मारा जिसके आघात से वह दोनों भी तुरंत मर गए। इस प्रकार उन पांचों राक्षस सेनापतियों को मार कर ॥३६॥

बलं तदवशेषं च नाशयास वानरः ।
अश्वैरश्वान् गजैर्नागान् योधैर्योधान् रथै रथान् ॥ ३७॥

हनुमान जी ने बची हुई राक्षससेना का संहार किया। उन्हें मारने के लिये उन्हें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ी। उन्होंने घोड़े से घोड़े को, हाथी से हाथी को, सैनिक से सैनिक को और रथ से स्थ को मार मार कर नष्ट कर डाला ॥३७॥

स कपिर्नाशयामास सहस्राक्ष इवासुरान् ।
हयैर्नागैस्तुरंगैश्च भग्नाक्षैश्च महारथैः ।
हतैश्च राक्षसैर्भूमी रुद्धमार्गा समन्ततः ॥ ३८॥

वानरवीर हनुमान जी ने इन राक्षसों का वैसे ही संहार किया जैसे इन्द्र असुरों का संहार करते हैं। उन मरे हुए हाथियों, घोड़ों, टूटे हुए बड़े बड़े रथों से तथा मरे हुए राक्षसों से उस रणक्षेत्र में सभी ओर से आने जाने का मार्ग बंद हो गया ॥३८॥

ततः कपिस्तान् ध्वजिनीपतीन् रणे
निहत्य वीरान् सबलान् सवाहनान् ।
समीक्ष्य वीरः परिगृह्य तोरणं
कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये ॥ ३९॥

इस प्रकार पांच वीर सेनापतियों को उनकी सेना तथा वाहनों सहित युद्ध में मार कर महावीर हनुमान जी अवसर पाकर प्रलयकालीन प्रजाक्षयकारी काल की तरह, पुनः उसी फाटक के ऊपर चढ़ कर बैठ गए॥३९॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का छियालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ सप्तचत्वारिंशः सर्गः सैंतालिसवाँ सर्ग॥

रावणेरक्षस्य पराक्रमे वधश्च -युद्ध क्षेत्र में रावण पुत्र अक्षय कुमार का पराक्रम तथा हनुमान जी द्वारा उसका वध

सेनापतीन् पञ्च स तु प्रमापितान् हनूमता सानुचरान् सवाहनान् ।
समीक्ष्य राजा समरोद्धतोन्मुखं कुमारमक्षं प्रसमैक्षताक्षम् ॥ १॥

राक्षसराज रावण ने जब यह सुना कि, हनुमान जी ने उन पांच सेनापतियों को उनकी सेना तथा वाहनों सहित नष्ट कर डाला है, तब उसने लड़ने के लिये उद्यत और अपने सामने बैठे हुए पुत्र अक्षयकुमार की ओर देखा ॥१॥

स तस्य दृष्ट्यर्पणसम्प्रचोदितः प्रतापवान् काञ्चनचित्रकार्मुकः ।
समुत्पपाताथ सदस्युदीरितो द्विजातिमुख्यैर्हविषेव पावकः ॥ २॥

पिता के मात्र दृष्टि पात से प्रेरित होकर वह प्रतापी और अद्भुत सुवर्णभूषित धनुषधारी अक्षयकुमार राज सभा से तुरन्त ऐसे उठ खड़ा हुआ जैसे यज्ञशाला में ब्राह्मणों द्वारा हविष्य की आहुति देने पर अग्नि की शिखा उठती है ॥२॥

ततो महान् बालदिवाकरप्रभं प्रतप्तजाम्बूनदजालसन्ततम् ।
रतं समास्थाय ययौ स वीर्यवान् महाहरिं तं प्रति नैर्ऋतर्षभः ॥३॥

वह राक्षस श्रेष्ठ महाबली। रावणकुमार, सूर्य के समान दीति मान, सुवर्णभूषित रथ पर सवार होकर, हनुमान जी से युद्ध करने के लिए रवाना हुआ ॥३॥

ततस्तपःसंग्रहसंचयार्जितं प्रतप्तजाम्बूनदजालसन्ततम् ।
पताकिनं रत विभूषितध्वजं मनोजवाष्टाश्ववरैः सुयोजितम् ॥ ४ ॥

यह रथ बड़ी तपस्या के द्वारा प्राप्त हुआ था और रत्नजड़ित ध्वजा पताकाओं से भली भांति सुसज्जित था। मन के समान तेज़ चलने वाले आठ घोड़े उसमें जुते हुए थे॥४॥

सुरासुराधृष्यमसङ्गचारिणं तडित्प्रभं व्योमचरं समाहितम् ।
सतूणमष्टासिनिबद्धबन्धुरं यथाक्रमावेशितशक्तितोमरम् ॥ ५॥

देवता और असुरों से अजेय, बिना किसी के सहारे चलने वाला, सूर्य की तरह प्रकाशित, आकाश में उड़ने की शक्ति रखने वाला, तीरों

से भरे हुए तरकशों सहित, आठ खड्गों से युक्त, जिसमें यथोचित स्थानों पर पैनी पैनो शक्तियाँ और तोमर रखे हुए थे ॥५॥

विराजमानं प्रतिपूर्णवस्तुना सहेमदाम्ना शशिसूर्यवर्चसा ।
दिवाकराभं रथमास्थितस्ततः स निर्जगामामरतुल्यविक्रमः ॥ ६॥

जो समस्त संग्राम की सामग्री से युक्त, सोने की डोरियों से कसा हुआ एवं चन्द्रमा और सूर्य को तरह चमकदार था। इस प्रकार के सूर्य के समान चमकीले रथ पर सवार होकर, देवताओं के समान पराक्रमी अक्षयकुमार राजमहल से बाहर निकला ॥६॥

स पूरयन् खं च महीं च साचलां तुरङ्गमातङ्गमहारथस्वनैः ।
बलैः समेतैः स हि तोरणस्थितं समर्थमासीनमुपागमत् कपिम् ॥७॥

सेना के घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों को चिंघाड़ और रथों के चलने की गड़गड़ाहट से आकाश, पृथिवी और पर्वतों को प्रतिध्वनित करता हुआ, अक्षयकुमार सेना को साथ लिये हुए, फाटक पर बैठे हुए अति समर्थवान् हनुमान जी के निकट आ पहुंचा ॥७॥

स तं समासाद्य हरिं हरीक्षणो युगान्तकालाग्निमिव प्रजाक्षये ।
अवस्थितं विस्मितजातसम्भ्रमं समैक्षताक्षो बहुमानचक्षुषा ॥ ८॥

सिंह के समान कर दृष्टि वाले अक्षय कुमार ने विस्मित हो कर, प्रलयकालीन प्रजाक्षयकारी अग्निदेव के तुल्य हनुमान जी को बड़ी गर्व भरी दृष्टि से देखने लगा ॥८॥

स तस्य वेगं च कपेर्महात्मनः पराक्रमं चारिषु रावणात्मजः ।
विचारयन् स्वं च बलं महाबलो युगक्षये सूर्य इवाभिवर्धत ॥ ९॥

महाबलवान अक्षय , धैर्यवान हनुमान जी का बल और शत्रु के प्रति उनके पराक्रम तथा अपने बलाबल पर विचार कर, प्रलयकालीन सूर्य की तरह अपनी उग्रता बढ़ाने लगा ॥९॥

स जातमन्युः प्रसमीक्ष्य विक्रमं स्थिरं स्थितः संयति दुर्निवारणम्।
समाहितात्मा हनुमन्तमाहवे प्रचोदयामास शितैः शरैस्त्रिभिः ॥१०॥

हनुमान द्वारा राक्षसों के विध्वंस पर दृष्टिपात करके उसे क्रोध आ गया और उसने एकाग्रचित्त होकर तीन पैने बाण चला कर संग्राम के लिये उद्यत और दुर्निवार्य हनुमान जी को युद्ध करने के लिये प्रेरित किया ॥१०॥

ततः कपिः तं प्रसमीभ्य गर्वितं जितश्रमं शत्रुपराजयोचितम् ।
अवैक्षताक्षः समुदीर्णमानसः स बाणपाणिः प्रगृहीतकार्मुकः ॥११॥

तदनन्तर हनुमान जी को उन बाणों से अविचलित, शत्रु को पराजित करने के योग्य से गर्वित और युद्ध के लिये उत्साहित देख कर फुर्तीले अक्षय ने बाण सहित धनुष को हाथ में लिया॥११॥

स हेमनिष्काङ्गदचारुकुण्डलः समाससादाशुपराक्रमः कपिम्।
तयोर्बभूवाप्रतिमः समागमः सुरासुराणामपि सम्भ्रमप्रदः ॥ १२॥

सवर्ण के बने बाजू और सुन्दर कुण्डल धारण किये, वह शीघ्र पराक्रमी रावण कुमार ने हनुमान जी पर आक्रमण किया। उन दोनों का यह अनुपम युद्ध समागम, देव और दैत्यों को भी भयप्रद था ॥१२॥

ररास भूमिर्न तताप भानुमान् ववौ न वायुः प्रचचाल चाचलः ।
कपेः कुमारस्य च वीर्यसंयुगं ननाद च द्यौरुदधिश्च चुक्षुभे ॥ १३॥

हनुमान जी और अक्षय की लड़ाई देखकर भूतल से समस्त प्राणी संतप्त होकर चीखने लगे, सूर्य का ताप मन्द पड़ गया, वायु की गति बन्द हो गयी, पहाड़ कांप उठे, आकाश गूंजने लगा और समुद्र खलबलाने लगा॥१३॥

ततः स वीरः सुमुखान् पतत्त्रिणः
सुवर्णपुङ्खान् सविषानिवोरगान् ।
समाधिसंयोगविमोक्षतत्त्वविच्छरानथ
त्रीन् कपिमूर्ध्न्यपातयत् ॥१४॥

निशाना साधने, बाण को धनुष पर चढाने और उनको लक्ष्य की ओर छोड़ने में कुशल वीर अक्षयकुमार ने सुवर्णमय, सुन्दर पुंखयुक्त एवं विषैले सर्पों के समान तीन बाण हनुमान, जी के सिर में मारे ॥१४॥

स तैः शरैर्मूर्ध्नि समं निपातितैः क्षरन्नसृग्दिग्धविवृत्तनेत्रः ।
नवोदितादित्यनिभः शरांशुमान् व्यराजतादित्य इवांशुमालिकः ॥१५॥

एक साथ तीन बाणों के लगने से हनुमान जी के सिर से खून की धार बह निकली और उनके नेत्रों घूमने लगे किन्तु उस समय हनुमान जी ऐसे शोभायमान हुए, जैसे उदय कालीन सूर्य शोभायमान होते हैं और उनके मस्तक में बिंधे हुए बाण किरणों की तरह शोभा देने लगे ॥१५॥

ततः प्लवङ्गाधिपमन्त्रिसत्तमः समीक्ष्य तं राजवरात्मजं रणे ।
उदग्रचित्रायुधचित्रकार्मुकं जहर्ष चापूर्यत चाहवोन्मुखः ॥ १६॥

तब वानरराज सुग्रीव के श्रेष्ठ मंत्री, श्रीहनुमान जी उस राक्षसराज के पुत्र अक्षयकुमार को, जो अति उत्तम और अद्भुत आयुधों और धनुष को ले लड़ रहा था, देख कर, हर्ष और उत्साह से भर गए और युद्ध के लिए उत्साहित होकर अपना शरीर बढ़ाने लगे ॥१६॥

स मन्दराग्रस्थ इवांशुमाली विवृद्धकोपो बलवीर्यसंवृतः ।
कुमारमक्षं सबलं सवाहनं ददाह नेत्राग्निमरीचिभिस्तदा ॥ १७॥

वह मन्दराचल पर स्थित सूर्य की तरह, कान्तिमान बल और विक्रम से युक्त हनुमान जी अत्यन्त क्रुद्ध हुए और नेत्राग्नीमयी किरणों से सेना सहित अक्षयकुमार को भस्म करने लगे ॥१७॥

ततः स बाणासनशक्रकार्मुकः शरप्रवर्षो युधि राक्षसाम्बुदः ।
शरान् मुमोचाशु हरीश्वराचले बलाहको वृष्टिमिवाचलोत्तमे ॥१८॥

जिस प्रकार मेघ पर्वतों पर जल की वृष्टि किया करते हैं; उसी प्रकार उस युद्ध में अक्षयकुमार रूपी बादल, हनुमान रूपी पर्वत पर, अपने अद्भुत धनुष से बाणरूपी जल की वृष्टि करने लगा॥१८॥

कपिस्ततस्तं रणचण्डविक्रमं विवृद्धतेजोबलवीर्यसायकम् ।
कुमारमक्षं प्रसमीक्ष्य संयुगे ननाद हर्षाद् घनतुल्यनिःस्वनः ॥१९॥

जब हनुमान जी ने देखा कि, अक्षयकुमार अत्यंत प्रचंड पराक्रमी है और बड़ी तेजी से तथा पराक्रम के साथ बाण चलाता हुआ युद्ध कर रहा है । तब वह हर्ष और उत्साह में भर कर मेघ के समान भयंकर गर्जना करने लगे ॥१९॥

स बालभावाद् युधि वीर्यदर्पितः प्रवृद्धमन्युः क्षतजोपमेक्षणः ।
समाससादाप्रतिमं कपिं रणे गजो महाकूपमिवावृतं तृणैः ॥ २०॥

संग्राम में बल के घमंड में भरे हुए अक्षयकुमार को उनकी गर्जना सुनकर अत्यंत क्रोध किया और क्रोध के मारे उसके दोनों नेत्र रक्त के समान लाल हो गये थे। वह अपने बालोचित अज्ञान के कारण वह उसी प्रकार हनुमान जी के पास युद्ध करता हुआ चला जाता था जिस प्रकार हाथी घास फूस से ढके हुए अंधे कुएँ की ओर अग्रसर होता है। ॥२०॥

स तेन बाणैः प्रसभं निपातितैश्चकार नादं घननादनिस्वनः ।
समुत्सहेनाशु नभः समारुजन् भुजोरुविक्षेपणघोरदर्शनः ॥ २१॥

बहुत से बाणों के लगने से हनुमान जी उत्साह पूर्वक गर्जते हुए आकाश की ओर उड़े। उस समय उनकी भुजाओं और जाँघों के हिलने से उनका रूप देख बड़ा भयंकर दिखाई देता था ॥ २१॥

समुत्पतन्तं समभिद्रवद् बली स राक्षसानां प्रवरः प्रतापवान् ।
रथी रथश्रेष्ठतरः किरञ्छरैः पयोधरः शैलमिवाश्मवृष्टिभिः ॥ २२॥

हनुमान जी को उड़ कर आकाश में पहुँचते देखकर तब राक्षस श्रेष्ठ, शूरवीर, प्रतापी एवं बलवान अक्षयकुमार उन पर बाणों की वर्षा करता हुआ वैसे ही पीछा करने लगा जैसे मेघ पर्वत पर ओलों की वर्षा करते हैं॥२२॥

स ताञ्छरांस्तस्य हरिर्विमोक्षयश्चचार वीरः पथि वायुसेविते ।
शरान्तरे मारुतवद् विनिष्पतन् मनोजवः संयति भीमविक्रमः ॥२३॥

युद्ध में भयंकर विक्रम दिखाने वाले और मन से भी अधिक वेगगामी वीर पवननन्दन हनुमान जी, पवनदेव की तरह बाणों की घात को बचाते बाणों के बीच में घूम रहे थे ॥२३॥

तमात्तबाणासनमाहवोन्मुखं खमास्तृणन्तं विशिखैः शरोत्तमैः ।
अवैक्षताक्षं बहुमानचक्षुषा जगाम चिन्तां स च मारुतात्मजः ॥२४॥

जब हनुमान जी ने देखा कि, अक्षयकुमार ने हाथ में घनुष लेकर युद्ध के लिए उन्मुख होकर विविध प्रकार के बाणों से आकाश ही को आच्छादित कर दिया है, तब हनुमान जी ने अक्षय को सम्मान को दृष्टि से देख कर, मन ही मन सोचने लगे ॥२४॥

ततः शरैर्भिन्नभुजान्तरः कपिः कुमारवर्येण महात्मना नदन् ।
महाभुजः कर्मविशेषतत्त्वविद् विचिन्तयामास रणे पराक्रमम् ॥२५॥

इतने में जब वीर अक्षयकुमार ने हनुमान जी की छाती में अनेक बाण मारे, जिससे उनके वक्षस्थल में गहरा आघात पहुंचा; तब समोचित कर्तव्य विशेष को विशेष रूप से जानने वाले महाबाहु वानर वीर सिंहनाद करते हुए अक्षय के युद्ध सम्बन्धी पराक्रम के विषय में विचार करने लगे॥२५॥

अबालवद् बालदिवाकरप्रभः करोत्ययं कर्म महन्महाबलः ।
न चास्य सर्वाहवकर्मशालिनः प्रमापणे मे मतिरत्र जायते ॥ २६॥

और मन ही मन कहने लगे कि, प्रातःकालीन सूर्य की तरह कान्तिमान, महाबली एवं धैर्यशाली अक्षय ने वीर पुरुष की तरह कार्य किया है। युद्ध के समस्त कर्मों में यह कुशल है। अतः ऐसे रणकुशल वीर का वध करने की इस समय मेरी इच्छा नहीं होती ॥२६॥

अयं महात्मा च महांश्च वीर्यतः समाहितश्चातिसहश्च संयुगे ।
असंशयं कर्मगुणोदयादयं सनागयक्षेर्मुनिभिश्च पूजितः ॥ २७॥

यह धैर्य सम्पन्न अक्षय, बड़ा बलवान है, युद्ध करने को तत्पर है और अतिशय क्लेश सहिष्णु तथा कार्यकुशल है। कार्यकुशल और गुणवान होने के कारण, यह नाग, यक्ष, और ऋषियों द्वारा यह सत्कार किये जाने योग्य है ॥२७॥

पराक्रमोत्साहविवृद्धमानसः समीक्षते मां प्रमुखागतः स्थितः ।
पराक्रमो ह्यस्य मनांसि कम्पयेत् सुरासुराणामपि शीघ्रकारिणः
॥२८॥

पराक्रम और उत्साह से इसके मन का उत्साह बढ़ा चढ़ा हुआ है। यह मेरे सामने खड़ा मेरी ओर देख रहा है, इस शीघ्रता पूर्वक युद्ध करने वाले और रणबाँकुरे का पराक्रम देवताओं और दैत्यों के मन को भी भयभीत करने वाला है ॥२८॥

न खल्वयं नाभिभवेदुपेक्षितः पराक्रमो ह्यस्य रणे विवर्धते ।
प्रमापणं ह्यस्य ममाद्य रोचते न वर्धमानोऽग्निरुपेक्षितुं क्षमः ॥२९॥

किन्तु युद्ध में इसका पराक्रम वढ़ता ही जा रहा है, उस पर ध्यान न देकर, यदि मैंने अब इसकी उपेक्षा की, तो यह निस्सन्देह मुझ पराजित कर देगा। अतः अब वध करना ही मुझे अच्छा जान पड़ता है। क्योंकि बढ़ती हुई अग्नि की उपेक्षा करनी ठीक नहीं होता ॥२६॥

इति प्रवेगं तु परस्य तर्कयन् स्वकर्मयोगं च विधाय वीर्यवान् ।
चकार वेगं तु महाबलस्तदा मतिं च चक्रेऽस्य वधे तदानीम् ॥३०॥

इस प्रकार महावली हनुमान जी ने शत्रु के पराक्रम को विचार कर उसके प्रतिकार के लिए अपना कर्तव्य स्थिर कर बडी शीघ्रता अपना वेग बढ़ा कर उसके वध में तत्पर हुए ॥३०॥

स तस्य तानष्ट वरान् महाहयान् समाहितान् भारसहान् विवर्तने ।
जघान वीरः पथि वायुसेविते तलप्रहारैः पवनात्मजः कपिः ॥ ३१॥

ऐसा निश्चय कर, पवनानन्दन महाबली हनुमान जी ने आकाश में विचरते हुए और बड़े भार को सहन करने वाले वाले तथा अनेक प्रकार के चक्कर काटने में कुशल, अक्षय कुमार के रथ के आठों

घोड़ों को आकाश ही में थप्पडो की मार से यमलोक पहुंचा दिया ॥३१॥

ततस्तलेनाभिहतो महारथः स तस्य पिङ्गाधिपमन्त्रिनिर्जितः ।
स भग्ननीडः परिवृत्तकूबरः पपात भूमौ हतवाजिरम्बरात् ॥ ३२॥

सुग्रीव के मंत्री हनुमान जी के थप्पड़ों से उस बड़े रथ के घोड़े मारे गये और उसके रथ की बैठक टूट गयी और युगंधरखुल जाने के कारण, वह रथ आकाश से गिर पड़ा ॥३२॥

स तं परित्यज्य महारथो रथं सकार्मुकः खड्गधरः खमुत्पतन् ।
तपोभियोगादृषिरुग्रवीर्यवान् विहाय देहं मरुतामिवालयम् ॥३३॥

महाबलवान अक्षय उस रथ को छोड़, हाथ में तलवार और धनुष लेकर, फिर आकाश में वैसे ही जा पहुँचा, जैसे तपः प्रभाव से उग्रतपस्वी ऋषि, देह त्याग कर स्वर्ग में पहुँच जाते हैं।॥३३॥

कपिस्ततस्तं विचरन्तमम्बरे पतत्त्रिराजानिलसिद्धसेविते ।
समेत्य तं मारुततुल्यविक्रमः क्रमेण जग्राह स पादयोर्दृढम् ॥३४॥

तब पवनतुल्य पराक्रमी हनुमान जी ने, आकाश में घूमते फिरते और युद्ध करते हुए अक्षयकुमार के दोनों पैरों को बड़ी दृढ़ता से पकड़ा ॥३४॥

स तं समाविध्य सहस्रशः कपिर्महोरगं गृह्य इवाण्डजेश्वरः ।
मुमोच वेगात् पितृतुल्यविक्रमो महीतले संयति वानरोत्तमः ॥३५॥

और जैसे गरुड़ किसी बड़े सांप को पकड़ झकझोर डालते हैं, उसी प्रकार अक्षय को सहस्रों बार झकझोर कर और घुमा कर, अपने पिता पवन के समान पराक्रम शाली हनुमानजी ने संग्रामभूमि में पटक दिया ॥३५॥

स भग्नबाहूरुकटीशिरोधरः क्षरन्नसृङ्निर्मथितास्थिलोचनः ।
सम्भिन्नसन्धिः प्रविकीर्णबन्धनो हतः क्षितौ वायुसुतेन राक्षसः ॥३६॥

उस पटकनी से अक्षय की बांहे. जाँघे, कमर, सिर और छाती चूर चूर हो गये और रक्त की धारा बह निकली। उसकी हड्डी चूर चूर हो गयी तथा आँखें बाहर निकल पड़ीं। समस्त अस्थियों के जोड़ खुल गये और नस नाड़ियों के बंधन भी बिखर गये। इस प्रकार पवननन्दन हनुमान जी ने उस राक्षस को मार डाला ॥३६॥

महाकपिर्भूमितले निपीड्य तं चकार रक्षोऽधिपतेर्महद्भयम् ।
महर्षिभिश्चक्रचरैः महागतैः समेत्य भूतैश्च सयक्षपन्नगैः ।
सुरैश्च सेन्द्रैर्भृशजातविस्मयैर्हते कुमारे स कपिर्निरीक्षितः ॥ ३७॥

हनुमान जी अक्षयकुमार को पृथ्वी पर पटक कर, उसी पर कूद पड़े और इस प्रकार उन्होंने रावण के मन में महाभय उत्पन्न कर दिया। अक्षयकुमार के मारे जाने पर नक्षत्र मंडल में विचरने वाले महर्षि,

ग्रह, यक्ष और नाग तथा इन्द्र सहित समस्त देवगण वहाँ एकत्र होकर अत्यंत विस्मित होकर हनुमान जी को निहारने लगे ॥३७॥

निहत्य तं वज्रिसुतोपमं रणे कुमारमक्षं क्षतजोपमेक्षणम् ।
तदेव वीरोऽभिजगाम तोरणं कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये ॥३८॥

युद्ध में इंद्र के पुत्र जयंत की भांति दृढ़ और लाल नेत्रों वाले अक्षयकुमार का वध करके और युद्ध से अवकाश पाकर, वीर हनुमान, प्रलयकालीन काल की तरह, फाटक के ऊपर पुनः जा बैठे ॥३९॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का सैतालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥अष्टचत्वारिंशः सर्गः अड़तालिसवाँ सर्ग ॥

इन्द्रजिद्धनुमतोर्युद्धमिन्द्रजिद्दिव्यास्त्रबन्धनबद्धस्य हनुमतो रावणस्य राजसभायां गमनम् – इन्द्रजीत और हनुमान जी का युद्ध तथा ब्रहामस्त्र की मर्यादा रखते हुए हनुमान जी का उसमें बंध कर रावण की राजसभा में आगमन

ततस्तु रक्षोधिपतिर्महात्मा हनूमताक्षे निहते कुमारे ।
मनः समाधाय स देवकल्पं समादिदेशेन्द्रजितं सरोषः ॥ १ ॥

तदनन्तर हनुमान जी द्वारा अक्षयकुमार के मारे जाने पर, राक्षसराज रावण ने कुपित होते हुए भी धैर्य धारण किया तथा इन्द्र के समान पराक्रमी इन्द्रजीत मेघनाद को युद्ध में जाने की आज्ञा दी॥१॥

त्वमस्त्रविच्छस्त्रभृतां वरिष्ठः सुरासुराणामपि शोकदाता ।
सुरेषु सेन्द्रेषु च दृष्टकर्मा पितामहाराधनसञ्चितास्त्रः ॥ २ ॥

आज्ञा देते हुए उसने मेघनाद से कहा- हे पुत्र ! तुम ब्रह्मास्त्र को जानने वाले, शस्त्र चलाने वालों में श्रेष्ठ और देवता तथा असुरों को भी शोक प्रदान करने वाले हो। इन्द्रादि समस्त देवता तुम्हारे युद्धविक्रम को देख चुके हैं और ब्रह्मा जी की आराधना करके तुमने अनेक अस्त्रों को प्राप्त किया है ॥२॥

तवास्त्रबलमासाद्य नासुरा न मरुद्गणाः ।
न शेकुः समरे स्थातुं सुरेश्वरसमाश्रिताः ॥ ३ ॥

तुम्हारे अस्त्रों के सामने, उनचास मरुद्गण सहित समस्त देवता, इन्द्र का आश्रय पाकर भी, युद्ध में खड़े नहीं रह सकते॥३॥

न कश्चित् त्रिषु लोकेषु संयुगेन गतश्रमः ।
भुजवीर्याभिगुप्तश्च तपसा चाभिरक्षितः ।
देशकालप्रधानश्च त्वमेव मतिसत्तमः ॥ ४ ॥

तीनो लोकों में मुझे ऐसा कोई नहीं दिखाई देता, जो युद्ध में तुमसे परास्त न हुआ हो। तुम अपने भुजबल और तपोबल से सभी प्रकार से सुरक्षित हो। तुम देश और काल के जानने वाले और बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हो॥४॥

न तेऽस्त्यशक्यं समरेषु कर्मणां न तेऽस्त्यकार्यं मतिपूर्वमन्त्रणे ।
न सोऽस्ति कश्चित् त्रिषु संग्रहेषु न वेद यस्तेऽस्त्रबलं बलं च ते ॥५॥

युद्धकला में कोई ऐसा कार्य नहीं, जिसे तुम नहीं कर सकते। विवेक पूर्वक विचार करने पर तुमसे कोई बात अविदित नहीं रह सकती अर्थात तुम्हारे लिए कुछ भी असंभव नहीं है। त्रिलोकी में ऐसा कोई वीर नहीं है, जो तुम्हारे अस्त्रबल और शारीरिक बल को नहीं जानता हो ॥५॥

ममानुरूपं तपसो बलं च ते पराक्रमश्चास्त्रबलं च संयुगे ।
न त्वां समासाद्य रणावमर्दे मनः श्रमं गच्छति निश्चितार्थम् ॥ ६ ॥

तुम्हारा तपोबल, शारीरिक बल, पराक्रम, अस्त्रबल और युद्धकला मेरे ही समान है। रणसंकट के समय मुझे जब तुम्हारा स्मरण हो जाता है, तब मुझे अपने विजय निश्चित दिखाई देती है और तब मेरे मन की समस्त चिन्ताएँ और विषाद दूर हो जाते हैं॥६॥

निहताः किङ्कराः सर्वे जम्बुमाली च राक्षसः ।
अमात्यपुत्रा वीराश्च पञ्च सेनाग्रगामिनः ॥ ७ ॥

देखो, अस्सी हज़ार किंकर राक्षस, प्रहस्त पुत्र जम्बूमाली, सात वीर मन्त्रिपुत्र और पांच वीर सेनापति, हाथी, घोड़े और रथों सहित अत्यंत बलशाली सेना-यह सभी मारे जा चुके हैं ॥७॥

बलानि सुसमृद्धानि साश्वनागरथानि च ।
सहोदरस्ते दयितः कुमारोऽक्षश्च सूदितः ।

न तु तेष्वेव मे सारो यस्त्वय्यरिनिषूदन ॥ ८ ॥

तुम्हारा प्यारा सगा भाई अक्ष कुमार भी मारा जा चुका है। हे शत्रुनिषूदन! मैं उन सब में तुम्हारे समान बल का होना नहीं मानता, तुम उन सब से बढ़ कर बलवान हो। ॥८॥

इदं च दृष्ट्वा निहतं महद् बलं कपेः प्रभावं च पराक्रमं च ।
त्वमात्मनश्चापि समीक्ष्य सारं कुरुष्व वेगं स्वबलानुरूपम् ॥ ९ ॥

अतः अब तुम उस वानर की अन्तःशक्ति और पुरुषार्थ तथा अपना वल पर विचार कर, सामर्थ्यानुसार अपना बल दिखलाओ ॥९॥

बलावमर्दस्त्वयि संनिकृष्टे यथा गते शाम्यति शान्तशत्रौ ।
तथा समीक्ष्यात्मबलं परं च समारभस्वास्त्रभृतां वरिष्ठ ॥ १०॥

हे शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ वीर! तुम अपने और और वानर का बल विचार कर कुछ ऐसा करो जिससे तुम्हारे युद्धक्षेत्र में जाते ही मेरी सेना का नाश होना रुक हो जाए। ॥१०॥

न वीर सेना गणशश्च्यवन्ति न वज्रमादाय विशालसारम् ।
न मारुतस्यास्ति गतिप्रमाणं न चाग्निकल्पः करणेन हन्तुम् ॥११॥

हे वीर! तुम्हे अपने साथ सेना ले जाने की भी कुछ आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह बलवान शत्रु के सामने या तो भाग जाती हैं या मारी जाती हैं। इसी प्रकार अधिक तीक्ष्णता और कठोरता वाले वज्र ले

जाने की भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि हनुमान के लिये बड़ा भारी वज्र भी निष्फल सिद्ध हो चुका है। वह वायु का पुत्र है और वायु की गति की सीमा ही क्या है ? अतः वज्र उस पर निष्फल है। फिर यदि या विचार करो कि, उसके समीप जा कर उसे मुक्कों और थप्पड़ों से मारा जाए, तो यह भी ठीक नहीं-क्योंकि वह अग्नि तुल्य है। उसके ऊपर घूसों और थप्पड़ों का असर ही क्या हो सकता है ? ॥११॥

तमेवमर्थं प्रसमीक्ष्य सम्यक् स्वकर्मसाम्याद्धि समाहितात्मा ।
स्मरंश्च दिव्यं धनुषोऽस्य वीर्यं व्रजाक्षतं कर्म समारभस्व ॥ १२॥

अतएव पूर्वकथित बातों को ध्यान में रखकर, अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये, एकाग्रचित्त होकर और दिव्य धनुष के अस्त्र बल का सहारा लेकर, तुम आगे बढ़ो और निर्विघ्न अपना कार्य आरम्भ करो अर्थात् बिना मन्त्राभिषिक अस्त्र प्रयोग के तुम हनुमान को नहीं पकड़ सकोगे। अतः अस्त्रों के मन्त्रों को याद कर, युद्ध स्थल की ओर प्रस्थान करो ॥१२॥

न खल्वियं मतिश्रेष्ठ यत्त्वां संप्रेषयाम्यहम् ।
इयं च राजधर्माणां क्षत्रस्य च मतिर्मता ॥ १३॥

हे उत्तम बुद्धि वाले वीर ! स्नेह की दृष्टि से तुमको युद्ध में भेजना निश्चित ही ठीक नहीं है। परन्तु राजधर्म का विधान और क्षत्रियोचित कर्तव्यपालन इसके लिये मुझे विवश करता है ॥१३॥

नानाशस्त्रेषु संग्रामे वैशारद्यमरिन्दम ।
अवश्यमेव बोद्धव्यं काम्यश्च विजयो रणे ॥ १४॥

जो भी हो, हे शत्रुहन्ता! युद्ध में विविध अस्त्रों के प्रहार की विधि को अवश्य जान लेना चाहिये और विजयप्राप्ति के लिये प्रार्थी होना चाहिये अर्थात् जयप्राप्ति के लिये सब अस्त्रों के प्रयोग जान लेने चाहिए ॥१४॥

ततः पितुस्तद्वचनं निशम्य प्रदक्षिणं दक्षसुतप्रभावः ।
चकार भर्तारमतित्वरेणरणाय वीरः प्रतिपन्नबुद्धिः ॥ १५॥

अपने पिता राक्षसराज रावण के ऐसे वचन सुनकर देवों के समान प्रभाव वाला मेघनाद, रावण की परिक्रमा कर और युद्ध करने का निश्चय करके, बिना क्षण भर की देर किये, वहां से चल दिया ॥ १५॥

ततस्तैः स्वगणैरिष्टैः इन्द्रजित् प्रतिपूजितः ।
युद्धोद्धतकृतोत्साहः सग्रामं सम्प्रपद्यत ॥ १६॥

तदनन्तर इन्द्रजीत अपने इष्टमित्रों द्वारा सम्मानित होकर, वह विकट युद्ध के लिये उत्साहित होकर, रणक्षेत्र में जा पहुँचा ॥१६॥

श्रीमान् पद्मविलाशाक्षो राक्षसाधिपतेः सुतः ।
निर्जगाम महातेजाः समुद्र इव पर्वणि ॥ १७॥

उस समय वह रावण का पुत्र, कमलदल के समान बड़े बड़े नेत्रों वाला, परमतेजस्वी इन्द्रजीत युद्ध के लिए विशेष हर्ष और उत्साह से पूर्ण होकर, युद्ध के लिये वैसे ही आगे बढ़ा जैसे पूर्णिमा के दिन समुद्र बढ़ता है॥१७॥

स पक्षिराजोपमतुल्यवेगैर्व्याघ्रैश्चतुर्भिः सिततीक्ष्णदंष्ट्रैः ।
रथं समायुक्तमसह्यवेगं समारुरोहेन्द्रजिदिन्द्रकल्पः ॥ १८॥

जिसका वेग शत्रुओं के लिए असह्य था वह इन्द्र के समान इन्द्रजीत, गरुड़ की तरह शीघ्रगामी और पैने दांतों वाले चार सिंहों से जुते रथ पर सवार हुआ ॥१८॥

स रथी धन्विनां श्रेष्ठः शस्त्रज्ञोऽस्त्रविदां वरः ।
रथेनाभिययौ क्षिप्रं हनूमान् यत्र सोऽभवत् ॥ १९॥

समस्त धनुषधारियों और समस्त अस्त्रों को जानने वालों में श्रेष्ठ, अस्त्र चलाने के ज्ञान से सम्पन्न और युद्धविद्या में कुशल इन्द्रजीत, तुरन्त रथ पर सवार हो, वहां जा पहुँचा, जहाँ हनुमान जी उसकी प्रतीक्षा में बैठे थे ॥१९॥

स तस्य रथनिर्घोषं ज्यास्वनं कार्मुकस्य च ।
निशम्य हरिवीरोऽसौ सम्प्रहृष्टतरोऽभवत् ॥ २०॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान जी उसके रथ के चलने की गड़गड़ाहट, और धनुष की प्रत्यंचा की टंकार का शब्द सुनकर अत्यन्त हर्ष और उत्साह से भर गए ॥२०॥

सुमहच्चापमादाय शितशल्यांश्च सायकान् ।
हनुमन्तमभिप्रेत्य जगाम रणपण्डितः ॥ २१॥

इन्द्रजीत युद्ध कला में प्रवीण था, वह धनुष और तीक्ष्ण फर लगे हुए सायकों को लेकर, हनुमान जी के सामने जा पहुँचा ॥२१॥

तस्मिंस्ततः संयति जातहर्षे रणाय निर्गच्छति बाणपाणौ ।
दिशश्च सर्वाः कलुषा बभूवुर्मृगाश्च रौद्रा बहुधा विनेदुः ॥ २२॥

जिस समय मेघनाद हर्षित होकर, हाथों में धनुष बाण ले कर निकला, उस समय दशों दिशाएँ मलिन हो गयीं, शृगाल आदि भयंकर जन्तु अनेक प्रकार से भयंकर चीत्कार करने लगे ॥२२॥

समागतास्तत्र तु नागयक्षा महर्षयश्चक्रचराश्च सिद्धाः ।
नभः समावृत्य च पक्षिसङ्घा विनेदुरुच्चैः परमप्रहृष्टाः ॥ २३॥

उस संग्राम को देखने के लिये नाग, यक्ष, महर्षि, ग्रह तथा सिद्धों के दल के दल तथा विविध प्रकार के पक्षिगण भी अत्यन्त प्रसन्न होकर, उच्च सवार से चहचहाते हुए और आकाश को आच्छादित करते हुए वहां उपस्थित हुए ॥२३॥

आयान्तं स रथं दृष्ट्वा तूर्णमिन्द्रध्वजं कपिः ।
ननाद च महानादं व्यवर्धत च वेगवान् ॥ २४॥

इन्द्राकर चिन्ह वाली ध्वजा से सुषोभित वाले रथ में इन्द्रजीत बड़ी शीघ्रता से आते देखकर, अति वेग से गम्भीर गर्जना करते हुए, हनुमान जी ने अपना शरीर वढ़ाया ॥२४॥

इन्द्रजित् स रथं दिव्यमाश्रितश्चित्रकार्मुकः ।
धनुर्विस्फारयामास तडिदूर्जितनिःस्वनम् ॥ २५॥

दिव्य रथ पर चढ़कर और विचित्र धनुष को हाथ में लेकर, इन्द्रजीत ने अपने धनुष को, जिसकी चमक बिजली के समान थी और जिससे टंकार बिजली की गडगड़ाहट के समान थी, प्रत्यंचा चढ़ा कर तैयार किया ॥२५॥

ततः समेतावतितीक्ष्णवेगौ महाबलौ तौ रणनिर्विशङ्कौ ।
कपिश्च रक्षोऽधिपतेस्तनूजः सुरासुरेन्द्राविव बद्धवैरौ ॥ २६॥

अव यह दोनों अति वेगवान महाबली हनुमान जी और रावण कुमार इन्द्रजीत, जो निर्भय हो युद्ध करते थे और जिनका देव-दैत्यों की तरह वैर बांध गया था, एक दुसरे से भिड गए ॥२६॥

स तस्य वीरस्य महारथस्य धनुष्मतः संयति संमतस्य ।

शरप्रवेगं व्यहनत् प्रवृद्धश्चचार मार्गे पितुरप्रमेयः ॥ २७॥

उस महारथी वीर इन्द्रजीत के धनुष से छूटे हुए तीरों की मार को पिता के समान अप्रमेय बलशाली हनुमान जी आकाश में घूमते हुए पैतरे बदलकर व्यर्थ करने लगे ॥२७॥

ततः शरानायततीक्ष्णशल्यान् सुपत्रिणः काञ्चनचित्रपुङ्खान् ।
मुमोच वीरः परवीरहन्ता सुसन्ततान् वज्रसमानवेगान् ॥ २८॥

यह देख शत्रहन्ता इन्द्रजीत ने बहुत से ऐसे बड़े बड़े बाण छोड़े, जिनकी नोक अत्यंत पैनी थी और जो पंखयुक्त, सुवर्ण से चित्रित और वज्र के समान वेगवान थे ॥२८॥

ततः स तत्स्यन्दननिःस्वनं च मृदङ्गभेरीपटहस्वनं च ।
विकृष्यमाणस्य च कार्मुकस्य निशम्य घोषं पुनरुत्पपात ॥ २९॥

हनुमान जी उसके रथ, मृदंग, भेरी और नगाड़े के शब्द को तथा अति भयंकर उस धनुष के टंकार शब्द को सुन, फिर आकाश में उछल कर पहुँच गये ॥२९॥

शराणामन्तरेष्वाशु व्यावर्तत महाकपिः ।
हरिस्तस्याभिलक्ष्यस्य मोक्षयँल्लक्ष्यसंग्रहम् ॥ ३०॥

वह उसके बाणों की वर्षा में पैतरा बदलते और उसके निशाने को बचाते, घूम रहे थे॥ ३०॥

शराणामग्रतस्तस्य पुनः समभिवर्तत ।
प्रसार्य हस्तौ हनुमानुत्पपातानिलात्मजः ॥ ३१॥

बीच बीच में वह बाणों के सामने आ जाते और फिर वहां से हट जाते थे। वे दोनों हाथों को फैला कर आकाश में उड़ जाते थे ॥३१॥

तावुभौ वेगसम्पन्नौ रणकर्मविशारदौ ।
सर्वभूतमनोग्राहि चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ॥ ३२॥

वह दोनों ही वेगवान और रण करने की कला में पण्डित थे। वह दोनों ही सम्पूर्ण प्राणियों के मन को हर्षित करने वाला उत्तम युद्ध करते थे ॥३२॥

हनूमतो वेद न राक्षसोऽन्तरं न मारुतिस्तस्य महात्मनोऽन्तरम् ।
परस्परं निर्विषहौ बभूवतुः समेत्य तौ देवसमानविक्रमौ ॥ ३३॥

न तो वह राक्षस हनुमान जी पर प्रहार करने का अवसर पाता था न ही पवनकुमार हनुमान जी मेघनाद को दबाने का मौका पाते थे। दोनों ही एक समान पराक्रमशाली थे । अत: वह दोनों आपस में युद्ध करते हुए असह्य पराक्रमी हो गये ॥३३॥

ततस्तु लक्ष्ये स विहन्यमाने शरेष्वमोघेषु च सम्पतत्सु ।
जगाम चिन्तां महतीं महात्मा समाधिसंयोगसमाहितात्मा ॥ ३४॥

तदनन्तर धैर्यवान राक्षसराज का पुत्र मेघनाद अनेक अमोघ बाण चला कर भी जब हनुमानजी को बींध नहीं पाया और वह सभी व्यर्थ होकर गिर पड़े, तब समाधि योग करने वाले की तरह एकाग्रचित्त होकर मेघनाद विचारने लगा ॥३४॥

ततो मतिं राक्षसराजसूनुश्चकार तस्मिन् हरिवीरमुख्ये ।
अवध्यतां तस्य कपेः समीक्ष्य कथं निगच्छेदिति निग्रहार्थम् ॥३५॥

हनुमान जी को अवध्य जान कर, इनको पकड़ने के लिए क्या उपाय करना चाहिये, यही मेघनाद एकाग्रचित्त होकर सोचने लगा ॥३५॥

ततः पैतामहं वीरः सोऽस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
सन्दधे सुमहातेजाः तं हरिप्रवरं प्रति ॥ ३६॥

फिर अस्त्र जानने वालों में श्रेष्ठ मेघनाद ने पितामह ब्रह्मा जी के दिये हुए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग हनुमान जी के ऊपर किया ॥३६॥

अवध्योऽयमिति ज्ञात्वा तमस्त्रेणास्त्रतत्त्ववित् ।
निजग्राह महाबाहुं मारुतात्मजमिन्द्रजित् ॥ ३७॥

उस अस्त्र के मर्म-वेत्ता मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र से भी हनुमान जी को अवध्य जानकर हनुमान जी को ब्रह्मास्त्र से बांध लिया ॥३७॥

तेन बद्धस्ततोऽस्त्रेण राक्षसेन स वानरः ।
अभवन्निर्विचेष्टश्च पपात च महीतले ॥ ३८॥

तब ब्रह्मास्त्र से इन्द्रजीत द्वारा बांधे जाने पर, हनुमान जी निश्चेष्ट हो पृथिवी पर गिर पड़े ॥३८॥

ततोऽथ बुद्ध्वा स तदस्त्रबन्धं प्रभोः प्रभावाद् विगताल्पवेगः ।
पितामहानुग्रहमात्मनश्च विचिन्तयामास हरिप्रवीरः ॥ ३९॥

अपने आपको ब्रह्मास्त्र से बंधा हुआ जानकार भी उन्हें भगवान ब्रह्मा के प्रभाव से उनको तनिक भी पीड़ा का अनुभव नहीं हुआ; तब उन्होंने समझा कि, यह मेरे स्वामी का हे प्रताप है जिससे मेरा वेग भी कम नष्ट हुआ है। और यह देख हनुमान जी ने अपने ऊपर ब्रह्मा जी का अनुग्रह समझा ॥३६॥

ततः स्वायम्भुवैर्मन्त्रैर्ब्रह्मास्त्रं चाभिमन्त्रितम् ।
हनूमांश्चिन्तयामास वरदानं पितामहात् ॥ ४०॥

वह अस्त्र स्वयंभू ब्रह्मा जी के मंत्र से अभिमंत्रित था, अतः हनुमान जी ने उस वरदान का स्मरण किया, जो उन्हें ब्रह्मा जी से मिला था ॥४०॥

न मेऽस्य बन्धस्य च शक्तिरस्ति विमोक्षणे लोकगुरोः प्रभावात् ।
इत्येवमेवं विहितोऽस्त्रबन्धो मयाऽऽत्मयोनेरनुवर्तितव्यः ॥ ४१॥

वह मन ही मन कहने लगे कि, लोकगुरु ब्रह्मा जी के प्रभाव से इस अस्त्र के बन्धन से युक्त होने की शक्ति मुझमें नहीं है ऐसा समझ कर इंद्रजीत ने मुझे बाँधा है, तब भी ब्रह्मा जी के सम्मान के लिए मुझे मुहर्त भर तक इसमें बंधा रहना चाहिये । यह विचार कर हनुमान जी उस अस्त्र के बंधन में बंध गये ॥४१॥

स वीर्यमस्त्रस्य कपिर्विचार्य पितामहानुग्रहमात्मनश्च ।
विमोक्षशक्तिं परिचिन्तयित्वा पितामहाज्ञामनुवर्तते स्म ॥ ४२॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान जी उस ब्रह्मास्त्र की शक्ति, अपने ऊपर ब्रह्मा जी की कृपा और इस अस्त्र से छटने के अपने सामर्थ्य को भली भांति सोच विचार कर, ब्रह्मा जी की आज्ञा का पालन करते रहे ॥४२॥

अस्त्रेणापि हि बद्धस्य भयं मम न जायते ।
पितामहमहेन्द्राभ्यां रक्षितस्यानिलेन च ॥ ४३॥

उन्होंने यह विचार किया कि, यद्यपि मैं इस ब्रह्मास्त्र से बन्ध गया हूँ; तथापि मुझको इससे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि, ब्रह्मा, इन्द्र और पवनदेव तो स्वयं मेरी रक्षा करते हैं ॥ ४३ ॥

ग्रहणे चापि रक्षोभिर्महन्मे गुणदर्शनम् ।
राक्षसेन्द्रेण संवादस्तस्माद् गृह्णन्तु मां परे ॥ ४४॥

इन राक्षसों द्वारा अपने पकड़े जाने से, मुझे तो बड़ा लाभ ही दिखाई देता है। क्योंकि जब यह लोग मुझे पकड़ कर राक्षसराज के पास ले जायेंगे, तब मुझे रावण से बातचीत करने का अवसर मिलेगा। अतः अच्छा ही है यह मुझे पकड़ कर ले चलें ॥४४॥

स निश्चितार्थः परिवीरहन्ता समीक्ष्यकारी विनिवृत्तचेष्टः ।
परैः प्रसह्याभिगतैर्निगृह्य ननाद तैस्तैः परिभर्त्स्यमानः ॥ ४५॥

इस प्रकार अपने लाभ की बात सोचकर, समझ बूझ कर काम करने वाले पवं शत्रुहन्ता हनुमान जी निश्चेष्ट होकर वहीं पड़े रहे और जब राक्षस पास आकर बलपूर्वक उन्हें पकड़ कर डांटने लगे और कटु पचन कहने लगे; तव हनुमान जी राक्षसों को यह दिखने के लिए की मानो वह कष्ट मे हैं, उच्चस्वर से सिंहनाद करने लगे ॥४५॥

ततस्ते राक्षसा दृष्ट्वा विनिश्चेष्टमरिन्दमम् ।
बबन्धुः शणवल्कैश्च द्रुमचीरैश्च संहतैः ॥ ४६॥

शत्रुहन्ता हनुमान जी को निश्चेष्ट पड़ा देख, राक्षसगण उनको सन के और पेड़ों की छालों के बने रस्सों से कस कर बांधने लगे॥ ४६॥

स रोचयामास परैश्च बन्धं प्रसह्य वीरैरभिगर्हणं च ।
कौतूहलान्मां यदि राक्षसेन्द्रो द्रष्टुं व्यवस्येदिति निश्चितार्थः ॥४७॥

इस प्रकार अपना बांधा जाना और शत्रुओं द्वारा तिरस्कृत होना अथवा उनके वश में हो जाना, हनुमान जी ने इसलिये पसंद किया क्योंकि मन में यह निश्चित विचार हो गया था कि इस अवस्था में कदाचित् रावण कौतुहलवश मुझे बुलाये तो उसके साथ वार्तालाप भी हो जाएगा ॥४७॥

स बद्धस्तेन वल्केन विमुक्तोऽस्त्रेण वीर्यवान् ।
अस्त्रबन्धः स चान्यं हि न बन्धमनुवर्तते ॥ ४८॥

जब बलवान हनुमान जी को राक्षसों ने रस्सों से बांधा, तब वह ब्रहमास्त्र बन्धन से छूट गये। क्योंकि उस अस्त्र का बंधन, अन्य किसी बंधन से नहीं रहता ॥४८॥

अथेन्द्रजित् तं द्रुमचीरबद्धं विचार्य वीरः कपिसत्तमं तम् ।
विमुक्तमस्त्रेण जगाम चिन्तामन्येन बद्धोऽप्यनुवर्ततेऽस्त्रम् ॥ ४९॥

जब इन्द्रजीत ने देखा कि, कपिश्रेष्ठ को राक्षस रस्सों से बांध रहे हैं और यह अस्त्र बंधन से मुक्त हो गये हैं, तब उसे बड़ी चिन्ता हुई और वह सोचने लगा कि, अन्य बन्धन से ब्रह्मास्त्र का बन्धन तो विफल हो गया है ॥४९॥

अहो महत् कर्म कृतं निरर्थं न राक्षसैर्मन्त्रगतिर्विमृष्टा ।
पुनश्च नास्त्रे विहतेऽस्त्रमन्यत् प्रवर्तते संशयिताः स्म सर्वे ॥ ५०॥

वह पश्चात्ताप करता हुआ कहने लगा-हा ! राक्षसों ने शस्त्र की शक्ति को जाने बिना ही मेरा बना बनाया यह बड़ा भारी काम मिट्टी में मिला दिया। क्योंकि एक बार ब्रह्मास्त्र के विफल हो जाने से अब पुनः इसका प्रयोग भी तो नहीं किया जा सकता। अतः हम लोग विजयी होकर भी इस वानर के संकट में फंस गये ॥५०॥

अस्त्रेण हनुमान् मुक्तो नात्मानमवबुध्यते ।
कृष्यमाणस्तु रक्षोभिस्तैश्च बन्धैर्निपीडितः ॥ ५१॥

परन्तु हनुमान जी ने ब्रह्मास्त्र के बन्धन से मुक्त हो कर भी कुछ नहीं किया। राक्षस लोग उनको खींच रहे थे और कठोर मुक्कों से पीड़ा पहुँचा रहे थे॥५१॥

हन्यमानस्ततः क्रूरै राक्षसैः कालमुष्टिभिः ।
समीपं राक्षसेन्द्रस्य प्रकृष्यत स वानरः ॥ ५२॥

वह राक्षस हनुमान जी को लकड़ी और घूसों से मार रहे थे और उनको खींच कर रावण के पास ले जा रहे थे ॥५२॥

अथेन्द्रजित् तं प्रसमीक्ष्य मुक्तमस्त्रेण बद्धं द्रुमचीरसूत्रैः ।
व्यदर्शयत् तत्र महाबलं तं हरिप्रवीरं सगणाय राज्ञे ॥ ५३॥

मेघनाद ने महाबली कपिश्रेष्ठ हनुमान जी को ब्रह्मास्त्र के बंधन से मुक्त और रस्सों से बँधा देखकर, उन्हें ले जा कर मन्त्रियों सहित बैठे हुए रावण के सामने उपस्थित कर दिया ॥५३॥

तं मत्तमिव मातङ्गं बद्धं कपिवरोत्तमम् ।
राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥ ५४॥

राक्षसगणों ने मत्तवाले हाथी की तरह बँधे हुए हनुमान जी को राक्षसराज रावण के सामने उपस्थित कर दिया ॥ ५४॥

कोऽयं कस्य कुतो वापि किं कार्यं कोऽभ्युपाश्रयः ।
इति राक्षसवीराणां तत्र सञ्जज्ञिरे कथाः ॥ ५५॥

यह कौन है ? किसका भेजा हुआ है ? कहाँ से आया है ? क्यों आया है ? इसके सहायक कौन कौन हैं ? बस इन्हीं सब प्रश्नों के ऊपर वह राक्षस आपस में बातचीत करते थे ॥५५॥

हन्यतां दह्यतां वापि भक्ष्यतामिति चापरे ।
राक्षसास्तत्र संक्रुद्धाः परस्परमथाब्रुवन् ॥ ५६॥

अन्य राक्षस जो वहाँ थे, वे कुपित हो आपस में कह रहे थे कि, इसको अभी मार डालो, इसको जला दो। अथवा आओ हम मार कर इसे अभी खा डालें ॥५६॥

अतीत्य मार्गं सहसा महात्मा स तत्र रक्षोधिपपादमूले ।
ददर्श राज्ञः परिचारवृद्धान् गृहं महारत्नाविभूषितं च ॥ ५७॥

धैर्यवान हनुमान जी ने कुछ दूर चल कर सहसा, महामूल्यवान् रत्नों से सुशोभित राजमन्दिर में, राक्षसराज रावण के चरणों के समीप बूढ़े सेवकों और मन्त्रियों को बैठा हुआ देखा ॥५७॥

स ददर्श महातेजा रावणः कपिसत्तमम् ।
रक्षोभिर्विकृताकारैः कृष्यमाणमितस्ततः ॥ ५८॥

प्रबल प्रतापी रावण ने देखा कि, विकटाकार राक्षस लोग हनुमान जी को पकड़ कर खेंचते हुए चले आ रहे हैं ॥५८॥

राक्षसाधिपतिं चापि ददर्श कपिसत्तमः ।
तेजोबलसमायुक्तं तपन्तमिव भास्करम् ॥ ५९॥

हनुमान जी ने भी देखा कि, राक्षसराज रावण तेज और बल से सम्पन्न सूर्य की तरह तप रहा है ॥५९॥

स रोषसंवर्तितताम्रदृष्टिर्दशाननस्तं कपिमन्ववेक्ष्य ।
अथोपविष्टान् कुलशीलवृद्धान् समादिशत् तं प्रति मन्त्रिमुख्यान्
॥६०॥

हनुमान जी को देखते ही रावण की त्योरी चढ़ गयी। उसने क्रोध के मारे लाल लाल नेत्र करके, कुलवान एवं शीलसम्पन तथा वृद्ध अपनें मुख्य मन्त्रियों को वानर का परिचय पूछने के लिये आज्ञा दी॥६०॥

यथाक्रमं तैः स कपिश्च पृष्टः कार्यार्थमर्थस्य च मूलमादौ ।
निवेदयामास हरीश्वरस्य दूतः सकाशादहमागतोऽस्मि ॥ ६१॥

जब उन मन्त्रियों ने हनुमान जी से पूछा कि, तुम यहाँ क्यों और किस लिये आए हो ? तब उत्तर में हनुमान जी ने कहा कि, मैं कपिराज सुग्रीव के पास से आया हूँ और मैं उनका दूत हूँ ॥६१॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का अड़तालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ एकोनपञ्चाशः सर्गः उनचासवाँ सर्ग ॥

रावणस्य प्रभावशालिरूपमवलोक्य हनुमतो मनसि नैकविधानां विचाराणामुद्रेकः – रावण के प्रभावशाली रूप को देख कर हनुमान जी का उसके विषय में विचार करना

ततः स कर्मणा तस्य विस्मितो भीमविक्रमः ।
हनुमान् रोषताम्राक्षो रक्षोऽधिपमवैक्षत ॥ १॥

मेघनाद के उस बन्धन रूप कर्म से विस्मित तथा रावण के कर्मों से कुपित, कोध से लाल नेत्र कर, भयंकर पराक्रमी हनुमान जी रावण की ओर देखने लगे ॥१॥

भ्राजमानं महार्हेण काञ्चनेन विराजता ।
मुक्ताजालावृतेनाथ मुकुटेन महाद्युतिम् ॥ २॥

उस समय महातेजखी रावण बड़ा मूल्यवान् और मोतियों से जड़ा हुआ चमचमाता मुकुट धारण किये हुए था ॥२॥

वज्रसंयोगसंयुक्तैर्महार्हमणिविग्रहैः ।
हेमैराभरणैश्चित्रैर्मनसेव प्रकल्पितैः ॥ ३॥

उस समय रावण जिन अद्‌भुत आभूषणों से अपने शरीर को भूषित किये हुए था; वह सभी सुवर्ण के थे और उनमें हीरे तथा बड़ी मूल्यवान मणियों जड़ी हुई थीं। वह ऐसे सुन्दर लग थे मानों मानसिक संकल्प से बनाये गये हों ॥३॥

महार्हक्षौमसंवीतं रक्तचन्दनरूषितम् ।
स्वनुलिप्तं विचित्राभिर्विविधाभिश्च भक्तिभिः ॥ ४॥

रावण मूल्यवान् रेशमी वस्त्र पहने हुए था तथा उसके शरीर में लाल चन्दन लगा हुआ था। वह विविध प्रकार के सुगन्धि युक्त कस्तूरी केसरादि पदार्थ उसके शरीर में लगे हुए थे ॥४॥

विचित्रं दर्शनीयैश्च रक्ताक्षैर्भीमदर्शनैः ।
दीप्ततीक्ष्णमहादंष्ट्रं प्रलम्बं दशनच्छदैः ॥ ५॥

उस समय वह अत्यन्त दर्शनीय हो रहा था। उसकी आँखें देखने योग्य लाल लाल और भयावनी थीं। उसके पैने और बड़े बड़े दांत सांफ होने के कारण चमचमा रहे थे। उसके होंठ लंबे थे। ॥५॥

शिरोभिर्दशभिर्वीरो भ्राजमानं महौजसम् ।
नानाव्यालसमाकीर्णैः शिखरैरिव मन्दरम् ॥ ६॥

परम तेजस्वी वीर रावण, अनेक शिखरों से युक्त मन्दराचल के शिखर की तरह, अपने दस सिरों से शोभायमान हो रहा था ॥६॥

नीलाञ्जनचयप्रख्यं हारेणोरसि राजता ।
पूर्णचन्द्राभवक्त्रेण सबालार्कमिवाम्बुदम् ॥ ७॥

उसके शरीर का रङ्ग नीले अंजन की तरह था और छाती पर चमकीला हार झूल रहा था । उसका मुखमण्डल पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान था। उस समय वह, प्रातःकालीन सूर्य को ढके मेघ की तरह दिखाई देता था ॥७॥

बाहुभिर्बद्धकेयूरैश्चन्दनोत्तमरूषितैः ।
भ्राजमानाङ्गदैर्भीमैः पञ्चशीर्षैरिवोरगैः ॥ ८॥

उसकी मोटी मोटी भुजाएँ, जिन पर चन्दन लगा हुआ था और जो केयूरों तथा बाजूबन्दों से भूषित थीं, पांच मुख वाले भयङ्कर सर्प की तरह जान पड़ती थीं ॥८॥

महति स्फाटिके चित्रे रत्नसंयोगचित्रिते ।
उत्तमास्तरणास्तीर्णे सूपविष्टं वरासने ॥ ९॥

रावण स्फटिक पत्थर के बने एक ऐसी बड़े और उत्तम सिंहासन पर बैठा हुआ था, जिसमें जगह जगह रत्न जड़े हुए थे और जिसके ऊपर उत्तम बिछौना बिछा हुआ था ॥१०॥

अलंकृताभिरत्यर्थं प्रमदाभिः समन्ततः ।
वालव्यजनहस्ताभिरारात्समुपसेवितम् ॥ १०॥

अनेक आभूषणों से सुसज्जित स्त्रियाँ हाथ में चंवर और पंखा लिये उसके चारों और खड़ी हुई उसकी सेवा कर रही थीं॥ १०॥

दुर्धरेण प्रहस्तेन महापार्श्वेन रक्षसा ।
मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैःर्निकुम्भेन च मन्त्रिणा ॥ ११॥

वहां पर परामर्श देने में निपुण तथा मन्त्र तत्व को जानने वाले चार मन्त्री बैठे हुए थे, जिनके नाम दुर्धर, प्रहस्त महापाल और निकुंभ थे ॥११॥

उखोपविष्टं रक्षोभिश्चतुर्भिर्बलदर्पितम् ।
कृत्स्नं परिवृतं लोकं चतुर्भिरिव सागरैः ॥ १२॥

और जो बड़े बलवान थे, वह उसके समीप बैठे थे। उन चार मंत्रियों के बीच बैठा हुआ रावण, चार समुद्रों से घिरी पृथिवी की तरह दिखाई देता था ॥१२॥

मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैः अन्यैश्च शुभदर्शिभिः ।
आश्वास्यमानं सचिवैः सुरैरिव सुरेश्वरम् ॥ १३॥

इस प्रकार मन्त्रकुशल मन्त्रियों तथा अन्य हितैषियों से सेवित रावण देवताओं से सेवित इन्द्र की तरह दिखाई देता था ॥१३॥

अपश्यद् राक्षसपतिं हनुमानतितेजसम् ।
विष्ठितं मेरुशिखरे सतोयमिव तोयदम् ॥ १४॥

हनुमान जी ने देखा कि, महातेजस्वी रावण की उस समय वैसी ही शोभा हो रही है, जैसी मेरुशिखर पर, जल से पूर्ण मेघ की शोभा होती है ॥१४॥

स तैः सम्पीड्यमानोऽपि रक्षोभिर्भीमविक्रमैः ।
विस्मयं परमं गत्वा रक्षोऽधिपमवैक्षत ॥ १५॥

यद्यपि भयङ्कर विक्रम संपन्न राक्षस हनुमानजी को उत्पीड़ित कर रहे थे, तथापि हनुमान जी राक्षसराज रावण को देखकर बड़े विस्मित हुए ॥१५॥

भ्राजमानं ततो दृष्ट्वा हनुमान् राक्षसेश्वरम् ।
मनसा चिन्तयामास तेजसा तस्य मोहितः ॥ १६॥

राक्षसराज रावण को इस प्रकार सुशोभित देखकर हनुमान जी उसके प्रताप और प्रभाव से माहित होकर, मन ही मन विचार कर कहने लगे ॥१६॥

अहो रूपमहो धैर्यमहो सत्त्वमहो दयुतिः ।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता ॥ १७॥

वाह इस राक्षसराज का कैसा सुन्दर रूप है, कैसा अनोखा धैर्य है? कैसा अनुपम पराक्रम है और कैसी आश्चर्यजनक कान्ति है ? वाह ! इसका समस्त शुभ लक्षणों से भी सम्पन्न होना कितने आश्चर्य की बात है ॥१७॥

यद्यधर्मो न बलवान् स्यादयं राक्षसेश्वरः ।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता ॥ १८॥

हा! यदि इसमें ऐसा प्रबल अधर्म नहीं होता, तो यह राक्षसराज इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवताओं का भी रक्षक हो सकता था ॥१८॥

अस्य क्रूरैर्नृशंसैश्च कर्मभिर्लोककुत्सितैः ।
तेन बिभ्यति खल्वस्माल्लोकाः सामरदानवाः ॥ १९॥

किन्तु इसके दुष्ट, नृशंस और लोकनिन्दित कर्मों से निश्चय ही दैत्य, दानव और देवगण आदि सब भयभीत रहा करते हैं ॥१६॥

अयं ह्युत्सहते क्रुद्धः कर्तुमेकार्णवं जगत् ।
इति चिन्तां बहुविधामकरोन्मतिमान् हरिः ।
दृष्ट्वा राक्षसराजस्य प्रभावममितौजसः ॥ २०॥

यह कुपित होने पर समस्त संसार में प्रलय मचा सकता है, अर्थात् सारी पृथिवी को जल के भीतर डुबो कर नष्ट कर सकता है। बुद्धिमान वानर वीर हनुमान जी अत्यन्त पराक्रमी रावण का प्रताप देखकर, इस प्रकार की विविध चिन्ताएँ करने लगे ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥ ४९॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का उनचासवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ पञ्चाशः सर्गः पचासवाँ सर्ग॥

रावणकर्तृकः प्रहस्तद्वारको हनुमन्तं प्रति लङ्कायामागमनप्रयोजनस्य प्रश्नः; हनुमता रामदूतत्वेनात्मनः परिचयदानम् – रावण की आज्ञा से प्रहस्त द्वारा हनुमान जी के लंका आगमन का कारण पूछना और हनुमान जी का श्री राम और सुग्रीव के दूत के रूप में अपना परिचय देना

तमुद्वीक्ष्य महाबाहुः पिङ्गाक्षं पुरतः स्थितम् ।
कोपेन महताऽऽविष्टो रावणो लोकरावणः ॥ १ ॥

समस्त लोकों को रुलाने वाला महाबाहु रावण पीले नेत्रों वाले हनुमान जी को अपने सामने खड़ा देख कर, अत्यन्त कुपित हुआ तथा महान रोष से भर गया ॥१॥

शङ्काहतात्मा दध्यौ स कपीन्द्रं तेजसा वृतम् ।
किमेष भगवान् नन्दी भवेत् साक्षादिहागतः ॥ २ ॥

वह हनुमान जी का तेजोमय शरीर देख कर मन ही मन शंकित होकर सोचने लगा कि, कहीं यह साक्षात् भगवान् नन्दी तो यहाँ नहीं आ गये ॥२॥

येन शप्तोऽस्मि कैलासे मया प्रहसिते पुरा ।
सोऽयं वानरमूर्तिः स्यात्किंस्विद् बाणोपि वासुरः ॥ ३ ॥

जिन्होंने पहले मुझे कैलास पर्वत पर, उसे हिलाने के लिये श्राप दिया था; ऐसा लगता है की वही वानर का स्वरुप धारण करके यहां आये हैं। अथवा कहीं बाणासुर पुन: इस रूप में आगमन तो नहीं हुआ है॥३॥

स राजा रोषताम्राक्षः प्रहस्तं मन्त्रिसत्तमम् ।
कालयुक्तमुवाचेदं वचो विपुलमर्थवत् ॥ ४ ॥

इस प्रकार सोच- विचार, तर्क-वितर्क करते हुए राक्षसराज रावण क्रोध के मारे लाल आँखें कर अपने प्रधान मन्त्री प्रहस्त से समयोपयुक्त और अर्थयुक्त वचन बोला ॥४॥

दुरात्मा पृच्छ्यतामेष कुतः किं वास्य कारणम् ।
वनभङ्गे च कोऽस्यार्थो राक्षसानां च तर्जने ॥ ५ ॥

अमात्य ! इस दुष्ट से पूछो कि, यह कहां से आया है ? क्यों आया है? अशोक वन उजाड़ने से इसका क्या प्रयोजन है ? और राक्षसों का वध करने में इसका क्या उद्देश्य है? ॥५॥

मत्पुरीमप्रधृष्यां वै गमने किं प्रयोजनम् ।
आयोधने वा किं कार्यं पृच्छ्यतामेष दुर्मतिः ॥ ६ ॥

इस दुष्ट से पूछो कि, मेरी इस अगम्यपुरी में यह किस उद्देश्य के लिए आया है और राक्षसों के साथ युद्ध छेड़ने में इसका क्या प्रयोजन है?॥६॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्तो वाक्यमब्रवीत् ।
समाश्वसिहि भद्रं ते न भीः कार्या त्वया कपे ॥ ७ ॥

रावण के वचन सुनकर, प्रहस्त ने हनुमान जी से कहा- वानर! तुम धैर्य धारण कर सावधान हो जाओ और तुम्हे डरने की आवश्यकता नहीं है॥ ७॥

यदि तावत् त्वमिन्द्रेण प्रेषितो रावणालयम् ।
तत्त्वमाख्याहि मा ते भूद् भयं वानर मोक्ष्यसे ॥ ८ ॥

यदि इन्द्र ने तुम्हे लंकापुरी में भेजा है, तो ठीक ठीक बता दो, तुम्हें डरने की आवश्यकता नहीं क्योंकि हे वानर! तुम छोड़ दिये जाओगे ॥८॥

यदि वैश्रवणस्य त्वं यमस्य वरुणस्य च ।
चाररूपमिदं कृत्वा प्रविष्टो नः पुरीमिमाम् ॥ ९ ॥

अथवा यदि तुम कुबेर के, यम के अथवा वरुण के दूत हो और यह सुन्दर रूप धारण कर, तुम हमारी इस पुरी में घुस आए हो, तो भी ठीक ठीक बता दो॥९॥

विष्णुना प्रेषितो वापि दूतो विजयकाङ्क्षिणा ।
न हि ते वानरं तेजो रूपमात्रं तु वानरम् ॥ १० ॥

अथवा यदि विजयाकांक्षी विष्णु के दूत बन कर तुम यहाँ आये हो, तो भो ठीक ठीक कह दो। क्योंकि तुम रूप से तो वानर जान पड़ते हो; किन्तु तुम्हारा विक्रम वानरों जैसा नहीं है।॥१०॥

तत्त्वतः कथयस्वाद्य ततो वानर मोक्ष्यसे ।
अनृतं वदतश्चापि दुर्लभं तव जीवितम् ॥ ११ ॥

हे वानर ! यदि इस समय तुम सब कुछ ठीक ठीक बता दोगे, तो तुम अभी छुड़वा दिये जाओगे और यदि झूठ बोले तो मार डाले जाओगे ॥११॥

अथवा यन्निमित्तस्ते प्रवेशो रावणालये ।
एवमुक्तो हरिवरस्तदा रक्षोगणेश्वरम् ॥ १२ ॥

अथवा अन्य सभी बातें छोड़ो और तुम केवल यही ठीक ठीक बता दो की रावण की इस पुरी में आने का तुम्हारा क्या उद्देश्य है। जव प्रहस्त ने इस प्रकार कपिश्रेष्ठ से पूछा ॥१२॥

अब्रवीन्नास्मि शक्रस्य यमस्य वरुणस्य वा ।
धनदेन न मे सख्यं विष्णुना नास्मि चोदितः ॥ १३ ॥

तब हनुमान जी ने उत्तर देते हुआ कहा -मैं न तो इन्द्र का और न यम का दूत हूँ। न कुबेर के साथ मेरा मेल है और न मैं भगवान् विष्णु की प्रेरणा से यहाँ आया हूँ ॥१३॥

जातिरेव मम त्वेषा वानरोऽहमिहागतः ।
दर्शने राक्षसेन्द्रस्य तदिदं दुर्लभं मया ॥ १४ ॥

वनं राक्षसराजस्य दर्शनार्थे विनाशितम् ।
ततस्ते राक्षसाः प्राप्ता बलिनो युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १५ ॥

मैं जन्म से ही वानर हूँ। साधारणतः राक्षसराज से भेंट करना कठिन था। अत: मैंने यह अशोकवन, राक्षसराज से भेंट करने के लिये ही उजाड़ा है। बड़े बड़े बली राक्षस जो युद्ध की इच्छा से लड़ने के लिये मेरे पास आये ॥१४-१५॥

रक्षणार्थं तु देहस्य प्रतियुद्धा मया रणे ।
अस्त्रपाशैर्न शक्योऽहं बद्धुं देवासुरैरपि ॥ १६ ॥

मैं अपने शरीर की रक्षा के लिये रण भूमि में उनका सामना किया। क्या देवता और क्या असुर, कोई भी मुझे पाश से नहीं बांध सकता॥१६॥

पितामहादेष वरो ममापि हि समागतः ।
राजानं द्रष्टुकामेन मयास्त्रमनुवर्तितम् ॥ १७ ॥

स्वयं पितामह ब्रह्मा जी से ही मुझको यह वर मिला है। अत: केवल राक्षसराज से भेंट करने के लिए ही मैं अपनी इच्छा से ब्रह्मास्त्र से बंध गया था ॥१७॥

विमुक्तोऽप्यहमस्त्रेण राक्षसैस्त्वभिवेदितः ।
केनचिद् रामकार्येण आगतोऽस्मि तवान्तिकम् ॥ १८ ॥

यद्यपि मैं अस्त्र के बंधन से मुक्त था तब भी मैंने राक्षसों की मार इसलिये सही कि, श्रीरामचन्द्र जी के किसी कार्य के लिये मुझे तुम्हारे पास पाना था ॥१८॥

दूतोऽहमिति विज्ञाय राघवस्यामितौजसः ।
श्रूयतामेव वचनं मम पथ्यमिदं प्रभो ॥ १९ ॥

हे प्रभो! तुम मुझे अमित पराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी का दूत समझो और मैं जो हितकारी वचन कहूँ, उन्हें अवश्य सुनो ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का पचासवां सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥एकपञ्चाशः सर्गः इक्यावनवाँ सर्ग॥

श्रीरामप्रभावं वर्णयता हनुमता रावणस्य प्रबोधनम् – हनुमान जी का श्री राम के प्रभाव का वर्णन करते हुए रावण को समझाना और सीता जी को लौटा देने का आग्रह

तं समीक्ष्य महासत्त्वं सत्त्ववान् हरिसत्तमः ।
वाक्यमर्थवदव्यग्रस्तमुवाच दशाननम् ॥ १॥

महाबलि वानर शिरोमणि हनुमान जी महाबली दशानन की ओर देखते हुए, शांत भाव से अर्थयुक्त वचन कहने लगे ॥१॥

अहं सुग्रीवसन्देशादिह प्राप्तस्तवान्तिके ।
राक्षसेन्द्र हरीशस्त्वां भ्राता कुशलमब्रवीत् ॥ २ ॥

हे राक्षस राज ! मैं सुग्रीव की आज्ञा से यहाँ तुम्हारी पुरी में आया है। वानरराज सुग्रीव ने भाईचारे के विचार से तुम्हारा कुशल समाचार पूछा है ॥२॥

भ्रातुः शृणु समादेशं सुग्रीवस्य महात्मनः ।
धर्मार्थसहितं वाक्यं इह चामुत्र च क्षमम् ॥ ३ ॥

भाई ! महात्मा सुग्रीव का सन्देश सुनो। उनका यह सन्देश धर्म और अर्थ से युक्त होने के कारण इसलोक और परलोक के लिये हितकारी है ॥३॥

राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिमान् ।
पितेव बन्धुर्लोकस्य सुरेश्वरसमद्युतिः ॥ ४ ॥

अनेक रथों, हाथियों और घोड़ों के अधिपति और इन्द्र की तरह कान्तिमान महाराज दशरथ अपनी प्रजा के वैसे ही हितैषी थे जैसे पिता अपने पुत्रों का हितैषी होता है ॥४॥

ज्येष्ठस्तस्य महाबाहुः पुत्रः प्रियतरः प्रभुः ।
पितुर्निर्देशान्निष्क्रान्तः प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥ ५ ॥

उनके परम प्रिय ज्येष्ठ पुत्र महाबाहु श्रीरामचन्द्र पिता की आज्ञा से धर्ममार्ग का आश्रय लेकर दण्डक वन में आए ॥५॥

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह भार्यया ।
रामो नाम महातेजा धर्म्यं पन्थानमाश्रितः ॥ ६ ॥

उनके साथ उनके भाई लक्ष्मण और उनकी स्त्री सीता भी वन में आयीं। राजा श्रीरामचन्द्र जी महातेजस्वी और धर्मपथ पर आरूढ़ हैं ॥६॥

तस्य भार्या जनस्थाने भ्रष्टा सीतेति विश्रुता ।
वैदेहस्य सुता राज्ञो जनकस्य महात्मनः ॥ ७ ॥

उनकी पतिव्रता भार्या सीता जी का, जो महात्मा राजा विदेह जनक की बेटी हैं, वन में किसी ने अपहरण कर लिया ॥७॥

मार्गमाणस्तु तां देवीं राजपुत्रः सहानुजः ।
ऋश्यमूकमनुप्राप्तः सुग्रीवेण च संगतः ॥ ८ ॥

अपने छोटे भाई लक्ष्मण सहित वह राजकुमार सीता देवी की खोज करते हुए, ऋष्यमूक के समीप पहुँचे और वहां सुग्रीव से उनका समागम हुआ ॥८॥

तस्य तेन प्रतिज्ञातं सीतायाः परिमार्गणम् ।
सुग्रीवस्यापि रामेण हरिराज्यं निवेदितम् ॥ ९ ॥

सुग्रीव ने सीता का पता लगाने की श्रीरामचन्द्र जी से सत्य प्रतिज्ञा की और श्रीरामचन्द्र जी ने भी सुग्रीव को राज्य दिलाने की वचन दिया ॥९॥

ततस्तेन मृधे हत्वा राजपुत्रेण वालिनम् ।
सुग्रीवः स्थापितो राज्ये हर्यृक्षाणां गणेश्वरः ॥ १० ॥

तदनन्तर राजकुमार ने युद्ध में बालि का वध कर, सुग्रीव को किष्किन्धा के राजसिंहासन पर बिठाकर, उन्हें वानरों का राजा बना दिया ॥१०॥

त्वया विज्ञातपूर्वश्च वाली वानरपुङ्गवः ।
रामेण निहतः सङ्ख्ये शरेणैकेन वानरः ॥ ११ ॥

तुम तो वानरश्रेष्ठ बालि के बलपराक्रम को भली भांति पहले से परिचित हो। उस बालि को श्रीराम ने युद्ध में एक ही बाण से मार डाला ॥११॥

स सीतामार्गणे व्यग्रः सुग्रीवः सत्यसंगरः ।
हरीन् सम्प्रेषयामास दिशः सर्वा हरीश्वरः ॥ १२ ॥

तां हरीणां सहस्राणि शतानि नियुतानि च ।
दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते ह्यधश्चोपरि चाम्बरे ॥ १३ ॥

सत्यप्रतिज्ञ कपिराज सुग्रीव जी ने सीता का पता लगाने के लिये व्यग्र होकर, समस्त दिशाओं में वानरों को भेजा। लाखों, करोड़ों वानर न केवल समस्त दिशाओं में बल्कि आकाश पाताल में भी सीताजी का पता लगाने के लिए विचरण कर रहे हैं ॥१२-१३॥

वैनतेयसमाः केचित् केचित् तत्रानिलोपमाः ।
असङ्गगतयः शीघ्रा हरिवीरा महाबलाः ॥ १४ ॥

जो वानर सीता का पता लगाने को भेजे गये हैं, उनमें बहुत से गरुड़ के समान और बहुत से पवन के समान हैं। उन महाबली वानरों की गति कहीं नहीं रूकती और वह सभी शीघ्रगामी हैं ॥१४॥

अहं तु हनुमान्नाम मारुतस्यौरसः सुतः ।
सीतायास्तु कृते तूर्णं शतयोजनमायतम् ॥ १५ ॥

समुद्रं लङ्घयित्वैव तां दिदृक्षुरिहागतः ।
भ्रमता च मया दृष्टा गृहे ते जनकात्मजा ॥ १६ ॥

मैं पवनदेव का औरस पुन हूँ और मेरा नाम हनुमान है । मैं माता सीता की खोज में तुरन्त सौ योजन विस्तृत समुद्र को लाँघकर तीव्रगति से तुम्हे देखने के लिये यहाँ आया हूँ। लंका में घूमते फिरते मैंने तुम्हारे घर में जनक नंदनी सीताजी को देखा है ॥१५ -१६॥

तद् भवान् दृष्टधर्मार्थस्तपःकृतपरिग्रहः ।
परदारान् महाप्राज्ञ नोपरोद्धुं त्वमर्हसि ॥ १७ ॥

हे महाप्राज्ञ ! तुम धर्म और अर्थ के तत्व को भली भांति जानते हो, और तपःप्रभाव से तुमने यह ऐश्वर्य सम्पादन किया है । अतः तुम्हे पराई स्त्री को अपने घर में बंदी बना कर रखना रखना उचित नहीं ॥१७॥

न हि धर्मविरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु ।
मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥ १८ ॥

आप जैसे बुद्धिमान को ऐसे धर्मविरुद्ध अनर्थकारी तथा जड़ से नाश करने वाले कामों के करने में, प्रवृत होना उचित नहीं है ॥१८॥

कश्च लक्ष्मणमुक्तानां रामकोपानुवर्तिनाम् ।
शराणामग्रतः स्थातुं शक्तो देवासुरेष्वपि ॥ १९ ॥

देवताओं अथवा असुरों में कौन सा ऐसा वीर है जो लक्ष्मण और क्रुद्ध होकर श्रीरामचन्द्र जी के द्वारा छोड़े हुए बाणों के सामने टिक सके ॥१९॥

न चापि त्रिषु लोकेषु राजन् विद्येत कश्चन ।
राघवस्य व्यलीकं यः कृत्वा सुखमवाप्नुयात् ॥ २० ॥

हे राजन् ! तीनों लोकों में ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जो श्रीरामचन्द्र का अपराध करके सुखी रह सके ॥२०॥

तत्त्रिकालहितं वाक्यं धर्म्यमर्थानुयायि च ।
मन्यस्व नरदेवाय जानकी प्रतिदीयताम् ॥ २१ ॥

अतः हे रावण ! मैंने जो कुछ कहा है वह भूत, भविष्यद्, और वर्तमान तीनों कालों में हितकर, धर्मयुक्त और शास्त्रसम्मत है, अतः मेरा कहना मान कर, नरेन्द्र श्रीराम जी को जानकीजी लौटा दो ॥२१॥

दृष्टा हीयं मया देवी लब्धं यदिह दुर्लभम् ।
उत्तरं कर्म यच्छेषं निमित्तं तत्र राघवः ॥ २२ ॥

और मैंने तो सीताजी का दर्शन कर ही लिया है। मुझे जिस दुर्लभ वस्तु की खोज थी, वह मैंने यहाँ प्राप्त कर ली है। अब रहा इसके आगे का कर्त्तव्य अर्थात् जानकी जी को यहाँ से ले जाना, वह श्रीरामचन्द्र जी का निमित्त है ॥२२॥

लक्षितेयं मया सीता तथा शोकपरायणा ।
गृह्य यां नाभिजानासि पञ्चास्यामिव पन्नगीम् ॥ २३ ॥

जिस प्रकार तुमने सीताजी को तुमने अंतःपुर में बंदी बना कर रखा है, उसे मैंने बहत दुखदायी पाया है। अतः यह मत समझना कि, सीता जी तुम्हारे वश में हो गयी। सीता जी तुम्हारे घर में काम स्वरुप पांच

फन वाली नागिन के समान निवास करती हैं, किन्तु तुम इससे अनभिज्ञ हो ॥२६॥

नेयं जरयितुं शक्या सासुरैरमरैरपि ।
विषसंसृष्टमत्यर्थं भुक्तमन्नमिवौजसा ॥ २४ ॥

जैसे विष मिले अन्न हुए को बलपूर्वक पचाने की शक्ति किसी में नहीं होती, वैसे ही क्या दैत्य और क्या देवता, कोई भी ऐसा नहीं जो सीताजी को बलपूर्वक बंदी बना कर रख सके ॥२४॥

तपःसन्तापलब्धस्ते योऽयं धर्मपरिग्रहः ।
न स नाशयितुं न्याय्यं आत्मप्राणपरिग्रहः ॥। २५ ॥

तुमने कठोर तप करके जिस धर्म फल स्वरूप ऐश्वर्य और दीर्घ कालीन जीवन को प्राप्त किया है, उसे धर्मविरुद्ध कार्य कर नष्ट करना उचित नहीं है ॥२५॥

अवध्यतां तपोभिर्यां भवान् समनुपश्यति ।
आत्मनः सासुरैर्देवैर्हेतुस्तत्राप्ययं महान् ॥ २६ ॥

तुम तपस्या के प्रभाव से देवताओं और असुरों द्वारा जो अपनी अवध्यता देख रहे हो, इसमें भी तपस्या जनित धर्म ही मुख्य कारण है ॥२६॥

सुग्रीवो न हि देवोऽयं न यक्षो न च राक्षसः ।
मानुषो राघवो राजन् सुग्रीवश्च हरीश्वरः ॥ २७ ॥

वह यह कि, सुग्रीव जी न तो देवता हैं, न राक्षस हैं, न दानव हैं, न गन्धर्व है, न यक्ष हैं और न मनुष्य ही हैं । श्री रामचंद्र जी मनुष्य हैं और सुग्रीव वानरों के राजा हैं ॥२७॥

तस्मात् प्राणपरित्राणं कथं राजन् करिष्यसि ।
न तु धर्मोपसंहारमधर्मफलसंहितम् ॥ २८ ॥

तदेव फलमन्वेति धर्मश्चाधर्मनाशनः ।
प्राप्तं धर्मफलं तावद् भवता नात्र संशयः ॥ २९ ॥

अत: हे राजन् ! सुग्रीव से तुम अपने प्राणों की रक्षा कैसे कर सकोगे? यह ठीक है कि, धर्म द्वारा अधर्म का नाश होता है और जो प्राणी अधर्म के फल से बंधा हुआ है उसे धर्म फल की प्रप्ति नहीं होती और वह केवल अधर्म गल को ही प्राप्त करता है अर्थात् तुम्हारे धर्म से तुम्हारा अधर्म बलवान है। हे राजन् ! धर्म का फल तो तुमने निस्सन्देह प्राप्त किया ही है॥२८-२९॥

फलमस्याप्यधर्मस्य क्षिप्रमेव प्रपत्स्यसे ।
जनस्थानवधं बुद्ध्वा वालिनश्च वधं तथा ॥ ३० ॥

रामसुग्रीवसख्यं च बुद्धयस्व हितमात्मनः ।

कामं खल्वहमप्येकः सवाजिरथकुञ्जराम् ॥ ३१ ॥

किन्तु सीताहरण रूपी इस अधर्म का फल भी तुमको शीघ्र ही प्राप्त होगा अब तुम जनस्थानवासी चौदह हज़ार राक्षसों के तथा बालि के वध का स्मरण करो तथा श्रीराम और सुग्रीव की मैत्री का स्मरण करो, अपना हित जिसमें होता हो उसका विचार करो। यदि चाहूँ तो निश्चय मैं अकेला ही, घोड़ों, हाथियों और रथों सहित ॥३०-३१॥

लङ्कां नाशयितुं शक्तस्तस्यैष तु न निश्चयः ।
रामेण हि प्रतिज्ञातं हर्यृक्षगणसन्निधौ ॥ ३२ ॥

तुम्हारी लंका को नष्ट कर सकता हूँ; पर श्रीरामचन्द्र जी ने मुझे ऐसी आज्ञा नहीं दी है क्योंकि उन्होंने वानर और रीछों के सामने प्रतिज्ञा की है कि, ॥३२॥

उत्सादनममित्राणां सीता यैस्तु प्रधर्षिता ।
अपकुर्वन् हि रामस्य साक्षादपि पुरन्दरः ॥ ३३ ॥

जिसने सीता को हरा है उसका मैं स्वयं संहार करूँगा। श्रीरामचन्द्र जी का अपराध करके साक्षात इंद्र भी ॥ ३३ ॥

न सुखं प्राप्नुयादन्यः किं पुनस्त्वद्विधो जनः ।
यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते गृहे ॥ ३४॥

कभी सुखी नहीं रह सकते। फिर तुम जैसे लोगों की तो बात ही क्या है। हे रावण ! जिसे तुम सीता के नाम से जानते हो और जो इस समय लंका में तुम्हारे पंजे में फंसी हुई है ॥३४॥

कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलङ्काविनाशिनीम् ।
तदलं कालपाशेन सीताविग्रहरूपिणा ॥ ३५ ॥

उसे तुम सारी लंका का नाश करने वाली कालरात्रि समझो। अतः तुम सीता रूपी काल की फांसी को ॥३५॥

स्वयं स्कन्धावसक्तेन क्षममात्मनि चिन्त्यताम् ।
सीतायास्तेजसा दग्धां रामकोपप्रपीडिताम् ॥ ३६ ॥

अपने हाथ से अपने गले में फाँसी डालने के समय तुम अपने कुशल क्षेम पर तो विचार कर लो। सीता के तेज से दग्ध और श्रीरामचन्द्र जी के कोप से ॥ ३६॥

दह्यमानामिमां पश्य पुरीं साट्टप्रतोलिकाम् ।
स्वानि मित्राणि मन्त्रींश्च ज्ञातीन् भ्रातृऽन् सुतान् हितान् ॥ ३७ ॥

पीड़ित होकर तुम इस लंका को अटारियों सहित भस्म हुआ देखागे। अतः तुम अपने मित्रों, मंत्रियों, जाति बिरादरी, भाइयों, पुत्रों और हितैषियों का ॥३७॥

भोगान् दारांश्च लङ्कां च मा विनाशमुपानय ।
सत्यं राक्षसराजेन्द्र शृणुष्व वचनं मम ॥ ३८ ॥

रामदासस्य दूतस्य वानरस्य विशेषतः ।
सर्वान्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान् ॥ ३९ ॥

तथा ऐश्वर्य के भोग का, अपनी स्त्रियों का तथा लंका का नाश मत करवायो। हे राक्षसेन्द्र ! मैं तो श्रीरामचन्द्र जी का दूत और विशेषकर वानर ही हूँ, किन्तु मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह सत्य है, अत: तुम उस पर विचार करो। चराचर समस्त प्राणियों सहित समस्त लोकों का संहार करके ॥३८-३९॥

पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः ।
देवासुरनरेन्द्रेषु यक्षरक्षोगणेषु च ॥ ४० ॥

विद्याधरेषु सर्वेषु गन्धर्वेषु मृगेषु च ।
सिद्धेषु किन्नरेन्द्रेषु पतत्त्रिषु च सर्वतः ॥ ४१ ॥

सर्वत्र सर्वभूतेषु सर्वकालेषु नास्ति सः ।
यो रामं प्रतियुद्ध्येत विष्णुतुल्यपराक्रमम् ॥ ४२ ॥

महायशस्वी श्रीरामचन्द्र जी पुनः उनकी सृष्टि करने की शक्ति रखते हैं। फिर देव, असुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, विद्याधर, गन्धर्व, मृग, सिद्ध, किन्नर, पक्षी इन सब प्राणियों में सर्वत्र और सदैव ऐसा कोई नहीं है,

जो विष्णु के समान पराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी का युद्ध में सामना कर सके ॥४०- ४२॥

सर्वलोकेश्वरस्येह कृत्वा विप्रियमुत्तमम् ।
रामस्य राजसिंहस्य दुर्लभं तव जीवितम् ॥ ४३ ॥

अतः सर्वलोकेश्वर एवं राजसिंह श्रीरामचन्द्र जी का ऐसा महान अपराध करके, तुम्हारा जीवित रहना कठिन है ॥४३॥

देवाश्च दैत्याश्च निशाचरेन्द्र गन्धर्वविद्याधरनागयक्षाः ।
रामस्य लोकत्रयनायकस्य स्थातुं न शक्ताः समरेषु सर्वे ॥ ४४॥

हे निशाचरराज ! श्रीरामचन्द्र जी तीनो लोकों के स्वामी हैं। देव, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग और यक्ष इनमें से कोई भी युद्ध में त्रिलोकीनाथ श्रीरामचन्द्र, जी के सामने खड़े रहने में समर्थ नहीं है ॥४४॥

ब्रह्मा स्वयंभूश्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा ।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा त्रातुं न शक्ता युधि राघवस्य ॥४५॥

स्वयंभू चतुरानन ब्रह्मा, अथवा त्रिपुरासुर को मारने वाले त्रिलोचन रुद्र, अथवा देवताओं के राजा महेन्द्र इन्द्र ही क्यों न हों; श्रीरामचन्द्र जी के सामने वे युद्ध में नहीं ठहर सकते ॥४५॥

स सौष्ठवोपेतमदीनवादिनः कपेर्निशम्याप्रतिमोऽप्रियं वचः ।
दशाननः कोपविवृत्तलोचनः समादिशत् तस्य वधं महाकपेः ॥४६॥

जब हनुमान जी ने, ऐसे सुन्दर, दैन्य एवं अनुपम वचन कहे। तब वह रावण को अत्यंत अप्रिय लगे। मारे क्रोध के उसके नेत्र लाल हो गये और उसने हनुमानजी के वध की आज्ञा दी ॥४॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ द्विपञ्चाशः सर्गः बावनवाँ सर्ग॥

तवधानौचित्यं प्रतिपाद्य विभीषणेन तस्य कृते दण्डान्तरविधानाय रावणं प्रति प्रार्थनं; रावणेन तदनुरोधस्य - विभीषण जी द्वारा दूत के वध को अनुचित बताते हुए कोई अन्य दंड देने के लिए रावण से प्रार्थना तथा रावण द्वारा उसका अनुमोदन

स तस्य वचनं श्रुत्वा वानरस्य महात्मनः ।
आज्ञापयद् वधं तस्य रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १ ॥

वानर शिरोमणि महात्मा हनुमान जी के, उन वचनों को सुनकर, रावण ने क्रुद्ध होकर अपने सेवकों को, उनका वध करने की आज्ञा दी ॥१॥

वधे तस्य समाज्ञप्ते रावणेन दुरात्मना ।
निवेदितवतो दौत्यं नानुमेने विभीषणः ॥ २ ॥

जब दुष्ट रावण ने हनुमान जी का वध कर डालने की दी, तब विभीषण जी ने उस आज्ञा का दूतधर्मानुसार अनुमोदन नहीं किया क्योंकि हनुमान जी अपने आप को सुग्रीव और श्री राम का दूत बताया था ॥२॥

तं रक्षोधिपतिं क्रुद्धं तच्च कार्यमुपस्थितम् ।
विदित्वा चिन्तयामास कार्यं कार्यविधौ स्थितः ॥ ३ ॥

राक्षसराज रावण को क्रुद्ध हुआ देख कर और उसकी हनुमान के वध की आज्ञा को, कार्यरूप में परिणत होने की तैयारियां देखकर, रावण द्वारा यथोचित कृत्य पूरा कराने के लिये नियुक्त विभीषण, अपने कर्तव्य के विषय में विचार करने लगे ॥३॥

निश्चितार्थस्ततः साम्ना पूज्यं शत्रुजिदग्रजम् ।
उवाच हितमत्यर्थं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ४ ॥

शत्रु को जीतने वाले तथा वार्तालाप कुशल विभीषण ने अपना कर्तव्य स्थिर होने पर अपने बड़े भाई का सम्मान कियातथा अत्यन्त हितकर वचनों से, साम नीति का अवलंबन कर रावण से कहना प्रारम्भ किया ॥४॥

क्षमस्व रोषं त्यज राक्षसेन्द्र प्रसीद मद्वाक्यमिदं शृणुष्व ।
वधं न कुर्वन्ति परावरज्ञा दूतस्य सन्तो वसुधाधिपेन्द्राः ॥ ५ ॥

हे राक्षस राज! कृपा करके क्रोध को शान्त कीजिए और क्षमा को ग्रहण करके, प्रसन्न चित्त होकर आप मेरी इन बातों को सुनिये। हे राजन् ! उंच नीचा का विवेक रखने वाले श्रेष्ठ राजा दूत का कदापि वध नहीं करते ॥५॥

राजधर्मविरुद्धं च लोकवृत्तेश्च गर्हितम् ।
तव चासदृशं वीर कपेरस्य प्रमापणम् ॥ ६ ॥

हे वीर ! इस दूत वानर का वध करना, केवल राजधर्मविरुद्ध ही नहीं है, किन्तु लोकाचार की दृष्टि से भी निंदनीय है। यह कार्य आप जैसे वीर के स्वरूप के विरुद्ध भी है॥६॥

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च राजधर्मविशारदः ।
परावरज्ञो भूतानां त्वमेव परमार्थवित् ॥ ७ ॥

आप धर्मज्ञ, कृतज्ञ, राजनीतिविशारद, भले बुरे का ज्ञान रखने वाले और प्राणियों में सब से अधिक परमार्थतत्व के ज्ञाता हैं ॥७॥

गृह्यन्ते यदि रोषेण त्वादृशोऽपि विचक्षणाः ।
ततः शास्त्रविपश्चित्त्वं श्रम एव हि केवलम् ॥ ८ ॥

यदि आप जैसे ज्ञानी भी क्रोध के वशवर्ती हो जाय और ऐसे अनुचित कार्य कर बैठे। तब समस्त शास्त्रों का अधयन्न केवल श्रम उठाना ही होगा ॥८॥

तस्मात् प्रसीद शत्रुघ्न राक्षसेन्द्र दुरासद ।
युक्तायुक्तं विनिश्चित्य दूतदण्डे विधीयताम् ॥ ९ ॥

अतएव हे शत्रुघ्न एवं दुरासद राक्षेन्द्र ! प्रसन्न होकर पहले आप यथा योग्य विचार कर लीजिए तभी दूत को प्राण दण्ड दीजिएगा ॥९॥

विभीषणवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
रोषेण महताऽऽविष्टो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १० ॥

राक्षसेश्वर रावण, विभीषण के वचन सुन कर और भी अधिक क्रुद्ध हुआ और उनकी बातों का उत्तर देता हुआ कहने लगा ॥१०॥

न पापानां वधे पापं विद्यते शत्रुसूदन ।
तस्मादेनं वधिष्यामि वानरं पापकारिणम् ॥ ११ ॥

हे शत्रुसूदन ! पापियों का वध करने से पाप नहीं लगता। अतएव, वाटिका का विध्वंस और राक्षसों का वध रुपी पापकर्म करने वाले वानर का अवश्य ही वध करूंगा ॥११॥

अधर्ममूलं बहुरोषयुक्तअनार्यजुष्टं वचनं निशम्य ।
उवाच वाक्यं परमार्थतत्त्वं विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः ॥ १२ ॥

बुद्धिमानों में श्रेष्ठ विभीषण, रावण के अधर्ममूलक, अनेक दोषों से युक्त तथा अभद्रोचित वचनों को सुनकर, परमार्थतत्व युक्त वचन बोले ॥१२॥

प्रसीद लङ्केश्वर राक्षसेन्द्र धर्मार्थयुक्तं वचनं शृणुष्व ।
दूता न वध्याः समयेषु राजन् सर्वेषु सर्वत्र वदन्ति सन्तः ॥ १३ ॥

हे लंकेश्वर । हे राक्षसेन्द्र ! आप प्रसन्न होइए और मेरे धर्म एवं अर्थ युक्त वचनों को सुनिए। हे राजन् ! सत्पुरुषों का सर्वत्र यही कथन पाया जाता है कि, दूत कहीं भी, को किसी भी समय वध करने योग्य नहीं होता ॥१३॥

असंशयं शत्रुरयं प्रवृद्धः कृतं ह्यनेनाप्रियमप्रमेयम् ।
न दूतवध्यां प्रवदन्ति सन्तो दूतस्य दृष्टा बहवो हि दण्डाः ॥ १४ ॥

यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह बड़ा शत्रु है और इसने अपराध भी बड़ा भारी किया है; तथापि साधुमतानुसार दूत होने के कारण इसका वध अनुचित है। हाँ इसका वध न करवा कर इसे दूत को देने योग्य अनेक अन्य दण्डों में से कोई दण्ड दिया जा सकता है॥ १४॥

वैरूप्यमङ्गेषु कशाभिघातो मौण्ड्यं तथा लक्षणसंनिपातः ।
एतान् हि दूते प्रवदन्ति दण्डान् वधस्तु दूतस्य न नः श्रुतोऽस्ति ॥१५॥

जैसे कि, दूत के किसी अंग को भंग कर देना, दूत को कोड़े लगवाना, दूत का सिर मुंडवा देना, दूत के शरीर में कोई चिन्ह दगवा देना इत्यादि। किन्तु दूत का वध करवाना तो मैंने कभी नहीं सुना है ॥१५॥

कथं च धर्मार्थविनीतबुद्धिः परावरप्रत्ययनिश्चितार्थः ।
भवद्विधः कोपवशे हि तिष्ठेत् कोपं नियच्छन्ति हि सत्त्ववन्तः ॥१६॥

फिर आप जैसे धर्मार्थ-शिक्षित बुद्धि वाले तथा भले बुरे के ज्ञान का निर्णय करने वाले लोग भला किस प्रकार क्रोध के वश हो सकते हैं। आप जैसे नितिज्ञ पुरुषों को तो क्रोध अवश्य अपने वश में रखना ही चाहिये ॥१६॥

न धर्मवादे न च लोकवृत्ते न शास्त्रबुद्धिग्रहणेषु चापि ।
विद्येत कश्चित्तव वीरतुल्यस्त्वं ह्युत्तमः सर्वसुरासुराणाम् ॥ १७ ॥

हे वीर ! धर्मशास्त्र के ज्ञान में, लोकाचार का पालन करने में, और शास्त्र के सिद्धांतों को समझने में आपके समान कोई नहीं है। इन विषयों में आप सुर और असुर सभी में सर्वोत्तम हो।॥१७॥

पराक्रमोसाहमनस्विनां च सुरासुराणामपि दुर्जयेन ।
त्वयाप्रमेयेण सुरेन्द्रसंघा जिताश्च युद्धेष्वसकृन्नरेन्द्रा ॥ १८ ॥

अधिक कहां तक कहूँ-पराक्रम, उत्साह और शौर्यवान जो देवता और असुर है, उन सब से आप अप्रमेय शक्तिशाली हो। अनेक बार आप इनको तथा अनेक राजाओं को जीत चुके हो॥१८॥

इत्थंविधस्यामरदैत्यशत्रोः श्रूरस्य वीरस्य तवाजितस्य
कुर्वन्ति वीरा मनसाप्यलीकं प्राणैर्विमुक्ता न तु भोः पुरा ते ॥१९॥

जो मूर्ख पुरुष मन से भी आप जैसे अजेय शूरवीर और देव दानवों के शत्रु का अनिष्ट अथवा कोई अपराध करते हैं, तो आप उनका नाश ऐसे करवा डालते है; मानों वह पहले कभी थे ही नहीं ॥१९॥

न चाप्यस्य कपेर्घाते कञ्चित् पश्याम्यहं गुणम् ।
तेष्वयं पात्यतां दण्डो यैरयं प्रेषितः कपिः ॥ २० ॥

मुझे तो इस वानर को मारने में कुछ भी अच्छाई दिखाई नहीं देती बल्कि यह दण्ड अर्थात प्राणदंड तो उनको देना चाहिये जिन्होंने इसको यहाँ भेजा है ॥२०॥

साधुर्वा यदि वासाधुः परैरेष समर्पितः ।
ब्रुवन् परार्थं परवान् न दूतो वधमर्हति ॥ २१ ॥

यह स्वयं अच्छा हो या बुरा, यह प्रश्न ही नहीं है, परन्तु यह शत्रुओं द्वारा भेजा गया है और उन्हीं का सन्देश आप तक पहुंचा रहा है। अत: इस पराधीन दूत को मारना ठीक नहीं है ॥२१॥

अपि चास्मिन् हते नान्यं राजन् पश्यामि खेचरम् ।
इह यः पुनरागच्छेत् परं पारं महोदधेः ॥ २२ ॥

इसके अतिरिक्त एक और विचारणीय बात है। हे राजन् ! इसके मारे जाने पर, मुझे दूसरा ऐसा कोई आकाशचारी प्राणी दिखाई नहीं देता, जो समुद्र पार कर फिर यहाँ आ सके ॥२२॥

तस्मान्नास्य वधे यत्नः कार्यः परपुरञ्जय ।
भवान् सेन्द्रेषु देवेषु यत्नमास्थातुमर्हति ॥ २३ ॥

हे शत्रु नगरी पर विजय पाने वाले महाराज! आपको इसके वध के लिये यत्न नहीं करना चाहिये। अपितु यदि वध करने की ही आपकी इच्छा है, तो देवताओं पर चढ़ाई करने की तैयारियां कीजिये ॥२३॥

अस्मिन् विनष्टे नहि दूतमन्यं पश्यामि यस्तौ नरराजपुत्रौ ।
युद्धाय युद्धप्रिय दुर्विनीतावुद्योजयेद् वै भवता विरुद्धौ ॥ २४ ॥

हे युद्धप्रिय ! यदि यह दूत मार डाला गया तो फिर ऐसा कोई दूसरा दूत न मिलेगा, जो इतनी दूर और ऐसे अवरुद्ध मार्ग से जाकर, उन दोनों दुर्वीनीत और आपके शत्रु राजकुमारों को युद्ध के लिये उत्साहित कर सके ॥२४॥

अस्मिन्हते वानरयूथमुख्ये सर्वापवादं प्रवदन्ति सर्वे ।
न हि प्रपश्यामि गुणान्यशो वा लोकापवादो भवति प्रसिद्धः ॥२५॥

इस वानरयूथपति का वध करने से सभी आपकी सर्वत्र निन्दा करेंगे। ऐसा करने से मुझे तो इसमें न तो आपके लिये यश की और न कोई भलाई की बात ही देख पड़ती है। अपितु इससे तो संसार में आपकी निन्दा फैल जायगी ॥२५॥

पराक्रमोत्साहमनस्विनां च सुरासुराणामपि दुर्जयेन ।
त्वया मनोनन्दन नैर्ऋतानां युद्धाय निर्नाशयितुं न युक्तम् ॥ २६॥

हे राक्षसों के ह्रदय को आनंदित करने वाले वीर! अत्यंत पराक्रमी और उत्साही देवता और दैत्य भी आपको युद्ध में जीत नहीं सकते। अतः राक्षसों के मन की युद्ध सम्बन्धी उत्साह को भंग करना आपके लिए उचित नहीं है ॥२६॥

हिताश्च शूराश्च समाहिताश्च कुलेषु जाताश्च महागुणेषु ।
मनस्विनः शस्त्रभृतां वरिष्ठाः कोपप्रशस्ताः सुभृताश्च योधाः ॥२७॥

क्योंकि यह सभी योद्धा आपके हितैषी हैं, बड़े शूर वीर हैं, सावधान रहने वाले हैं, कुलीन हैं, मनस्वी हैं और शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ हैं । इनकी संख्या भी करोड़ों में है ॥२७॥

तदेकदेशेन बलस्य तावत् केचित् तवादेशकृतोऽद्य यान्तु ।
तौ राजपुत्रावुपगृह्य मूढौ परेषु ते भावयितुं प्रभावम् ॥ २८ ॥

मेरी सम्मति से तो इस समय आपकी कुछ सेना को वहाँ जाकर उन दोनों मूर्ख राजकुमारों को पकड़कर लाना चाहिए, जिससे कि आपका प्रभाव उनको पता चल सके ॥२८॥

निशाचराणामधिपोऽनुजस्य विभीषणस्योत्तमवाक्यमिष्टम् ।
जग्राह बुद्ध्या सुरलोकशत्रुर्महाबलो राक्षसराजमुख्यः ॥ २९ ॥

देवताओं के शत्रु राक्षसेन्द्र महाबली रावण ने अच्छी तरह समझ बूझ कर विभीषण के कहे हुए उत्तम वचनों को, अपने काम का समझ कर उन्हें स्वीकार कर लिया ॥२९॥

क्रोधं च जातं हृदये निरुध्य विभीषणोक्तं वचनं सुपूज्य ।
उवाच रक्षोधिपतिर्महात्मा विभीषणं शस्त्रभृतां वरिष्ठम ॥३०॥

उत्पन्न हुए क्रोध को अपने हृदय में रोकर और विभीषण के कहे हुए वचनों का भली भाँति आदर करके, धैर्यवान राक्षसराज रावण, शास्त्र धारियों में श्रेष्ठ विभीषण से बोला ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥त्रिपञ्चाशः सर्गः तिरेपनवाँ सर्ग॥

हनुमत्पृच्छं प्रदीप्य राक्षसैस्तस्य नगरे परिचारणम् – राक्षसों का हनुमान की की पूँछ में आग लगाकर उन्हें नगर में घुमाना

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दशग्रीवो महात्मनः ।
देशकालहितं वाक्यं भ्रातुरुत्तरमब्रवीत् ॥ १॥

महाबली रावण, महात्मा विभीषण के देशकालोचित एवं हितकर वचनों को सुन कर, अपने भाई से कहने लगा ॥१॥

सम्यगुक्तं हि भवता दूतवध्या विगर्हिता ।
अवश्यं तु वधायान्यः क्रियतामस्य निग्रहः ॥ २॥

आपका कहना ठीक है, सचमुच दूत का वध करना निंदनीय कर्म है। परन्तु वध के अतिरिक्त इसे कोई अन्य दण्ड तो अवश्य ही दिया जायगा ॥२॥

कपीनां किल लाङ्गूलमिष्टं भवति भूषणम् ।
तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु ॥ ३॥

वानरों की पूँछ उनका अति प्रिय भूषण है, अत: इसकी पूँछ जला दी जाय और यह जली हुई पूँछ लेकर ही यहां से जाए ॥३॥

ततः पश्यन्त्वमुं दीनमङ्गवैरूप्यकर्शितम् ।
सुमित्रज्ञातयः सर्वे बान्धवाः ससुहृज्जनाः ॥ ४॥

जिससे इसके समस्त मित्र, भाईबन्धु और हितैषी, इसके अंग-भंग होने के कारण पीड़ित एवं दुःखी अवस्था में देखेंगे ॥४॥

आज्ञापयद् राक्षसेन्द्रः पुरं सर्वं सचत्वरम् ।
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन रक्षोभिः परिणीयताम् ॥ ५॥

तत्पश्चात रावण ने आज्ञा दी कि, राक्षसगण इस वानर की पूँछ आग लगाकर, इसको चौराहों और सड़कों सहित सारे नगर में घुमायें ॥५॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसाः कोपकर्कशा ॥
वेष्टयन्ते स्म लाङ्गूलं जीर्णैः कार्पासिकैः पटैः ॥ ६॥

रावण की यह आज्ञा सुनकर वह महाक्रोधी राक्षस, हनुमान जी की पूंछ में पुराने सूती वस्त्र लपेटने लगे ॥६॥

संवेष्ट्यमाने लाङ्गूले व्यवर्धत महाकपिः ।
शुष्कमिन्धनमासाद्य वनेष्विव हुताशनः ॥ ७॥

जैसे जैसे हनुमान जी की पूंछ में वस्त्र लपेटे जाते, वैसे वैसे हनुमान जी अपने शरीर को बढाते जाते, जैसे सूखे ईधन को पाकर वन में लगी आग बढ़ती है ॥७॥

तैलेन परिषिच्याथ तेऽग्निं तत्रोपपादयन् ।
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन राक्षसांस्तानताडयत् ॥ ८॥

राक्षसों ने वस्त्र लपेटने के बाद उसे तेल से भिगो कर, पूँछ में आग लगा दी। दी। तब हनुमान जी उसी जलती हुई पूँछ से उन राक्षसों को मार मार कर गिराने लगे ॥८॥

स तु रोषामर्षपरीतात्मा बालसूर्यसमाननः ।
लाङ्गूलं संप्रदीप्तं तु दृष्ट्वा तस्य हनूमतः ॥ ९॥

जब पूँछ की आग अत्यंत प्रज्वल्लित हो गई अर्थात धधक कर जलने लगी, तब क्रोध में भरे हनुमान जी का मुख, प्रातःकालीन सूर्य की तरह लाल दिखाई देने लगा। ॥९॥

सहस्त्रीबालवृद्धाश्च जग्मुः प्रीता निशाचराः ।
स भूयः संगतैः क्रूरै राक्षसैर्हरिपुंगवः ॥१०॥

हनुमान जी की पूँछ को जलते हुए देख कर, बालक और बूढ़े राक्षस बहुत प्रसन्न हुए और बहुत से क्रूर स्वभाव राक्षसों ने मिलकर पुनः उन वानर शिरोमणि को कसकर बाँध दिया ॥१०॥

निबद्धः कृतवान् वीरः तत्कालसदृशीं मतिम् ।
कामं खलु न मे शक्ता निबद्धस्यापि राक्षसाः ॥ ११॥

बंधे हुए हनुमान जी ने उस समय के अनुरूप यह विचार स्थिर किया कि, निश्चय ही मुझ बंधे हुए का भी यह राक्षस, चाहते हुए भी, कुछ अनिष्ट नहीं कर सकते ॥११॥

छित्त्वा पाशान् समुत्पत्य हन्यामहमिमान् पुनः ।
यदि भर्तृहितार्थाय चरन्तं भर्तृशासनात् ॥ १२॥

निबध्नन्ते दुरात्मानो न तु मे निष्कृतिः कृता ।
सर्वेषामेव पर्याप्तो राक्षसानामहं युधि ॥ १३॥

मैं इन बंधनों को आसानी से तोड़ कर ऊपर उछल जाऊँगा और इन राक्षसों का नाश कर दूँगा । इस समय मैं श्रीरामचन्द्र जी के हितसाधन के लिये यहाँ आया हूँ। ऐसी दशा में यदि इन दुष्टों ने, रावण की आज्ञा से मुझको बांध भी लिया है तो जितनी हानि मैं पहले इनकी कर चुका हूँ, उसका यथार्थ बदला तो मुझसे यह राक्षस अभी तक

नहीं ले पाये हैं। मैं युद्धस्थल में अकेला ही इन समस्त राक्षसों से लड़ने के लिये पर्याप्त हूँ ॥१२-१३॥

किं तु रामस्य प्रीत्यर्थं विषहिष्येऽहमीदृशम् ।
लङ्का चारयितव्या मे पुनरेव भवेदिति ॥ १४॥

किन्तु इस समय श्रीरामचन्द्र जी की प्रसन्नता के लिये मैं इस प्रकार के अनादर को भी सह लूँगा। ऐसा करने पर यह लोग मुझे पुनः लंका में घुमाएंगे तो मुझे लंका के पुनः निरीक्षण करने का अच्छा अवसर प्राप्त होगा ॥१४॥

रात्रौ न हि सुदृष्टा मे दुर्गकर्मविधानतः ।
अवश्यमेव द्रष्टव्या मया लङ्का निशाक्षये ॥ १५॥

क्योंकि, रात में विचारने के कारण मैंने दुर्गरचना की विधि पर दृष्टि रखते हुए अच्छी तरह से लंका के गुप्त स्थानों का नहीं देखा था। अतः मुझे दिन में मुझे इस लंकापुरी को भली भांति देख लेना चाहिये ॥१५॥

कामं बध्नन्तु मे भूयः पुच्छस्योद्दीपनेन च ।
पीडां कुर्वन्तु रक्षांसि न मेऽस्ति मनसः श्रमः ॥ १६॥

फिर चाहें यह राक्षस मुझे बार बार बांधें और मेरी पूँछ में आग लगायें। इसकी मुझे कुछ भी चिन्ता नहीं है। ॥१६॥

ततस्ते संवृताकारं सत्त्ववन्तं महाकपिम् ।
परिगृह्य ययुर्हृष्टा राक्षसाः कपिकुञ्जरम् ॥ १७॥

शङ्खभेरीनिनादैश्च घोयषयन्तः स्वकर्मभिः ।
राक्षसाः क्रूरकर्माणश्चारयन्ति स्म तां पुरीम् ॥ १८॥

तत्पश्च्यात, क्रूर स्वभाव राक्षस लोगों ने अपने विविध आकार कर को छुपाने वाले, महाबली और वानरश्रेष्ठ हनुमान जी को पकड़ कर और शंख और भेरी बजाते हुए, हनुमान जी के अपराध को लोगों को सुनाते हुए, उनको नगर में घुमाने लगे ॥१७-१८॥

अन्वीयमानो रक्षोभिर्ययौ सुखमरिन्दमः ।
हनुमांश्चारयामास राक्षसानां महापुरीम् ॥ १९॥

राक्षसों के साथ शत्रुओं का दमन करने वाले हनुमान जी सुख से चले जाते थे । इस प्रकार हनुमान जी ने राक्षसों की उस महापुरी को भली भांति देख लिया ॥१९॥

अथापश्यद् विमानानि विचित्राणि महाकपिः ।
संवृतान् भूमिभागांश्च सुविभक्तांश्च चत्वरान् ॥ २०॥

रथ्याश्च गृहसम्बाधाः कपिः शृङ्गाटकानि च ।
तथा रथ्योपरथ्याश्च तथैव च गृहान्तरान् ॥ २१॥

गृहांश्च मेघसङ्काशान्ददर्श पवनात्मजः ।
चत्वरेषु चतुष्केषु राजमार्गे तथैव च ॥ २२॥

हनुमान जी ने वहां घूम कर विचित्र विमान, रंग बिरंगी अटरियाँ, गुप्त स्थान, अनेक प्रकार के बने चबूतरे, बड़ी बड़ी गलियाँ, सघन घरों से घिरी हुई सड़कें, चौराहे, छोटी बड़ी गलियाँ, घरों के छिपे हुए द्वार और बादलों के समान बड़ी ऊँची ऊँची हवेलियां देखीं। सभी राक्षस चौराहे, चार खम्बों वाले चौबारों और सड़कों पर ॥२०-२२॥

घोषयन्ति कपिं सर्वे चार इत्येव राक्षसाः ।
स्त्रीबालवृद्धा निर्जग्मुस्तत्र तत्र कुतूहलात् ॥ २३॥

तं प्रदीपितलाङ्गूलं हनुमन्तं दिदृक्षवः।
दीप्यमाने ततस्तस्य लांगूलाग्रे हनूमतः ॥ २४॥

हनुमान जी को जासूस बता कर उनका परिचय देते हुए, घोषणा करते जाते थे। घोषणा सुन और कुतूहलवश हो स्त्रियाँ, बालक और बूढ़े, जलती हुई पूँछ सहित हनुमान जी को देखने के लिये, घरों के बाहर निकल आते थे। हनुमान जी की पूँछ के जलाये जाने पर ॥२३-२४॥

राक्षस्यस्ता विरूपाक्ष्यः शंसुर्देव्यास्तदप्रियम् ।
यस्त्वया कृतसंवादः सीते ताम्रमुखः कपिः ॥ २५॥

लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन स एष परिणीयते ।
श्रुत्वा तद् वचनं क्रूरमात्मापहरणोपमम् ॥ २६॥

भयंकर नेत्रों वाली राक्षसियों ने सीता जी को यह अप्रिय संवाद सुनते हुए कहा -हे सीते! जिस लाल मुंह वाले वानर ने तुमसे वार्तालाप किया था, उसकी पूँछ में आग लगा कर, सारे नगर में घुमाया जा रहा है । उनके ऐसे क्रूर, अप्रिय और प्राणों का नाश करने वाले वचन सुनकर ॥२५-२६॥

वैदेही शोकसन्तप्ता हुताशनमुपागमत् ।
मङ्गलाभिमुखी तस्य सा तदासीन्महाकपेः ॥ २७॥

सीता जी शोक से सन्तत होकर, अग्नि की स्तुति करने लगी और हनुमान जी के मङ्गल की कामना करती हुई ॥२७॥

उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् ।
यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः ॥ २८॥

यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः ।
यदि किंचिदनुक्रोशस्तस्य मय्यस्ति धीमतः ॥ २९॥

यदि वा भाग्यशेषो मे शीतो भव हनूमतः ।
यदि मां वृत्तसम्पन्नां तत्समागमलालसाम् ॥ ३०॥

स विजानाति धर्मात्मा शीतो भव हनूमतः ।
यदि मां तारयेदार्यः सुग्रीवः सत्यसङ्गरः ॥ ३१ ॥

विशालोचना सीता पवित्र अग्नि की उपासना करती हुई बोलीं। 'हे अग्निदेव ! यदि मैंने पति की सेवा शुश्रुषा सच्चे मन से की है, यदि मैंने कुछ भी तपस्या की हो और यदि मैं पतिव्रता हूँ तो आप हनुमान जी के लिये शीतल हो जायो । यदि उन बुद्धिमान श्रीरामचन्द्र जी की मेरे ऊपर कुछ भी कृपा हो, अथवा मेरा सौभाग्य अभी कुछ भी शेष हो, यदि मुझ चरित्रवती की श्रीरामचन्द्र जी से मिलने की लालसा को, वह धर्मात्मा जानते हों, तो आप हनुमान जी के लिये शीतल हो जाओ। यदि सत्यप्रतिज्ञ श्रेष्ठ सुग्रीव मुझे ॥२८-३१॥

अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात् शीतो भव हनूमतः ।
ततस्तीक्ष्णार्चिरव्यग्रः प्रदक्षिणशिखोऽनलः ॥ ३२ ॥

जज्वाल मृगशावाक्ष्याः शंसन्निव शुभं कपेः ।
हनुमज्जनकश्चैव पुच्छानलयुतोऽनिलः ॥ ३३॥

इस दुःखसागर से पार कर, इस कैद से छुड़ाने वाले हों, तो हे अग्निदेव ! आप हनुमान जी के लिये शीतल बन जायो। सीता जी की इस प्रकार स्तुति से, वह अग्नि जो अत्यंत तेज़ी से जल रही थी, दक्षिणावर्त शिखा को घुमाकर, जानकीजी के सम्मुख ही मानों हनुमान जी का शुभ

संवाद देने के लिये प्रज्वलित हो उठी। इसी बीच जलती हुई पूंछ वाले हनुमान जी के पिता पवन देव भी ॥ ३२-३३॥

ववौ स्वास्थ्यकरो देव्याः प्रालेयानिलशीतलः ।
दह्यमाने च लाङ्गूले चिन्तयामास वानरः ॥ ३४॥

बर्फ की तरह शीतल हो सीता जी के लिये सुखप्रद हो गये। उधर पूंछ को जलती हुई देख कर हनुमान जी सोचने लगे कि, ॥३४॥

प्रदीप्तोऽग्निरयं कस्मान्न मां दहति सर्वतः ।
दृश्यते च महाज्वालः करोति न च मे रुजम् ॥ ३५॥

अहो ! क्या कारण है की चारों ओर से जलने पर भी यह अग्नि मुझे नहीं जलाती। मैं देख रहा हूँ कि,अग्नि से इतनी ऊंची ज्वाला उठते हुए दिखाई देने पर भी मुझे कुछ भी कष्ट नहीं हो रहा है ॥३५॥

शिशिरस्येव सम्पातो लाङ्गूलाग्रे प्रतिष्ठितः ।
अथ वा तदिदं व्यक्तं यद् दृष्टं प्लवता मया ॥ ३६ ॥

रामप्रभावादाश्चर्यं पर्वतः सरितां पतौ ।
यदि तावत् समुद्रस्य मैनाकस्य च धीमतः ॥ ३७ ॥

राममभावादाश्चार्य पर्वतः सरितां पतौ।
सीतायाश्चानृशंस्येन तेजसा राघवस्य च ॥ ३८॥

मुझे तो ऐसा लगता है, मानों मेरी पंछ पर हिम रखा हो। अथवा श्रीरामचन्द्र जी के प्रभाव से समुद्र पार करते समय समुद्र में जैसे मैंने पर्वत प्रकट होने की आश्चर्य जनक घटना देखी थी वैसा ही उन्ही के प्रताप से यह अग्नि भी शीतल प्रतीत हो रही है। जब बुद्धिमान श्रीरामचन्द्र जी के विषय में मैनाक का ऐसा आदर है, तब क्या अग्निदेव श्रीरामचन्द्र जी का कुछ भी विचार नहीं करेंगे। मुझे तो निश्चय है कि, सीता जी की कृपा से और श्रीरामचन्द्र जी के प्रताप से ॥३६- ३८॥

पितुश्च मम सख्येन न मां दहति पावकः ।
भूयः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः ॥ ३९॥

और मेरे पिता के साथ मैत्री होने के कारण, अनिदेव मुझे दग्ध नहीं कर रहे हैं। फिर हनुमान जी ने मुहूर्त भर कुछ विचार किया ॥३९॥

उत्पपाताथ वेगेन ननाद च महाकपिः ।
पुरद्वारं ततः श्रीमाञ्शैलशृङ्गमिवोन्नतम् ॥ ४० ॥

तदनन्तर वह वेगशाली महाकपि बड़ी वेग से ऊपर की ओर उछले और उन्होंने बड़ी जोर से गर्जना की। फिर वह पर्वत शिखर के समान ऊँचे नगर के फाटक पर ॥४०॥

विभक्तरक्षःसम्बाधं आससादानिलात्मजः ।
स भूत्वा शैलसङ्काशः क्षणेन पुनरात्मवान् ॥ ४१॥

जहाँ राक्षसों की भीड़ भाड़ नहीं थी, पर्वताकार रूप बना कर चढ़ गए और क्षण भर में उन्होंने अपने ॥४१॥

हृस्वतां परमां प्राप्तो बन्धनान्यवशातयत् ।
विमुक्तश्चाभवच्छ्रीमान् पुनः पर्वतसन्निभः ।
वीक्षमाणश्च ददृशे परिघं तोरणाश्रितम् ॥ ४२॥

शरीर को बहुत छोटा कर लिया और अपने सभी बंधन काट गिराये। बंधन से छूटकर उन्होंने पुनः पर्वताकार विशालकाय रूप धारण कर लिया। फिर इधर उधर देखने पर उनको उस फाटक पर लोहे का परिघ दिखाई दिया॥४२॥

स तं गृह्य महाबाहुः कालायसपरिष्कृतम् ।
रक्षिणस्तान् पुनः सर्वान् सूदयामास मारुतिः ॥ ४३॥

महाबाहु हनुमान जी ने उस लोहे के चमचमाते परिघ को लेकर वहां उपस्थित सभी राक्षसों को उससे मार गिराया ॥४३॥

स तान् निहत्वा रणचण्डविक्रमः समीक्षमाणः पुनरेव लङ्काम् ।
प्रदीप्तलाङ्गूलकृतार्चिमाली प्रकाशतादित्य इवार्चिमाली ॥४४॥

युद्ध में प्रचण्ड विक्रम का प्रदर्शन करने वाले हनुमान जी उन राक्षसों को मार कर लंका को देखने लगे। उस समय उनकी पूंछ से जो अग्नि

की लपटें निकल रही थीं, उनसे उस समय उनकी ऐसी शोभा हो रही थी; जैसी कि, किरणों द्वारा प्रकाशित मध्यान्हकालीन सूर्य की होती है ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥चतुःपञ्चाशः सर्गः चौवनवाँ सर्ग॥

लङ्काया दहनं रक्षसां विलापश्च – हनुमान जी द्वारा लंका दहन का अद्भुत पराक्रम और राक्षसों का विलाप

वीक्षमाणस्ततो लङ्कां कपिः कृतमनोरथः ।
वर्धमानसमुत्साहः कार्यशेषमचिन्तयत् ॥ १ ॥

मनोरथ सिद्ध हो जाने से हनुमान जी अत्यंत उत्साहित हुए लंका की ओर देखकर, मन ही मन शेष बचे कर्त्तव्य के सम्बन्ध में विचार करने लगे ॥१॥

किं नु खल्ववशिष्टं मे कर्तव्यमिह साम्प्रतम् ।
यदेषां रक्षसां भूयः सन्तापजननं भवेत् ॥ २ ॥

कपिश्रेष्ठ ने विचारा किया कि अब मैं ऐसा क्या करूँ जिससे राक्षसों के मन में और अधिक सन्ताप उत्पन्न हो ॥२॥

वनं तावत्प्रमथितं प्रकृष्टा राक्षसा हताः ।
बलैकदेशः क्षपितः शेषं दुर्गविनाशनम् ॥ ३ ॥

मैंने रावण के प्रमदावन को तो पहले ही उजाड़ डाला, बड़े बड़े नामी वीर राक्षसों को भी मार डाला, सेना का एक बड़ा भाग भी मैंने नष्ट कर डाला; अब रावण के दुर्ग का नाश करना शेष रह गया है ॥३॥

दुर्गे विनाशिते कर्म भवेत् सुखपरिश्रमम् ।
अल्पयत्नेन कार्येऽस्मिन् मम स्यात् सफलः श्रमः ॥ ४ ॥

अतः दुर्ग का विनाश करने से मेरा परिश्रम सफल हो जायगा और इसे उजाड़ने में मुझे अधिक श्रम भी नहीं उठाना पड़ेगा। थोड़े से ही परिश्रम से यह कार्य पूरा भी हो जायगा ॥४॥

यो ह्ययं मम लांगूले दीप्यते हव्यवाहनः ।
अस्य सन्तर्पणं न्याय्यं कर्तुमेभिर्गृहोत्तमैः ॥ ५ ॥

मेरी पूँछ में जो अग्निदेव प्रज्वल्लित हो रहे हैं और मुझे शीतल जान पड़ते हैं, अथ: इनको भली भांति तृप्त करना भी उचित ही है। अतः इन बढ़िया भवनों को भस्म कर, मैं इनको तृप्त करता हूँ ॥५॥

ततः प्रदीप्तलाङ्गूलः सविद्युदिव तोयदः ।
भवनाग्रेषु लङ्काया विचचार महाकपिः ॥ ६ ॥

इस प्रकार निश्चय कर बिजली युक्त मेघ की तरह, जलती हुई पूँछ को लिये हुए, कपिश्रेष्ठ हनुमान जी भवनों की अटारियों पर घूमने लगे ॥६॥

गृहाद् गृहं राक्षसानामुद्यानानि च वानरः ।
वीक्षमाणो ह्यसन्त्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः ॥ ७ ॥

हनुमान जी राक्षसों के एक घर से दूसरे घर पर और दूसरे से तीसरे घर पर चढ़ जाते और निर्भय होकर, वहां के उद्यानों को देखते ॥७॥

अवप्लुत्य महावेगः प्रहस्तस्य निवेशनम् ।
अग्निं तत्र विनिक्षिप्य श्वसनेन समो बली ॥ ८ ॥

पवन के समान वेगवान और महान वेगशाली हनुमान जी उछल के प्रहस्त के भवन पर जा चढ़े। प्रहस्त के घर में आग लगाकर ॥८॥

ततोऽन्यत् पुप्लुवे वेश्म महापार्श्वस्य वीर्यवान् ।
मुमोच हनुमानग्निं कालानलशिखोपमम् ॥ ९ ॥

फिर वह बलवान् महापार्श्व के निवासस्थान पर कूद पड़े और कालाग्नि के तुल्य अग्नि को उस भवन में लगा कर ॥९॥

वज्रदंष्ट्रस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ।
शुकस्य च महातेजाः सारणस्य च धीमतः ॥ १० ॥

वह वज्रदंष्ट्र के भवन पर कूद पड़े और उसमें भी आग लगाकर, उन्होंने महातेजस्वी शुक और बुद्धिमान सारण के घरों को जला कर ॥१०॥

तथा चेन्द्रजितो वेश्म ददाह हरियूथपः ।
जम्बुमालेः सुमालेश्च ददाह भवनं ततः ॥ ११ ॥

वहां से मेघनाद के भवन पर कूदकर उसे जलाया। फिर जम्बुमाली और सुमाली के घरों को जलाया ॥११॥

रश्मिकेतोश्च भवनं सूर्यशत्रोस्तथैव च ।
ह्रस्वकर्णस्य दंष्ट्रस्य रोमशस्य च रक्षसः ॥ १२ ॥

युद्धोन्मत्तस्य मत्तस्य ध्वजग्रीवस्य रक्षसः ।
विद्युज्जिह्वस्य घोरस्य तथा हस्तिमुखस्य च ॥ १३ ॥

करालस्य विशालस्य शोणिताक्षस्य चैव हि ।
कुम्भकर्णस्य भवनं मकराक्षस्य चैव हि ॥ १४ ॥

नरान्तकस्य कुम्भस्य निकुम्भस्य दुरात्मनः ।
यज्ञशत्रोश्च भवनं ब्रह्मशत्रोस्तथैव च ॥ १५ ॥

तदनन्तर उन्होंने रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, हस्वकर्ण, युद्धोन्मच, ध्वजग्रीव, भयङ्कर विद्युजिह्वा हस्तिमुख, कराल, पिशाच, शोणिताक्ष,

कुम्भकर्ण, मकराक्ष, यज्ञशत्रु, ब्रहाशत्रु, नरान्तक, कुम्भ और दुरात्मा निकुम्भ नामक राक्षसों के घरों में जा जाकर उन्होंने आग लगाई ॥१२-१५॥

वर्जयित्वा महातेजा विभीषणगृहं प्रति ।
क्रममाणः क्रमेणैव ददाह हरिपुङ्गवः ॥ १६ ॥

उस समय महातेजस्वी हनुमान जी ने अन्य सभी राक्षसों के घर तो क्रम से जलाये, किन्तु केवल विभीषण का घर छोड़ दिया ॥१६॥

तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महायशाः ।
गृहेष्वृद्धिमतामृद्धिं ददाह कपि कुञ्जरः ॥ १७ ॥

लंकापुरी निवासी धनी राक्षसों के घरों में जो जो मूल्यवान अन्न, वस्त्र, द्रव्य आदि सामान थे, हनुमान जी ने उन सब को भस्म कर डाला ॥१७॥

सर्वेषां समतिक्रम्य राक्षसेन्द्रस्य वीर्यवान् ।
आससादाथ लक्ष्मीवान् रावणस्य निवेशनम् ॥ १८ ॥

इन सब भवनों को जला कर, हनुमान जी बलवान राक्षसराज रावण के घर पर कूद गये ॥१८॥

ततस्तस्मिन् गृहे मुख्ये नानारत्नविभूषिते ।
मेरुमन्दरसङ्काशे नानामङ्गलशोभिते ॥ १९ ॥

रावण के मेरुपर्वत के समान विशाल मुख्य भवन में, जो विविध प्रकार के रत्नों से भूषित था और समस्त मांगलिक द्रव्यों से परिपूर्ण था ॥१९॥

प्रदीप्तमग्निमुत्सृज्य लाङ्गूलाग्रे प्रतिष्ठितम् ।
ननाद हनुमान् वीरो युगान्तजलदो यथा ॥ २० ॥

अपनी पूँछ से आग लगाकर, हनुमान जी प्रलयकालीन मेघ के तरह भयानक गर्जना करने लगे ॥२०॥

श्वसनेन च संयोगादतिवेगो महाबलः ।
कालाग्निरिव जज्वाल प्रावर्धत हुताशनः ॥ २१ ॥

पवनदेव की सहायता पाकर, अति वेगवान् अग्निदेव कालाग्नि के समान प्रज्वल्लित हो उठे ॥२१॥

प्रवृद्धमनि पवनस्तेषु वेश्मखंचारयन् ।
अभूच्छ्वसनसंयोगादतिवेगो हुताशनः ॥ २२ ॥

उस प्रज्वलित अग्नि को, पवनदेव अत्यन्त प्रचंड कर, एक घर से दूसरे घर में पहुँचा देते थे ॥२२॥

तानि काञ्चनजालानि मुक्तामणिमयानि च ।
भवनानि व्यशीर्यन्त रत्नवन्ति महान्ति च ॥ २३ ॥

सोने के झरोखों से युक्त, रत्नराशि से विभूषित, मणियों और मोतियों द्वारा निर्मित जो भवन थे ॥२३॥

तानि भग्नविमानानि निपेतुर्वसुधातले ।
भवनानीव सिद्धानामम्बरात् पुण्यसंक्षये ॥ २४ ॥

उनकी अटारियाँ टूट टूट कर नीचे जमीन पर गिरनी लगीं। वे भवन टूट टूट कर इस प्रकार पृथ्वी पर गिरते थे जैसे सिद्धों के भवन पुण्यक्षीण होने पर, आकाश से टूट कर नीचे गिरते हैं ॥२४॥

सञ्जज्ञे तुमुलः शब्दो राक्षसानां प्रधावताम् ।
स्वे स्वे गृहपरित्राणे भग्नोत्साहगतश्रियाम् ॥ २५ ॥

उस समय राक्षस अपने घरों की रक्षा करने के लिये इधर उधर दौड़ने लगे। परन्तु वह राक्षस हर सम्भव उद्योग कर हतोत्साह हो गए तथा अपनी श्री को नष्ट हुए देखकर, भयंकर कोलाहल करने लगे ॥२५॥

नूनमेषोऽग्निरायातः कपिरूपेण हा इति ।
क्रन्दन्त्यः सहसा पेतुः स्तनन्धयधराः स्त्रियः ॥ २६ ॥

वह लोग चिल्ला चिल्ला कर कह रहे थे कि, हाय निश्चय ही वानर का रूप धरकर यह अग्निदेव स्वयं ही आ पहुंचे हैं। कितनी ही रोती हुई स्त्रियां छोटे छोटे दुधमहे बच्चों को गोद में लिये सहसा आग में गिर पड़ती थीं ॥२६॥

काश्चिदग्निपरीताङ्ग्यो हर्म्येभ्यो मुक्तमूर्धजाः ।
पतन्त्योरेजिरेऽभ्रेभ्यः सौदामिन्य इवाम्बरात् ॥ २७ ॥

बहुत सी स्त्रियां चारों ओर से अग्नि से घिर कर, सिर के बाल खोले अटारियों पर से नीचे कूद पड़ती थीं, मानों मेघ से बिजली निकल कर पृथिवी पर आ गिरी हों ॥२७॥

वज्रविद्रुमवैदूर्यमुक्तारजतसंहतान् ।
विचित्रान् भवनाद्धातून्स्यन्दमानान् ददर्श सः ॥ २८ ॥

हीरा, मूँगा, पन्ना, मोती, और चांदी आदि अनेक धातुएँ अग्नि के ताप से पिघल कर, बहती हुई हनुमान जी ने देखी ॥२८॥

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां तृणानां च यथा तथा ।
हनुमान राक्षसेन्द्राणां वधे किंचिन्न तृप्यति ॥ २९ ॥

जिस प्रकार अग्निदेव, काष्ठ और घास फूस को जलाने से कभी तृप्त नहीं होते, उसी प्रकार हनुमान जी प्रधान राक्षसों को मारते हुए तृप्त नहीं होते थे ॥२९॥

न हनूमद्विशस्तानां राक्षसानां वसुन्धरा ।
कचित्किंशुकसङ्काशाः कचिच्छाल्मलिसन्निभाः।
कचित्कुङ्कमसङ्काशाः शिखा वह्नेश्चकाशिरे ॥ ३० ॥

और न ही हनुमान जी के मारे हुए राक्षसों के वध से वसुन्धरा ही तृप्त होती थी। कहीं पर तो अग्नि की रंगत किंशुक के फूल जैसी, कहीं शाल्मली के फूल जैसी और कहीं कुमकुम के रंग जैसी दिखाई देती थी॥३०॥

हनूमता वेगवता वानरेण महात्मना ।
लङ्कापुरं प्रदग्धं तद् रुद्रेण त्रिपुरं यथा ॥ ३१ ॥

जिस प्रकार महादेव जी ने त्रिपुरासुर को भस्म किया था, उसी प्रकार महाबलि वानरश्रेष्ठ हनुमान जी ने लंका पुरी को जला कर भस्म कर डाला था ॥३१॥

ततः स लङ्कापुरपर्वताग्रे समुत्थितो भीमपराक्रमोऽग्निः ।
प्रसार्य चूडावलयं प्रदीप्तो हनूमता वेगवतोपसृष्टः ॥ ३२ ॥

भयंकर पराक्रमी हनुमान जी द्वारा लगायी हुई आग, अपने ज्वालामण्डल को फैला कर, लंकापुरी के पर्वत तक प्रज्वलित हो गयी ॥३२॥

युगान्तकालानलतुल्यरूपः समारुतोऽग्निर्ववृधे दिवस्पृक् ।
विधूमरश्मिर्भवनेषु सक्तो रक्षःशरीराज्यसमर्पितार्चिः ॥ ३३ ॥

फिर वह अग्नि पवन की सहायता पा कर, प्रलयकालीन अग्नि की तरह, आकाश को स्पर्श करते हुए आगे बढ़ने लगी। लंका के घरों में

राक्षसों के शरीर रूपी घी को प्राप्त कर, धूमरहित अग्नि चारों ओर प्रकाश फैलाने लगी ॥३३॥

आदित्यकोटीसदृशः सुतेजा लङ्कां समस्तां परिवार्य तिष्ठन् ।
शब्दैरनेकैरशनिप्ररूढै र्भिन्दन्निवाण्डं प्रबभौ महाग्निः ॥ ३४॥

उस समय करोड़ों सूर्यों की तरह चमचमाती हुई अग्नि, समस्त लंकापुरी को घेर कर, वज्रपात के समान भयंकर नाद से ब्रह्माण्ड को फोड़ती हुई सी शोभायमान हुई ॥३४॥

तत्राम्बरादग्निरतिप्रवृद्धो रूक्षप्रभः किंशुकपुष्पचूडः ।
निर्वाणधूमाकुलराजयश्च नीलोत्पलाभाः प्रचकाशिरेऽभ्राः ॥ ३५ ॥

बढ़ते बढ़ते वह अग्नि आकाश तक व्याप्त हो गई और अपनी प्रभा से ऐसी दिखाई देती थीं, मानों पलाशवृक्ष में पलाशपुष्प फूले हुए हों। जब अग्नि में नीचे से भभक कर धुंआ निकलता, तभी वह आकाश में जाकर नीलकमल के समान मेघमण्डल जैसा दिखाई देती थीं ॥३५॥

वज्री महेन्द्रस्त्रिदशेश्वरो वा साक्षाद् यमो वा वरुणोऽनिलो वा ।
रौद्रोऽग्निरर्को धनदश्च सोमो न वानरोऽयं स्वयमेव कालः ॥ ३६॥

उस समय लंकापुरी निवासी अनेक राक्षस एकत्र होकर, कह रहे थे कि या तो यह वानर वज्रधारी स्वर्ग का राजा इन्द्र है, अथवा साक्षात् यम है, अथवा वरुण है, अथवा पवन है, अथवा रुद्र है, अथवा अग्नि

है, अथवा सूर्य है, अथवा कुबेर है, अथवा सौम है। यह वानर नहीं है, प्रत्युत साक्षात् काल है ॥३६॥

किं ब्रह्मणः सर्वपितामहस्य लोकस्य धातुश्चतुराननस्य ।
इहागतो वानररूपधारी रक्षोपसंहारकरः प्रकोपः ॥ ३७ ॥

हमें तो ऐसा लगता है कि, लोकसृष्टि कर्ता, सम्पूर्ण जगत के पिताम, लोकों के धारण करने वाले और चार मुख वाले ब्रह्मा जी का कोध, वानर का रूप धर कर, राक्षसों का नाश करने के लिये यहाँ आया है ॥३७॥

किं वैष्णवं वा कपिरूपमेत्य रक्षोविनाशाय परं सुतेजः ।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तमेकं स्वमायया साम्प्रतमागतं वा ॥ ३८ ॥

अथवा अचिन्त्य, अन्यक, अनन्त और अद्वितीय विष्णु भगवान का यह महातेज है जो राक्षसों का संहार करने के लिये, इस समय अपनी माया के बल से कपि का रूप धारण कर यहाँ आया है ॥ ३८॥

इत्येवमूचुर्बहवो विशिष्टा रक्षोगणास्तत्र समेत्य सर्वे ।
सप्राणिसङ्घां सगृहां सवृक्षां दग्धां पुरीं तां सहसा समीक्ष्य ॥३९॥

प्राणियों, घरों और वृक्षों सहित लंकापुरी को सहसा भस्म हुई देखकर, वहाँ के समझदार राक्षसनेता एकत्र होकर इस प्रकार कल्पनाएँ कर रहे थे ॥३९॥

ततस्तु लङ्का सहसा प्रदग्धा सराक्षसा साश्वरथा सनागा ।
सपक्षिसङ्घा समृगा सवृक्षा रुरोद दीना तुमुलं सशब्दम् ॥ ४०॥

राक्षसों, घोडों, रथों, हाथियों, पक्षियों, मृगों, वृक्षों सहित जब लंका सहसा भस्म हो गयी तब वहाँ के बचे हुए निवासी राक्षस विकल होकर रोते थे और चिल्लाते थे ॥४०॥

हा तात हा पुत्रक कान्त मित्र हा जीवितेशाङ्ग हतं सुपुण्यम् ।
रक्षोभिरेवं बहुधा ब्रुवद्भिः शब्दः कृतो घोरतरः सुभीमः ॥ ४१ ॥

हा तात! हा पुत्र! हा कान्त ! हा मित्र! हा प्राणनाथ ! हमारे अतिकष्ट से उपार्जित समस्त पुण्य क्षीण हो गये । इस प्रकार भांति भांति के विलाप करते हुए अनेक राक्षसों ने वहां बड़ा भयंकर और घोर अंतर्नाद किया ॥४१॥

हुताशनज्वालसमावृता सा हतप्रवीरा परिवृत्तयोधा ।
हनूमतः क्रोधबलाभिभूता बभूव शापोपहतेव लङ्का ॥ ४२ ॥

उस समय अग्नि की ज्वाला से घिरे हुए, बड़े बड़े शूरवीरों के युद्ध में मारे जाने के कारण उनसे हीन, तथा उद्विग्न चित्त योद्धा श्री से युक्त और हनुमान जी के क्रोध और बल सें पराजित, वह लंकापुरी श्राप से आक्रांत हुई दिखाई देती थी ॥४२॥

स सम्भ्रमं त्रस्तविषण्णराक्षसां समुज्ज्वलज्ज्वालहुताशनाङ्किताम् ।

ददर्श लङ्कां हनुमान् महामनाः
स्वयंभुरोषोपहतामिवावनिम् ॥ ४३ ॥

उस समय बचे हुए लंका वासी राक्षस अत्यंत घबराए हुए और विषाद युक्त थे। अत्यन्त प्रज्वलित अग्नि में और जलती हुई लंका महामनस्वी हनुमान जी को वैसी ही दिखाई देती थी , जैसी कि शिवजी के कोप से दग्ध पृथिवी दिखाई देती है ॥४३॥

भङ्क्त्वा वनं पादपरत्नसङ्कुलं
हत्वा तु रक्षांसि महान्ति संयुगे ।
दग्ध्वा पुरीं तां गृहरत्नमालिनीं
तस्थौ हनूमान् पवनात्मजः कपिः ॥ ४४ ॥

श्रेष्ठ वृक्षों से परिपूर्ण अशोकवन को उजाड़ कर, युद्ध में बड़े बड़े राक्षस वीरों को मार कर, गृहों और रत्नों से परिपूर्ण लंका को जला कर, पवननन्दन कपिश्रेष्ठ हनुमान जी शान्त होकर ॥४४॥

त्रिकूटशृङ्गाग्रतले विचित्रे प्रतिष्ठितो वानरराजसिंहः।
प्रदीप्तलाङ्गुलकृतार्चिमाली व्यराजतादित्य इवांशुमाली ॥४५॥

वानरसिंह हनुमान जी त्रिकूटपर्वत के शिखर पर जा बैठे। उस समय उनकी जलती हुई पूछ से जो लपटें निकल रही थीं, उनकी ऐसी शोभा हुई, जैसी कि, किरणों द्वारा प्रकाशित मध्यान्ह कालीन सूर्य की होती है।॥४५॥

स राक्षसांस्तान् सुबहूंश्च हत्वा वनं च भङ्क्त्वा बहुपादपं तत् ।
विसृज्य रक्षोभवनेषु चाग्निं जगाम रामं मनसा महात्मा ॥ ४६ ॥

वह महावली हनुमान जी बहुत से राक्षसों का संहार कर, बहुत से वृक्षों से युक्त अशोकवन को उजाड़ कर और राक्षसों में आग लगा कर, मन ही मन श्रीरामचन्द्र जी का स्मरण करने लगे ॥४६॥

ततस्तु तं वानरवीरमुख्यं महाबलं मारुततुल्यवेगम् ।
महामतिं वायुसुतं वरिष्ठं प्रतुष्टुवुर्देवगणाश्च सर्वे ॥ ४७ ॥

तब उन वानराग्रगण्य, महाबली पवनतुल्य पराक्रमी, महाबुद्धिमान पवननन्दन और श्रेष्ठ हनुमान जी की समस्त देवता स्तुति करने लगे॥४७॥

देवाश्च सर्वे मुनिपुङ्गवाश्च गन्धर्वविद्याधरपन्नगाश्च ।
भूतानि सर्वाणि महान्ति तत्र जग्मुः परां प्रीतिमतुल्यरूपाम् ॥४८॥

अशोकवन को उजाड़कर, युद्ध में राक्षसों को मार और रमणीक लंका पुरी जलाकर, महातेजस्वी महाकपि हनुमान जी अत्यंत शोभा को प्राप्त हुए ॥४८॥

भङ्क्त्वा वनं महातेजा हत्वा रक्षांसि संयुगे ।
दग्ध्वा लङ्कापुरीं भीमां रराज स महाकपिः ॥ ४९ ॥

वहाँ पर उपस्थित देवता, गन्धर्व, सिद्ध और देवर्षि, उस लंका पुरी को भस्म हुई देखकर, अत्यन्त विस्मित हुए ॥४९॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
दृष्ट्वा लङ्कां प्रदग्धां तां विस्मयं परमं गताः ॥ ५० ॥

वहाँ जितने भी लंका वासी उपस्थित थे, वह सभी उन महाकपि वानरश्रेष्ठ हनुमान जी को देखकर यही समझते थे कि, यह साक्षात् कालाग्नि हैं ॥५०॥

तं दृष्ट्वा वानरश्रेष्ठं हनुमन्तं महाकपिम् ।
कालाग्निरिति सञ्चिन्त्य सर्वभूतानि तत्रसुः ॥ ५१ ॥

समस्त देवता, मुनिश्रेष्ठ, गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर आदि जितने बड़े बड़े लोग वहां उपस्थित थे, वह सभी अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुष्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ पञ्चपञ्चाशः सर्गः पचपनवाँ सर्ग॥

सीताविनाशाशङ्कया हनुमतश्चिन्ता तस्या निवारणं च -सीता जी की कुशलता के लिए हनुमान जी की चिंता तथा उसका निवारण

लङ्कां समस्तां सन्दीप्य लागूलानि महावलः ।
निर्वापयामास तदा समुद्र हरिसत्तमः ॥ १ ॥

जब अपनी पूँछ की अग्नि से महाबली कपिश्रेष्ठ हनुमान जी समस्त लंका को दग्ध कर चुके, तब उन्होंने समुद्र के जल से अपनी पूंछ की आग बुझायी ॥१॥

सन्दीप्यमानां वित्रस्तां त्रस्तरक्षोगणां पुरीम् ।
अवेक्ष्य हनुमांल्लङ्कां चिन्तयामास वानरः ॥ २ ॥

वानरवीर हनुमान जी ने देखा की सारी लंकापुरी जल रही है वहां के निवासियों पर त्रास छा गया है तथा राक्षसगण अत्यंत भयभीत है तब हनुमान जी के मन में सीता जी के भी दग्ध होने की आशंका से विषाद छा गया ॥२॥

तस्याभूत् सुमहांस्त्रासः कुत्सा चात्मन्यजायत ।
लङ्कां प्रदहता कर्म किंस्वित् कृतमिदं मया ॥ ३ ॥

साथ ही उनके मन में महान भय उत्पन्न हो गया और वह अपनी निन्दा कर कहने लगे कि हाय ! लंका को दग्ध करते समय मैंने यह कैसा कुत्सित कर्म कर डाला ॥३॥

धन्याः खलु महात्मानो ये बुद्ध्या कोपमुत्थितम् ।
निरुन्धन्ति महात्मानो दीप्तमग्निमिवाम्भसा ॥ ४ ॥

वह पुरुषश्रेष्ठ धन्य हैं, जो समझ बूझ कर उपजे हुए क्रोध को उसी प्रकार ठंडा कर डालते हैं जिस प्रकार जल दहकती हुई अग्नि को ठंडा कर देता है ॥४॥

क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि ।
क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षिपेत् ॥ ५ ॥

क्रोध के वशवर्ती होकर लोग कौन सा पाप नहीं कर डालते। क्रोध के आवेश में लोग अपने पूज्यों की भी हत्या कर सकता है और क्रोधी मनुष्य, सज्जनों को भी कुवाच्य कह बैठते हैं ॥५॥

वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित् ।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते क्वचित् ॥ ६॥

कुपित होने पर मनुष्य कभी इस बात पर विचार नहीं करता कि क्या कहना चाहिए और क्या नही कहना चाहिए। क्रोधी के लिये न तो कोई ऐसा घृणित कार्य है जिसको वह कर सके और न ही कोई ऐसी बुरी बात है जिसे वह कह न सके ॥६॥

यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमयैव निरस्यति ।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते ॥ ७ ॥

किन्तु जो मनुष्य हृदय में उत्पन्न हुए क्रोध को क्षमा द्वारा वैसे ही बाहर निकाल देता है। जैसे सर्प अपनी पुरानी केंचुली को छोड़ देता है, वही मनुष्य कहलाने योग्य है॥७॥

धिगस्तु मां सुदुर्बुद्धिं निर्लज्जं पापकृत्तमम् ।
अचिन्तयित्वा तां सीतामग्निदं स्वामिघातकम् ॥८ ॥

धिक्कार है मुझ जैसे बड़े भारो दुर्बुद्धि, निर्लज्ज और पापी को, जिसने, सीताजी की रक्षा की ओर ध्यान न देकर लंका जला डाली और

उसके साथ ही अपने स्वामी को भी नष्ट कर डाला अथवा स्वामी का बना बनाया काम बिगाड़ डाला ॥८॥

यदि दग्धा त्वियं सर्वा नूनमार्यापि जानकी ।
दग्धा तेन मया भर्तुर्हतं कार्यमजानता ॥ ९ ॥

क्योंकि, यदि यह सारी की सारी लंका जल गयी है तो सती सीता जी भी अवश्य ही इसमें भस्म हो गयी होंगी। ऐसा करके मैंने अज्ञानतावश स्वामी का काम ही बिगाड़ डाला ॥९॥

यदर्थमयमारंभस्तत्कार्यमवसादितम् ।
मया हि दहता लङ्कां न सीता परिरक्षिता ॥१० ॥

जिस काम को पूरा करने के लिये इतना श्रम उठाया वही मैंने नष्ट कर दिया। क्योंकि लंका जलाते समय मैंने सीताजी की रक्षा नहीं की ॥१०॥

ईषत्कार्यमिदं कार्यं कृतमासीन्न संशयः ।
तस्य क्रोधाभिभूतेन मया मूलक्षयः कृतः ॥ ११ ॥

इसमें सन्देह नहीं कि, लंका का जलाना एक छोटा सा कार्य शेष था जिसे मैंने पूरा किया, किन्तु मैंने तो क्रोध से उन्मत होकर मूल का ही नाश कर डाला ॥११॥

विनष्टा जानकी नूनं न ह्यदग्धः प्रदृश्यते ।
लङ्कायां कश्चिदुद्देशः सर्वा भस्मीकृता पुरी ॥ १२ ॥

लंका का कोई भी स्थान ऐसा दिखाई नहीं देता जहाँ आग न लगी हो और समस्त लंकापुरी ही मैंने भस्म कर डाली है। अत: निश्चय ही जानकी जी भी भस्म हो गयी होंगी ॥१२॥

यदि तद्विहतं कार्यं मम प्रज्ञाविपर्ययात् ।
इहैव प्राणसंन्यासो ममापि ह्यद्य रोचते ॥ १३ ॥

यदि मैंने अपनी नासमझी से कार्य नष्ट कर डाला है, तो मुझे यहीं पर अपना प्राण त्याग करना भी उचित लगता है ॥१३॥

किमग्नौ निपताम्यद्य आहोस्विद् वडवामुखे ।
शरीरमिह सत्त्वानां दद्मि सागरवासिनाम् ॥ १४ ॥

क्या मैं अग्नि में गिर कर भस्म हो जाऊँ, अथवा समुद्र के बड़वानल में कूद पडूं, अथवा समुद्रवासी जलचरों को ही अपना शरीर समर्पित कर दूँ ॥१४॥

कथं हि जीवता शक्यो मया द्रष्टुं हरीश्वरः ।
तौ वा पुरुषशार्दूलौ कार्यसर्वस्वघातिना ॥ १५ ॥

जब मैंने समस्त कार्यों को नष्ट कर दिया है, तब मैं जीते जी कैसे कपिराज सुग्रीव और उन दोनों पुरुषसिंहों के सामने जा सकता हूँ ॥१५॥

मया खलु तदेवेदं रोषदोषात् प्रदर्शितम् ।
प्रथितं त्रिषु लोकेषु कपित्वमनवस्थितम् ॥ १६ ॥

तीनों लोकों में प्रसिद्ध है कि वानर स्वभाव से चपल होता है, अतः मैंने क्रोध के आवेश में इस लोकोक्ति को ही चरितार्थ किया है ॥१६॥

धिगस्तु राजसं भावमनीशमनवस्थितम् ।
ईश्वरेणापि यद् रागान्मया सीता न रक्षिता ॥ १७॥

इस राजसिक भाव अर्थात् रजोगुण को धिक्कार है, जो लोगों को मनमुखी और अन्यवस्थित बना देता है । मैंने सामर्थ्य रहते भी रजोगुण से प्रेरित हो, सीता की रक्षा नहीं की ॥१७॥

विनष्टायां तु सीतायां तावुभौ विनशिष्यतः ।
तयोर्विनाशे सुग्रीवः सबन्धुर्विनशिष्यति ॥ १८॥

सीता के नष्ट होने से वे दोनों राजकुमार श्री राम और लक्ष्मण भी मर जायेंगे। उन दोनों का नाश होने से बन्धुवान्धव सहित सुग्रीव भी जीवित नहीं रहेंगे ॥१८॥

एतदेव वचः श्रुत्वा भरतो भ्रातृवत्सलः ।
धर्मात्मा सहशत्रुघ्नः कथं शक्ष्यति जीवितुम् ॥ १९ ॥

फिर इस समाचार को सुन कर भ्रातृवत्सल भरत जी, धर्मात्मा शत्रुघ्न सहित क्यों कर जीवित रह सकेंगे ॥१९॥

इक्ष्वाकुवंशे धर्मिष्ठे गते नाशमसंशयम् ।
भविष्यन्ति प्रजाः सर्वाः शोकसन्तापपीडिताः ॥ २० ॥

धर्मिष्ठ इक्ष्वाकुवंश का नाश हो जाने पर निस्सन्देह सारी प्रजा शोकसन्ताप से पीड़ित हो जायगी ॥२०॥

तदहं भाग्यरहितो लुप्तधर्मार्थसंग्रहः ।
रोषदोषपरीतात्मा व्यक्तं लोकविनाशनः ॥ २१ ॥

अतः सीता जी की रक्षा न करने के कारण मैंने धर्म और अर्थ के संग्रह को नष्ट कर दिया, अत: मैं बड़ा भाग्यहीन और मेरा ह्रदय रोष के दोष से भरा हुआ है, इसलिए अवश्य ही समस्त लोक का विनाशक हो गया है। मेरा जो कुछ उपार्जित धर्मार्थ था वह भी लुप्त हो गया है ॥२१॥

इति चिन्तयस्तस्य निमित्तान्युपपेदिरे ।
पूर्वमप्युपलब्धानि साक्षात्पुनरचिन्तयत् ॥ २२ ॥

इस प्रकार हनुमान जी चिन्ता में मग्न थे कि, इतने में उनको विविध प्रकार के शुभ शकुन जिनके प्रत्यक्ष फलों का वह पहले भी अनुभव कर चुके थे दिखाई देने लगे, अत: वह पुनः सोचने लगे कि ॥२२॥

अथवा चारुसर्वाङ्गी रक्षिता स्वेन तेजसा ।
न नशिष्यति कल्याणी नाग्निरग्नौ प्रवर्तते ॥ २३ ॥

यह भी तो संभव है कि, सर्वांग शोभना और सौभाग्य वती जानकीजी अपने पातिव्रतधर्म-पालन के प्रभाव से उत्पन्न तेज से सदैव सुरक्षित है, वह कभी नष्ट नहीं हो सकती। क्योंकि अग्नि, भला अग्नि को कैसे जला सकती है ॥२३॥

न हि धर्मात्मनस्तस्य भार्याममिततेजसः ।
स्वाचारित्राभिगुप्तां तां स्प्रष्टुमर्हति पावकः ॥ २४ ॥

फिर अतुल तेजस्वी धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी की पत्नी को जो अपने चरित्र बल से अर्थात पातिव्रतधर्म से सुरक्षित है, अग्नि उनका स्पर्श भी नहीं कर सकता ॥२४॥

नूनं रामप्रभावेण वैदेह्याः सुकृतेन च ।
यन्मां दहनकर्मायं नादहद्धव्यवाहनः ॥ २५ ॥

तभी तो श्रीरामचन्द्र जी के प्रताप और सीता जी के पुण्य प्रभाव से जलाने वाले अग्नि ने मुझे नहीं जलाया-यह निश्चय बात है।॥२५॥

त्रयाणां भरतादीनां भ्रातॄणां देवता च या ।
रामस्य च मनःकान्ता सा कथं विनशिष्यति ॥ २६ ॥

जो भरतादि तीनों भाइयों की आराध्या देवी हैं और श्रीरामचन्द्र जी की प्राणवल्लभा है, भला नह कैसे नष्ट हो सकती हैं ॥२६॥

यद्वा दहनकर्मायं सर्वत्र प्रभुरव्ययः ।
न मे दहति लाङ्गूलं कथमार्यां प्रधक्ष्यति ॥ २७॥

अथवा समस्त वस्तुओं को जलाने की सामर्थ्य रखने वाले और नाशरहित अग्नि ने, जब मेरी पूँछ ही को नहीं जलाया, तब वह सती माता सीता को किस प्रकार भस्म कर सकती हैं ॥२७॥

पुनश्चाचिन्तयत् तत्र हनुमान् विस्मितस्तदा ।
हिरण्यनाभस्य गिरेर्जलमध्ये प्रदर्शनम् ॥ २८ ॥

तदुपरान्त सोच विचार कर फिर हनुमान जी ने श्री सीता जी के प्रभाव से, समुद्र के बीच हिरण्यनाम मैनाक पर्वत के निकल आने का विचार कर विस्मित हो गये और मन ही मन कहने लगे ॥२८॥

तपसा सत्यवाक्येन अनन्यत्वाच्च भर्तरि ।
अपि सा निर्दहेदग्निं न तामग्निः प्रधक्ष्यति ॥ २९॥

सीता जी अपने तपःप्रभाव, सत्यभाषण तथा अपने पति में अनन्य भक्ति रखने के प्रभाव से अग्नि को स्वयं भले ही भस्म कर दें, किन्तु अग्नि उनको नहीं जला सकता ॥२९॥

स तथा चिन्तयंस्तत्र देव्या धर्मपरिग्रहम् ।
शुश्राव हनुमांस्तत्र चारणानां महात्मनाम् ॥३० ॥

हनुमान जी इस प्रकार सीता जी की धर्मनिष्ठा को सोच रहे थे कि, इतने में हनुमान जी को महात्मा चारणों के यह वचन सुनाई पड़े ॥३०॥

अहो खलु कृतं कर्म दुर्विगाहं हनूमता ।
अग्निं विसृजता तीक्ष्णं भीमं राक्षससद्मनि ॥ ३१ ॥

अहो ! निश्चय ही हनुमान जी ने बड़ा ही दुष्कर काम कर डाला कि, राक्षसों के घरों में दुसहः और भयंकर भाग लगा दी ॥३१॥

प्रपलायितरक्षःस्त्रीबालवृद्धसमाकुला ।
जनकोलाहलाध्माता क्रन्दन्तीवाद्रिकन्दरैः ॥ ३२॥

जिससे राक्षसों की स्त्रियां, बालक, बूढ़े, सब घबरा कर भाग खड़े हुए और सम्पूर्ण लंका पर्वत की कन्दरा के समान, कोलाहल से प्रतिध्वनित हो गयीं ॥३२॥

दग्धेयं नगरी लंका साट्टप्राकारतोरणा ।
जानकी न च दग्धेति विस्मयोऽद्भुत एव नः ॥ ३३ ॥

अंटारियों, आकारों और तोरणद्वारों सहित, सारी की सारी लंका नगरी भस्म हो गयी, किन्तु बड़े आश्चर्य का विषय है कि, जानकी जी पर आंच भी नहीं आई ॥३३॥

स निमित्तैश्च दृष्टार्थैः कारणैश्च महागुणैः ।
ऋषिवाक्यैश्च हनुमानभवत् प्रीतभानसः ॥ ३४ ॥

हनुमान जी पूर्व में अनुभूत शुभ फलप्रद शुभ शकुनों को देखकर और ऋषियों के उपर्युक्त वाक्यों को सुन कर, मन ही मन अत्यंत हर्षित हुए ॥३४॥

ततः कपिः प्राप्तमनोरथार्थस्तामक्षतां राजसुतां विदित्वा ।
प्रत्यक्षतस्तां पुनरेव दृष्ट्वा प्रतिप्रयाणाय मतिं चकार ॥ ३५ ॥

चारणों के वचनों से सीता जी के शरीर को कुशल जानकर, कपिवर हनुमान जी ने अपना सम्पूर्ण मनोरथ पूरा हुआ समझा। और पुनः सीता जी को अपनी आँखों से प्रत्यक्ष दर्शन करने के पश्च्यात हनुमान जी ने लंका से लौटने का निश्चय किया ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥षट्पञ्चाशः सर्गः छप्पनवाँ सर्ग ॥

पुनः सीता समालोक्य हनुमतो लङ्कातो निवर्तनं तेन समुद्रस्य लंघनं च – हनुमान जी का पुन: सीता माता से मिलकर लौटना तथा समुद का उल्लंघन

ततस्तु शिंशुपामूले जानकीं पर्यवस्थिताम् ।
अभिवाद्याब्रवीद् दिष्ट्या पश्यामि त्वामिहाक्षताम् ॥ १ ॥

तदनन्तर हनुमान जी अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हुई जानकी जी के पास जा कर उनको प्रणाम कर बोले कि, हे वेदी! अत्यंत सौभाग्य की बात है कि मैं आपको सकुशल देख रहा हूँ ॥१॥

ततस्तं प्रस्थितं सीता वीक्षमाणा पुनः पुनः ।
भर्तुः स्नेहान्विता वाक्यं हनुमन्तमभाषत ॥ २ ॥

सीता जी ने जाने के लिये उद्यत हनुमान जी को बार बार देखकर, पति के स्नेह से युक्त होकर, यह वचन कहे ॥२॥

कामममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने ।
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते फलोदयः ॥ ३ ॥

हे शत्रु घात करने वाले वीर! इस कार्य के साधन में अकेले तुम्ही पर्याप्त हो, क्योंकि, तुम्हारे बल का उदय मुझे बड़ा यशोयुक्त दिखाई देता है॥३॥

बलैस्तु सङ्कुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः ।
मां नयेद् यदि काकुत्स्थस्तत् तस्य सदृशं भवेत् ॥४ ॥

किन्तु यदि शत्रु सेना को पीड़ा देने वाले श्रीरामचन्द्र जी यदि अपने बाणों से लंकापुरी को परिपूर्ण करके, मुझे यहां से ले जाएं, तो यह कार्य उनके योग्य होगा ॥४॥

तद् यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः ।
भवत्याहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥ ५ ॥

अत: तुम्हे ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे उन धैर्यवान श्रीरामचन्द्र जी का विक्रमयुक और उनके करने योग्य यह कार्य सिद्ध हो सके॥५॥

तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम् ।
निशम्य हनुमान् वीरो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ ६ ॥

सीता जी के अर्थयुक्त तथा युक्तियुक्त स्नेह से परिपूर्ण वचन सुनकर वीर हनुमान जी उत्तर देते हुए कहने लगे॥६॥

क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्युतः ।
यस्ते युधि विजित्यारीञ्छोकं व्यपनयिष्यति ॥ ७ ॥

हे देवी! श्रीरामचन्द्र जी वानर और रीछों की सेना को ले कर शीघ्र ही यहाँ आयेंगे और युद्ध में शत्रु को परास्त कर तुम्हारे शोक को दूर करेंगे ॥७॥

एवमाश्वास्य वैदेहीं हनुमान् मारुतात्मजः ।
गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीमभ्यवादयत् ॥ ८ ॥

इस प्रकार पवननन्दन हनुमान जी ने, सीता को धीरज बंधा कर, वहां से प्रस्थानित होने का विचार कर, जनकनन्दिनी को प्रणाम किया ॥८॥

ततः स कपिशार्दूलः स्वामिसन्दर्शनोत्सुकः ।
आरुरोह गिरिश्रेष्ठमरिष्टमरिमर्दनः ॥ ९॥

तदनन्तर स्वामी के दर्शनों के लिये उत्सुक होकर शत्रु का मर्दन करने वाले कपिशार्दूल हनुमान जी, अरिष्ट नामक श्रेष्ठ पर्वत पर चढ़ गये ॥९॥

तुङ्गपद्मकजुष्टाभिर्नीलाभिर्वनराजिभिः ।
सोत्तरीयमिवाम्भोदैः शृङ्गान्तरविलम्बिभिः ॥ १० ॥

बोध्यमानमिव प्रीत्या दिवाकरकरैः शुभैः ।
उन्मिषन्तमिवोद्धूतैलोचनैरिव धातुभिः ॥ ११ ॥

उस पर्वत पर ऊंचे ऊंचे भोजपत्र के वृक्ष से शोभित नीली नीली वन श्रेणियां मानो उस पर्वत का परिधान थीं। उसके शिखरों के ऊपर लटकते हुए मेघ उसके उत्तरीय की तरह दिखाई देते थे। उस पर सूर्य की किरणे गिर कर, मानों प्रेमपूर्वक उसकी नींद से जगा रही थीं। विविध भांति की धातुओं से मंडित वह पर्वत मानो अपने नेत्र खोले हुए देख रहा था ॥१०-११॥

तोयौघनिःस्वनैर्मन्द्रैः प्राधीतमिव पर्वतम् ।
प्रगीतमिव विस्पष्टं नानाप्रस्रवणस्वनैः ॥ १२ ॥

अनेकों झरनों की जलधार के गिरने से ऐसा शब्द हो रहा था, मानों पर्वत अध्ययन कर रहा हो और जो नदियां बह रही थीं; उनका कलनाद ऐसा सुनाई पड़ता था, मानों पर्वत गान कर रहा हो॥१२॥

देवदारुभिरुद्धूतैरूर्ध्वबाहुमिव स्थितम् ।
प्रपातजलनिर्घोषैः प्राकृष्टमिव सर्वतः ॥ १३ ॥

उसके ऊपर जो बड़े बड़े देवदार के पेड़ थे, वह ऐसे दिखाई देते थे, मानों पर्वत ऊपर को भुजा उठाये हुए खड़ा हो । सर्वत्र जल प्रपातों की गंभीर ध्वनि होने के कारण वह पर्वत ऐसे प्रतीत होता था मानो पुकार रहा हो ॥१३॥

वेपमानमिव श्यामैः कम्पमानैः शरद्वनैः ।
वेणुभिमारुतोद्धूतैः कूजन्तमिव कीचकैः ॥ १४ ॥

वायु से हिलते हुए शरत्कालीन हरे हरे वृक्षों द्वारा वह पर्वत कांपता हुआ सा प्रतीत होता था। खोखले बांसों में जब वायु भरता था, तब उनसे ऐसा शब्द निकलता, मानों पर्वत बांसुरी बजा रहा हो ॥१४॥

निःश्वसन्तमिवामर्षाद् घोरैराशीविषोत्तमैः
नीहारकृतगंभीरैः ध्यायन्तमिव गह्वरैः । ॥ १५ ॥

वहाँ बड़े बड़े जहरीले सांप, जो क्रोध में भर फुफकार रहे थे, ऐसे प्रतीत होते थे, मानों पर्वत सांस ले रहा हो। छाये हुए अत्यन्त अन्धकारमय कुहरे से तथा अपनी गहरी गुफाओं से, ऐसा प्रतीत होता था मानों पर्वत ध्यान अवस्था में हो ॥१५॥

मेघपादनिभैः पादैः प्रक्रान्तमिव सर्वतः ।

जृम्भमाणमिवाकाशे शिखरैरभ्रमालिभिः ॥ १६ ॥

उठते हुए मेघों के समान शोभा पाने वाले अपने खगडपर्वतरूप पैरों से ऐसा प्रतीत होता था, मानों पर्वत विचरण कर रहा हो। अपने आकाशस्पर्शी शिखरों से मानों वह पर्वत अपने शरीर की टेढ़ा मेढ़ा कर, मानो अंगड़ाई ले रहा हो ॥१६ ॥

कूटैश्च बहुधा कीर्णं शोभितं बहुकन्दरैः ।
सालतालैश्च कर्णैश्च वंशैश्च बहुभिर्वृतम् ॥ १७ ॥

लतावितानैर्विततैः पुष्पवद्भिरलङ्कृतम् ।
नानामृगगणै कीर्णं धातुनिष्यन्दभूषितम् ॥ १८ ॥

बड़े बड़े शिखरों, बड़ी बड़ो कन्दराओं से तथा साल, ताड़, प्रश्वकर्ण, बसवारी एवं विविध प्रकार की फूली हुई लताओं से वह पर्वत पूर्ण और भूषित था। उस पर बहुत से मृग थे और धातुओं के पिघलने से वह विभूषित हो रहा था ॥१७-१८॥

बहुप्रस्रवणोपेतं शिलासञ्चयसङ्कटम् ।
महर्षियक्षगन्धर्वकिन्नरोरगसेवितम् ॥ १९ ॥

उस पर्वत पर अनेक जल के झरने बह रहे थे तथा वह भांति भांति की शिलाओं से आच्छादित था। महर्षि, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और नागगण उस पहाड़ पर निवास करते थे ॥१६॥

लतापादपसम्बाधं सिंहाधिष्ठितकन्दरम् ।
व्याघ्रादिभिः समाकीर्णं स्वादुमूलफलद्रुमम् ॥२० ॥

वह पर्वत, लता वृक्षों से परिपूर्ण था और उसकी कन्दराओं में सिंह रहते थे। व्यानों के झुंड के झुंड वहाँ भरे पड़े थे तथा उस पर के फल फूल और जल अत्यंत स्वादिष्ट थे ॥२०॥

आरुरोहानिलसुतः पर्वतं प्लवगोत्तमः ।
रामदर्शनशीघ्रेण प्रहर्षेणाभिचोदितः ॥ २१ ॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान जी ऐसे उस अरिष्ट नामक पर्वत के ऊपर चढ़ गये। क्योंकि, श्रीरामचन्द्र जी से मिलने की उनको शीघ्रता थी और कार्यसिद्ध होने के कारण वह अत्यंत प्रसन्न थे ॥२१॥

तेन पादतलाक्रान्ता रम्येषु गिरिसानुषु ।
सघोषाः समशीर्यन्त शिलाश्चूर्णीकृतास्ततः ॥ २२॥

उस रमणीक पर्वत के शिखर की शिलाएँ हनुमान जी के पैरों के आघात से टूट कर चूर चूर हो गयी और भयंकर शब्द करती हुई नीचे गिर पड़ी॥ २२॥

स तमारुह्य शैलेन्द्रं व्यवर्धत महाकपिः ।
दक्षिणादुत्तरं पारं प्रार्थयंल्लवणाम्भसः ॥ २३ ॥

उस पर्वतराज पर चढ़ कर हनुमान जी ने अपना शरीर बढ़ाया और वह समुद्र के दक्षिणतट से उत्तरतट की ओर जाने को तैयार हुए ॥२३॥

अधिरूह्य ततो वीरः पर्वतं पवनात्मजः ।
ददर्श सागरं भीमं मीनोरगनिषेवितम् ॥ २४ ॥

उस पर्वत पर चढ़कर वीर पवननन्दन ने मछलियों और सांपों से भरा वह भयंकर समुद्र देखा ॥२४॥

स मारुत इवाकाशं मारुतस्यात्मसम्भवः ।
प्रपेदे हरिशार्दूलो दक्षिणादुत्तरां दिशम् ॥ २५॥

हनुमान जी, आकाशचारी पवन की तरह, अति शीघ्रता से दक्षिणतट से उत्तरतट की ओर उड़ चले ॥२५॥

स तदा पीडितस्तेन कपिना पर्वतोत्तमः ।
ररास विविधैर्भूतैः प्रविशद् वसुधातलम् ॥ २६ ॥

हनुमान जी के पैर के बोझ से दब जाने के कारण अनेक प्राणियों की चीत्कार के साथ गम्भीर शब्द करता हुआ वह पर्वत पृथिवी में समा गया ॥ २६ ॥

कम्पमानैश्च शिखरैः पतद्भिरपि च द्रुमैः ।
तस्योरुवेगोन्मथिताः पादपाः पुष्पशालिनः ॥२७ ॥

उसके समस्त शिखर और वृक्ष कांपते हुए नीचे गिर पड़े। हनुमान जी की जंघाओं के वेग से उखड़ उखड़ कर, विविध प्रकार के फूलों से लदे हुए पेड़ ॥२७॥

निपेतुर्भूतले भग्नाः शक्रायुधहता इव ।
कन्दरोदरसंस्थानां पीडितानां महौजसाम् ॥ २८॥

टूट टूट कर पृथिवी पर गिर पड़े, मानों इन्द्र के वज्र से तोड़े गये हों। उसकी कन्दराओं के भीतर रहने वाले, महावलवान् किन्तु पीड़ित ॥२८॥

सिंहानां निनदो भीमो नभो भिन्दन् हि शुश्रुवे ।
स्रस्तव्याविद्धवसना व्याकुलीकृतभूषणाः ॥ २९ ॥

विद्याधर्यः समुत्पेतुः सहसा धरणीधरात् ।
अतिप्रमाणा बलिनो दीप्तजिह्वा महाविषाः ॥ ३० ॥

सिंहों ने भयंकर नाद किया, जिससे लगने लगा मानों आकाश फट जाएगा। उस पर्वत पर विहार करने वाली विद्याधारियों के डर के कारण शरीर के वस्त्र खिसक गए। आभूषण उलट-पलट हो गए और वह सहसा पर्वत को छोड़, ऊपर आकाश में जा पहुँचे। अत्यंत

विशाल और बलवान, प्रज्वलित जिह्वा वाले, और महा- विषैले ॥२९-३०॥

निपीडितशिरोग्रीवा व्यवेष्टन्त महाहयः ।
किन्नरोरगगन्धर्वयक्षविद्याधरास्तदा ॥ ३१ ॥

बड़े बड़े सर्प, फनों और गरदनों के दब जाने के कारण कुण्डलियाँ मारने लगे। वहां के किन्नर, उरग, गन्धर्व, यक्ष, तथा विद्याधर ॥३१॥

पीडितं तं नगवरं त्यक्त्वा गगनमास्थिताः ।
स च भूमिधरः श्रीमान् बलिना तेन पीडितः ॥ ३२ ॥

सवृक्षशिखरोदग्रः प्रविवेश रसातलम् ।
दशयोजनविस्तारस्त्रिंशद्योजनमुच्छ्रितः ॥३३ ॥

उस पर्वतश्रेष्ठ को पीड़ित देख और उसे छोड़ कर, आकाश में चले गये। हनुमान जी द्वारा पीड़ित होकर वह शोभायमान पर्वत अपने शिखरों और पेड़ों सहित रसातल में चला गया। वह पर्वत दस योजन लंबा और तीस योजन ऊँचा था। फिर भी वह उनके पैरों से दब कर पृथिवी में समा गया ॥३२- ३३॥

धरण्यां समतां यातः स बभूव धराधरः ।
स लिलङ्घयिषुर्भीमं सलीलं लवणार्णवम् ।
कल्लोलास्फालवेलान्तमुत्पपात नभो हरिः ॥ ३४॥

और जहाँ वह पहले था वहां की भूमि समतल हो गयी। बड़ी बड़ी लहरों से लहराते हुए, तटों से युक्त, खरे पानी के भयंकर महासागर को खेल खेल में ही लांघने के लिये, हनुमान जी कूद कर आकाश में चले गये ॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥सप्तपञ्चाशः सर्गः सत्तावनवाँ सर्ग॥

समुद्रल्लङ्घ्य हनुमतो जाम्बवदङ्गदप्रभृतिभिः सुहृद्भिः सह समागमः – हनुमान जी का समुद्र तो लांघ कर अंगद आदि सुहृदयों से मिलना

आप्लुत्य च महावेगः पक्षवानिव पर्वतः।
सचन्द्रकुमुद रम्यं साकारण्डवं शुभम् ।
विष्यश्रवणकादम्बमनशैवालशाद्वलम् ॥ १ ॥

अत्यंत बलवान हनुमान जी पंखधारी पर्वत की तरह आकाश रूपी समुद्र को पार करने लगे। जिसमें चन्द्रमा मानों आकाश रूपी समुद्र का कुमुद है। सूर्य मानों जलमुर्ग है, पुष्प और श्रवण नक्षत्र मानों हंस की तरह शोभायमान हैं और मेघसमूह मानों सरकंडे और घास हैं। ॥१॥

पुनलर्वसुमहामीनं लोहिताङ्गमहाग्रहम् ।
ऐरावतमहाद्वीपं स्वातीहंसविलासितम् ॥ २ ॥

पुनर्वसु नक्षत्र मानों विशाल मतस्य और मंगल मानों विशाल मगर है। ऐरावत मानों उस समुद्र का महाद्वीप है, स्वाती नक्षत्र मानों हंस के समान उसमें तैर रहा है ॥२॥

वातसङ्घातजातोर्मिचन्द्रांशुशिशिराम्बुमत् ।
भुजङ्गयक्षगन्धर्वप्रवुद्धकमलोत्पलम् ॥३॥

वायु मानों तरंगे हैं और चन्द्रमा की किरण रूपी शीतल जल से वह पूर्ण है नाग, यक्ष, और गन्धर्व मानों फूले हुए कमल के फूल हैं ॥३॥

हनुमान्मारुतगतिर्महानौरिव सागरम् ।
अपारमपरिश्रान्तः पुप्लुवे गगनार्णवम् ॥ ४॥

हनुमान जी बड़े. वेग से उसी प्रकार चले, जैसे सागर में नाव चलती है और बिना थके वह उस अपार आकाशरूपी सागर में चले जाते थे॥४॥

ग्रसमान इवाकाशं ताराधिपमिवोल्लिखन् ।
हरन्निव सनक्षत्रं गगनं सार्कमण्डलम् ॥ ५ ॥

जाते हुए हनुमान जी ऐसे प्रतीत होते थे, मानों आकाश को ग्रसे जाते हों और अपने नखों से मानों आकाश में चन्द्रमा को खरोंचते हुए और नक्षत्रों तथा सूर्य सहित आकाशमण्डल को समेटते हुए।॥५॥

मारुतस्यात्मजः श्रीमान्कपियोमचरो महान् ।
हनुमान् मेघजालानि विकर्षन्निव गच्छति ॥ ६ ॥

महावपुधारी पवननन्दन श्रीमान हनुमान जी मेघसमूहों को खींचते हुए, अपार महासागर के पार चले जाते थे ॥६॥

पाण्डरारुणवर्णानि नीलमाञ्जिष्ठकानि च ।
हरितारुणवर्णानि महाभ्राणि चकाशिरे ॥ ७ ॥

उस समय सफेद, लाल, नीले, मजीठ रंग के और हरे रंग के बड़े बड़े बादल आकाश में शोभायमान हो रहे थे ॥७॥

प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः ।
प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च चन्द्रमा इव दृश्यते ॥ ८ ॥

हनुमान जी कभी उन मेघ समूहों में प्रवेश करते और कभी बाहर निकलते हुए ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे चन्द्रमा कभी बादलों में छिपता और पुन: प्रकाशित होता है ॥८॥

विविधाभ्रघनापन्नगोचरो धवलाम्बरः ।

दृश्यादृश्यतनुर्वीरस्तथा चन्द्रायतेऽम्बरे ॥ ९ ॥

सफेद वस्त्र धारी वीर हनुमान जी विविध प्रकार के बादलों के भीतर कभी प्रकट कभी अप्रकट हो, आकाश में चन्द्रमा, की तरह प्रतीत होते थे ॥९॥

ताक्ष्यार्यमाणो गगने स बभौ वायुनन्दनः ।
दारयन् मेघवृन्दानि निष्पतंश्च पुनः पुनः ॥ १० ॥

आकाश में गरुड़ की तरह बादलों को विदीर्ण करते और बार बार उनके भीतर से बाहर निकलते हुए हनुमान जी शोभायमान हो रहे थे ॥१०॥

नदन् नादेन महता मेघस्वनमहास्वनः ।
प्रवरान् राक्षसान् हत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ॥ ११ ॥

आकुलां नगरीं कृत्वा व्यथयित्वा च रावणम् ।
अर्दयित्वा महावीरान् वैदेहीमभिवाद्य च ॥ १२ ॥

इस प्रकार महातेजस्वी हनुमान अपने सिंहनाद से, मेघों की भांति महान गर्जना करते हुए आगे बढ़ रहे थे। वह प्रमुख राक्षसों को मार कर, अपना नाम प्रसिद्ध कर, सम्पूर्ण लङ्का को विकल कर, रावण को पीड़ा देकर, राक्षसों की भयंकर सेना को व्यथित करके और सीता जी को प्रणाम कर, ॥११-१२॥

आजगाम महातेजाः पुनर्मध्येन सागरम् ।
पर्वतेन्द्रं सुनाभं च समुपस्पृश्य वीर्यवान् ॥ १३ ॥

ज्यामुक्त इव नाराचो महावेगोऽभ्युपागमत् ।
स किंचिदारात् संप्राप्तः समालोक्य महागिरिम् ॥ १४ ॥

महेन्द्रमेघसङ्काशं ननाद स महाकपिः ।
स पूरयामास कपिर्दिशो दश समन्ततः ॥ १५ ॥

समुद्र के मध्यभाग में आ पहुँचे । महातेजस्वी और बली हनुमान जी, पर्वतराज मैनाक को स्पर्श द्वारा सम्मानित कर, धनुष से छूटे हुए बाण की तरह बड़े वेग से गमन करने लगे। जब उत्तर तटवर्ती मेघ की तरह विशाल महेन्द्रपर्वत कुछ ही दूर रह गया; तब उसे देख हनुमान जी बड़े जोर से गर्जे । उनका वह सिंहनाद समस्त दिशाओं में प्रतिध्वनित हुआ ॥१३-१५॥

नदन् नादेन महता मेघस्वनमहास्वनः ।
स तं देशमनुप्राप्तः सुहृद्दर्शनलालसः ॥ १६ ॥

वह मेघ की तरह अत्यंत वेग से गर्जते हुए, समुद्र के उत्तरतट पर, अपने हितैषियों से मिलने के लिये उत्सुक होकर, जा पहुँचे ॥१६॥

ननाद सुमहानादं लाङ्गूलं चाप्यकम्पयत् ।
तस्य नानद्यमानस्य सुपर्णचरिते पथि ॥ १७ ॥

उस समय हनुमान जी सिंहनाद कर रहे थे और अपनी पूंछ भी हिला रहे थे। आकाश में गरुड़ जो के मार्ग का अवलम्बन किये हुए हनुमान जी के गंभीर घोष से ॥१७॥

फलतीवास्य घोषेण गगनं सार्कमण्डलम् ।
ये तु तत्रोत्तरे तीरे समुद्रस्य महाबलाः ॥ १८ ॥

सूर्यमण्डल सहित आकाश मंडल मानों फटा जा रहा था। महासागर के उत्तरतीर पर जो महाबली ॥१८॥

पूर्वं संविष्ठिताः शूरा वायुपुत्रदिदृक्षवः ।
महतो वायुनुन्नस्य तोयदस्येव निःस्वनम् ॥ १९ ॥

रीछ तथा वानर पहले से वीर हनुमान जी के लौटने की प्रतीक्षा करते हुए बैठे थे। उन्होंने वायु द्वारा टकराए हुए महान मेघों की गर्जना के समान ॥१९॥

शुश्रुवुस्ते तदा घोषमूरुवेगं हनूमतः ।
ते दीनमनसः सर्वे शुश्रुवुः काननौकसः ॥ २० ॥

वानरेन्द्रस्य निर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम् ।

निशम्य नदतो नादं वानरास्ते समन्ततः ॥ २१ ॥

बभूवुरुत्सुकाः सर्वे सुहृद्दर्शनकाङ्क्षिणः ।
जाम्बवान् स हरिश्रेष्ठः प्रीतिसंहृष्टमानसः ॥ २२ ॥

उन वानरों ने हनुमान जी का सिंहनाद और उनकी जंघो के वेग से निकला शब्द सुना। उन सभी दीन वानरों ने बादलों की गर्जना के समान, हनुमान जी की सिंहनाद सुना । नाद करते हुए हनुमान जी की गर्जना सुन कर, वह सभी वानर अपने बन्धु का दर्शन करने को उत्सुक हो उठे। वानर-भालुओं में सर्वश्रेष्ठ जाम्बवान ने अत्यन्त प्रसन्न होकर॥२०-२२॥

उपामन्त्र्य हरीन् सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ।
सर्वथा कृतकार्योऽसौ हनूमान्नात्र संशयः ॥ २३ ॥

सभी वानरों को अपने पास बुलाकर इस प्रकार बोले -इसमें सन्देह नहीं कि, हनुमान जी सब प्रकार से अपना कार्य सिद्ध करके आ रहे हैं ॥२३॥

न ह्यस्याकृतकार्यस्य नाद एवंविधो भवेत् ।
तस्य बाहूरुवेगं च निनादं च महात्मनः ॥ २४ ॥

यदि वह अपने कार्य में सफल नहीं हुए होते तो इस प्रकार की गर्जना कदापि नहीं करते। हनुमान जी की भुजाओं और जाँघों का महान वेग देख कर तथा उनके सिंहनाद की गर्जन का शब्द ॥२४॥

निशम्य हरयो हृष्टाः समुत्पेतुर्यतस्ततः ।
ते नगाग्रान्नगाग्राणि शिखराच्छिखराणि च ॥ २५ ॥

सुन कर, सभी वानर प्रसन्न हुए और पर्वत के एक शिखर से दूसरे शिखर पर कूद कूद कर चढ़ने लगे ॥२५॥

प्रहृष्टाः समपद्यन्त हनूमन्तं दिदृक्षवः ।
ते प्रीताः पादपाग्रेषु गृह्य शाखामवस्थिताः ॥ २६ ॥

वह हनुमान जी को देखने के निये अत्यन्त प्रसन्न होकर और अच्छी प्रकार फूली हुई वृक्षों की डालों को हाथ में ले, वृक्षों की फुनगियों पर चढ़ गये ॥२६॥

वासांसि च प्रकाशानि समाविध्यन्त वानराः ।
गिरिगह्वरसंलीनो यथा गर्जति मारुतः ॥ २७ ॥

और वस्त्रों की तरह उन शाखाओं को हिलाने लगे। जिस प्रकार पहाड़ी गुफाओं में रुकी हुई वायु बड़े जोर से शब्द करती है ॥२७॥

एवं जगर्ज बलवान् हनूमान् मारुतात्मजः ।
तमभ्रघनसङ्काशमापतन्तं महाकपिम् ॥ २८ ॥

उसी प्रकार बलवान पवननन्दन हनुमान जी गर्जे और उन वानरों ने देखा कि, एक विशाल बड़े बादल के तरह हनुमान जी आकाश मार्ग से चले आ रहे हैं ॥२८॥

दृष्ट्वा ते वानराः सर्वे तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा ।
ततस्तु वेगवान् वीरो गिरेर्गिरिनिभः कपिः ॥ २९ ॥

हनुमान जी को देखते ही वह सभी वानर हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। तब पर्वताकार और वेगवान हनुमान जी ॥२६॥

निपपात गिरेस्तस्य शिखरे पादपाकुले ।
हर्षेणापूर्यमाणोऽसौ रम्ये पर्वतनिर्झरे ॥ ३० ॥

छिन्नपक्ष इवाकाशात् पपात धरणीधरः ।
ततस्ते प्रीतमनसः सर्वे वानरपुङ्गवाः ॥ ३१ ॥

उसी महेन्द्राचल के शिखर पर, जिस पर बहुत से पेड़ लगे हुए थे, आकर कूद पड़े। हनुमान जी हर्षित होकर, आकाश से, पंख कटे पर्वत की तरह रमणीक पर्वत के उस स्थान नीचे आ गए, जहां पानी का झरना भर रहा था। तब प्रीतिपूर्णहृदय से समस्त वानरवीर ॥३०-३१॥

हनूमन्तं महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ।
परिवार्य च ते सर्वे परां प्रीतिमुपागताः ॥ ३२ ॥

महात्मा हनुमान जी को चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये। हनुमान जी को घेरकर खड़े होनेपर वह अत्यंत प्रसन्न हुए ॥३२॥

प्रहृष्टवदनाः सर्वे तमागतमुपागमन् ।
उपायनानि चादाय मूलानि च फलानि च ॥ ३३ ॥

हनुमान जी को कुशलपूर्वक आया हुआ देखकर, वह सभी बहुत प्रसन्न हुए और फलों और फूलों की भेंटे ला कर, ॥३३॥

प्रत्यर्चयन् हरिश्रेष्ठं हरयो मारुतात्मजम् ।
हनुमांस्तु गुरून् वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्तदा ॥ ३४ ॥

कपिश्रेष्ठ पवननन्दन हनुमान जी का पूजन करने लगे। तब हनुमान जी ने पूज्य और वृद्ध जाम्बवान प्रमुख वानरों और भालुओं को ॥३४॥

कुमारमङ्गदं चैव सोऽवन्दत महाकपिः ।
स ताभ्यां पूजितः पूज्यः कपिभिश्च प्रसादितः ॥ ३५ ॥

तथा युवराज अंगद को प्रणाम किया। उन दोनों ने हनुमान जी की प्रशंसा की तथा अन्य वानरों ने भी उनका सत्कार किया ॥३५॥

दृष्टा देवीति विक्रान्तः संक्षेपेण न्यवेदयत् ।
निषसाद च हस्तेन गृहीत्वा वालिनः सुतम् ॥ ३६ ॥

तदनन्तर हनुमान जी ने उन सब से सीता जी को देखने का वृतान्त संक्षेप से कहा । तदनन्तर हनुमान जी बालिपुत्र अंगद का हाथ पकड़कर ॥३६॥

रमणीये वनोद्देशे महेन्द्रस्य गिरेस्तदा ।
हनुमानब्रवीत् पृष्टस्तदा तान् वानरर्षभान् ॥ ३७ ॥

महेन्द्राचल की रमणीक वनभूमि में जा बैठे और जब वानरों ने उनसे पूछा तब वह उन वानरश्रेष्ठों से कहने लगे ॥३७॥

अशोकवनिकासंस्था दृष्टा सा जनकात्मजा ।
रक्ष्यमाणा सुघोराभी राक्षसीभिरनिन्दिता ॥ ३८ ॥

मैंने अशोकवाटिका में बैठी हुई सुन्दरी सीताजी का दर्शन किया। अत्यंत भयंकर राक्षसियां उनकी रखवाली में नियुक्त हैं ॥३८॥

एकवेणीधरा बाला रामदर्शनलालसा ।
उपवासपरिश्रान्ता मलिना जटिला कृशा ॥ ३९ ॥

वह एक वेणी धारण किये हुए हैं और अत्यंत दुःखी तथा श्रीराम चन्द्र जी के दर्शन के लिये उत्कंठित हैं। उपवास करने के कारण वह बहुत थक गयी हैं और उनका शरीर अत्यंत कृशकाय हो गया है। वह मलिन वेश धारण किए हुआ हैं तथा उनके केशों की जटा बन गयी है ॥३९॥

ततो दृष्टेति वचनं महार्थममृतोपमम् ।
निशम्य मारुतेः सर्वे मुदिता वानराभवन् ॥ ४० ॥

उस समय "मैंने सीताजी का दर्शन किया" अमृत के तुल्य और महाअर्थयुक्त अर्थात् कार्यसाधक वचन हनुमान जी के मुख से निकलते ही समस्त वानरमण्डली आनन्दित हो गयी ॥४०॥

क्ष्वेडन्त्यन्ये नदन्त्यन्ये गर्जन्त्यन्ये महाबलाः ।
चक्रुः किलिकिलामन्ये प्रतिगर्जन्ति चापरे ॥ ४१ ॥

उनमें से कई वानर सिंहनाद करने लगे, बलवान वानर गर्जने लगे, कई अन्य किलकारियां मारने लगे और कोई दूसरे को गर्जते देख कर गर्जने लगे ॥४१॥

केचिदुच्छ्रितलाङ्गूलाः प्रहृष्टाः कपिकुञ्जराः ।
आयताञ्चितदीर्घाणि लांगूलानि प्रविव्यधुः ॥ ४२ ॥

बहुत से कपिकुञ्जर उल्लासित होकर पूंछों को खड़ी कर प्रसन्नता प्रकट करने लगे। कई अन्य अपनी लंबी पूंछों को बार बार फटकारने लगे॥४२॥

अपरे च हनूमन्तं श्रीमन्तं वानरोत्तमम् ।
आप्लुत्य गिरिशृङ्गेषु संस्पृशन्ति स्म हर्षिताः ॥ ४३ ॥

हाथी के समान डील डौल वाले अन्य वानर, हर्षित होकर और पर्वतशिखर से कूदकर हनुमान जी को छूने लगे ॥४३॥

उक्तवाक्यं हनूमन्तमङ्गदस्तु तदाब्रवीत् ।
सर्वेषां हरिवीराणां मध्ये वचनमुत्तमाम् ॥ ४४ ॥

हनुमान जी के उपर्युक्त वचन कहने पर, अंगद ने समस्त वानर वीरों के बीच बैठे हुए अंगद ने हनुमान जी से यह उत्तम वचन कहे ॥४४॥

सत्त्वे वीर्ये न ते कश्चित् समो वानर विद्यते ।
यदवप्लुत्य विस्तीर्णं सागरं पुनरागतः ॥ ४५ ॥

हे हनुमान ! बल और पराक्रम में तुम्हारे समान और कोई नहीं है क्योंकि तुम इतने चौड़े समुद्र को लांघ कर पुनः इस पार लौट कर आ गए ॥४५ ॥

अहो स्वामिनि ते भक्तिरहो वीर्यमहो धृतिः ।
दिष्ट्या दृष्टा त्वया देवी रामपत्नी यशस्विनी ॥ ४६ ॥

अहो ! तुम्हारी स्वामी भक्ति अद्भुत है। तुम्हारा बल और धैर्य भी आश्चर्य जनक है। अत्यंत सौभाग्य का विषय है कि तुम श्रीरामचन्द्र जी की यशस्विनी पत्नी सीता जी का दर्शन कर आये हो ॥४६॥

दिष्ट्या त्यक्ष्यति काकुत्स्थः शोकं सीतावियोगजम् ।
ततोऽङ्गदं हनूमन्तं जांबवन्तं च वानराः ॥ ४७ ॥

यह भी बड़े सौभाग्य की बात है कि, सीता जी के वियोग से उत्पन्न श्रीरामचन्द्र जी का शोक अब दूर हो जायगा । तदनन्तर सभी श्रेष्ठ वानर, अंगद, हनुमान और जाम्बवान को ॥४७॥

परिवार्य प्रमुदिता भेजिरे विपुलाः शिलाः
श्रोतुकामाः समुद्रस्य लङ्घनं वानरोत्तमाः ॥ ४८ ॥

दर्शनं चापि लङ्कायाः सीताया रावणस्य च ।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे हनुमद्वदनोन्मुखाः ॥ ४९॥

चारों ओर से घेरकर और हर्ष में भर कर, उनके बैठने के लिये बड़ी बड़ी शिलाएँ उठा लाये। वह समस्त वानर हनुमान जी के मुख से उनके समुद्र लांघने का तथा लंकापुरी, सीताजी और रावण के देखे जाने का वृत्तान्त सुनना चाहते थे । अतः वह सभी हाथ जोड़कर हनुमान जी के मुख की ओर देखने लगे ॥४८-४९॥

तस्थौ तत्राङ्गदः श्रीमान् वानरैर्बहुभिर्वृतः ।
उपास्यमानो विबुधैः दिवि देवपतिर्यथा ॥ ५०॥

देवराज इन्द्र जिस प्रकार देवताओं के बीच विराजमान होते हैं, वैसे ही श्रीमान् अंगद जी बहुत से वानरों के बीच विराजमान थे ॥५०॥

हनूमता कीर्तिमता यशस्विना तथाऽङ्गदेनाङ्गदबद्धबाहुना ।
मुदा तदाध्यासितमुन्नतं महन्महीधराग्रं ज्वलितं श्रियाभवत् ॥५१॥

कीर्तिशाली हनुमान जी और यशस्वी अंगद जी जिनकी दोनों भुजाएँ बाजू बन्दों से सुशोभित थी, हर्ष में भरे ऐसे बैठे हुए थे कि, उनके वहाँ बैठने से उस बहुत ऊँचे पर्वत का शिखर दिव्य कान्ति से प्रकाशित हो गया।॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥अष्टपञ्चाशः सर्गः अठ्ठावनवाँ सर्ग ॥

जाम्बवता पृष्टेन स्वकीय लङ्कायात्रासंबन्धि संपूर्णवृत्तस्य श्रावणम् – जाम्बवान के पूछने पर हनुमान जी का अपनी लंका यात्रा का वृतांत बताना

ततस्तस्य गिरेः शृङ्गे महेन्द्रस्य महाबलाः ।
हनुमत्प्रमुखाः प्रीतिं हरयो जग्मुरुत्तमाम् ॥ १ ॥

उस समय हनुमान आदि महाबली वानरगण, महेन्द्राचल पर्वत के शिखर पर बैठे हुए अत्यन्त हर्षित हो रहे थे ॥१॥

तं ततः प्रीतिसंहृष्टः प्रीतियुक्तं महाकपिम् ।
जाम्बवान् कार्यवृत्तान्तमपृच्छदनिलात्मजम् ॥ २ ॥

तब हनुमान जी को प्रसन्न देखकर जाम्बवान ने पवननंदन हनुमान जी से उनकी यात्रा का वृत्तान्त पूछा ॥२॥

कथं दृष्टा त्वया देवी कथं वा तत्र वर्तते ।
तस्यां चापि कथं वृत्तः क्रूरकर्मा दशाननः ॥ ३ ॥

उन्होंने पूछा, हे हनुमान ! यह तो बताओ कि, तुमने सीता जी को किस प्रकार देखा और वह वहां किस तरह रहती हैं, क्रूरकर्मा रावण उनके साथ कैसा बर्ताव करता है ॥३॥

तत्त्वतः सर्वमेतन्नः प्रब्रूहि त्वं महाकपे ।
श्रुतार्थाश्चिन्तयिष्यामो भूयः कार्यविनिश्चयम् ॥ ४ ॥

हे हनुमान् ! तुम यह समस्त वृत्तान्त भली भांति यथावत् कहो जिससे उसे सुनने के बाद, हम आगे का कार्य निश्चित कर सकें॥४॥

यश्चार्थस्तत्र वक्तव्यो गतैरस्माभिरात्मवान् ।
रक्षितव्यं च यत्तत्र तद् भवान् व्याकरोतु नः ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के पास चलने पर जो बात उनसे कहनी होगी और जो गुप्त रखनी होगो, वह आप यथावत रूप से हम से कहें ॥५॥

स नियुक्तस्ततस्तेन सम्प्रहृष्टतनूरुहः ।
नमस्यञ्शिरसा देव्यै सीतायै प्रत्यभाषत ॥६ ॥

जाम्बवान जी के ऐसे बचन सुनकर, हनुमान जी के रोंगटे खड़े हो गये। वह सीता देवी को शीश नवा कर और प्रणाम कर, कहने लगे॥६॥

प्रत्यक्षमेव भवतां महेन्द्राग्रात् खमाप्लुतः ।
उदधेर्दक्षिणं पारं कांक्षमाणः समाहितः ॥ ७ ॥

यह तो आप लोगों के सामने ही की बात है कि, मैं इस महेंद्र पर्वत के शिखर से, समुद्र के दक्षिण तट पर जाने की इच्छा से, बड़ी सावधानी से उछला था ॥७॥

गच्छतश्च हि मे घोरं विघ्नरूपमिवाभवत् ।
काञ्चनं शिखरं दिव्यं पश्यामि सुमनोहरम् ॥ ८॥

आगे बढ़ते ही रास्ते में एक बड़ा विघ्न उपस्थित हुआ। मेरे रास्ते में एक अत्यन्त सुन्दर और दिव्य, स्वर्णमय शिखर से युक्त एक पर्वत रास्ता रोक कर प्रकट हुआ ॥८॥

स्थितं पन्थानमावृत्य मेने विघ्नं च तं नगम् ।
उपसंगम्य तं दिव्यं काञ्चनं नगमुत्तमम् ॥ ९ ॥

उस पर्वत को रास्ता रोक कर खड़े देख कर, मैंने उसे मूर्तिमान विघ्नरूप ही समझा। फिर उस सुवर्णमय पर्वतश्रेष्ठ के समीप पहुँच कर ॥९॥

कृता मे मनसा बुद्धिर्भेत्तव्योऽयं मयेति च ।
प्रहतस्य च मया तस्य लांगूलेन महागिरेः ॥ १० ॥

शिखरं सूर्यसङ्काशं व्यशीर्यत सहस्रधा ।
व्यवसायं च तं बुद्ध्वा स होवाच महागिरिः ॥ ११ ॥

पुत्रेति मधुरां वाणीं मनः प्रह्लादयन्निव ।
पितृव्यं चापि मां विद्धि सखायं मातरिश्वनः ॥ १२ ॥

मैंने अपने मन में विचारा कि, मैं उस पर्वत को विदीर्ण कर डालूं और मैंने ऐसा ही किया। मैंने अपनी पूंछ से उस पर प्रहार किया, पूँछ की टक्कर से उसका सूर्य के समान प्रकाशमान शिखर के सहस्त्रों टुकड़े हो कर गिर पड़ा। अपने शिखर के टुकड़े टुकड़े हुए देखकर वह महान पर्वत मधुरवाणी से मुझको प्रसन्न करता हुआ बोला- हे पुत्र ! मैं तुम्हारा चाचा हूँ, क्योंकि तुम्हारे पिता पवनदेव मेरे मित्र हैं ॥१०-१२॥

मैनाकमिति विख्यातं निवसन्तं महोदधौ ।
पक्षवन्तः पुरा पुत्र बभूवुः पर्वतोत्तमाः ॥ १३ ॥

मैं मैनाक पर्वत के नाम से प्रसिद्ध हूँ और इस महासागर के भीतर रहता हूँ। हे पुत्र ! पूर्वकाल में पर्वतों के पंख हुआ करते थे ॥१३॥

छन्दतः पृथिवीं चेरुर्बाधमानाः समन्ततः ।

श्रुत्वा नगानां चरितं महेन्द्रः पाकशासनः ॥ १४ ॥

वह इच्छानुसार समस्त पृथिवी पर विचरण करते हुए प्रजाओं को कष्ट दिया करते थे। पर्वतों का ऐसा आचरण सुनकर देवराज इन्द्र ने ॥१४॥

वज्रेण भगवान् पक्षौ चिच्छेदैषां सहस्रशः ।
अहं तु मोक्चितस्तस्मात् तव पित्रा महात्मना ॥ १५ ॥

वज्र से सहस्त्रों पर्वतों के पंख काट डाले, किन्तु इस विपत्ति से तुम्हारे महात्मा पिता पवनदेव ने मेरी रक्षा की ॥१५॥

मारुतेन तदा वत्स प्रक्षिप्तो वरुणालये ।
राघवस्य च मया साह्ये वर्तितव्यमरिन्दम ॥ १६ ॥

हे वत्स! उस समय पवनदेव ने मुझे इस महासागर में लाकर डाल दिया। हे अरिन्दम ! अत: मैं श्रीरामचन्द्र जी की सहायता करने को तत्पर हूँ॥१६॥

रामो धर्मभृतां श्रेष्ठो महेन्द्रसमविक्रमः ।
एतच्छ्रुत्वा वचमया तस्य मैनाकस्य महात्मनः ॥ १७ ॥

क्योंकि, श्रीरामचन्द्र जी धर्मात्माओं में श्रेष्ठ हैं और इन्द्र के समान पराक्रमी हैं । उस महात्मा मैनाक के यह वचन सुनकर ॥१७॥

कार्यमावेद्य तु गिरेरुद्धतं च मनो मम ।
तेन चाहमनुज्ञातो मैनाकेन महात्मना ॥ १८ ॥

मैंने अपने मन का अभिप्राय उनको बता दिया। तब महात्मा मैनाक ने मुझे जाने की अनुमति दे दी ॥१८॥

स चाप्यन्तर्हितः शैलो मानुषेण वपुष्मता ।
शरीरेण महाशैलः शैलेन च महोदधौ ॥ १९ ॥

और वह महान पर्वत भी मनुष्यशरीर को धारण कर मुझसे बातचीत करता था, वह अंतर्ध्यान हो गया और वह विशाल पर्वत समुद्र के जल के भीतर स्थित हो गया ॥१६॥

उत्तमं जवमास्थाय शेषमध्वानमास्थितः ।
ततोऽहं सुचिरं कालं वेगेनाभ्यगमं पथि ॥ २० ॥

तब मैं अत्यंत वेग से शेष मार्ग पूरा करने के लिये आगे चला और बहुत देर तक उसी चाल से रास्ता तय करता रहा ॥२०॥

ततः पश्याम्यहं देवीं सुरसां नागमातरम् ।
समुद्रमध्ये सा देवी वचनं चेदमब्रवीत ॥ २१ ॥

तदनन्तर मैंने नागमाता सुरसा का दर्शन किया। समुद्र के बीच खड़ी हुई सुरसा मुझसे यह वचन कहने लगी ॥२१॥

मम भक्षः प्रदिष्टस्त्वममरैर्हरिसत्तम ।
अतस्त्वां भक्षयिष्यामि विहितस्त्वं हि मे सुरैः ॥ २२ ॥

हे कपिश्रेष्ठ! तुम मेरे भक्ष्य बन कर यहाँ आ गए हो। अत: अब मैं तुम्हारा भक्षण करूंगी क्योंकि सारे देवताओं ने तुम्हें ही आज मारा आहार नियत किया है ॥२२॥

एवमुक्तः सुरसया प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः ।
विवर्णवदनो भूत्वा वाक्यं चेदमुदीरयम् ॥ २३ ॥

सुरसा के ऐसे वचन सुन, मैं अत्यन्त विनीत भाव से हाथ जोड़ कर तथा उदासमुख होकर, उसके सामने खड़ा हो गया और बोला ॥२३॥

रामो दाशरथिः श्रीमान् प्रविष्टो दण्डकावनम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च परन्तपः ॥ २४ ॥

कि, महाराज दशरथ के पुत्र परन्तप श्रीरामचन्द्र जी अपने भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता को साथ लेकर, दण्डक वन में आए थे ॥२४॥

तस्य सीता हृता भार्या रावणेन दुरात्मना ।
तस्याः सकाशं दूतोऽहं गमिष्ये रामशासनात् ॥ २५ ॥

वहां उनकी भार्या सीता को दुष्ट रावण छल पूर्वक हर ले गया है। अत: मैं श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा से सीता देवी के पास उनका दूत बन कर जा रहा हूँ ॥२५॥

कर्तुमर्हसि रामस्य साहाय्यं विषये सती ।
अथवा मैथिलीं दृष्ट्वा रामं चाक्लिष्टकारिणम् ॥ २६ ॥

तुम भी तो उन्हीं श्री रामचन्द्र जी के राज्य में रहती हो, अतः तुम्हे भी इस कार्य में कुछ सहायता करनी चाहिए। अथवा मिथिलेश कुमारी सीता जी को देख कर और उनका हाल अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्र जी से मैं कह कर ॥२६॥

आगमिष्यामि ते वक्त्रं सत्यं प्रतिशृणोमि ते ।
एवमुक्ता मया सा तु सुरसा कामरूपिणी ॥ २७ ॥

अब्रवीन्नातिवर्तेत कश्चिदेष वरो मम ।
एवमुक्तः सुरसया दशयोजनमायतः ॥ २८ ॥

मैं स्वयं ही तुम्हारे मुख तेरे मुख में चला आऊँगा, मैं तुमसे यह सत्य सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ। जब मैंने इस प्रकार उससे कहा, तब वह कामरूपिणी सुरसा कहने लगी, मेरा उल्लंघन करके कोई नहीं जा सकता। क्योंकि, मुझे ऐसा ही वर मिला हुआ है। उसके यह कहने पर मैं दस योजन का हो गया ॥२७-२८॥

ततोऽर्धगुणविस्तारो बभूवाहं क्षणेन तु ।
मत्प्रमाणाधिकं चैव व्यादितं तु मुखं तया ॥ २९ ॥

फिर क्षणभर ही में ही मैं पन्द्रह योजन का हो गया। परन्तु सुरसा ने मेरे शरीर की लंबाई से अपना मुख और भी अधिक फैलाया ॥२९॥

तद् दृष्ट्वा व्यादितं त्वास्यं ह्रस्वं ह्यकरवं वपु ।
तस्मिन् मुहूर्ते च पुनर्बभूवाङ्गुष्ठसम्मितः ॥ ३० ॥

तब मैंने उसको अपने अत्यंत विशाल मुख को खोले हुए देखकर, अपना शरीर बहुत छोटा कर लिया। उसी मुहूर्त में मैंने अपना शरीर अंगूठे के बराबर कर लिया ॥३०॥

अभिपत्याशु तद्वक्रं निर्गतोऽहं ततः क्षणात् ।
अब्रवीत् सुरसा देवी स्वेन रूपेण मां पुनः ॥ ३१ ॥

और उसके मुख में प्रवेश कर मैं उसी क्षण बाहर निकल आया। तब सुरसा ने अपना पूर्ववत् रूप धारण कर मुझसे कहा ॥३१॥

अर्थसिद्धौ हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम् ।
समानय च वैदेहीं राघवेण महात्मना ॥ ३२ ॥

हे सौम्य ! अब तुम कार्य सिद्धि के लिए सुखपूर्वक यात्रा करो तथा महात्मा श्रीरामचन्द्र जी से विदेहनन्दिनी सीता जी को मिलाओ ॥३२॥

सुखी भव महाबाहो प्रीताऽस्मि तव वानर ।
ततोऽहं साधु साध्वीति सर्वभूतैः प्रशंसितः ॥ ३३ ॥

हे महाबाहो ! तुम सुखी रहो। मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। उस समय सब प्राणियों ने साधु-साधु कह कर मेरो प्रशंसा की ॥३३॥

ततोऽन्तरिक्षं विपुलं प्लुतोऽहं गरुडो यथा ।
छाया मे निगृहीता च न च पश्यामि किंचन ॥ ३४॥

तदनन्तर मैं गरुड़ जी की तरह बड़ी तेजी से रास्ता तय करने लगा। इसी बीच में मेरी छाया को किसी ने पकड़ लिया, किन्तु जब मुझे छाया पकड़ने वाला कोई जीव दिखाई नही दिया ॥३४॥

सोऽहं विगतवेगस्तु दिशो दश विलोकयन् ।
न किंचित् तत्र पश्यामि येन मे विहता गतिः ॥ ३५ ॥

तब गति रुक जाने के कारण मैं चारों और देखने लगा। किन्तु मेरी गति रोकने वाला कोई प्राणी मुझे वहां दिखाई नहीं दिया॥३५॥

ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना किंनाम गगने मम ।
ईदृशो विघ्न उत्पन्नो रूपं यत्र न दृश्यते ॥ ३६ ॥

तब मैं यह सोचने लगा कि, जिसने मेरी गति में इस प्रकार का विघ्न डाला है और जिसका रूप भी दिखाई नही देता, वह कौन है ॥३६॥

अधोभागे तु मे दृष्टिः शोचतः पातिता मया ।
तत्राद्राक्षमहं भीमां राक्षसीं सलिलेशयाम् ॥ ३७ ॥

यह मैं सोच हो रहा था कि, इतने में मेरी दृष्टि नीचे की ओर गयी और मैंने देखा कि, एक भयंकर राक्षसी समुद्र के जल में खड़ी है।॥३७॥

प्रहस्य च महानादं उक्तोऽहं भीमया तया ।
अवस्थितमसंभ्रान्तमिदं वाक्यमशोभनम् ॥ ३८ ॥

उस भयंकर राक्षसी ने अट्टहास करके तथा गरजते हुए निर्भीक होकर यह अनुचित वचन मुझसे कहा ॥३८॥

क्वासि गन्ता महाकाय क्षुधिताया ममेप्सितः ।
भक्षः प्रीणय मे देहं चिरमाहारवर्जितम् ॥ ३९॥

हे महाकाय ! तुम मेरे मनोवांछित भक्ष्य हो कर अब कहां जा सकते हो। मैं बहुत दिनों से भूखी हूँ, अत: तुम मेरा भक्ष्य बन कर मेरे शरीर और प्राणों को तृप्त अर्थात् पुष्ट करो ॥३९॥

बाढमित्येव तां वाणीं प्रत्यगृह्णामहं ततः ।
आस्य प्रमाणादधिकं तस्याः कायमपूरयम् ॥ ४०॥

तब मैंने "बहुत अच्छा" कह कर उसकी बात मान ली और उसके मुख की लंबाई चौड़ाई से कहीं अधिक मैंने अपना शरीर लम्बा चौड़ा कर लिया। जिससे मेरा शरीर उसके मुख ही में ही न जा पाए ॥४०॥

तस्याश्चास्यं महद् भीमं वर्धते मम भक्षणे ।
न तु मां सा नु बुबुधे मम वा विकृतं कृतम् ॥ ४१ ॥

परन्तु उसने अपना भयंकर मुख मेरा भक्षण करने के लिये बढ़ाया। परन्तु न तो वह मेरे सामर्थ्य को जान पायी और न मेरो चतुराई को ही। ॥४१॥

ततोऽहं विपुलं रूपं संक्षिप्य निमिषान्तरात् ।
तस्या हृदयमादाय प्रपतामि नभःस्थलम् ॥ ४२ ॥

मैंने पलक मारते ही अपने विशाल शरीर को अत्यंत छोटा बना लिया और झपट कर उसका कलेजा निकाल मैं पुनः आकाश में पहुँच गया ॥४२॥

सा विसृष्टभुजा भीमा पपात लवणाम्भसि ।
मया पर्वतसङ्काशा निकृत्तहृदया सती ॥ ४३ ॥

वह पर्वताकार दुष्ट राक्षसी, हृदय के फट जाने से दोनों हाथों को फैला कर खारे समुद्र में डूब गयी ॥४३॥

श‍ृणोमि खगतानां च वाचः सौम्यां महात्मनाम् ।
राक्षसी सिंहिका भीमा क्षिप्रं हनुमता हता ॥ ४४॥

उस समय मैंने आकाशचारी सिद्धों और चारणों को यह कहते सुना कि, हनुमान जी ने इस भयंकर सिंहिका राक्षसी को बात ही बात में मार डाला ॥४४॥

तां हत्वा पुनरेवाहं कृत्यमात्ययिकं स्मरन् ।
गत्वा च महदध्वानं पश्यामि नगमण्डितम् ॥ ४५ ॥

दक्षिणं तीरमुदधेर्लङ्का यत्र गता पुरी ।
अस्तं दिनकरे याते रक्षसां निलयं पुरम् ॥ ४६ ॥

उसको मार कर मैंने अपने उस कार्य पर विचार किया जिसकी पूर्ती में विलम्ब हो चुका था। तब बहुत दूर चलने के बाद मुझे पर्वतयुक्त समुद्र का वह दक्षिण तट दिखाई दिया जिस पर वह लंकापुरी बसी हुई है। जब सूर्य देव अस्त हो गए तब मैं राक्षसों के निवास स्थान लंका पुरी में ॥४५- ४६॥

प्रविष्टोऽहमविज्ञातो रक्षोभिर्भीमविक्रमैः ।
तत्र प्रविशतश्चापि कल्पान्तघनसप्रभा ॥ ४७ ॥

गुप्त रूप से प्रवेश किया जिससे वह भयंकर पराक्रमी राक्षस मेरे विषय में कुछ भी नहीं जान पाए। किन्तु उस पुरी में घुसने के समय प्रलयकालीन मेघ की तरह ॥४७॥

अट्टहासं विमुञ्चन्ती नारी काप्युत्थिता पुरः ।
जिघांसन्तीं ततस्तां तु ज्वलदग्निशिरोरुहाम् ॥ ४८ ॥

शरीर वाली एक स्त्री अट्टहास करती हुई मेरे सामने आ खड़ी हुई । वह मुझे मार डालना चाहती थी। उसके सिर के केश प्रज्वलित अग्नि की तरह चमक रहे थे ॥४८॥

सव्यमुष्टिप्रहारेण पराजित्य सुभैरवाम् ।
प्रदोषकाले प्रविशं भीतयाहं तयोदितः ॥४९ ॥

उस महाभयंकर राक्षसी को वाम हाथ के मुक्के से परास्त करके, मैं संध्याकाल में लंकापुरी के भीतर प्रविष्ट हुआ। उस समय उसने भयभीत होकर मुझसे कहा ॥४९॥

अहं लङ्कापुरी वीर निर्जिता विक्रमेण ते ।
यस्मात् तत्तस्माद् विजेतासि सर्व रक्षांस्यशेषतः ॥ ५० ॥

हे वीर ! मैं इस लंकापुरी की अधिष्ठात्री देवी हूँ। तुमने अपने पराक्रम से मुझे जीत लिया है, अत: यह निश्चित है कि तुम समस्त वानरों को

जीत लोगे। अर्थात् तुम अब समस्त लंकापुरी वासी राक्षसों को जीत लोगे ॥५०॥

तत्राहं सर्वरात्रं तु विचरन् जनकात्मजाम् ।
रावणान्तःपुरगतो न चापश्यं सुमध्यमाम् ॥ ५१ ॥

मैं वहाँ जानकी जी की खोज में नगर में सारी रात घूमता रहा । मैं रावण के अंत:पुर में भी गया किन्तु वहां भी उन परम सुंदरी सीता जी का दर्शन नहीं हुआ ॥ ५१॥

ततः सीतामपश्यंस्तु रावणस्य निवेशने ।
शोकसागरमासाद्य न पारमुपलक्षये ॥ ५२ ॥

रावण के महल में भी सीता जी को नहीं पाकर मैं शोकसागर में डूब गया। उस समय मुझे उस शोक का आर पार नहीं दिखाई देता था ॥५२॥

शोचता च मया दृष्टं प्राकारेणाभिसंवृतम् ।
काञ्चनेन विकृष्टेन गृहोपवनमुत्तमम् ॥ ५३॥

सोचते सोचते मुझे सौने के परकोटे से घिरा एक सुन्दर गृहोद्यान दिखाई दिया ॥५३

स प्राकारमवप्लुत्य पश्यामि बहुपादपम् ।

अशोकवनिकामध्ये शिंशुपापादपो महान् ॥ ५४॥

उस परकोटे को लांघने पर मैंने उस गृहोद्यान को देखा जो बहुत से वृक्षों से घिरा हुआ था। उस अशोक-उपवन में एक बड़ा विशाल अशोक का वृक्ष था ॥५४॥

तमारुह्य च पश्यामि काञ्चनं कदलीवनम् ।
अदूराच्छिंशपावृक्षात् पश्यामि वरवर्णिनीम् ॥ ५५ ॥

उस पर चढ़ कर मैंने उसके निकट ही स्वर्णमयी कदली वन तथा उस अशोक वृक्ष के निकट सर्वांग सुन्दरी सीताजी का दर्शन किया ॥५५॥

श्यामां कमलपत्राक्षीमुपवासकृशाननाम् ।
तदेकवासःसंवीतां रजोध्वस्तशिरोरुहाम् ॥ ५६ ॥

सीता जी के नेत्र प्रफुल्ल कमलदल के समान सुन्दर हैं, निरंतर उपवास करने के कारण अत्यंत दुर्बल हो गयी हैं और यह दुर्बलता उनके मुखमंडल पर स्पष्ट विदित होती है। वह केवल एक वस्त्र धारण किए हुए हैं और उसके सिर के वालों में धूल भरी हुई है ॥५६॥

शोकसन्तापदीनाङ्गीं सीतां भर्तृहिते स्थिताम् ।
राक्षसीभिर्विरूपाभिः क्रूराभिरभिसंवृताम् ॥ ५७ ॥

वह शोकसन्ताप से दीन, पति की हितकामना में तत्पर है। अत्यंत विकृत रूपवाली और क्रूर राक्षसियां चारों और से उन्हें वैसे ही घेरे रहती हैं ॥५७॥

मांसशोणितभक्षाभिर्व्याघ्रीभिर्हरिणीं यथा ।
सा मया राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ५८ ॥

जैसे मांस खाने वाली और रक्त पीने वाली बाधिर्ने हिरनी को घेर लेती हैं। राक्षसियों के बीच बैठी हुई और बार बार उनके द्वारा डांटी डपटी जाती हुई सीताजी को मैंने देखा है ॥५८॥

एकवेणीधरा दीना भर्तृचिन्तापरायणा ।
भूमिशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे ॥ ५९ ॥

शीतकाल में जिस प्रकार कमलिनी सूख कर श्री हीन हो जाती है, वैसे ही जानकी जी का शरीर भी श्रीरामचन्द्र जो की चिन्ता में कान्तिहीन हो गया है। वह एक वेणी धारण किये हुए हैं। अत्यन्त दीनभावयुक्त होकर अपने पति का निरंतर चिंतन करती रहती हैं और धरती ही उनकी शय्या है ॥५९॥

रावणाद् विनिवृत्तार्था मर्तव्ये कृतनिश्चया ।
कथंचिन्मृगशावाक्षी तूर्णमासादिता मया ॥ ६० ॥

वह रावण से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं रखती हुई, प्राण त्यागने का निश्चय किये हुए है। ऐसी मृगनयनी सीता को मैंने किसी तरह खोज निकाला ॥६०॥

तां दृष्ट्वा तादृशीं नारीं रामपत्नीं यशस्विनीम् ।
तत्रैव शिंशुपावृक्षे पश्यन्नहमवस्थितः ॥ ६१ ॥

उन श्रीरामचन्द्र जी की यशस्विनी पत्नी सीताजी की ऐसी दशा देखकर मैं उसी अशोक वृक्ष पर स्थित हो गया जहाँ सीता जी बैठी हुई थी ॥६१॥

ततो हलहलाशब्दं काञ्चीनूपुरमिश्रितम् ।
शृणोम्यधिकगम्भीरं रावणस्य निवेशने ॥ ६२॥

इतने में ही रावण के महल में से करधनी और नूपुरों की झंकार से मिश्रित गम्भीर कोलाहल मुझे सुनाई पड़ा ॥६२॥

ततोऽहं परमोद्विग्नः स्वरूपं प्रत्यसंहरम् ।
अहं तु शिंशुपावृक्षे पक्षीव गहने स्थितः ॥ ६३ ॥

तब मैंने घबरा कर और अपने शरीर को अत्यंत छोटा कर लिया और पक्षी की तरह उस अशोक वृक्ष के सघन पत्तों में छिप कर बैठ गया ॥६३ ॥

ततो रावणदाराश्च रावणश्च महाबलः ।
तं देशं अनुसम्प्राप्तो यत्र सीताभवत् स्थिता ॥ ६४ ॥

इतने में महाबली रावण और रावण की स्त्रियां वहां आ पहुँची जहाँ सीता जी बैठी हुई थीं ॥६४॥

तद् दृष्ट्वाथ वरारोहा सीता रक्षोगणेश्वरम् ।
संकुच्योरू स्तनौ पीनौ बाहुभ्यां परिरभ्य च ॥ ६५ ॥

उस महावली राक्षस रावण को देख सीता जी अपनी दोनों जाँघों को समेट कर और उभरे हुए स्तनों को बाहों से ढककर बैठ गयीं ॥६५॥

वित्रस्तां परमोद्विग्नां वीक्षमाणामितस्ततः ।
त्राणं किंचिदपश्यन्तीं वेपमानां तपस्विनीम् ॥ ६६ ॥

अत्यन्त भयभीत होने के कारण उनका मन बहुत उद्विग्न हो रहा था और वह वह इधर उधर देख रहीं थी। किन्तु जब उसे अपनी रक्षा के लिये कुछ भी सहारा दिखाई नहीं दिया। तब वह दुखियारी डर के मारे कांपने लगी॥६६॥

तामुवाच दशग्रीवः सीतां परमदुःखिताम् ।
अवाक्छिराः प्रपतितो बहुमन्यस्व मामिति ॥ ६७ ॥

उन अत्यन्त दुखियारी तपस्विनी सीता जी से दशानन ने कहा-मैं सिर झुका कर तुम्हे प्रणाम करता हूँ, तुम मुझे भली भांति आदर प्रदान करो॥६७॥

यदि चेत्त्वं तु मां दर्पान्नाभिनन्दसि गर्विते ।
द्वौ मासानन्तरं सीते पास्यामि रुधिरं तव ॥ ६८ ॥

हे गर्वीली ! यदि तुम अभिमानवश मेरा अभिनन्दन नहीं करोगी। तो दो महीने बाद मैं तेरा लहू पीऊँगा ॥६८॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य रावणस्य दुरात्मनः ।
उवाच परमक्रुद्धा सीता वचनमुत्तमम् ॥६९ ॥

दुरात्मा रावण के ऐसे वचन सुनकर, सीता जी ने अत्यन्त कुपित होकर, उस समय के उपयुक्त यह उत्तम वचन कहे ॥६९॥

राक्षसाधम रामस्य भार्यममिततेजसः ।
इक्ष्वाकुवंशनाथस्य स्नुषां दशरथस्य च ॥ ७० ॥

हे राक्षसाधम ! अमित तेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी की पत्नी और इक्ष्वाकु-कुल-नाथ महाराज दशरथ की पुत्रवधू से ॥७०॥

अवाच्यं वदतो जिह्वा कथं न पतिता तव ।
किंस्विद्वीर्यं तवानार्य यो मां भर्तुरसन्निधौ ॥ ७१ ॥

ऐसे दुर्वचन कहते हुए तेरी जिह्वा क्यों नहीं गिर पड़ती, अरे दुष्ट पापी! क्या यही तेरा बल पराक्रम है कि, तू मुझे मेरे पति के पास से ॥७१॥

अपहृत्यागतः पाप तेनादृष्टो महात्मना ।
न त्वं रामस्य सदृशो दास्येऽप्यस्य न युज्यसे ॥ ७२ ॥

उनकी अनुपस्थिति में चोरी छुपे बलात हर लाया । अरे पापी! तू श्रीराम की बराबरी तो कर ही क्या सकता है, तू उनका दास बनने योग्य भी तो नहीं है ॥७२॥

अजेयः सत्यवाक् शूरो रणश्लाघी च राघवः ।
जानक्या परुषं वाक्यं एवमुक्तो दशाननः ॥ ७३ ॥

क्योंकि श्रीरामचन्द्र जी अजेय, सत्यवादी, शूरवीर और रणकला में अत्यंत कुशल हैं। सीता जी के ऐसे कठोर वचन सुन कर, दशानन रावण ॥७३॥

जज्वाल सहसा कोपाच्चितास्थ इव पावकः ।
विवृत्य नयने क्रूरे मुष्टिमुद्यम्य दक्षिणम् ॥ ७४ ॥

क्रोध के मारे ऐसे जल उठा, जैसे चिता से आग धधक उठती है। वह आँखे तरेर कर और दहिना मुक्का तान कर ॥ ७४॥

मैथिलीं हन्तुमारब्धः स्त्रीभिर्हाहाकृतं तदा ।
स्त्रीणां मध्यात् समुत्पत्य तस्य भार्या दुरात्मनः ॥ ७५ ॥

जब सीता जी को मारने के लिये उद्यत हुआ, तब उसके साथ जो स्त्रियाँ थीं वह हाहाकार करने लगी। उस समय उन्हीं स्त्रियों में उस दुरात्मा की पत्नी ने ॥७५॥

वरा मन्दोदरी नाम तया स प्रतिषेधितः ।
उक्तश्च मधुरां वाणीं तया स मदनार्दितः ॥ ७६ ॥

जिसका नाम मन्दोदरी था और जो बड़ी सुन्दरी थी, उसे ऐसा करने से रोका और मीठे वचन कह कर, उस कामातुर को समझाया ॥७६॥

सीतया तव किं कार्यं महेन्द्रसमविक्रम ।
देवगन्दर्वकान्याभिर्यक्षकन्याभिरेव च ॥ ७७ ॥

वह कहने लगी हे इन्द्र के समान पराक्रमी राक्षसराज ! सीता जी से तुम्हें क्या काम है। तुम्हारे यहाँ तो देव, गन्धर्व और यक्ष कन्याएँ मौजूद हैं ॥७७॥

सार्धं प्रभो रमस्वेति सीतया किं करिष्यसि ।
ततस्ताभिः समेताभर्नारीभिः स महाबलः ॥ ७८ ॥

अत: हे स्वामी! तुम मेरे साथ और इनके साथ विहार करो, सीता को लेकर क्या करोगे? तदनन्तर वे सब स्त्रियां मिल कर महाबली रावण को ॥७८॥

प्रसाद्य सहसा नीतो भवनं स्वं निशाचरः ।
याते तस्मिन् दशग्रीवे राक्षस्यो विकृताननाः ॥ ८९॥

इस प्रकार प्रसन्न कर, सहसा उसको घर ले गयीं । जब दशानन रावण वहां से चला गया, तब विकट रूप वाली राक्षसियां ॥७९॥

सीतां निर्भर्त्सयामासुर्वाक्यैः क्रूरैः सुदारुणैः ।
तृणवद् भाषितं तासां गणयामास जानकी ॥ ८० ॥

बड़े कठोर और क्रूर वचन कह कर, सीता जी को डराने धमकाने लगीं। किन्तु जानकी जी ने उनके धमकाने की तिनके के बराबर भी परवाह न की ॥८०॥

तर्जितं च तथा तासां सीतां प्राप्य निरर्थकम् ।
वृथा गर्जितनिश्चेष्टा राक्षस्यः पिशिताशनाः ॥ ८१ ॥

अतः उनका सीता जी को डराना धमकाना सब व्यर्थ हो गया, मांस भक्षण करने खाने वाली राक्षसियों का डराना धमकाना तथा अन्य समस्त चेष्टाओं के व्यर्थ हो जाने पर ॥८१॥

रावणाय शशंसुस्ताः सीताव्यवसितं महत् ।
ततस्ताः सहिताः सर्वा विहताशा निरुद्यमाः ॥ ८२ ॥

परिक्षिप्य समस्तास्ता निद्रावशमुपागताः ।
तासु चैव प्रसुप्तासु सीता भर्तृहिते रता ॥ ८३ ॥

उन्होंने रावण के पास जाकर कहा कि, सीता को मृत्यु स्वीकार है परन्तु आप नहीं । तदनन्तर वह सभी हतोत्साह और हतोद्योग होकर एवं निद्रा के वशीभूत होकर सो गयीं। जब वह सो गयीं, तब श्रीरामचन्द्र जी के हित में रत सीता जी ॥८२-८३॥

विलप्य करुणं दीना प्रशुशोच सुदुःखिता ।
तासां मध्यात् समुत्थाय त्रिजटा वाक्यमब्रवीत् ॥ ८४ ॥

अत्यन्त दीन और दुःखी होकर तथा करुणापूर्ण विलाप कर, शोक करने लगीं। तभी एक राक्षसी जिसका नाम त्रिजटा था, उठ बैठी और बोली ॥८४॥

आत्मानं खादत क्षिप्रं न सीतामसितेक्षणातम् ।
जनकस्यात्मजा साध्वीं स्नुषां दशरथस्य च ॥ ८५ ॥

तुम सब अपने आप को भले ही खा डालो; किन्तु सती सीता जी को, जो राजा जनक की बेटी और महाराज दशरथ की पुत्रवधू है नहीं खा पाओगी ॥८५॥

स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः ।
रक्षसां च विनाशाय भर्तुरस्या जयाय च ॥ ८६ ॥

आज मैंने एक बड़ा भयंकर स्वप्न देखा है। उस स्वप्न के देखने से मेरे रोंगटे खड़े हो गये। वह स्वप्न राक्षसों का नाश और इसके (सीताजी के) पति की जीत का सूचक है ॥८६॥

अलमस्मात् परित्रातुं राघवाद् राक्षसीगणम् ।
अभियाचाम वैदेहीमेतद्धि मम रोचते ॥ ८७ ॥

अत: मुझे तो अब यही उचित लगता है कि, श्रीरामचन्द्र जी के कोप से बचने के लिये, हम सभी सीता से प्रार्थना करें। अतः अब तुम इसे डराना धमकाना बंद करो ॥८७॥

यस्या ह्येवंविधः स्वप्नो दुःखितायाः प्रदृश्यते ।
सा दुःखैर्विविधैर्मुक्ता सुखमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ८८ ॥

क्योंकि, इस प्रकार का स्वप्न जिस दुखियारी स्त्री के विषय में दिखाई देता है, वह विविध प्रकार के दुःखों से छूट कर, उत्तम सुख प्राप्त करती है ॥८८॥

प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा ।
ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता ॥ ८९ ॥

राक्षसियों ! हम लोगों के केवल प्रणाम मात्र से सीता जी निश्चय ही हम पर प्रसन्न हो जायगीं और महान भय से हमारी रक्षा करेंगी। यह सुन वह लज्ज्वती बाला सीता अपने पति के विजय की बात सुनकर अत्यंत हर्षित हुई ॥८९॥

अवोचद् यदि तत् तथ्यं भवेयं शरणं हि वः ।
तां चाहं तादृशीं दृष्ट्वा सीताया दारुणां दशाम् ॥ ९० ॥

और बोली कि, यदि त्रिजटा का कहना सत्य निकला तो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी। हनुमान जी कहने लगे हे वानरो! सीता जी की ऐसी दारुण दशा देखकर ॥९०॥

चिन्तयामास विक्रान्तो न च मे निर्वृतं मनः ।
सम्भाषणार्थे च मया जानक्याश्चिन्तितो विधिः ॥ ९१॥

मैं कुछ देर तक सोचता रहा, किन्तु मेरे मन का दुःख किसी प्रकार दूर न हुआ । मैं सोच रहा था कि, सीता जी से किस प्रकार वार्तालाप करूँ ॥९१॥

इक्ष्वाकुकुलवंशस्तु स्तुतो मम पुरस्कृतः ।
श्रुत्वा तु गदितां वाचं राजर्षिगणभूषिताम् ॥ ९२ ॥

अन्त में मैंने इक्ष्वाकु वंशियों की प्रशंसा की। उन राजर्षियों की वंशावली और स्तुति को सुनकर ॥९२॥

प्रत्यभाषत मां देवी बाष्पैः पिहितलोचना ।
कस्त्वं केन कथं चेह प्राप्तो वानरपुङ्गव ॥ ९३ ॥

सीता जी की आँखों में आंसू भर आये और सीता देवी ने मुझसे कहा: हे वानर श्रेष्ठ! तुम कौन हो? किसके द्वारा भेजे पाये हो और कैसे यहां आये हो? ॥९३॥

का च रामेण ते प्रीतिस्तन्मे शंसितुमर्हसि ।
तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा अहमप्यब्रुवं वचः ॥ ९४ ॥

श्रीरामचन्द्र जी से तुम्हारी कैसी प्रीति है? यह सब तुम मुझसे कहो। सीता जी के यह वचन सुन, मैंने कहा ॥९४॥

देवि रामस्य भर्तुस्ते सहायो भीमविक्रमः ।
सुग्रीवो नाम विक्रान्तो वानरेन्द्रो महाबलः ॥ ९५ ॥

हे देवी! तुम्हारे भर्ता श्रीरामचन्द्र जी के सहायक, महाबली, अत्यंत पराक्रमी सुग्रीव नामक वानरों के राजा हैं ॥९५ ॥

तस्य मां विद्धि भृत्यं त्वं हनुमन्तमिहागतम् ।
भर्त्रा सम्प्रहितस्तुभ्यं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ९६ ॥

तुम मुझे उन्हीं का सेवक समझो। मेरा नाम हनुमान है और मैं तुम्हारे पति अक्लिष्ट कर्मा श्रीरामचन्द्र जी द्वारा भेजा हुआ यहाँ तुम्हारे पास आया हूँ॥९६॥

इदं च पुरुषव्याघ्रः श्रीमान् दाशरथिः स्वयम् ।
अङ्गुलीयमभिज्ञानमदात् तुभ्यं यशस्विनि ॥ ९७ ॥

हे यशस्विनी ! पुरुषसिंह श्रीमान् दशरथनन्दन ने स्वयं तुमको यह अपनी अंगूठी निशानी के लिये भेजी है ॥९७॥

तदिच्छामि त्वयाज्ञप्तं देवि किं करवाण्यहम् ।
रामलक्ष्मणयोः पार्श्वं नयामि त्वां किमुत्तरम् ॥ ९८ ॥

अत: हे देवी! अब मुझे आज्ञा दीजिए क, मैं क्या करूँ। क्या मैं अभी आपको श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी के पास ले चलूँ? इस विषय में आपका क्या उत्तर है ॥९८॥

एतच्छ्रुत्वा विदित्वा च सीता जनकनन्दिनी ।
आह रावणमुत्पाट्य राघवो मां नयत्विति ॥ ९९ ॥

यह सुन कर और सब हाल जान कर, जनकनन्दिनी सीता जी कहने लगी: मेरी यह इच्छा है कि श्रीरामचन्द्र जी रावण को मार मुझे यहाँ से ले जाएँ ॥९९॥

प्रणम्य शिरसा देवीमहमार्यामनिन्दिताम् ।
राघवस्य मनोह्लादमभिज्ञानमयाचिषम् ॥ १०० ॥

हे वानरों ! तब मैंने अनिन्दिता सती सीता जी को सिर झुका कर प्रणाम किया और श्रीरामचन्द्र जी को आनंददित करने वाली कोई पहचान मांगी ॥१००॥

अथ मामब्रवीत् सीता गृह्यतामयमुत्तमः ।
मणिर्येन महाबाहू रामस्त्वां बहु मन्यते ॥ १०१ ॥

तब सीताजी ने मुझसे कहा- तुम इस उत्तम चूडामणि को लो, इससे महाबाहु श्रीरामचन्द्र जी तुम्हारा विशेष आदर करेंगे ॥१०१॥

इत्युक्त्वा तु वरारोहा मणिप्रवरमुत्तमम् ।
प्रायच्छत् परमोद्विग्ना वाचा मां सन्दिदेश ह ॥ १०२॥

यह कह कर सुन्दरी सीता जी ने वह अद्भुत उत्तम मणि मुझे दी और अत्यन्त उद्विग्न होकर मुझसे श्रीरामचन्द्र जी के लिये अपना संदेशा कहा ॥१०२॥

ततस्तस्यै प्रणम्याहं राजपुत्र्यैः समाहितः ।
प्रदक्षिणं परिक्रामामिहाभ्युद्गतमानसः ॥ १०३ ॥

तब मैंने सावधानतापूर्वक राजपुत्री सीता जी को प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा करके, मैं यहाँ आने के लिए तैयार हुआ ॥१०३॥

उक्तो हं उत्तरं पुनरेवेदं निश्चित्य मनसा तदा ।
हनुमन् मम वृत्तान्तं वक्तुमर्हसि राघवे ॥ १०४ ॥

तब सीता जी ने अपने मन में कोई बात स्थिर कर, पुनः मुझसे कहा- हे हनुमान ! तुम मेरा सारा वृतांत श्री रामचन्द्र जी से कहना ॥१०४॥

यथा श्रुत्वैव नचिरात् तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
सुग्रीवसहितौ वीरावुपेयातां तथा कुरु ॥ १०५ ॥

और ऐसा प्रयत्न करना जिससे वे दोनों वीर राजकुमार श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मणजी अपने साथ सुग्रीव को लेकर, शीघ्र ही यहां आ पहुँचे। ॥१०५॥

यदन्यथा भवेदेतद् द्वौ मासौ जीवितं मम ।
न मां द्रक्ष्यति काकुत्स्थो म्रिये साहमनाथवत् ॥ १०६ ॥

यदि वह शीघ्र नहीं आये तो जान लो मेरे जीवन की अवधि केवल दो मास की है। दो मास बाद मैं अनाथ की तरह मर जाऊँगी और फिर श्रीरामचन्द्र जी मुझे नहीं देख पायेंगे ॥१०६॥

तच्छ्रुत्वा करुणं वाक्यं क्रोधो मामभ्यवर्तत ।
उत्तरं च मया दृष्टं कार्यशेषमनन्तरम् ॥ १०७ ॥

सीता के ऐसे करुणा जनक वचनों को सुनकर मुझे राक्षसों के प्रति बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और फिर मैंने अपने शेष बचे कर्तव्य पर विचार किया ॥१०७॥

ततोऽवर्धत मे कायस्तदा पर्वतसन्निभः ।
युद्धकाङ्क्षी वनं तस्य विनाशयितुमारभे ॥ १०८ ॥

मैंने अपने शरीर को पर्वताकार बना लिया और युद्ध की अभिलाषा से मैंने रावण के उस वन को नष्ट करना प्रारम्भ कर किया ॥१०८॥

तद् भग्नं वनखण्डं तु भ्रान्तत्रस्तमृगद्विजम् ।
प्रतिबुद्ध्य निरीक्षन्ते राक्षस्यो विकृताननाः ॥ १०९ ॥

उस वनप्रदेश को नष्ट करने से वहाँ जो मृग और जो पक्षी थे; वह डर के मारे व्याकुल हो गये और विकराल मुखवाली राक्षसियां जाग गयी तथा वह उस भग्न वन की दुर्दशा निहारने लगीं ॥१०९॥

मां च दृष्ट्वा वने तस्मिन् समागम्य ततस्ततः ।
ताः समभ्यागताः क्षिप्रं रावणायाचचक्षिरे ॥ ११० ॥

मुझे उस वन में देख कर, वह सभी इधर उधर भाग गयीं और रावण के जाकर उन्होंने वन विध्वंस का समाचार दिया ॥११०॥

राजन् वनमिदं दुर्गं तव भग्नं दुरात्मना ।
वानरेण ह्यविज्ञाय तव वीर्यं महाबल ॥ १११ ॥

उन्होंने रावण से उन्होंने कहा- हे रावण! तुम्हारे बलवीर्य को न जानकर, एक दुरात्मा वानर ने तुम्हारा दुर्गम प्रमाद वन नष्ट कर डाला है ॥१११॥

तस्य दुर्बुद्धिता राजन् तव विप्रियकारिणः ।
वधमाज्ञापय क्षिप्रं यथासौ न पुनर्व्रजेत् ॥ ११२ ॥

हे राजेन्द्र ! तुम्हारा अपराध करने वाले वानर की यह बड़ी दुर्बुद्धि है। तुम उसके वध की शीघ्र आज्ञा दें, जिससे वह यहाँ से भाग न जाए ॥११२॥

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रेण विसृष्टा बहुदुर्जयाः ।
राक्षसाः किङ्करा नाम रावणस्य मनोऽनुगाः ॥ ११३॥

यह सुनकर राक्षसराज रावण ने अत्यन्त दुर्जेय और उसकी इच्छानुसार कार्य करने वाले किंकर नाम धारी राक्षसों को आज्ञा दी ॥११३॥

तेषामशीतिसाहस्रं शूलमुद्गरपाणिनाम् ।
मया तस्मिन् वनोद्देशे परिघेण निषूदितम् ॥ ११४ ॥

उनकी संख्या अस्सी हज़ार थी और उनके हाथों में त्रिशूल तथा मुगदर थे। मैंने उस अशोक वन ही में एक परिघ से ही उनका संहार कर डाला ॥११४॥

तेषां तु हतशिष्टा ये ते गता लघुविक्रमाः ।
निहतं च मया सैन्यं रावणायाचचक्षिरे ॥ ११५॥

उनमें से जो मारे जाने से बच गये थे, उन्होंने भाग कर रावण को उस महती सेना के नष्ट किये जाने का समाचार सुनाया ॥११५॥

ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना चैत्यप्रासादमुत्तमम् ।
तत्रस्थान् राक्षसान् हत्वा शतं स्तंभेन वै पुनः ॥ ११६ ॥

इतने में मेरे मन में एक नया विचार उत्पन्न हुआ और मैंने क्रोधपूर्वक वहां के उत्तम चैत्यप्रसाद को मैंने उजाड़ कर उसी के एक खंभे से उस भवन के सौ राक्षस रक्षकों का संहार कर डाला ॥११६॥

ललामभूतो लङ्कायाः स वै विध्वंसितो रुषा ।
ततः प्रहस्तस्य सुतं जम्बुमालिनमादिशत् ॥ ११७ ॥

वह मण्डपाकार चैत्य प्रसाद भवन लंका का एक भूषण था तथा जिसमे सौ खम्बे लगे हुए थे, उसे मैंने उजाड़ दिया। तब रावण ने प्रहस्तपुत्र जम्बुमाली को भेजा ॥११७॥

राक्षसैर्बहुभिः सार्धं घोररूपैर्भयानकैः ।
तमहं बलसंपन्नं राक्षसं रणकोविदम् ॥ ११८ ॥

वह अत्यंत घोर रूप वाले भयंकर रूपधारी बहुसंख्य राक्षसों को साथ ले आया। वह राक्षस अत्यंत बलवान तथा युद्ध कला में कुशल था तब भी मैंने ॥१८॥

परिघेणातिघोरेण सूदयामि सहानुगम् ।
तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्तु मन्त्रिपुत्रान् महाबलान् ॥ ११९ ॥

पदातिबलसम्पन्नान् प्रेषयामास रावणः ।
परिघेणैव तान् सर्वान् नयामि यमसादनम् ॥ १२० ॥

उसकी सेना साहित अत्यंत घोर परिघ से ही उन सबको काल के गाल में डाल दिया। जम्बूमाली के मारे जाने का संवाद सुनकर, राक्षसराज रावण ने महाबली सात मंत्रिपुत्रों को पैदल राक्षसों की सेना के साथ भेजा। मैंने उसी परिघ से उन सब को भी यमालय भेज दिया ॥११९- १२०॥

मन्त्रिपुत्रान् हताञ्श्रुत्वा समरे लघुविक्रमान् ।

पञ्च सेनाग्रगाञ्छूरान् प्रेषयमास रावणः ॥ १२१ ॥

मंत्रिपुत्रों के मारे जाने का वृत्तान्त सुनकर रावण ने, पांच शूरवीर सेनापतियों को, जो रणविद्या में बड़े चतुर और फुर्तीले थे युद्ध के लिए भेजा ॥१२१॥

तानहं सहसैन्यान् वै सर्वानेवाभ्यसूदयम् ।
ततः पुनर्दशग्रीवः पुत्रमक्षं महाबलम् ॥ १२२ ॥

बहुभी राक्षसैः सार्धं प्रेषयामास संयुगे ।
तं तु मन्दोदरीपुत्रं कुमारं रणपण्डितम् ॥ १२३ ॥

सहसा खं समुद्यन्तं पादयोश्च गृहीतवान् ।
तमासीनं शतगुणं भ्रामयित्वा व्यपेषयम् ॥ १२४ ॥

मैंने उन पांचों को भी उनकी समस्त सेना सहित मार डाला। तब दशानन रावण ने अपने महाबली पुत्र अक्षयकुमार को, बहुत से राक्षसों के साथ युद्ध में भेजा। मैंने सहसा आकाश में जाकर ढाल तलवार लिये हुए मंदोदरी के युद्ध विद्या में प्रवीण उस पुत्र को पैर पकड़ कर सैकड़ों बार घुमाया और पृथ्वी पर पटक दिया ॥१२२-१२४॥

तमक्षमागतं भग्नं निशम्य स दशाननः ।
ततश्चेन्द्रजितं नाम द्वितीयं रावणः सुतम् ॥ १२५ ॥

अक्षयकुमार के मारे जाने का वृत्तान्त सुनकर, रावण ने अपने दूसरे पुत्र इन्द्रजीत को, ॥१२५॥

व्यादिदेश सुसंक्रुद्धो बलिनं युद्धदुर्मदम् ।
तच्चाप्यहं बलं सर्वं तं च राक्षसपुङ्गवम् ॥ १२६ ॥

नष्टौजसं रणे कृत्वा परं हर्षमुपागतः ।
महतापि महाबाहुः प्रत्ययेन महाबलः ॥ १२७ ॥

प्रेषितो रावणेनैष सह वीरैर्मदोद्धतैः ।
सोऽविषह्यं हि मां बुद्ध्वा स्वबलं चावमर्दितम् ॥ १२८ ॥

जो अत्यंत बलवान और रणदुर्मद था अत्यन्त क्रुद्ध होकर युद्ध के लिए आज्ञा दी। सेना सहित उस राक्षसश्रेष्ठ का भी पराक्रम नष्ट कर, मुझे अत्यंत प्रसन्नता हुई। महाबाहु महाबली मेघनाद पर पूर्ण विश्वास कर रावण ने, उसे और उसके साथ बड़े बड़े वीरों को युद्ध के लिए भेजा था। किन्तु इन्द्रजीत ने अपनी सेना को मर्दित देख इन्द्रजीत ने समझ लिया की इस वानर का सामना असंभव है॥ १२६-१२८॥

ब्राह्मणोऽस्त्रेण स तु मां प्रबद्ध्वा चातिवेगिनः ।
रज्जुभिश्चापि बध्नन्ति ततो मां तत्र राक्षसाः ॥ १२९ ॥

अतः उसने बड़ी शीघ्रता से ब्रह्मास्त्र चला कर मुझे बांध लिया। तदनन्तर अन्य राक्षसों ने मुझे रस्सों से जकड़ कर बाँध दिया ॥१२९॥

रावणस्य समीपं च गृहीत्वा मामुपागमन् ।
दृष्ट्वा सम्भाषितश्चाहं रावणेन दुरात्मना ॥ १३० ॥

और मुझे पकड़ कर रावण के पास ले गये। वहाँ मैंने दुरात्मा रावण को देखा और उससे वार्तालाप भी किया ॥१३०॥

पृष्टश्च लङ्कागमनं राक्षसानां च तं वधम् ।
तत्सर्वं च रणे तत्र सीतार्थमुपजल्पितम् ॥ १३१ ॥

रावण ने मुझसे लंका में आने का तथा राक्षसों के मारने का कारण पूछा। तब मैंने यही कहा कि, यह सब मैंने सीतामाता के लिये ही किया है। ॥१३१॥

तस्यास्तु दर्शनाकांक्षी प्राप्तस्त्वद्भवनं विभो ।
मारुतस्यौरसः पुत्रो वानरो हनुमानहम् ॥ १३२ ॥

हे महाराज! मैं जनक नंदिनी के दर्शन के लिए ही तुम्हारे भवन में आया हूँ। मैं पवनदेव का औरस पुत्र हूँ, जाति से वानर हूँ और हनुमान मेरा नाम है।॥१३२॥

रामदूतं च मां विद्धि सुग्रीवसचिवं कपिम् ।
सोऽहं दौत्येन रामस्य त्वत्सकाशमिहागतः ॥ १३३ ॥

मुझको तुम श्रीरामचन्द्र जी का दूत और सुग्रीव का मंत्री समझो। मैं श्रीरामचन्द्र जी का दूत बन कर तुम्हारे पास पाया हूँ ॥१३३॥

सुग्रीवश्च महाभागः स त्वां कौशलमब्रवीत् ।
धर्मार्थकामसहितं हितं पथ्यमुवाच ह ॥ १३४ ॥

महातेजस्वी सुग्रीव जी ने तुमसे कुशल कहा है और धर्म, अर्थ और काम से युक्त तथा हितकर और उचित यह संदेश भी तुम्हारे लिये भेजा है ॥१३४॥

वसतो ऋष्यमूके मे पर्वते विपुलद्रुमे ।
राघवो रणविक्रान्तो मित्रत्वं समुपागतः ॥ १३५ ॥

जब मैं बहुसंख्य वृक्षों से युक्त हरे भरे ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करता था उन दिनों मेरी मित्रता, रणपराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी से हो गयी है ॥१३५॥

तेन मे कथितं राजन् भार्या मे रक्षसा हृता ।
तत्र साहाय्यहेतोर्मे समयं कर्तुमर्हसि ॥ १३६ ॥

उन्होंने मुझसे कहा मेरी स्त्री को राक्षस हर कर ले गया है। अत: उसके उद्धार कार्य में सब प्रकार से सहायता तुम्हे करनी चाहिये ॥१३६॥

मया च कथितं तस्मै वालिनश्च वधं प्रति ।
तत्र साहाय्यहेतो, समयं कर्तुमर्हसि ॥ १३७ ॥

तब मैंने बालि के वध के लिये उनसे कहा और कहा कि, इस कार्य में, मेरी सहायता करने का समय नियत कर दो ॥१३७॥

वालिना हृतराज्येन सुग्रीवेण सह प्रभुः ।
चक्रेऽग्निसाक्षिकं सख्यं राघवः सहलक्ष्मणः ॥ १३८ ॥

बालि ने जिनका राज्य छीन लिया था, उन सुग्रीव के साथ, अग्नि के समक्ष श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण के साथ मेरी मैत्री हो गयी है ॥१३८॥

तेन वालिनमाहत्य शरेणैकेन संयुगे ।
वानराणां महाराजः कृतः सम्प्लवतां प्रभुः ॥ १३९ ॥

तदनन्तर युद्ध में एक ही बाण चला कर, श्रीरामचन्द्र जी ने बालि का वध कर डाला और सुग्रीव को वानरों का राजा बना दिया है ॥१३९॥

तस्य साहाय्यमस्माभिः कार्यं सर्वात्मना त्विह ।
तेन प्रस्थापितस्तुभ्यं समीपमिह धर्मतः ॥ १४० ॥

अब उनकी सब प्रकार से सहायता करना हमको उचित है अतः उन्होंने मित्रधर्म को निर्वहन करते हुए, घर्मानुसार मुझे दूत बना कर, तुम्हारे पास भेजा है ॥१४०॥

क्षिप्रमानीयतां सीता दीयतां राघवस्य च ।
यावन्न हरयो वीरा विधमन्ति बलं तव ॥ १४१ ॥

उन्होंने कहा है कि वीर वानरों द्वारा अपनी सेना का नाश होने के पूर्व ही तुम सीता को लाकर तुरन्त श्रीरामचन्द्र जी को दे दो ॥१४१॥

वानराणां प्रभावोऽयं न केन विदितः पुरा ।
देवतानां सकाशं च ये गच्छन्ति निमन्त्रिताः ॥ १४२॥

कौन ऐसा वीर है जिसे वानरों का प्रभाव पहले से ज्ञात नहीं हो। यह वही वानर है जो युद्ध के लिए निमंत्रण पाकर देवताओं के पास भी उनके सहायता के लिये जाते हैं ॥१४२॥

इति वानरराजस्त्वामाहेत्यभिहितो मया ।
मामैक्षत ततः रुष्टश्चक्षुषा प्रदहन्निव ॥ १४३ ॥

हे रावण ! इस प्रकार वानरराज ने तुमसे जो संदेश कहलाया है, वह मैंने तुमसे कह दिया। यह सुनकर रावण ने क्रोध में भरकर मेरी और ऐसे घूर कर देखा, मानों मुझे वह भस्म कर डालेगा ॥१४३॥

तेन वध्योऽहमाज्ञप्तो रक्षसा रौद्रकर्मणा ।
मत्प्रभावमविज्ञाय रावणेन दुरात्मना ॥ १४४ ॥

भयंकर कर्म करने वाले उस राक्षस ने मेरे वध की आज्ञा दी। क्योंकि वह दुरात्मा रावण मेरा प्रभाव तो जानता नहीं था ॥१४४॥

ततो विभीषणो नाम तस्य भ्राता महामतिः ।
तेन राक्षसराजश्च याचितो मम कारणात् ॥ १४५॥

तदनन्तर उसके एक परम बुद्धिमान भाई ने, जिसका नाम विभीषण है, मुझे बचाने के लिये रावण से प्रार्थना की ॥१४५॥

नैवं राक्षसशार्दूल त्यज्यतामेष निश्चयः ।
राजशास्त्रव्यपेतो हि मार्गः संलक्ष्यते त्वया ॥ १४६ ॥

और कहा कि, हे राक्षस शार्दूल! आप इस निश्चय को त्याग दीजिये। क्योंकि, यह तुम्हारा निश्चय राजनीति-शास्त्र के विरुद्ध है अथवा तुम राजनीति के विरुद्ध मार्ग पर चलते हो॥ १४६ ॥

दूतवध्या न दृष्टा हि राजशास्त्रेषु राक्षस ।
दूतेन वेदितव्यं च यथाभिहितवादिना ॥ १४७ ॥

हे राक्षसराज! राजनीति के किसी भी शास्त्र में दूत के वध का विधान नहीं है। हितवादी दूत तो वही कहता है जैसा उसको बताया गया है। ॥१४७॥

सुमहत्यपराधेऽपि दूतस्यातुलविक्रम ।

विरूपकरणं दृष्टं न वधोऽस्ति हि शास्त्रतः ॥ १४८॥

हे अतुल पराक्रमी ! भले ही दूत बड़े से बड़ा अपराध ही क्यों न कर डाले, तो भी शास्त्रानुसार उसका वध उचित नहीं। हां, उसकी नाक या कान काट कर उसको विरूप करने की व्यवस्था तो है ॥१४८॥

विभीषणेनैवमुक्तो रावणः सन्दिदेश तान् ।
राक्षसानेतदेवाद्य लाङ्गूलं दह्यतामिति ॥ १४९॥

जब विभीषण ने इस प्रकार समझाया, तब रावण ने राक्षसों को आज्ञा दी कि, इसकी पूँछ को जला दो ॥१४९॥

ततस्तस्य वचः श्रुत्वा मम पुच्छं समन्ततः ।
वेष्टितं शणवल्कैश्च पट्टैः कार्पासकैस्तथा ॥ १५०॥

रावण की याज्ञा सुनकर राक्षसों ने मेरी पूँछ में सन की रस्सियाँ, पुराने सूती कपड़े लपेट दिये ॥१५०॥

राक्षसाः सिद्धसन्नाहाः ततस्ते चण्डविक्रमाः ।
तदादीप्यन्त मे पुच्छं हनन्तः काष्ठमुष्टिभिः ॥ १५१ ॥

कवच शस्त्रादि धारण किये हुए प्रचण्ड विक्रमी राक्षसों ने मुझे लकड़ी के डंडों और मुक्कों से मारा और मेरी पूँछ में आग लगा दी। ॥१५१॥

बद्धस्य बहुभिः पाशैर्यन्त्रितस्य च राक्षसैः ।
ततस्ते राक्षसाः शूरा बद्धं मामग्निसंवृतम् ॥ १५२ ॥

राक्षसों ने मुझे खूब जकड़ कर बहुत सी रस्सियों से बाँधा और उन्होंने मुझे बहुत पीड़ा भी दी, परन्तु मैं लंकापुरी को भलीभांति देखना चाहता था इसलिए मुझे पीड़ा नहीं हुई ॥१५२॥

अघोषयन् राजमार्गे नगरद्वारमागताः ॥ १५३ ॥
ततोऽहं सुमहद्रूपं संक्षिप्य पुनरात्मनः ।

तत्पश्च्यात राक्षसों ने समस्त नगरी के राजमार्गों पर मुझे घुमा कर मेरे अपराध की घोषणा की। जब मैं नगरी के द्वार पर पहुंचा तब मैंने अपने उस विशाल शरीर को अत्यंत छोटा कर लिया ॥१५३॥

विमोचयित्वा तं बन्धं प्रकृतिस्थः स्थितः पुनः ।
आयसं परिघं गृह्य तानि रक्षांस्यसूदयम् ॥ १५४॥

इससे मेरे बन्धन अपने आप ढीले पड़ कर गिर पड़े। तब मैने अपने को पुन: विशाल रूप का बना लिया और नगर द्वार पर रखे हुए एक लोहे का एक परिघ को उठाकर, उन राक्षसों को मार डाला। ॥१५४॥

ततस्तन्नगरद्वारं वेगेन प्लुतवानहम् ।
पुच्छेन च प्रदीप्तेन तां पुरीं साट्टगोपुराम् ॥ १५५ ॥

उसके बाद नगरद्वार को वेग से लांघ कर मैंने अपनी पूँछ की आग से, भवनों, अट्टालिकाओं और फाटकों सहित उस पुरी को ॥१५५॥

दहाम्यहमसम्भ्रान्तो युगान्ताग्निरिव प्रजाः ।
ततो मे ह्यभवनासो लङ्क दग्ध्वासमीक्ष्य तु ॥ १५६॥

उसी प्रकार तरह दग्ध कर जला दिया, जिस तरह प्रलयकालीन अग्नि प्रजा को दग्ध करती है। लंका को जली हुई देखकर, मेरे मन में बड़ा भय उत्पन्न हुआ ॥१४६॥

विनष्टा जानकी व्यक्तं न ह्यदग्धः प्रदृश्यते ।
लङ्कायाः कश्चिदुद्देशः सर्वा भस्मीकृता पुरी ॥ १५७ ॥

मैंने विचारा कि, लङ्का में ऐसा कोई स्थान नहीं है जो भस्म नहीं हुआ हो, अत: अवश्य ही जानकी जी भी इस अग्नि में भस्म हो गयी होंगी। ॥१५७॥

दहता च मया लङ्कां दग्धा सीता न संशयः ।
रामस्य हि महत् कार्यं मयेदं विफलीकृतम् ॥ १५८॥

लंका को भस्म करते समय मैंने सीताजी को भी जला डाला और ऐसा करके मैंने श्रीरामचन्द्र जी के इस महान कार्य को निष्फल कर दिया ॥१५८॥

इति शोकसमाविष्टश्चिन्तामहमुपागतः ।
अथाहं वाचमश्रौषं चारणानां शुभाक्षराम् ॥ १५९ ॥

इस प्रकार मैं चिन्तित होकर शोकाकुल हो रहा था कि, इतने में मैंने चारणों के शुभ वचन सुने ॥१५९॥

जानकी न च दग्धेति विस्मयोदन्तभाषिणाम् ।
ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना श्रुत्वा तामद्भुतां गिरम् ॥ १६० ॥

अदग्धा जानकीत्येवं निमित्तैश्चोपलक्षितम् ।
दीप्यमाने तु लाङ्गूले न मां दहति पावकः ॥ १६१ ॥

वह कह रहे थे कि, देखो, इस वानर ने कैसा अदभुत कार्य किया कि, इस आग से जानको जो नहीं जली हैं। उस समय ऐसी अद्भुत बात सुनकर तथा अन्य शुभ शकुनों को देखकर, मैंने जाना कि, जानकी जी दग्ध नहीं हुई। पहले भी एक अद्भुत बात हुई थी कि, जब मेरी पूँछ जलने लगी, तब भी अग्निदेव ने मुझे जलाया नहीं ॥१६०-१६१॥

हृदयं च प्रहृष्टं मे वाताः सुरभिगन्धिनः ।
तैर्निमित्तैश्च दृष्टार्थैः कारणैश्च महागुणैः ॥ १६२ ॥

मेरा मन प्रसन्न था तथा उत्तम सुगंध से युक्त मंद वायु भी चल रहा था। इन शुभशकुनों और महाफलप्रद कारणों से ॥१६२॥

ऋषिवाक्यैश्च दृष्टार्थैरभवं हृष्टमानसः ।
पुनर्दृष्ट्वा च वैदेहीं विसृष्टश्च तया पुनः ॥ १६३॥

और सफल ऋषिवाक्यों से मेरा मन प्रसन्न हो गया। किन्तु मैंने पुनः जा कर जानकी जो की अपनी आँखों से देखा और उनसे विदा ली ॥१६३॥

ततः पर्वतमासाद्य तत्रारिष्टमहं पुनः ।
प्रतिप्लवनमारेभे युष्मद्दर्शनकाङ्क्षया ॥ १६४ ॥

तदनन्तर मैं पुनः उसी अरिष्ट नामक पर्वत पर पहुंचा और तुम सब लोगों को देखने की आकांक्षा से मैंने वहां से उड़ान भरना प्रारम्भ किया ॥१६४॥

ततः श्वसनचन्द्रार्कसिद्धगन्धर्वसेवितम् ।
पन्थानमहमाक्रम्य भवतो दृष्टवानिह ॥ १६५ ॥

तदुपरान्त मैं वायु, चन्द्रमा, सूर्य, सिद्ध और गन्धर्वों से सेवित आकाशमार्ग से चला और यहाँ आकर आप सभी का दर्शन किया ॥१६५॥

राघवस्य प्रसादेन भवतां चैव तेजसा ।
सुग्रीवस्य च कार्यार्थं मया सर्वमनुष्ठितम् ॥ १६६ ॥

श्रीरामचन्द्र जी की कृपा और आप लोगों के प्रताप से, सुग्रीव के कार्य को पूरा करने के लिये मैंने यह सब कुछ किया है ॥१६८॥

एतत् सर्वं मया तत्र यथावदुपपादितम् ।
अत्र यन्न कृतं शेषं तत् सर्वं क्रियतामिति ॥ १६७ ॥

लंका में जो कुछ कार्य मैंने किया था वह सब यथोचित रूप से संपन्न कर उसका वर्णन मैंने आप लोगों के सामने कर दिया है। अब यदि कोई कार्य शेष अथवा अन्य कमी रह गयी हो, उसे आप लोग पूर्ण करें ॥१६॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे अष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥एकोनषष्टितमः सर्गः उन्सठवाँ सर्ग॥

सीतादुरवस्थां वर्णयित्वा हनुमता लङ्कामाक्रमितुं वानराणामुत्तेजनम् –हनुमान जी द्वारा सीताजी की दुरावस्था बताकर वानरों को लंका पर आक्रमण करने के लिए उत्तेजित करना

एतदाख्याय तत्सर्वं हनुमान् मारुतात्मजः ।
भूयः समुपचक्राम वचनं वक्तुमुत्तरम् ॥ १ ॥

इस प्रकार समस्त वृत्तान्त कहकर, पवननन्दन हनुमान जी ने पुन: उत्तम वाणी से कहना प्रारम्भ किया ॥१॥

सफलो राघवोद्योगः सुग्रीवस्य च सम्भ्रमः ।
शीलमासाद्य सीताया मम च प्रीणितं मनः ॥ २ ॥

कपिवरों श्रीरामचन्द्र जी का उद्योग और सुग्रीवजी का उत्साह सफल हुआ। श्रीरामचन्द्र जी में सीताजी की निष्ठा देखकर, मेरा मन प्रसन्न हो गया ॥२॥

तपसा धारयेल्लोकान् क्रुद्धो वा निर्दहेदपि ।
सर्वथाऽतिप्रकृष्टोऽसौ रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥

सीताजी अपने तपोबल से समस्त लोकों को धारण कर सकती हैं और यदि वे क्रुद्ध हो जाएँ, तो समस्त लोकों को जला कर भस्म भी कर सकती हैं। राक्षसराज रावण भी तपोबल में सब प्रकार से चढ़ा बढ़ा है ॥३॥

यस्य तां स्पृशतो गात्रं तपसा न विनाशितम् ।
न तदग्निशिखा कुर्यात् संस्पृष्टा पाणिना सती ॥ ४ ॥

जनकस्य सुता कुर्याद् यत् क्रोधकलुषीकृता ।
जाम्बवत्प्रमुखान् सर्वान् अनुज्ञाप्य महाकपीन् ॥ ५ ॥

अपने तपोबल के प्रभाव से ही तो सीताजी के शरीर स्पर्श करते समय रावण नष्ट नहीं हुआ। पतिव्रता जानकी क्रोध में भर जो कुछ कर सकती है वह हाथ से छूने पर भी अग्नि की ज्वाला भी नहीं कर सकती। जाम्बवान इत्यादि मुख्य मुख्य कपियों की आज्ञा लेकर ॥४-५॥

अस्मिन्नेवंगते कार्ये भवतां च निवेदिते ।
न्याय्यं स्म सह वैदेह्या द्रष्टुं तौ पार्थिवात्मजौ ॥ ६ ॥

इस प्रकार के कार्य में, जो मैं अभी आप लोगों के सामने निवेदन कर चुका हूँ, उचित तो यही जान पड़ता है कि, हम लोग सीताजी को रावण से मुक्त करा कर, सीता जी के साथ ही श्री रामचन्द्रजी और लक्ष्मण जी का दर्शन करें, यही न्यायसंगत जान पड़ता है ॥६॥

अहमेकोऽपि पर्याप्तः सराक्षसगणां पुरीम् ।
तां लङ्कां तरसा हन्तुं रावणं च महाबलम् ॥ ७ ॥

मैं अकेला ही राक्षसों सहित सारी लंकापुरी तथा रावण को नष्ट कर सकता हूँ ॥७॥

किं पुनः सहितो वीरैर्बलवद्भिः कृतात्मभिः ।
कृतास्त्रैः प्लवगैः शक्तैर्भवद्भिर्विजयैषिभिः ॥ ८ ॥

फिर यदि आप जैसे अस्त्र-सञ्चालन-विद्या में कुशल और बलवान्, शुद्धात्मा, और विजय की अभिलाषा रखने वाले समर्थ वीर मेरे साथ लंका चले चलें ॥८॥

अहं तु रावणं युद्धे ससैन्यं सपुरःसरम् ।
सहपुत्रं वधिष्यामि सहोदरयुतं युधि ॥ ९ ॥

तो मैं रावण को युद्ध में सेना, पुत्र, भाईबन्धु, नौकर चाकर और प्रजा सहित मार डालूँगा ॥९॥

ब्राह्ममस्त्रं च रौद्रं च वायव्यं वारुणं तथा ।
यदि शक्रजितोऽस्त्राणि दुर्निरीक्ष्याणि संयुगे ॥ १० ॥

तान्यहं निहनिष्यामि विधमिष्यामि राक्षसान् ।
भवतामभ्यनुज्ञातो विक्रमो मे रुणाद्धि तम् ॥ ११ ॥

यद्यपि ब्रह्मास्त्र, इन्द्रास्त्र, रौद्रास्त्र, वायव्यास्त्र तथा वारुणाल एवं युद्ध में अन्य दुनिरीक्ष्य अस्त्र शस्त्र भी यदि इन्द्रजीत मेघनाद चलाएगा, तो भी मैं ब्रह्मा जी के वरदान से उन सब को नष्ट कर, समस्त राक्षसों को मार डालूंगा। यदि आप लोगों की स्वीकृति मिल जाए तो मेरा पराक्रम रावण को कुंठित कर देगा ॥१०-११॥

मयाऽतुला विसृष्टा हि शैलवृष्टिर्निरन्तरा ।
देवानपि रणे हन्यात् किं पुनस्तान् निशाचरान् ॥ १२ ॥

मेरो फैकी हुई लगातार पत्थरों की अनुपम वर्षा देवताओं का भी नाश कर सकती है, फिर उन राक्षसों की तो बात ही क्या है ॥१२॥

सागरोऽप्यतियाद् मन्दरः प्रचलेदपि ।
न जाम्बवन्तं समरे कम्पयेदरिवाहिनी ॥ १३ ॥

सागर भले ही अपनी सीमा को लांघ जाय, मन्दराचल भले ही अपने स्थान से विचलित हो जाये, किन्तु युद्ध में जाम्बवान को शत्रु की सेना विचलित कर दे, यह संभव नहीं है ॥१३॥

सर्वराक्षससङ्घानां राक्षसा ये च पूर्वजाः ।
अलमेकोऽपि नाशाय वीरो वालिसुतः कपिः ॥ १४ ॥

फिर समस्त राक्षसदलों को तथा उनके पूर्वजों को भी यमलोक पहुँचाने के लिये तो बालितनय वीर अंगद अकेले ही पर्याप्त हैं ॥१४॥

प्लवगस्योरुवेगेन नीलस्य च महात्मनः ।
मन्दरोऽप्यवशीर्येत किं पुनर्युधि राक्षसाः ॥ १५ ॥

वानरवीर और महात्मा नील की जांघों के वेग से जब मन्दराचल पर्वत भी फट सकता है। तब युद्ध में राक्षसों के विनाश की तो बात ही क्या है ॥१५॥

सदेवासुरयक्षेषु गन्धर्वोरगपक्षिषु ।
मैन्दस्य प्रतियोद्धारं शंसत द्विविदस्य वा ॥ १६ ॥

आप सभी बताएं - देव, गन्धर्व, दैत्य, यक्ष, नाग और पक्षियों में भी ऐसा कौन सा वीर है जो मैन्द और द्विविद का युद्ध में सामना करने सके? ॥१६॥

अश्विपुत्रौ महावेगावुतौ प्लवगसत्तमौ ।
एतयोः प्रतियोद्धारं न पश्यामि रणाजिरे ॥ १७ ॥

अश्विनीकुमारों के इन दो वानरश्रेष्ठ वीर पुत्रों के वेग का युद्ध में सामना करने वाला भी मुझे कोई नहीं दिखाई देता ॥१७॥

पितामहरोत्सेकात्परमं दर्पमास्थितौ ।
अमृतप्राशिनावेतौ सर्ववानरसत्तमौ ॥ १८॥

यह दोनों पितामह ब्रह्मा जी के वरदान से दर्पित, अमृत पान करने वाले, एवं समस्त वानरों में श्रेष्ठ हैं ॥१८॥

अश्विनोर्माननार्थं हि सर्वलोकपितामहः ।
सर्वावध्यत्वमतुलमनयोर्दत्तवान्पुरा ॥१९॥

अश्विनीकुमारों के सम्मानार्थ सर्वलोक पितामह ब्रह्मा जी ने, पूर्वकाल में इन दोनों को अतुल बल पराक्रमी और सब प्राणियों से अवध्य होने का वरदान दिया है ॥१९॥

वरोत्सेकेन मत्तौ च प्रमथ्य महतीं चमूम् ।
सुराणाममृतं वीरौ पीतवन्तौ प्लवङ्गमौ ॥ २० ॥

ब्रह्मा जी के वर से मतवाले होकर, इन दोनों वानरश्रेष्ठों ने देवताओं की सेना को व्याकुल कर, अमृत पिया था ॥२०॥

एतावेव हि संक्रुद्धौ सवाजिरथकुञ्जराम् ।
लां नाशयितुं शक्तो सर्वे तिष्ठन्तु वानराः ॥ २१ ॥

यदि यह क्रुद्ध हो जाएँ तो वानरों के देखते देखते यह दोनों अकेले ही घोड़ों, रथों और हाथियों सहित लंका को नष्ट कर डालने की शक्ति रखते हैं ॥२१॥

मयैव निहता लङ्का दग्धा भस्मीकृता पुरी ।
राजमार्गेषु सर्वेषु नाम विश्रावितं मया ॥ २२ ॥

मैंने अकेले ही बहुत से राक्षसों को मार डाला और लंका को जला कर भस्म कर दिया तथा लंका की सड़कों पर सर्वत्र अपना नाम समस्त लंका वासियों को इस प्रकार, सुना दिया ॥२२॥

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥ २३ ॥

अत्यंत बलशाली श्रीरामचन्द्र जी की जय हो, महाबली लक्ष्मण जी की जय हो, श्रीरामचन्द्र रक्षित वानरराज सुग्रीव की जय हो ॥२३॥

अहं कोसलराजस्य दासः पवनसम्भवः ।
हनुमानिति सर्वत्र नाम विश्रावितं मया ॥ २४ ॥

मैं कौशलाधीश श्रीरामचन्द्र जी का दास हूँ और पवनदेव का पुत्र हुँ। मेरा नाम हनुमान है। इन सभी बातों की मैंने लंका में सर्वत्र घोषणा कर दी ॥२४॥

अशोकवनिकामध्ये रावणस्य दुरात्मनः ।
अधस्ताच्छिंशपामूले साध्वी करुणमास्थिता ॥ २५ ॥

दुष्ट रावण की अशोक वाटिका में अशोक वृक्ष के नीचे पतिव्रता साध्वी सीता, अत्यन्त दयनीय अवस्था में रहती हैं ॥२५॥

राक्षसीभिः परिवृता शोकसन्तापकर्शिता ।
मेघलेखापरिवृता चन्द्रलेखेव निष्प्रभा ॥ २६ ॥

उन्हें चारों ओर से राक्षसियों घेरे हुए हैं और वह शोक एवं सन्ताप से पीड़ित है। मेघपंक्ति से घिरी हुई चन्द्ररेखा जैसी निष्प्रभ देख पड़ती है, वैसे ही उन राक्षसियों से घिरी हुई सीताजी प्रभाहीन दिखाई देती हैं ॥२६॥

अचिन्तयन्ती वैदेही रावणं बलदर्पितम् ।
पतिव्रता च सुश्रोणी अवष्टब्धा च जानकी ॥ २७ ॥

तब भी बल से दर्पित उस रावण की, सीताजी कुछ भी परवाह नहीं करती। ऐसी पतिव्रता और सुन्दरी सीता को रावण ने अपने यहां बंदी बना रखा है ॥२७॥

अनुरक्ता हि वैदेही रामे सर्वात्मना शुभा ।
अनन्यचित्ता रामेण पौलोमीव पुरन्दरे ॥ २८ ॥

वह शोभना सीता, उसी प्रकार सदा सर्वदा अनन्यचित्त से श्रीरामचन्द्र जी के ध्यान में मग्न रहती है, जिस प्रकार शची इन्द्र के ध्यान में रहती हैं ॥२८॥

तदेकवासःसंवीता रजोध्वस्ता तथैव च ।
शोकसन्तापदीनाङ्गी सीता भहिते रता ॥ २९ ॥

उनके शरीर पर केवल एक वस्त्र है और उनके शरीर पर धूल लिपटी हुई है। शोक और सन्ताप से उनके समस्त अंग दीनभाव को धारण किये हुए हैं। सीता की ऐसी दुर्दशा तो है, किन्तु इस पर भी वह अपने पति की हितकामना में सदा रत रहती है ॥२९॥

सा मया राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ।
राक्षसीभिर्विरूपाभिर्दृष्टा हि प्रमदावने ॥ ३० ॥

मैंने अपनी आँखों से देखा है कि, अशोकवन में बिचारी सीताजी, कुरूप राक्षसियों के बीच में बैठी हुई थी और वह राक्षसियां उनको बार बार डरा धमका रही थीं ॥३०॥

एकवेणीधरा दीना भर्तृचिन्तापरायणा ।

अधः शय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमोदये ॥ ३१ ॥

वह एक वेणी धारण किये हुए दीनभाव को प्राप्त होकर, पति की चिन्ता में मग्न रहती है। वह ज़मीन पर सोती है। हेमन्तऋतु में मुरझाई हुई कमलिनी की भांति उनके शरीर की कान्ति फीकी पड़ गयी है ॥३१ ॥

रावणाद् विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया ।
कथंचिन्मृगशावाक्षी विश्वासमुपपादिता ॥ ३२ ॥

रावण की ओर से वह विरक्त हैं और प्राण त्याग का निश्चय किये हुए है । मैंने तो बड़ी कठिनाई के साथ उन मृगनयनी का विश्वास प्राप्त कर पाया था ॥३२॥

ततः संभाषिता चैव सर्वमर्थं प्रकाशिता ।
रामसुग्रीवसख्यं च श्रुत्वा प्रीतिमुपागता ॥ ३३ ॥

तदनन्तर मैंने उनसे बातचीत की और समस्त बातें उनके समक्ष रख दीं। श्रीरामचन्द्र जी और सुग्रीव की मैत्री का वृत्तान्त सुनकर उनको अत्यधिक प्रसन्नता हुई ॥३३॥

नियतः समुदाचारो भक्तिर्भर्तरि चोत्तमा ।
यन्न हन्ति दशग्रीवं स महात्मा दशाननः ॥ ३४ ॥

वह बड़ी चरित्रवान है और श्रीरामचन्द्र जी में उनकी पूर्ण भक्ति है। रावण जो अभी तक नहीं मरा सो इसका मुख्य कारण ब्रह्मा जी द्वारा प्राप्त वरदान है। ॥३४॥

निमित्तमात्रं रामस्तु वधे तस्य भविष्यति ।
सा प्रकृत्यैव तन्वङ्गी तद्वियोगाच्च कर्शिता ॥ ३५ ॥

रावण के वध में श्रीरामचन्द्र जी तो केवल निमित्त मात्र होंगे क्योंकि सीता हरण के पश्च्यात तो वह वैसे ही मृतप्राय: है। सीता जी तो स्वाभाव से ही दुबली पतली थीं, अब श्रीरामचन्द्र जी के विरह से उत्पन्न शोक के कारण अत्यंत कृशकाय हो गयीं हैं ॥३५॥

प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुतां गता ॥ ३६॥

जैसो कि, प्रतिपदा के दिन स्वध्याय करने वाले विद्यार्थी की विद्या क्षीण हुआ करती है, उसी प्रकार उनका शरीर भी अत्यंत दुर्बल हो रहा है ॥३६॥

एवमास्ते महाभागा सीता शोकपरायणा ।
यदत्र प्रतिकर्तव्यं तत् सर्वमुपकल्प्यताम् ॥ ३७॥

महाभागा जनककुमारी सीता शोक में मग्न होकर इस प्रकार वहाँ रह रही है। अत: इस समय जो प्रतिकार उचित हो, उस पर आप सभी विचार करें ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ षष्टितमः सर्गः साठवाँ सर्ग॥

लङ्कां जित्वा सीताया आनयनार्थमगदस्योत्साहसमन्वितो विचारो जाम्बवता तस्य निवारणं च – अंगद द्वारा लंका को जीतकर सीताजी को लंका से ले आने का उत्साह् पूर्ण विचार ठाट जाम्बवान द्वारा उसका निवारण

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वालिसूनुरभाषत ।
अश्विपुत्रौ महावेगौ बलवन्तौ प्लवंगमौ ॥ १ ॥

समीपं गन्तुमस्माभी,राघवस्य महात्मनः ।
दृष्टा देवी न चानीता इति तत्र निवेदनम् ॥ २ ॥

हनुमान जी के ये वचन सुन बालितनय अंगद बोले: आप जैसे पुरुषार्थी वीरों के रहते हुए महात्मा श्रीरामचन्द्र जी के पास जा कर यह कहना मैं यह उचित नहीं समझता कि ' हमने जानकी जी का

दर्शन तो किया परन्तु उन्हें साथ ले कर नहीं आए। वानरशिरोमणियों ! देवताओं और दैत्यों सहित सम्पूर्ण ॥१-२॥

अयुक्तमिव पश्यामि भवद्भिः ख्यातपौरुषैः ।
न हि नः प्लवने कश्चिन्नापि कश्चित् पराक्रमे ॥ ३ ॥

मेरी समझ में तो आप जैसे प्रसिद्ध पराक्रमी वानरों के स्वरूपानुरूप यह कर्म कदापि नहीं है। दूर तक की छलांग मारने की शक्ति में और पराक्रम दिखने में ही ॥३॥

तुल्यः सामरदैत्येषु लोकेषु हरिसत्तमाः ।
तेष्वेवं हतवीरेषु राक्षसेषु हनूमता ।
किमन्यदत्र कर्तव्यं गृहीत्वा याम जानकीम् ॥ ४ ॥

इन वानरश्रेष्ठों का सामना करने वाला न तो मुझे कोई देवताओं में न दैत्यों में दिखाई देता है और न अन्य किसी लोक में ही दिखाई देता है। फिर हनुमान जी तो राक्षसों के मुख्य वीरों को मार ही चुके हैं, अत: अब बाकी बचे राक्षसों को मार कर, जानकी जी को वापस ले आने के सिवाय और अन्य कौन सा कार्य हमें करने को रह गया है ॥४॥

तमेवं कृतसङ्कल्पं जाम्बवान्हरिसत्तमः ।
उवाच परमप्रीतो वाक्यमर्थवदगदम् ॥ ५॥

अङ्गद जी को ऐसा निश्चय किये हुए जानकर, वानरश्रेष्ठ जाम्बवान परम प्रसन्न होकर उनसें अर्थ भरे वचन कहे ॥५॥

नानेतुं कपिराजेन नैव रामेण धीमता ।
कथंचिन्निर्जितां सीतामस्माभिर्नाभिरोचयेत् ॥ ६ ॥

सीता जी को साथ लेकर आने की न तो कपिराज सुग्रीव ने और न बुद्धिमान श्रीरामचन्द्र जी ने ही हमें आज्ञा दी है ॥६॥

राघवो नृपशार्दूलः कुलं व्यपदिशन् स्वकम् ।
प्रतिज्ञाय स्वयं राजा सीताविजयमग्रतः ॥ ७ ॥

क्योंकि, श्रीरामचन्द्र जी राजाओं में शार्दूल हैं और उन्हें अपने विशाल कुल का भी गर्व है। वह शत्रु को जीत कर सीता जी को स्वयं लाने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं ॥७॥

सर्वेषां कपिमुख्यानां कथं मिथ्या करिष्यति । ॥ ८ ॥

अत: प्रमुख वानरों के सामने की हुई अपनी उस प्रतिज्ञा को वह कैसे मिथ्या करेंगे ॥८॥

विफलं कर्म च कृतं भवेत् तुष्टिर्न तस्य च ।
वृथा च दर्शितं वीर्यं भवेत् वानरपुंगवाः ॥ ९॥

हे वानरशिरोमणि ! ऐसी अवस्था हमारा किया कराया सब व्यर्थ जायगा और जिनके लिये हम इतना परिश्रम करेंगे वह भी सन्तुष्ट नहीं होंगे। हे वानरश्रेष्ठों! हम लोगों का बल पराक्रम दिखलाना भी व्यर्थ ही हो जायेगा ॥६॥

तस्माद् गच्छाम वै सर्वे यत्र रामः सलक्षणः ।
सुग्रीवश्च महातेजाः कार्यस्यास्य निवेदने ॥ १०॥

इसलिए हम सभी लोग इस कार्य की सूचना देने लिए वहीं चलें, जहाँ लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी तथा महातेजस्वी सुग्रीव विद्यमान हैं और उनसे समस्त वृत्तान्त निवेदन करें॥१०॥

न तावदेषा मतिरक्षमा नो यथा भवान् पश्यति राजपुत्र ।
यथा तु रामस्य मतिर्निविष्टा तथा भवान् पश्यतु कार्यसिद्धिद्धम्
॥११॥

हे राजपुत्र ! आपके विचार प्रयुक्त नहीं प्रत्युत ठीक ही हैं, किन्तु हम लोगों को तो श्रीरामचन्द्र जी की मनोगति के अनुसार ही उनके कार्य

को पूर्ण हुआ देखना उचित है। अर्थात् वह जैसे कहें वैसे ही करना चाहिये ॥११॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का साठवां सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥एकषष्टितमः सर्गः इकसठवाँ सर्ग॥

मधुवनं गत्वा तत्रत्यानां मधूनां फलानां च वानरैर्यथेष्टमुपभोगो वनरक्षकस्य भुवि विकर्षणं च – वानरों द्वारा मधुवन में जाकर वहां के मधु और फलों का यथाइच्छा उपभोग कर वन राक्षसों को घसीटना

ततो जाम्बवतो वाक्यं अगृह्णन्त वनौकसः ।
अङ्गदप्रमुखा वीरा हनूमांश्च महाकपिः ॥ १ ॥

तदनन्तर अंगद आदि सभी वीर वानरों ने तथा महाकपि हनुमान जी ने जाम्बवान की बात मान ली ॥१॥

प्रीतिमन्तस्ततः सर्वे वायुपुत्रपुरःसराः ।
महेन्द्राग्रात् समुपत्य पुप्लुवुः प्लवगर्षभाः ॥ २ ॥

और पवननन्दन हनुमान जी को आगे कर प्रसन्न होते हुए समस्त वानर महेन्द्र पर्वत को छोड़कर, उछलते कूदते चल दिये ॥२॥

मेरुमन्दरसङ्काशा मत्ता इव महागजाः ।
छादयन्त इवाकाशं महाकाया महाबलाः ॥ ३ ॥

मेरुपर्वत की तरह महाकाय, महाबलि वानरों ने मतवाले हाथियों की तरह मानों आकाश को ढक लिया ॥३॥

सभाज्यमानं भूतैस्तमात्मवन्तं महाबलम् ।
हनूमन्तं महावेगं वहन्त इव दृष्टिभिः ॥ ४ ॥

उस समय, सिद्ध आदि भूतगण आत्मज्ञ, महावेग वान और महाबलवान पवननन्दन की भूरि भूरि प्रशंसा कर रहे थे और इस प्रकार टकटकी लगा कर उनके साथ साथ चले जाते थे मानों वह हनुमान जी को दृष्टि के बल से उड़ाये लिये जाते हों ॥४॥

राघवे चार्थनिर्वृत्तिं कर्तुं च परमं यशः ।
समाधाय समृद्धार्थाः कर्मसिद्धिभिरुन्नताः ॥ ५ ॥

श्री रघुनाथ जी के कार्य की सिद्धि करने का उत्तम युक्त पाकर उन वानरों का मनोरथ सफल हो गया था । अतः वह समस्त वानर अपना

मनोरथ सफल कार्य पूरा करने के कारण उनका उत्साह बढ़ा हुआ था ॥५॥

प्रियाख्यानोन्मुखाः सर्वे सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ।
सर्वे रामप्रतीकारे निश्चितार्था मनस्विनः ॥ ६ ॥

वह सभी वानर श्रीरामचन्द्र जी को यह प्रिय संवाद सुनाने को उत्सुक हो रहे थे, सब लोग युद्ध का अभिनन्दन करने को तत्पर थे। वह मनस्वी वानर श्रीरामचन्द्र जी के द्वारा रावण के पराभव का संकल्प किये हुए थे ॥६॥

प्लवमानाः खमाप्लुत्य ततस्ते काननौकसः ।
नन्दनोपममासेदुर्वनं द्रुमलतायुतम् ॥ ७ ॥

इस प्रकार वह मनस्वी वानरदल, आकाश में उछलता कूदता इन्द्र के नन्दनवन की तरह वृक्षों और लताओं से युक्त उपवन के समीप पहुँचा ॥७॥

यत् तत्तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्याभिरक्षितम् ।
अधृष्यं सर्वभूतानां सर्वभूतमनोहरम् ॥ ८ ॥

उस उपवन का नाम मधुवन था और वह सुग्रीव द्वारा सर्वथा सुरक्षित था। समस्त प्राणियों में से कोई भी उसको हानि नहीं पहुंचा सकता

था।किन्तु वह उपवन अपनी शोभा से सभी का मन हर लिया करता था ॥८॥

यद् रक्षति महावीरः सदा दधिमुखः कपिः ।
मातुलः कपिमुख्यस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ॥ ९ ॥

उस उपवन की रखवाली महाबली दधिमुख नामक वानर सदा किया करता था। वह दधिमुख, महात्मा वानरराज सुग्रीव का मामा था॥९॥

ते तद् वनमुपागम्य बभूवुः परमोत्कटाः ।
वानरा वानरेन्द्रस्य मनःकान्तं महावनम् ॥ १० ॥

वह वानर वानरेन्द्र सुग्रीव के अत्यन्त प्यारे उस महावन के समीप पहुँच कर, उस वन के फल खाने के लिये अत्यंत उत्कंठित हो गये ॥१०॥

ततस्ते वानरा हृष्टा दृष्ट्वा मधुवनं महत् ।
कुमारमभ्ययाचन्त मधूनि मधुपिङ्गलाः ॥ ११ ॥

उस अत्यंत विशाल मधुवन को देख कर, मधु की तरह पीले रंग वाले वह वानर प्रसन्न हो गये और उन मधुफलों का मधु पीने के लिये उन्होंने अंगद से प्रार्थना की ॥११॥

ततः कुमारस्तान् वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखान् कपीन् ।
अनुमान्य ददौ तेषां निसर्गं मधुभक्षणे ॥ १२ ॥

तब अंगद ने जाम्बवान आदि बूढ़े बड़े कपियों से सलाह करके, वानरों को मधुवन में जाने की तथा वहां मधुफल खाने की आज्ञा दे दी॥१२॥

ततश्चानुमताः सर्वे सुसंहृष्टा वनौकसः ।
मुदिताश्च ततस्ते च प्रनृत्यन्ति ततस्ततः ॥ १३ ॥

बालितनय अंगद की आज्ञा पाते ही सब वानर अत्यन्त हर्षित हो गये और मुदित होकर मधुवन में जा कर इधर उधर नाचने कूदने लगे ॥१३॥

गायन्ति केचित् प्रणमन्ति केचित्
नृत्यन्ति केचित् प्रणमन्ति केचित् ।
पतन्ति केचिद् प्रचरन्ति केचित्
प्लवन्ति केचित् प्रलपन्ति केचित् ॥ १४ ॥

उस समय उन वानरों में से अनेकों गाना गा रहे थे, अनेकों आपस में प्रणाम कर रहे थे। अनेकों नाच रहे थे, कुछ अन्य बड़ी जोर से हंस रहे थे, अनेकों बार बार गिर पड़ते थे, अनेकों मधुवन में इधर उधर घूम फिर रहे थे, अनेकों उछल कूद रहे थे और अनेकों व्यर्थ प्रलाप कर रहे थे॥ १४ ॥

परस्परं केचिदुपाश्रयन्ते परस्परं केचिदुपाक्रमन्ते ।
परस्परं केचिदुपत्रुवन्ते परस्परं केचिदुपारमन्ते ॥ १५ ॥

अनेक आपस में लिपट रहे थे, अनेक आपस में विवाद कर रहे थे, अनेकों की आपस में कहासुनी हो रही थी और अनेक आराम कर रहे थे। ॥१५॥

द्रुमाद् द्रुमं केचिदभिद्रवन्ति क्षितौ नगाग्रान्निपतन्ति केचित् ।
महीतलात् केचिदुदीर्णवेगा महाद्रुमाग्राण्यभिसम्पतन्ति ॥ १६ ॥

अनेकों वृक्षों ही वृक्षों दौड़ते फिर रहे थे, अनेकों पेड़ पर चढ़ कर ज़मीन पर कूदते थे और अनेकों पृथिवी से उछल कर, बड़ी तेजी से बड़े ऊंचे ऊँचे वृक्षों को फुनगी पर चढ़ जाते थे ॥१६॥

गायन्तमन्यः प्रहसन्नुपैति हसन्तमन्यः प्ररुदनुपैति ।
रुदन्तमन्यः प्रणदनुपैतिनदन्तमन्यः प्रणुदन्नुपैति ॥ १७ ॥

उनमें से कोई गाता था तो दूसरा हँसता हुआ उसके पास पहुँचता था। कोई हँसता था तो दूसरा रोता हुआ उसके पास जाता था। एक रोता था तो दूसरा उसके रोने की नकल करता हुआ उसके पास जाता था। जब एक चिल्लाता था, तव दूसरा उससे भी अधिक चिल्लाता हुआ उसके पास जाता था।॥१७॥

समाकुलं तत्कपिसैन्यमासीत्मधुमपानोत्कटसत्त्वचेष्टम् ।
न चात्र कश्चिन्न बभूव मत्तो न चात्र कश्चिन्न बभूव दृप्तः ॥ १८ ॥

उस कपिवाहिनी में उस समय इस प्रकार तुमुल शब्द हो रहा था। उस सेना में कोई ऐसा वानर नहीं था, जिसने पेट भर उत्सुकता पूर्वक मधु न पिया हो और जो मधुपान कर मतवाला न हो गया हो और न कोई ऐसा ही था, जो मधुपान करके तृप्त नहीं न हुआ हो ॥१८॥

ततो वनं तत्परिभक्ष्यमाणं द्रुमांश्च विध्वंसितपत्रपुष्पान्
समीक्ष्य कोपद् दधिवक्त्रनामा निवारयामास कपिः कपींस्तान्
॥१९॥

मधुवन के समस्त फलों को वानरों ने खा डाला था और पेड़ों के पत्तों और फूलों को नष्ट कर डाला था। यह देखकर दधिमुख नामक वानर कुपित हुआ और उसने उन वानरों को ऐसा करने से रोका ॥१९॥

स तैः प्रवृद्धैः परिभर्त्स्यमानो वनस्य गोप्ता हरिवृद्धवीरः ।
चकार भूयो मतिमुग्रतेजा वनस्य रक्षां प्रति वानरेभ्यः ॥ २० ॥

किन्तु वह वानर भला कब मानने वाले थे लगे। उन्होंने उस बूढ़े दधिमुख ही को ही डांट दिया। तब तो वह तेजस्वी वानर भी उन वानरों से, वन को बचाने के लिये उपाय करने लगा ॥२०॥

उवाच कांश्चित् परुषाण्यभीतमसक्तमन्यांश्च तलैर्जवान ।
समेत्य कैश्चित् कलहं चकार तथैव साम्नोपजगाम कांश्चित् ॥ २१॥

उन्होंने निर्भय होकर किसी को कड़ी बातें कहीं, कितनो को थप्पड़ जमा दिये, बहुतों के साथ भिडकर झगडा किया और किसी को शांतिपूर्वक समझाने लगे॥२१॥

स तैर्मदादप्रतिवार्यवेगैर्बलाच्च तेन प्रतिवार्यमाणैः ।
प्रधर्षणे त्यक्तभयैः समेत्य प्रकृष्यते चाप्यनवेक्ष्य दोषम् ॥ २२ ॥

किन्तु सफल मनोरथ के कारण मद में चूर होने के कारण भला वह किसी के रोके कहाँ रुकने वाले थे । इन वानरों को सीताजी का संवाद जान लेने के कारण किसी प्रकार का भय तो का था ही नहीं, इस कारण वह अपने अपराध के दण्ड पर ध्यान न देकर, मिलकर दधिमुख को निर्भय होकर इधर उधर घसीटने लगे ॥२२॥

नखैस्तुदन्तो दशनैर्दशन्तस्तलैश्च पादैश्च समापयन्तः ।
मदात् कपिं तं कपयः समन्तान्महावनं निर्विषयं च चक्रुः ॥ २३ ॥

साथ ही मतवालेपन से वह कपिवर दधिमुख को नखों से खसोटते, दांतों से काटते, थप्पड़ जमाते और लातें मारते थे। अन्त में मारते मारते दधिमुख को उन लोगों ने मृतप्राय कर मूर्छित कर दिया और उस विशाल मधुवन को तो बिलकुल नष्ट ही कर डाला ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का इकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ द्विषष्टितमः सर्गः बासठवाँ सर्ग॥

वानरैर्मधुवनरक्षकाणां दधिमुखस्य च पराभवः सभृत्यस्य दधिमुखस्य सुग्रीवपार्श्वे गमनं च – वानरों द्वारा मधुवन के रक्षसो और दधिमुख की पराजय तथा दधिमुख का सेवकों सहित सुग्रीव के पास जाना

तानुवाच हरिश्रेष्ठो हनुमान् वानरर्षभः ।
अव्यग्रमनसो यूयं मधु सेवत वानराः ॥ १ ॥

अहमावर्जयिष्यामि युष्माकं परिपन्थिनः ।
श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं हरीणां प्रवरोऽङ्गदः ॥ २ ॥

इस पर वानरोत्तम हनुमान जी ने उनकी पीठ ठोंक दी और कहा तुम खूब मन भर कर मधुफल खाओ । जरा भी मत घबराओ ! तुम्हारे मधुफलभक्षण में जो बाधा डालेगा, उसे मैं स्वयं रोकूँगा। हनुमान जी के यह वचन सुन वानरों में श्रेष्ठ अंगद जी ने ॥१-२॥

प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पिबन्तु हरयो मधु ।
अवश्यं कृतकार्यस्य वाक्यं हनुमतो मया ॥ ३ ॥

प्रसन्न होकर हनुमान जी की बात का समर्थन करते हुए कहा- वानरगण अपनी इच्छा अनुसार अवश्य मधुपान करें। क्योंकि हनुमान जी कार्य पूरा करके आये हैं ॥३॥

अकार्यमपि कर्तव्यं किमङ्गं पुनरीदृशम् ।
अङ्गदस्य मुखाच्छ्रुत्वा वचनं वानरर्षभाः ॥ ४ ॥

अत: यदि यह कोई अनुचित वचन भी कहें तो भी हम लोगों को उसको स्वीकार करना चाहिये और उनके कहे हुए वचन तो सर्वथा उचित ही हैं। श्रेष्ठ वानरों ने अंगद के मुख से यह वचन सुनकर ॥४॥

साधु साध्विति संहृष्टा वानराः प्रत्यपूजयन् ।
पूजयित्वाऽङ्गदं सर्वे वानरा वानरर्षभम् ॥ ५ ॥

अत्यन्त प्रसन्न होकर और " साधू-साधू " कह कर, अंगद के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। तदनन्तर वानरश्रेष्ठ अंगद के प्रति सम्मान प्रदर्शित करके वह सभी श्रेष्ठ वानर ॥५॥

जग्मुर्मधुवनं यत्र नदीवेग इव द्रुतम् ।
ते प्रविष्टा मधुवनं पालानाक्रम्य शक्तितः ॥ ६ ॥

नदी की वेगवान जलधारा के समान, उस मधुवन में बड़े वेग से घुस गये और बलपूर्वक वहां के रक्षकों पर आक्रमण किया अथवा वनरक्षक वानरों को पकड़ा लिया ॥६॥

अतिसर्गाच्च पटवो दृष्ट्वा श्रुत्वा च मैथिलीम् ।
पपुः सर्वे मधु तदा रसवत् फलमाददुः ॥ ७ ॥

अंगद जी की आज्ञा प्राप्त करने, हनुमान जी द्वारा जानकी जी को देखे जाने और श्रीरामचन्द्र जी के लिए उनका संदेसा प्राप्त करने से, वह वानर अत्यन्त उदण्ड होकर मधु पीने लगे और रसीले फल खाने लगे ॥७॥

उत्पत्य च ततः सर्वे वनपालान् समागतान् ।
ताडयन्ति स्म शतशः सक्तान् मधुवने तदा ॥ ८ ॥

जो सैकड़ों वनरक्षक उन्हें इस प्रकार करने से रोकते थे, उन्हें वह सभी उछल उछल कर मारते थे ॥८॥

मधूनि द्रोणमात्राणि बाहुभिः परिगृह्य ते ।
पिबन्ति सहिता: सर्वे निघ्नन्ति स्म तथापरे ॥ ९ ॥

कितने ही वानर एक एक द्रोण मधु हाथों की अंजुलि बना कर पी जाते थे और सब इकट्ठे हो कर वनरक्षकों को मारते भी थे।

केचित् पीत्वापविध्यन्ति मधूनि मधुपिङ्गलाः ।
मधूच्छिष्टेन केचिच्च जघ्नुरन्योन्यमुत्कटाः ॥ १० ॥

मधु के समान पीले रङ्ग के वे वानर मधु पीते भी थे और फेंकते भी थे। और कितने ही वानर मदमस्त होकर छत्ते का मोम उठा कर दूसरे वानरों पर मारते थे ॥१०॥

अपरे वृक्षमूलेषु शाखा गृह्य व्यवस्थिताः ।
अत्यर्थं च मदग्लानाः पर्णान्यास्तीर्य शेरते ॥ ११ ॥

उनमें से कितने ही की जड़ों में वृक्षों की शाखाएँ पकड़ कर खड़े हुए थे और कितने ही नशे से बेहोश होकर पत्तों को बिछा कर सो रहे थे ॥११॥

उन्मत्तभूताः प्लवगा मधुमत्ताश्च हृष्टवत् ।
क्षिपत्यपि तथान्योन्यं स्खलन्ति च तथापरे ॥ १२ ॥

मधुपान करने से, यह वानर उन्मत्त हो रहे थे और प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। उनमें से कोई तो दूसरे वानरों को उठा उठा कर पटक रहे था, और कोई अन्य लड़खड़ा कर स्वयं ही गिर पड़ते थे ॥१२॥

केचित् क्ष्वेडान् प्रकुर्वन्ति केचित् कूजन्ति हृष्टवत् ।
हरयो मधुना मत्ताः केचित् सुप्ता महीतले ॥ १३ ॥

कुछ प्रसन्न होकर सिंहनाद कर रहे थे, कुछ पक्षियों की तरह कलरव कर रहे थे। अनेकों वानर मतवाले होकर पृथिवी पर ही सो रहे थे॥१३॥

कृत्वा केचिद्धसन्त्यन्ये केचित् कुर्वन्ति चेतरत् ।
कृत्वा केचिद् वदन्त्यन्ये केचिद् बुध्यन्ति चेतरत् ॥ १४ ॥

कुछ धृष्ट होकर हँस रहे थे, कुछ तरह तरह की चेष्टाएँ कर रहे थे, कुछ अनर्गल प्रलाप कर रहे थे और कुछ उसका कुछ और ही अर्थ निकालते थे॥१४॥

येऽप्यत्र मधुपालाः स्युः प्रेष्या दधिमुखस्य तु ।
तेऽपि तैर्वानरैर्भीमैः प्रतिषिद्धा दिशो गताः ॥ १५ ॥

वहां पर दधिमुख के सेवक जो मधुवनरक्षक थे, वह भी इन भयंकर वानरों द्वारा पीटे जाने से भाग गये थे ॥१५॥

जानुभिस्तु प्रघृष्टाश्च देवमार्गं च दर्शिताः ।
अब्रुवन् परमोद्विग्ना गत्वा दधिमुखं वचः ॥ १६ ॥

अनेक रक्षकों को तो घुटनों से रगड़ रगड़ और कितनो को ही पैर पकड़ कर देवमार्ग दिखला दिया अर्थात आकाश में उछाल दिया था। जो भाग कर बच गये थे। उन्होंने जाकर दधिमुख से कहा ॥१६॥

हनूमता दत्तवरैर्हतं मधुवनं बलात् ।
वयं च जानुभिर्घृष्टा देवमार्गं च दर्शिताः ॥ १७ ॥

हनुमान जी द्वारा अभयदान पाकर वानरों ने मधुवन को उजाड़ डाला है। हम लोगों ने जब उनको रोका तब हममें से बहुतों को घुटनों से रगड़ रगड़ कर और पीठ के बल पटक कर देवमार्ग अर्थात आकाश का दर्शन करा दिया ॥१७॥

ततो दधिमुखः क्रुद्धो वनपस्तत्र वानरः ।
हतं मधुवनं श्रुत्वा सान्त्वयामास तान् हरीन् ॥ १८ ॥

दधिमुख ने उन वनरक्षक वानरों के वचन सुनकर और मधुवन को नष्ट हुआ देखकर, क्रुद्ध होकर उन रखवालों को धीरज बंधाया ॥१८॥

इतागच्छत गच्छामो वानरानतिदर्पितान् ।
बलेनावारयिष्यामि प्रभुञ्जानान् मधूत्तमम् ॥ १९ ॥

यहां आओ, चलो उन बलदर्पित वानरों को हम बलपूर्वक रोकेंगे और देखेंगे कि वह कैसे मधुपान करते हैं ॥१९॥

श्रुत्वा दधिमुखस्येदं वचनं वानरर्षभाः ।
पुनर्वीरा मधुवनं तेनैव सहसा ययुः ॥ २० ॥

दधिमुख के यह वचन सुन, वह वानरश्रेष्ठ उस वीर के साथ पुनः मधुवन में गये ॥२०॥

मध्ये चैषां दधिमुखः सुप्रगृह्य महातरुम् ।
समभ्यधावन् वेगेन ते च सर्वे प्लवङ्गमाः ॥ २१ ॥

उनके बीच में खड़े हुए दधिमुख ने एक बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया और उसे हाथों में लेकर उन वानरों पर आक्रमण कर किया। दधिमुख के साथ उसके साथी वानर भी दौड़े पड़े ॥२१ ॥

ते शिलाः पादपांश्चापि पाषाणानपि वानराः ।
गृहीत्वाऽभ्यगमन् क्रुद्धा यत्र ते कपिकुञ्जराः ॥ २२ ॥

उनमें से बहुतों ने शिलाओं, बहुतों ने वृक्षों और बहुतों ने बड़े बड़े पत्थरों को हाथ में ले लिया और क्रोध में भरे हुए वह उस स्थान पर पहुंचे जहाँ हनुमानादि अन्य श्रेष्ठ वानर मधु का सेवन कर रहे थे ॥२२॥

ते स्वामिवचनं वीरा हृदयेष्ववसज्य तत् ।
त्वरया ह्यभ्यधावन्त सालतालशिलायुधाः ॥ २३ ॥

वह अपने स्वामी दधिमुख की आज्ञा से उत्साहित होकर, बड़ी शीघ्रता से सालवृक्षों, तालवृक्षों तथा शिलारूपी आयुधों को लेकर बड़े वेग से हनुमान आदि अन्य वानरों की ओर दौड़े ॥२३॥

वृक्षस्थांश्च तलस्थांश्च वानरान्बलदर्पितान् ।
अभ्यक्रामस्ततो वीराः पालास्तत्र सहस्रशः ॥ २४ ॥

हजारों वनरक्षक वीर वानरों ने उन वृक्षों पर चढ़े हुए तथा वृक्षों के नीचे बैठे हुए वानरों पर आक्रमण किया ॥२४॥

अथ दृष्ट्वा दधिमुखं क्रुद्धं वानरपुङ्गवाः ।
अभ्यधावन्त वेगेन हनुमत्प्रमुखास्तदा ॥ २५ ॥

वानरश्रेष्ठ दधिमुख को क्रुद्ध देखकर, हनुमानादि श्रेष्ठ विशाल वानर उस पर दौड़ पड़े ॥२५॥

सवृक्षं तं महाबाहुमापतन्तं महाबलम् ।
आर्यकं प्राहरत्तन बाहुभ्यां कुपितोऽङ्गदः ॥ २६॥

इतने में दधिमुख ने बड़े जोर से वह वृक्ष फेंका। अपने बचाव के लिए नाना के चलाये हुए उस वृक्ष को क्रुद्ध अंगद ने बीच ही में अपने दोनों हाथों से पकड़ लिया ॥२६॥

मदान्धश्च न वेदैनमार्यकोऽयं ममेति सः।
अथैनं निष्पिपेषाशु वेगेन वसुधातले ॥ २७ ॥

उस समय अंगद मधु पीने के कारण ऐसे मदान्ध हो रहे थे कि, उन्होंने अपने नाना दधिमुख का भी कुछ विचार न किया। उन्होंने बड़े वेग से दधिमुख को पकड़ कर, जमीन पर पटक दिया ॥२७॥

स भग्नबाहूरुमुखो विह्वलः शोणितोक्षितः ।
प्रमुमोह महावीरो मुहूर्तं कपिकुञ्जरः ॥ २८ ॥

उस पटकनी के कारण दधिमुख की वाहें, जांघे तथा मुख टूट फूट गए। वह लहूलुहान तथा विकल हो कर मुहर्त भर मूर्छित पड़े रहे ॥२८॥

स कथंचिद् विमुक्तस्तैर्वानरैर्वानरर्षभः ।
उवाचैकान्तमागत्य स्वान् भृत्यान् समुपागतान् ॥ २९ ॥

किसी प्रकार उन वानरों से छूटकर और एकान्त में जाकर, वह अपने साथ आये हुए अनुचरों से कहने लगे कि, ॥२९॥

एतागच्छत गच्छामो भर्ता नो यत्र वानरः ।
सुग्रीवो विपुलग्रीवः सह रामेण तिष्ठति ॥ ३० ॥

इनको यहीं छोड़ दो और आओ हम लोग वहाँ चलें जहाँ हमारे राजा विपुलग्रीव सुग्रीव श्रीरामचन्द्र जी सहित विराजमान हैं ॥३०॥

सर्वं चैवाङ्गदे दोषं श्रावयिष्यामि पार्थिवे ।

अमर्षी वचनं श्रुत्वा घातयिष्यति वानरान् ॥ ३१॥

हम लोग चल कर अपने राजा से अंगद की शिकायत करेंगे। राजा क्रोधी स्वभाव के हैं ही। अत: शिकायत सुन अवश्य ही इन वानरों को मार डालेंगे ॥३१॥

इष्टं मधुवनं ह्येतत् सुग्रीवस्य महात्मनः ।
पितृपैतामहं दिव्यं देवैरपि दुरासदम् ॥ ३२ ॥

क्योंकि यह मधुवन सुग्रीव को अत्यन्त प्यारा है। यह उनके बाप-दादाओं का दिव्य वन है और बड़ा सुन्दर है। इसमें प्रवेश करना देवताओं के लिए भी दुर्गम है ॥३२॥

स वानरानिमान् सर्वान् मधुलुब्धान् गतायुषः ।
घातयिष्यति दण्डेन सुग्रीवः ससुहृज्जनान् ॥ ३३ ॥

अत: कपिराज इन मधु के लोभी और मृत्यु को प्राप्त मरणासन्न वानरों को दण्ड देकर बन्धुबान्धों सहित अवश्य मार डालेंगे ॥३३॥

वध्या ह्येते दुरात्मानो नृपाज्ञापरिपन्थिनः ।
अमर्षप्रभवो रोषः सफलो मे भविष्यति ॥ ३४ ॥

यह सभी दुष्ट, जो राजा की अवज्ञा करने वाले हैं, मार डालने ही योग्य हैं। जब ये मार डाले जायगे , तभी हम लोगों का यह श्रमजनित क्रोध सार्थक होगा ॥३४॥

एवमुक्त्वा दधिमुखो वनपालान् महाबलः ।
जगाम सहसोत्पत्य वनपालैः समन्वितः ॥ ३५ ॥

मधुवन के रक्षसों से इस प्रकार कह महावली दधिमुख अपने अनुचरों को लिये हुए सहसा उछल कर आकाश मार्ग से जाने लगा ॥३५॥

निमेषान्तरमात्रेण स हि प्राप्तो वनालयः ।
सहस्रांशुसुतो धीमान् सुग्रीवो यत्र वानरः ॥ ३६ ॥

और एक निमेष में, वहां जा पहुँचा जहां पर सूर्य के पुत्र बुद्धिमान वानर सुग्रीव विराजमान थे ॥३६॥

रामं च लक्ष्मणं चैव दृष्ट्वा सुग्रीवमेव च ।
समप्रतिष्ठां जगतीमाकाशान्निपपात ह ॥ ३७ ॥

वहाँ उसने श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण और सुग्रीव को बैठा देखकर। वह आकाश से उस समतल भूमि पर उतरा ॥३७॥

सन्निपत्य महावीर्यः सर्वैस्तैः परिवारितः।
हरिर्दधिमुखः पालैः पालानां परमेश्वरः ॥ ३८ ॥

उन वानरों के साथ भूमि पर उतरकर, वनरक्षसों का स्वामी महाबली दधिमुख वानर ॥३८॥

स दीनवदनो भूत्वा कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम् ।
सुग्रीवस्याशु तौ मूर्ध्ना चरणौ प्रत्यपीडयत् ॥ ३९ ॥

दींन मुख होकर और तथा हाथों को सिर पर जोड़ कर, वह सुग्रीव के चरणों में गिर पड़ा ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥त्रिषष्टितमः सर्गः तिरेसठवाँ सर्ग ॥

दधिमुखान् मधुवनविध्वंस वार्तां आकर्ण्य सुग्रीवस्य हनुमदादीनां साफल्यविषयेऽनुमानम् – दधिमुख से मधुवन के विध्वंस का समाचार सुनकर सुग्रीव का हनुमान आदि वानरों की सफलता के विषय में अनुमान

ततो मूर्ध्ना निपतितं वानरं वानरर्षभः ।
दृष्ट्वैवोद्विग्नहृदयो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥

वानर दधिमुख को सिर के बल चरणों पर पड़ा देखकर सुग्रीव उद्विग्न होकर बोले ॥१॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ कस्मात् त्वं पादयोः पतितो मम ।
अभयं ते प्रदास्यामि सत्यमेवाभिधीयताम् ॥ २ ॥

उठो उठो, तुम मेरे पैरों पर क्यों पड़े हुए हो । मैं तुम्हें अभयदान देता हूँ, अब सब कुछ सत्य रूप में मुझसे कह दो ॥२॥

स समाश्वासितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना ।
उत्थाय सुमहाप्राज्ञो वाक्यं दधिमुखोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥

जब महात्मा सुग्रीव ने इस प्रकार आश्वासन दिया, तब वह बुद्धिमान वानर दधिमुख पैरों से सिर उठाकर, कहने लगा ॥३॥

नैवर्क्षरजसा राजन् न त्वया न च वालिना ।
वनं निसृष्टपूर्वं ते नाशितं तत्तु वानरैः ॥ ४ ॥

हे राजन् ! आपके पिता ऋक्षराज ने, अथवा बालि ने अथवा स्वयं आपने, पहले जिस मधुवन को कभी किसी को भी इच्छानुसार उपभोग करने नहीं दिया था, उस वन के फलों को हनुमान आदि वानरों ने खा डाला है ॥४॥

एभिः प्रधर्षणायां च वारितं वनपालकैः ।
मामप्यचिन्तयन् देव भक्षयन्ति वनौकसः ॥ ५ ॥

जब मैंने अपने अनुचरों के साथ उनको रोकने की कोशिश की, तब उन लोगों ने मेरा तिरस्कार कर इच्छानुसार मधुफल खाये और मधुपान किया ॥५॥

शिष्टमत्रापविध्यन्ति भक्षयन्ति तथापरे ।
निवार्यमाणास्ते सर्वे भ्रूवौ वै दर्शयन्ति हि ॥ ६ ॥

यही नहीं, प्रत्युत जो फल खाने से बच रहे हैं, उन्हें वह नष्ट कर रहे हैं और जब मेरे अनुचर उन्हें मना करते हैं। तब हमें टेढ़ी भौहें करके हमें दिखाते हैं ॥६॥

इमे हि संरब्धतरास्तदा तैः सम्प्रधर्षिताः ।
निवार्यन्ते वनात् तस्मात् क्रुद्धैर्वानरपुङ्गवैः ॥ ७ ॥

जब मेरे अनुचर उन पर अधिक कुपित हुए, तब उन वानरपुंगवों ने इनको डराया धमकाया और उस वन से बाहर निकाल दिया ॥७॥

ततस्तैर्बहुभिर्वीरैर्वानरैर्वानरर्षभाः ।
संरक्तनयनैः क्रोधाद्धरयः सम्प्रधर्षिताः ॥ ८ ॥

तदनन्तर बहुत से बड़े बड़े वानरों ने क्रोध में भर और लाल लाल नेत्र करके, हमारे अनुचरों को मार कर भगा दिया ॥८॥

पाणिभिर्निहताः केचित् केचिज्जानुभिराहताः ।
प्रकृष्टाश्च तदा कामं देवमार्गं च दर्शिताः ॥ ९ ॥

किसी को थप्पड़ों से और किसी को लातों से मारा तथा किसी को खींच कर पटक दिया और आकाश का दर्शन करवा दिया ॥९॥

एवमेते हताः शूरास्त्वयि तिष्ठति भर्तरि ।
कृत्स्नं मधुवनं चैव प्रकामं तैश्च भक्ष्यते ॥ १० ॥

हे राजन् । आप जैसे स्वामी के रहते, यह सब मेरे वीर अनुचर इस प्रकार मारे पीटे गये है और अभी भी वह सब वानर मधुवन क इच्छानुसार उपभोग कर रहे हैं ॥१०॥

एवं विज्ञाप्यमानं तं सुग्रीवं वानरर्षभम् ।
अपृच्छत् तं महाप्राज्ञो लक्ष्मणः परवीरहा ॥ ११ ॥

जिस समय दधिमुख वानर कपिश्रेष्ठ सुग्रीव जी से निवेदन कर रहा था, उस समय शत्रुहन्ता एवं महाप्राज्ञ लक्ष्मण ने पूछा ॥११॥

किमयं वानरो राजन् वनपः प्रत्युपस्थितः ।
कं चार्थमभिनिर्दिश्य दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥

हे राजन् ! यह वनपाल वानर किस प्रयोजन से आपके पास पाया है और किस विषय की ओर संकेत करके इतना दुखी हो रहा है ? ॥१२॥

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना ।
लक्ष्मणं प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ १३॥

जब महात्मा लक्ष्मण ने इस प्रकार पूछा, तव वाक्यविशारद सुग्रीव जी लक्ष्मण के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा ॥१३॥

आर्य लक्ष्मण सम्प्राह वीरो दधिमुखः कपिः ।
अङ्गदप्रमुखैर्वीरैर्भक्षितं मधु वानरैः ॥ १४ ॥

हे आर्य ! यह वीर दधिमुख वानर कह रहा है कि, अंगद आदि वीर वानरों ने मधुवन के मधुफलों को खा डाला है ॥ १४ ॥

विचित्य दक्षिणामाशामागतैहरिपुङ्गवैः।
नैषामकृतकार्याणामीदृशः स्याद् व्यतिक्रमः ॥ १५ ॥

इसकी बात सुनकर मुझे यह अनुमान होता है कि, दक्षिण दिशा में सीता जी का पता लगाकर और अपने दिए गए कार्य को पूरा करके यह वानरश्रेष्ठ वापस आ गये हैं। क्योंकि बिना कार्य पूरा किये, वह ऐसा अपराध नहीं कर सकते थे॥१५॥

वारयन्तो भृशं प्राप्ताः पाला जानुभिराहताः ।
तथा न गणितश्चायं कपिर्दधिमुखो बली ॥ १६ ॥

मधुवन पर आक्रमण कर समस्त वन को नष्ट करना और रक्षसों द्वारा मना करने पर उन्हें मारना पीटना तथा मधुफलों को खाना-यह सब वह तभी कर सकते हैं, जब वह अपने कार्य को पूरा कर चुके हों॥१६॥

पतिर्मम वनस्यायमस्माभिः स्थापितः स्वयम् ।
दृष्टा देवी न सन्देहो न चान्येन हनूमता ॥ १७ ॥

यदि उन वानरों ने वन में आकर उपद्रव किया है, तो निश्चय ही इन वानरगणों ने और विशेष कर हनुमान जी ने सीताजी का दर्शन कर लिया हैं ॥१७॥

न ह्यन्यः साधने हेतुः कर्मणोऽस्य हनूमतः ।
कार्यसिद्धिर्हनुमति मतिश्च हरिपुंगवैः ॥ १८ ॥

क्योंकि हनुमान को छोड़, यह अन्य इस कार्य को पूर्ण कर सके ऐसा संभव नहीं है। वानर शिरोमणि हनुमान जी में कार्य सिद्धि की बुद्धि और शक्ति है ॥१८॥

व्यवसायश्च वीर्यं च श्रुतं चापि प्रतिष्ठितम् ।
जाम्बवान् यत्र नेता स्याद् अङ्गदश्च महाबलः ॥ १९ ॥

वह उद्योगी हैं, बलवान हैं और पण्डित हैं। फिर जिस दल के नेता जाम्बवान और महाबली अंगद हों ॥१९॥

हनूमांश्चाप्यधिष्ठाता न तस्य गतिरन्यथा ।
अङ्गदप्रमुखैर्वीरैर्हतं मधुवनं किल ॥ २० ॥

और अधिष्ठाता हनुमान हों , उस दल को विपरीत परिणाम मिले अर्थात असफलता प्राप्त हो, ऐसा संभव ही नहीं है। इसी कारण दक्षिण दिशा से सीता जी का पता लगा कर लौटे अंगद आदि प्रमुख वीर वानरों ने मधुवन को नष्ट कर डाला है ॥ २० ॥

वारयान्तशय तदा जानुभिराहताः ।
एतदर्थमयं प्राप्तो वक्तुं मधुरवागिह ॥ २१ ॥

और मना करने पर वन रक्षसों को घुटनों से मार मार कर घायल कर दिया है। यही सारा वृतांत सुनाने के लिये यह मधुरभाषी वानर मेरे पास आया है।॥२१॥

नाम्ना दधिमुखो नाम हरिः प्रख्यातविक्रमः ।
दृष्टा सीता महाबाहो सौमित्रे पश्य तत्त्वतः ॥ २२ ॥

इसका नाम दधिमुख वानर है और यह एक और विख्यात पराक्रमी वानर है। हे महाबाहु सुमित्रानंदन! आप समझिये की वास्तव में इन वानरगणों ने सीताजी का पता लगा लिया है ॥२२॥

अभिगम्य तथा सर्वे पिबन्ति मधु वानराः ।
न चाप्यदृष्ट्वा वैदेहीं विश्रुताः पुरुषर्षभ ॥ २३ ॥

तभी तो यह सभी वानर मधुपान कर रहे हैं। हे पुरुष श्रेष्ठ ! बिना सीताजी को देखे वे विख्यात वानर लोग ॥२३॥

वनं दत्तवरं दिव्यं धर्षयेयुर्वनौकसः ।
ततः प्रहृष्टो धर्मात्मा लक्ष्मणः सहराघवः ॥ २४ ॥

देवताओं के द्वारा मेरे पूर्वजों को प्राप्त दिव्य मधुवन को कभी नष्ट नहीं सकते थे। तव तो धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी, बहुत प्रसन्न हुए ॥२४॥

श्रुत्वा कर्णसुखां वाणीं सुग्रीववदनाच्च्युताम् ।
प्राहृष्यत भृशं रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ॥ २५ ॥

सुग्रीव के मुख से इस कर्णप्रिय सुखसंवाद को सुन महाबलवान श्री रामचन्द्र जी के अत्यंत हर्षित हुए और लक्ष्मण जी भी हर्ष से खिल उठे ॥२५॥

श्रुत्वा दधिमुखस्यैवं सुग्रीवस्तु प्रहृष्य च ।
वनपालं पुनर्वाक्यं सुग्रीवः प्रत्यभाषत ॥ २६ ॥

दधिमुख के मुख से इस संवाद को सुन सुग्रीव प्रसन्न होकर उस वनरक्षक से बोले ॥२६॥

प्रीतोऽस्मि सोऽहं यद्भुक्तं वनं तैः कृतकर्मभिः ।
धर्षितं मर्षणीयं च चेष्टितं कृतकर्मणाम् ॥ २७ ॥

मामा ! मैं अपना प्रयोजन सिद्ध करके लौटे उन कृतकर्मा वानरों द्वारा मधुफलों के खाये जाने से प्रसन्न हूँ। क्योंकि उन्होंने बड़ा भारी काम किया है। अतः उन्होंने जो धृष्टता अथवा उत्पात किये हैं उन्हें क्षमा कर देना चाहिए ॥२७॥

इच्छामि शीघ्रं हनुमत्प्रधाना-
ञ्शाखामृगांस्तान् मृगराजदर्पान् ।
द्रष्टुं कृतार्थान् सह राघवाभ्यां
श्रोतुं च सीताधिगमे प्रयत्नम् ॥ २८ ॥

उन सिंह समान पराक्रमी तथा कृतकर्मा हनुमानादि वानरों को मैं शीघ्र देखना चाहता हूँ और इन दोनों रघुवंशियों श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मण जी के साथ मैं कृतार्थ होकर लौटे हुए उन वीरों से यह सुनना और पूछना चाहता हूँ की सीताजी की प्राप्ति के लिए उन्होंने क्या प्रयत्न किए ॥२८॥

प्रीतिस्फीताक्षौ सम्प्रहृष्टौ कुमारौ
दृष्ट्वा सिद्धार्थौ वानराणां च राजा ।
अङ्गैः प्रहृष्टैः कार्यसिद्धिं विदित्वा
बाह्वोरासन्नामतिमात्रं ननन्द ॥ २९॥

यह संवाद सुनने से श्रीरामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी हर्ष से पुलकित हो गये और प्रसन्नता के कारण उनके दोनों नेत्र विकसित हो गये। इन शुभ लक्षणों को देखकर सुग्रीव को ऐसा जान पड़ा, मानों कार्य की सफलता हाथ में आ गयी हो और यह जान, वह अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥चतुःषष्टितमः सर्गः चौंसठवाँ सर्ग ॥

दधिमुखतः सुग्रीवसन्देशमाकर्ण्य अंगदहमदादीनां वानराणां किष्किन्धायां गमनं; हनुमता श्रीरामं प्रणम्य सीतादर्शन समाचारस्य निवेदनं च – दधिमुख से सुग्रीव का सन्देश सुनकर अंगद हनुमान आदि वानरों का किष्किन्धा में पहुंचना और हनुमान जी का श्रीराम को प्रणाम करके सीताजी के दर्शन का समाचार बताना

सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु हृष्टो दधिमुखः कपिः ।
राघवं लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं चाभ्यवादयत् ॥ १ ॥

जब सुग्रीव ने इस प्रकार कहा : तव दधिमुख प्रसन्न हुया और श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण तथा सुग्रीव जी को प्रणाम किया ॥१॥

स प्रणम्य च सुग्रीवं राघवौ च महाबलौ ।
वानरैः सहितैः शूरैर्दिवमेवोत्पपात ह ॥ २ ॥

वह सुग्रीव तथा महाबली श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को प्रणाम कर और अपने अनुचरों को साथ लेकर आकाशमार्ग से चला गया ॥२॥

स यथैवागतः पूर्वं तथैव त्वरितं गतः ।
निपत्य गगनाद् भूमौ तद्वनं प्रविवेश ह ॥ ३ ॥

पूर्व में जैसी शीघ्रता से वह आया था वैसी ही शीघ्रता से वह लौट गया और आकाश से भूमि पर उतर कर मधुवन में प्रवेश किया ॥३॥

स प्रविष्टो मधुवनं ददर्श हरियूथपान् ।
विमदानुत्थितान् सर्वान् मेहमानान् मधूदकम् ॥ ४ ॥

उसने वन में जाकर उन वानरयूथपतियों को देखा कि, जो पहले मतवाले और उद्धत हो रहे थे, वह अब मदरहित होकर मधुमिश्रित जल का त्याग कर रहे थे ॥४॥

स तानुपागमद् वीरो बद्ध्वा करपुटाञ्जलिम् ।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमिदं हृष्टवदङ्गदम् ॥ ५ ॥

वीर दधिमुख हाथ जोड़े हुए उन वानरों के पास गया तथा हर्षयुक्त और प्रसन्न वाणी से दोनों हाथ जोडकर अंगद से यह मधुर वचन बोला ॥५॥

सौम्य रोषो न कर्तव्यो यदेभिः परिवारणम् ।

अज्ञानाद् रक्षिभिः क्रोधाद् भवन्तः प्रतिषेधिताः ॥ ६ ॥

हे सौम्य ! जो इन रक्षसों ने अज्ञानवश जो आपको क्रोधपूर्वक मधुपान से रोका था, इसके लिये आप क्रुद्ध न हों; क्योंकि इनको असली बात मालूम नही थी। ॥६॥

युवराजस्त्वमीशश्च वनस्यास्य महाबल ।
मौर्ख्यात् पूर्वं कृतो रोषस्तद् भवान् क्षन्तुमर्हति ॥ ७ ॥

हे महाबली! आप युवराज होने के कारण स्वयं ही इस मधुवन के स्वामी हैं। पूर्व में मुर्खतावश हम लोगों से जो अपराध हो गया है-उसे आप क्षमा करें ॥७॥

आख्यातं हि मया गत्वा पितृव्यस्य तवानघ ।
इहोपयानं सर्वेषामेतेषां वनचारिणाम् ॥ ८ ॥

हे निष्पाप युवराज! मैंने यहाँ से जाकर आपके चाचा सुग्रीव के पास जाकर, इन सब वानरों के मधुवन में आने का वृत्तान्त कहा ॥८॥

स त्वदागमनं श्रुत्वा सहैभिर्वनचारिभिः ।
प्रहृष्टो न तु रुष्टोऽसौ वनं श्रुत्वा प्रधर्षितम् ॥ ९ ॥

वह इन सभी वानरों सहित, आपके आगमन का संवाद सुनकर बहुत प्रसन हुए, मधुवन के उजाड़े जाने का समाचार सुन कर भी उन्हें रोष नहीं हुआ ॥९॥

प्रहृष्टो मां पितृव्यस्ते सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तानिति होवाच पार्थिवः ॥ १० ॥

आपके चाचा वानरराज सुग्रीव ने "अत्यन्त प्रसन्न होकर मुझसे कहा है कि, समस्त वानरों को शीघ्र मेरे पास भेज दो" ॥१०॥

श्रुत्वा दधिमुखस्येदं वचनं श्लक्ष्णमङ्गदः ।
अब्रवीत् तान् हरिश्रेष्ठो वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ११ ॥

वचन बोलने में चतुर अंगद, दधिमुख के यह मधुर वचन सुन उनकर सब वानरों से बोले ॥११॥

शङ्के श्रुतोऽयं वृत्तान्तो रामेण हरियूथपाः ।
तत् क्षमं नेह नः स्थातुं कृते कार्ये परन्तपाः ॥ १२ ॥

हे वानर यूथपतियों ! मुझे ऐसा लगता है कि, हमारे आने का वृत्तान्त श्रीरामचन्द्र जी को विदित हो चुका है। अत: हे परन्तप! अब यहाँ अधिक समय तक रुकना उचित नहीं है। क्योंकि यहां जो काम करना था वह तो हो ही चुका है ॥१२॥

पीत्वा मधु यथाकामं विश्रान्ता वनचारिणः ।
किं शेषं गमनं तत्र सुग्रीवो यत्र वानरः ॥ १३ ॥

पराक्रमी वानर पेट भर कर मधु पी चुके और थकावट भी मिटा चुके, अब कौन सा काम बाकी रह गया है। अतः मेरी समझ में जहां मेरे पूज्य पितृव्य सुग्रीव हैं। अब वहां चलना चाहिये ॥१३॥

सर्वे यथा मां वक्ष्यन्ति समेत्य हरियूथपाः ।
तथास्मि कर्ता कर्तव्ये भवद्भिः परवानहम् ॥ १४ ॥

अब आप सभी वानरश्रेष्ठ मिल कर जैसा मुझसे कहेंगे मैं वैसा ही करूँगा। क्योंकि मैं आप लोगों के ही अधीन हूँ ॥१४॥

नाज्ञापयितुमीशोऽहं युवराजोऽस्मि यद्यपि ।
अयुक्तं कृतकर्माणो यूयं धर्षयितुं बलात् ॥ १५ ॥

यद्यपि मैं युवराज हूँ और स्वतंत्र भी हूँ; तब भी मैं आप लोगों को कोई आज्ञा नहीं दे सकता। क्योंकि उपकार करने वालों को परतंत्र बनाना मेरे लिये उचित नहीं है ॥१५॥

ब्रुवतश्चाङ्गदस्यैवं श्रुत्वा वचनमव्ययम् ।
प्रहृष्टमनसो वाक्यमिदमूचुर्वनौकसः ॥ १६ ॥

वनवासी वानरगण अंगद के ऐसे विनम्र वचन सुन कर और हर्षित होकर यह बोले ॥१६॥

एवं वक्ष्यति को राजन् प्रभुः सन् वानरर्षभ ।
ऐश्वर्यमदमत्तो हि सर्वोऽहमिति मन्यते ॥ १७ ॥

हे राजन् ! हे कपिश्रेष्ठ ! स्वामी होकर अपने अधीन रहने वालों से ऐसे वचन कौन कहेगा? क्योंकि ऐश्वर्य का मद ऐसा है जो सब को गर्वीला अथवा अहंकारी बना देता है ॥ १७॥

तव चेदं सुसदृशं वाक्यं नान्यस्य कस्यचित् ।
सन्नतिर्हि तवाख्याति भविष्यच्छुभयोग्यताम् ॥ १८ ॥

यह वचन आप ही के स्वरूपानुरूप हैं, आप जैसा उच्च पदवी वाला अन्य कोई जन ऐसे वचन नहीं कहता । आप में जैसी विनम्रता और विनय है, उससे जान पड़ता है कि, आगे आपका भाग्योदय होने वाला है ॥१८॥

सर्वे वयमपि प्राप्तास्तत्र गन्तुं कृतक्षणाः ।
स यत्र हरिवीराणां सुग्रीवः पतिरव्ययः ॥ १९ ॥

इस समय वीर वानरों के राजा जहाँ विराजमान हैं, वहां चलने के लिये हम सभी उत्कंठित हैं ॥१९॥

त्वया ह्यनुक्तैर्हरिभिर्नैव शक्यं पदात् पदम् ।
क्वचिद् गन्तुं हरिश्रेष्ठ ब्रूमः सत्यमिदं तु ते ॥ २० ॥

हम लोग आपसे यह सत्य कहते हैं कि, बिना आप की आज्ञा के वानरगण कहीं भी जाने के लिये एक पग भी आगे नहीं बढ़ा सकते ॥२०॥

एवं तु वदतां तेषां अङ्गदः प्रत्यभाषत ।
बाढ़ गच्छाम इत्युक्त्वा खमुत्पेतुर्महाबलाः ॥ २१ ॥

जब उन वानरों ने इस प्रकार कहा, तब उनको उत्तर देते हुए अंगद कहने लगे 'बहुत अच्छा, आओ अब चलें, यह कहकर बह सभी वानर पृथिवी से उछल कर आकाश में जा पहुँचे ॥२१॥

उत्पतन्तमनूत्पेतुः सर्वे ते हरियूथपाः ।
कृत्वाऽऽकाशं निराकाशं यन्त्रोत्क्षिप्ता इवोपलाः ॥ २२ ॥

आगे आगे अंगद और उनके पीछे वह समस्त वानर यूथपति उड़ने लगे। वह सभी आकाश को अच्छादित कर यंत्र से फेंके हुए पत्थरों को तरह तीव्र गति से जा रहे थे ॥२२॥

तेऽम्बरं सहसोत्पत्य वेगवन्तः प्लवङ्गमाः ।
विनदन्तो महानादं घना वातेरिता यथा ॥ २३ ॥

वह वेगवन्त वानर सहसा आकाश में जाकर, वायु से उडाये गए बादलों की भांति अत्यंत भीषण महानाद करते हुए चले जाते थे ॥२३॥

अङ्गदे समनुप्राप्ते सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
उवाच शोकोपहतं रामं कमललोचनम् ॥ २४ ॥

अंगद को निकट आते देखकर, वानरराज सुग्रीव ने शोकसन्तप्त एवं कमललोचन श्रीरामचन्द्र जी से कहा ॥२४॥

समाश्वसिहि भद्र ते दृष्टा देवी न संशयः ।
नागन्तुमिह शक्यं तैरतीतसमयैरिह ॥ २५ ॥

प्रभो! धैर्य धारण कीजिए, आपका मंगल हो। अब यह निश्चित है की सीताजी का पता लग गया है। क्योंकि यदि सीताजी का पता नहीं लगा होता, तो अवधि बीत जाने के पश्च्यात यह वानर कभी भी यहाँ नहीं आ सकते थे।॥२५॥

न मत्सकाशमागच्छेत् कृत्ये हि विनिपातिते ।
युवराजो महाबाहुः प्लवतामङ्गदो वरः ॥ २६ ॥

वानरों में श्रेष्ठ और महाबाहु युवराज अंगद यदि कार्य पूरा नहीं होता तो मेरे समीप कभी नहीं आते ॥२६॥

यद्यप्यकृतकृत्यानामीदृशः स्यादुपक्रमः ।
भवेत् स दीनवदनो भ्रान्तविप्लुतमानसः ॥ २७ ॥

यद्यपि कार्य सिद्ध न होने पर भी लोगों का अपने घर वापस आना देका गया है परन्तु उस दशा में यह वानर इस तरह मधुवन विध्वंस न करते और यदि हमारे सामने आते भी तो अंगद के मुख पर उदासी छायी होती और उनके चित्त में व्याकुलता के लक्षण दिखाई देते ॥२७॥

पितृपैतामहं चैतत् पूर्वकैरभिरक्षितम् ।
न मे मधुवनं हन्याददृष्टा जनकात्मजाम् ॥ २८ ॥

जानकी जी को देखे बिना, हमारे पिता पितामहादि पुरखों का और उनके द्वारा रक्षित मधुवन को अंगद कभी न उजाड़ते॥२८॥

कौसल्या सुप्रजा राम समाश्वसिहि सुव्रत ।
दृष्टा देवी न सन्देहो न चान्येन हनूमता ॥ २९ ॥

हे सुव्रत! हे श्रीराम! कौशल्या जी आपको उत्पन्न कर सत्पुत्रवती हुई हैं। अब आप, सावधान, हो जाइये। यह सीता जी का दर्शन अवश्य करके आये हैं। और इनमे से किसी और ने नहीं, किन्तु हनुमानजी ने सीताजी का दर्शन किया है ॥२६॥

नह्यन्यः कर्मणो हेतुः साधनेऽस्य हनूमतः ।

हनूमतीह सिद्धिश्च मतिश्च मतिसत्तम ॥ ३० ॥

क्योंकि यदि हनुमानजी ने सीताजी को नहीं देखा होता, तो परमोत्तम बुद्धिसम्पन्न हनुमान, वाटिका विध्वंस रूप कार्य को कभी होने न देते। अतः मेरी समझ में तो श्रेष्ठ-बुद्धि-सम्पन्न हनुमान ने ही इस काम को सिद्ध किया है ॥३०॥

व्यवसायश्च वीर्यं च सूर्ये तेज एव धरुवं ।
जाम्बवान् यत्र नेता स्यादङ्गदश्च हरीश्वरः ॥ ३१ ॥

क्योंकि निश्चय ही हनुमान जी में कार्य सिद्धि की शक्ति है, बल है और वे सूर्य की तरह तेजस्वी हैं। फिर जिसमें जाम्बवान नेता हो, महाबली अंगद सेनापति हो ॥३१॥

हनुमांश्चाप्यधिष्ठाता न तस्य गतिरन्यथा ।
मा भूश्चिन्तासमायुक्तः सम्प्रत्यमितविक्रम ॥ ३२ ॥

और हनुमान संरक्षक हो, उस दल को किसी भी कार्य में कभी विफलता मिल ही नहीं सकती । हे अमितपराक्रमी ! अब आप चिन्ता न करें ॥३२॥

ततः किलकिलाशब्दं शुश्रावासन्नमम्बरे ।
हनुमत्कर्मदृप्तानां नर्दतां काननौकसाम् ॥ ३३ ॥

इतने ही में आकाशमार्ग से आते हुए वानरों की किलकारियों सुन पड़ी। वह वानर, हनुमान जी द्वारा कार्य पूरा होने से, गर्वित होकर गरज रहे थे ॥३३॥

किष्किन्धामुपयातानां सिद्धिं कथयतामिव ।
ततः श्रुत्वा निनादं तं कपीनां कपिसत्तमः ॥ ३४ ॥

किष्किन्धा की ओर आते हुए उन वानरों का उस समय का गर्जना, मानो कार्यसिद्धि को सूचित कर रहा था। तदनन्तर उन कपियों का गर्जना सुन, कपियों में श्रेष्ठ सुग्रीव ने ॥ ३४॥

आयताञ्चितलाङ्गूलः सोऽभवद्धृष्टमानसः ।
आजग्मुस्तेऽपि हरयो रामदर्शनकांक्षिणः ॥ ३५ ॥

अपनी पूंछ लंबी फैला फर, फिर उसे गोल घुमा कर समेट लिया और वह बहुत ही प्रसन्नचित्त हो गये । इतने में कपि भी, श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन की इच्छा से, वहाँ आ पहुंचे ॥३५॥

अङ्गदं पुरतः कृत्वा हनूमन्तं च वानरम् ।
तेऽङ्गदप्रमुखा वीराः प्रहृष्टाश्च मुदाऽन्विताः ॥ ३६ ॥

वह सभी वानर अंगद और हनुमान जी को आगे करके वहां आये थे। वह अंगदादि वीर वानरगण अत्यंत हर्षित होकर पुलकित हो रहे थे ॥३६॥

निपेतुर्हरिराजस्य समीपे राघवस्य च ।
हनुमांश्च महाबाहुः प्रणम्य शिरसा ततः ॥ ३७ ॥

वह वानरगण आकाश से उस जगह भूमि पर उतरे, जहाँ कपिराज सुग्रीव और श्रीरामचन्द्र जी बैठे हुए थे। तदनन्तर सब से पहले महाबाहु हनुमान जी ने शीश नवाकर उनको प्रणाम किया ॥३७॥

नियतामक्षतां देवीं राघवाय न्यवेदयत् ।
निश्चितार्थं ततस्तस्मिन् सुग्रीवः पवनात्मजे ।
लक्ष्मणः प्रीतिमान् प्रीतं बहुमानादवैक्षत ॥ ३८ ॥

और श्रीरामचन्द्र जी से निवेदन किया कि सीता जी शरीर से सकुशल हैं और पातिव्रतधर्म पर दृढ हैं । हनुमान जी में सीता जी को देखने का निश्चय रखने वाले सुग्रीव को, प्रीतिमान लक्ष्मण जी ने बड़ी प्रीति और सम्मान के साथ देखा ॥३८॥

प्रीत्या च परयोपेतो राघवः परवीरहा ।
बहुमानेन महता हनुमन्तमवैक्षत ॥३९ ॥

शत्रुओं का संहार करने वाले श्रीरामचन्द्र जी भी ने भी अत्यन्त प्रीति और आदर के साथ कपिश्रेष्ठ हनुमान जी को देखने लगे ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का चौंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥ पञ्चषष्टितमः सर्गः पैंसठवाँ सर्ग ॥

हनुमता श्रीरामं प्रति सीतावृत्तान्तस्य निवेदनम् – हनुमान जी का श्रीराम को सीता जी का समाचार सुनाना

ततः प्रस्रवणं शैलं ते गत्वा चित्रकाननम् ।
प्रणम्य शिरसा रामं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥ १ ॥

तदनन्तर हनुमानांदि वानरों ने उस रंग विरंगे पुष्पों से शोभित काननयुक्त प्रस्त्रवण पर्वत पर जाकर, महाबली श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजी को सिर नवा कर प्रणाम किया ॥१॥

युवराजं पुरस्कृत्य सुग्रीवमभिवाद्य च ।
प्रवृत्तिमथ सीतायाः प्रवक्तुमुपचक्रमुः ॥ २ ॥

फिर युवराज अंगद को आगे कर और सुग्रीव को प्रणाम कर वह सीताजी का वृत्तान्त कहने लगे ॥२॥

रावणान्तःपुरे रोधं राक्षसीभिश्च तर्जनम् ।
रामे समनुरागं च यश्चायं नियमः कृतः ॥ ३ ॥

सीताजी का रावण के अंत:पुर में बंदी बना कर रखा जाना, राक्षिसियों द्वारा डराया धमकाया जाना, श्रीरामचन्द्र जी में सीता का अनुराग और रावण द्वारा सीता के मारे जाने के लिए दो मास की अवधि नियत किया जाना ॥३॥

एतदाख्याय ते सर्वे हरयो रामसंनिधौ ।
वैदेहीमक्षतां श्रुत्वा रामस्तूत्तरमब्रवीत् ॥ ४ ॥

यह समस्त वृत्तान्त श्रीरामचन्द्र जी से उन वानरों ने कहा। सीता जी को कोई क्षति नहीं पहुंची है इस प्रकार सीता जी की कुशलता का समाचार सुनकर, श्रीरामचन्द्र जी ने कहा ॥ ४॥

क्व सीता वर्तते देवी कथं च मयि वर्तते ।
एतन्मे सर्वमाख्यात वैदेहीं प्रति वानराः ॥ ५ ॥

हे वानरो! सीता देवी कहां हैं और मेरे प्रति उनके मन में कैसा भाव है ? विदेहकुमारी के विषय में यह सब वृत्तान्त तुम मुझसे कहो ॥५॥

रामस्य गदितं श्रुत्वा हरयो रामसंनिधौ ।
चोदयन्ति हनूमन्तं सीतावृत्तान्तकोविदम् ॥ ६ ॥

वानरों ने श्रीरामचन्द्र जी का यह कथन सुनकर, सीताजी के समस्त वृतांत को भली प्रकार से जानने वाले हनुमान जी को उत्तर देने के लिए प्रेरित करने लगे ॥६॥

श्रुत्वा तु वचनं तेषां हनुमान् मारुतात्मजः ।
प्रणम्य शिरसा देव्यै सीतायै तां दिशं प्रति ॥ ७ ॥

उन वानरों के वचन सुनकर, पवननन्दन हनुमान जी ने दक्षिण दिशा की ओर मुख कर और सीस नवा कर जानकी माता को प्रणाम किया ॥७॥

उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः सीताया दर्शनं यथा ।
समुद्रं लङ्घयित्वाऽहं शतयोजनमायतम् ॥ ८ ॥

तदनन्तर बातचीत करने में चतुर हनुमान जी ने वह सारा वृत्तान्त कहा, जिस प्रकार उन्होंने सीता जी को देखा था। वह बोले हे रघुवर! मैं शतयोजन समुद्र को लांघ कर ॥८॥

अगच्छं जानकीं सीतां मार्गमाणो दिदृक्षया ।
तत्र लङ्केति नगरी रावणस्य दुरात्मनः ॥ ९ ॥

सीता जी को देखने की इच्छा से समुद्र के पार गया। वहीं पर उस दुरात्मा रावण की लंका नाम की पुरी है। ॥ ९ ॥

दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे ।
तत्र दृष्टा मया सीता रावणान्तःपुरे सती ॥ १० ॥

दक्षिण-समुद्र के दक्षिणी तट पर वह लंका नगरी बसी हुई है। उस नगरी में रावण के अन्त:पुर में मैंने पतिव्रता जानकी को देखा ॥१०॥

संन्यस्य त्वयि जीवन्ती रामा राम मनोरथम् ।
दृष्टा मे राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ११ ॥

हे श्रीरामचन्द्र जी! सीताजी केवल आपके दर्शन की अभिलाषा से जीवित है। मैंने उन्हें राक्षसियों के बीच बैठा हुआ देखा । राक्षसियां बार बार उसे डरा धमका रही थीं ॥११॥

राक्षसीभिर्विरूपाभी रक्षिता प्रमदावने ।
दुःखमापद्यते देवी त्वया वीर सुखोचिता ॥ १२ ॥

प्रमदावन में विकराल रूप वाली राक्षसियाँ उनकी रखवाली किया करती हैं। सीता जी सदा से सुख भोगती रही हैं; किन्तु इस समय वह आपके विरह में अत्यन्त दुःखी हो रही हैं ॥१२॥

रावणान्तःपुरे रुद्धा राक्षसीभिः सुरक्षिता ।
एकवेणीधरा दीना त्वयि चिन्तापरायणा ॥ १३ ॥

उन्हें रावण के अंत:पुर में कैद करके रखा गया है और राक्षसियां उनकी बड़ी सावधानी से पहरेदारी करती रहती हैं। वह सिर के केशों को बांधकर उन सब की एक वेणी धारण किए हुए रहती हैं अर्थात् श्रृंगार रहित हैं। वह सदा उदास रहती हैं और सदैव आपका ही ध्यान किया करती हैं ॥१३॥

अधःशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे ।
रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया ॥ १४ ॥

वह पृथिवी पर सोती हैं और उनके अंगों की कांति उसी प्रकार मंद पड़ गयी है जैसे कि, हेमन्तऋतु में कमलिनी का रंग फीका पड़ जाता है। रावण से कुछ भी सरोकार न रखकर, उन्होंने प्राण त्यागने का निश्चय कर लिया है ॥१४॥

देवी कथंचित् काकुत्स्थ त्वन्मना मार्गिता मया ।
इक्ष्वकुवंशविख्यातिं शनैः कीर्तयतानघ ॥ १५ ॥

हे काकुत्स्थ कुलभूषण ! उनका मन निरंतर आप में ही लगा रहता है। बड़े परिश्रम से किसी तरह मैंने महारानी सीता जी का पता लगाया और हे अनघ ! इक्ष्वाकुवंश की कीर्ति को बखान कर, ॥१५॥

सा मया नरशार्दूल शनैर्विश्वासिता तदा ।
ततः सम्भाषिता देवी सर्वमर्थं च दर्शिता ॥ १६ ॥

हे नरशार्दूल ! मैंने उनका विश्वास अपने ऊपर प्राप्त किया। तदनन्तर उन देवी के साथ बातचीत कर, उनको सब हाल कह सुनाया ॥१६॥

रामसुग्रीवसख्यं च श्रुत्वा प्रीतिमुपागता ।
नियतः समुदाचारो भक्तिश्चास्याः सदा त्वयि ॥ १७ ॥

वह आपकी और सुग्रीव की मैत्री का वृत्तान्त सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुई। आपमें, उनकी अनन्य भक्ति है और उनका उच्च कोटि का पातिव्रत धर्म भी अटल अचल बना हुआ है ॥१७॥

एवं मया महाभागा दृष्टा जनकनन्दिनी ।
उग्रेण तपसा युक्ता त्वद्भक्त्या पुरुषर्षभ ॥ १८ ॥

हे महाभाग! ऐसी दशा में मैंने जानकीजी को देखा है। हे पुरुषोत्तम! आपमें उनकी अनन्य प्रीति है और वह कठोर तपस्या कर रही हैं अर्थात् बड़े कष्ट सह रही हैं ॥१८॥

अभिज्ञानं च मे दत्तं यथा वृत्तं तवान्तिके ।
चित्रकूटे महाप्राज्ञ वायसं प्रति राघव ॥ १९ ॥

हे राघव ! हे महाप्राज्ञ ! चित्रकूट में आपके पास देवी के रहते हुए जो कौए के प्रति घटना घटित हुई थी, वह सब वृतांत सीता माता ने मुझे पहचान स्वरूप, आपसे निवेदन करने को कहा है ॥१६॥

विज्ञाप्यः नरव्याघ्रो रामो वायुसुत त्वया ।
अखिलेन यथा दृष्टमिति मामाह जानकी ॥ २० ॥

हे नरव्याघ्र ! मुझसे यह भी कहा है कि, जैसी मेरी दशा तुम देख रहे को उसको यथा स्वरुप श्रीरामचन्द्र जी के आगे कह देना ॥२०॥

अयं चास्मै प्रदातव्यो यत्नात् सुपरिरक्षितः ।
ब्रुवता वचनान्येवं सुग्रीवस्योपशृण्वतः ॥ २१॥

एष चूडामणिः श्रीमान् मया सुपरिरक्षितः ।
मनःशिलायास्तिलकं तत् स्मरस्वेति चाब्रवीत् ॥ २२ ॥

त्वया प्रनष्टे तिलके तं किल स्मर्तुमर्हसि ।
एष निर्यातितः श्रीमान् मया ते वारिसम्भवः ॥ २३ ॥

और इस चूडामणि को, जिसे मैंने बड़े यत्न से बचा रखा है। श्रीरामचन्द्र जी को सुग्रीव के सामने देना और यह कहना कि, मैंने इस चूडामणि को बड़े प्रयत्न से सुरक्षित रखा है। जल से उत्पन्न हुई इस दीप्तिमान रत्न को मैं आपकी सेवा में अंगूठी के बदले आपकी सेवा में अर्पित करती हूँ। संकट के समय इसको देख कर मैं उसी प्रकार आनंदमग्न हो जाती थी, जैसे आपके दर्शन से आनंदित होती थी और उनसे कहना कि, तिलक मिट जाने पर आपने मेरे ललाट में जो मनसिल का तिलक लगाया था, 'उसका स्मरण कीजिए। ॥२१-२३॥

एनं दृष्ट्वा प्रमोदिष्ये व्यसने त्वामिवानघ ।
जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज ॥ २४ ॥

हे अनघ ! इसको देखने से तुमको हर्ष और विषाद दोनों ही होंगे। हे दशरथनन्दन ! मैं एक मास तक तुम्हारी प्रतीक्षा में जीवित रहूंगी ॥२४॥

ऊर्ध्वं मासान्न जीवयं रक्षसां वशमागता ।
इति मामब्रवीत् सीता कृशाङ्गी धर्मचारिणी ॥ २५॥

एक मास बीतने पर मैं अपने प्राण त्याग दूंगी क्योंकि, मैं इन राक्षसों के पंजे में आ फंसी हूँ। हे राधव! उन कृशांगी और धर्म परायण सीता जी में मुझे आपसे कहने के लिए यह सन्देश दिया है ॥२५॥

रावणान्तःपुरे रुद्धा मृगीवोत्फुल्ललोचना ।
एतदेव मयाऽऽख्यातं सर्वं राघव यद् यथा ।
सर्वथा सागरजले सन्तारः प्रविधीयताम् ॥ २६ ॥

वह रावण के अंतःपुर में कैद हैं और भय के मारे आँखें बड़ी करके इधर उधर देखने वाली हिरनी के समान वह सब ओर सशंक दृष्टि से देखा करती हैं। हे राधव ! जो वहाँ का वृत्तान्त था वह सब मैंने आपकी सेवा में निवेदन कर दिया। अब आप सब प्रकार से समुद्र को पार करने का यत्न कीजिए ॥२६॥

तौ जाताश्वासौ राजपुत्रौ विदित्वा
तच्चाभिज्ञानं राघवाय प्रदाय ।
देव्या चाख्यातं सर्वमेवानुपूर्व्याद्
द्वाचा सम्पूर्णं वायुपुत्रः शशंस ॥ २७॥

यह कह कहने पर जब हनुमान जी ने देखा कि, दोनों राजकुमारों श्री राम और लक्षमण को मेरी बातों पर विश्वास हो गया है, तब उन्होंने सीता जी द्वारा भेजी हुई चूडामणि श्रीरामचन्द्र जी के हाथ पर रख दी और सीता जी द्वारा कही हुए समस्त वचन अपनी वाणी द्वारा पूर्ण रूप से कह सुनाई ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का पैसठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥षट्षष्टितमः सर्गः छियासठवाँ सर्ग॥

चूडामणिं दृष्ट्वा सीतावृत्तमुपलभ्य च श्रीरामस्य सीताकृते विलापः– चूड़ामणि को देखकर और सीताजी का समाचार प्राप्त कर श्रीराम का उनके लिए विलाप

एवमुक्तो हनुमता रामो दशरथात्मजः ।
तं मणिं हृदये कृत्वा रुरोद सहलक्ष्मणः ॥ १ ॥

जब हनुमान जी ने इस प्रकार कहा, तव दशरथनन्द श्रीराम चन्द्र की उस चूडामणि को छाती से लगा, लक्ष्मण सहित रोने लगे ॥१॥

तं तु दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं राघवः शोककर्शितः ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

उस श्रेष्ठ मणि को देखकर श्रीरामचन्द्र जी अत्यंत दुःखी हुए और दोनों नेत्रों में आंसू भरकर सुग्रीवजी से बोले ॥२॥

यथैव धेनुः स्रवति स्नेहाद्वत्सस्य वत्सला ।
तथा ममापि हृदयं मणिश्रेष्ठस्य दर्शनात् ॥ ३ ॥

मित्र ! जैसे वत्सला गाय के स्तनों से बछड़े को स्नेहपूर्वक देखने से अपने आप दूध टपकने लगता है, वैसे ही इस मणिश्रेष्ठ को देखने से मेरा हृदय भी द्रवीभूत हो गया है ॥३॥

मणिरत्नमिदं दत्तं वैदेह्याः श्वशुरेण मे ।
वधूकाले यथा बद्धमधिकं मूर्ध्नि शोभते ॥ ४ ॥

मेरे ससुर विदेहराज राज जनक ने विवाह के समय यह चूड़ामणि सीताजी को दी थी और सीता द्वारा मस्तक पर धारण करने के पश्च्यात यह बड़ी शोभा पाती थी ॥४॥

अयं हि जलसम्भूतो मणिः प्रवरपूजितः ।
यज्ञे परमतुष्टेन दत्तः शक्रेण धीमता ॥ ५ ॥

जल से प्रकट हुई यह मणि श्रेष्ठ देवताओं द्वारा पूजित है। बुद्धिमान इन्द्र ने यज्ञ में संतुष्ट हो यह मणि स्वयं जनक जी को दी थी ॥५॥

इमं दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं यथा तातस्य दर्शनम् ।
अद्यास्म्यवगतः सौम्य वैदेहस्य तथा विभोः ॥ ६ ॥

हे सौम्य ! इस मणि को देखने से आज मुझे अपने पूज्य पिता का और विदेहराज महाराज जनक का स्मरण हो आया है ॥६॥

अयं हि शोभते तस्याः प्रियाया मूर्ध्नि मे मणिः ।
अस्याद्य दर्शनेनाहं प्राप्तां तामिव चिन्तये ॥ ७ ॥

यह मणि मेरी प्यारी सीता के मस्तक पर शोभा पाती थी। आज इस मणि को देखने से मुझे ऐसा जान पडता है, मानों मुझे सीता ही मिल गयो हो ॥ ७॥

किमाह सीता वैदेही ब्रूहि सौम्य पुनः पुनः ।
पिपासुमिव तोयेन सिञ्चन्ति वाक्यवारिणा ॥ ८ ॥

हे सौम्य पवनकुमार! सीता ने क्या कहा ? उसको कही बातें तुम मुझसे बार बार कहो, उसने तो मानों मुझ प्यासे को अपने वचन रूपी जल से तृप्त किया है ॥८॥

इतस्तु किं दुःखतरं यदिमं वारिसम्भवम् ।
मणिं पश्यामि सौमित्रे वैदेहीमागतं विना ॥ ९ ॥

हे लक्ष्मण ! इससे बढ़ कर मेरे लिये और कौन सी दुःख की बात होगी कि, बिना सीता के मैं इस जल से उत्पन्न चूडामणि को देख रहा हूँ ॥९॥

चिरं जीवति वैदेही यदि मासं धरिष्यति ।
क्षणं सौम्य न जीवेयं विना तामसितेक्षणाम् ॥ १० ॥

हे लक्ष्मण ! यदि जानकी एक मास तक भी जीवित रहेगी तो वह अवश्य बहुत समय तक जीवित रहेगी। क्योंकि मैं तो उस कृष्णनयनी नेत्रों वाली सीता के बिना एक क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकता ॥१०॥

नय मामपि तं देशं यत्र दृष्टा मम प्रिया ।
न तिष्ठेयं क्षणमपि प्रवृत्तिमुपलभ्य च ॥ ११ ॥

हे हनुमान ! तुम मुझे भी वहीं ले चलो, जहाँ तुम मेरी प्यारी सीता को देखा है। उसका समाचार पाकर तो मैं अब एक क्षण भर भी अन्यत्र नहीं रह सकता ॥११॥

कथं सा मम सुश्रोणी भीरुभीरुः सती सदा ।
भयावहानां घोराणां मध्ये तिष्ठति रक्षसाम् ॥ १२ ॥

हे हनुमन् ! मेरो वह सती साध्वी सुन्दरी पतिव्रता और अत्यन्त भीरू है, किस प्रकार वह उन अत्यन्त भयंकर राक्षसों के बीच रहती होगी ॥१२॥

शारदस्तिमिरोन्मुक्तो नूनं चन्द्र इवाम्बुदैः ।
आवृतो वदनं तस्या न विराजति साम्प्रतम् ॥ १३ ॥

निश्चय ही अन्धकार से मुक्त किन्तु बादलों से ढका हुआ शरद ऋतु का चन्द्रमा जिस प्रकार शोभायमान नहीं होता, वैसे ही राक्षसों द्वारा घिरी हई होने के कारण, सीता का मुखमण्डल भी शोभायमान नही होता होगा ॥१३॥

किमाह सीता हनुमंस्तत्त्वतः कथयाद्य मे ।
एतेन खलु जीविष्ये भेषजेनातुरो यथा ॥ १४ ॥

हे हनुमान! अब तुम ठीक ठीक मुझे बातओ कि, जानकी जी ने तुमसे क्या कहा है? जैसे रोगी दवा से जीता है, वैसे ही मैं, सीता जी के कथन को सुन निश्चित ही जीता रहूँगा ॥१४॥

मधुरा मधुरालापा किमाह मम भामिनी ।
मद्विहीना वरारोहा हनुमन् कथयस्व मे ॥ १५ ॥

हे हनुमान ! सौम्यमूर्ति एवं मधुरभाषिणी जानकी जी ने मेरे वियोग में दुःखी होकर मुझे क्या संदेसा भेजा है ? वह तुम मुझसे कहो ॥ १५॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का छियासठवां सर्ग पूरा हुआ

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥सप्तषष्टितमः सर्गः सडसठवाँ सर्ग॥

हनुमता श्रीरामं प्रति सीतासन्देशस्य श्रावणम् – हनुमान जी का भगवान् श्रीराम को सीता का सन्देश सुनाना

एवमुक्तस्तु हनुमान् राघवेण महात्मना ।
सीताया भाषितं सर्वं न्यवेदयत राघवे ॥ १ ॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने हनुमान जी से इस प्रकार कहा, तब हनुमान जी ने सीता जी का सारा कथन श्रीरामचन्द्र जी को कह सुनाया ॥१॥

इदमुक्तवती देवी जानकी पुरुषर्षभ ।
पूर्ववृत्तमभिज्ञानं चित्रकूटे यथातथम् ॥ २ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! पहले चित्रकूट पर्वत पर जो घटना हुई थी, देवी जानकी ने उसका वृत्तान्त पहचान के रूप में यथावत वर्णन किया था ॥२॥

सुखसुप्ता त्वया सार्धं जानकी पूर्वमुत्थिता ।

वायसः सहसोत्पत्य विरराद स्तनान्तरे ॥ ३ ॥

हे भरताग्रज! आप और जानकीजी बारी बारी से एक दूसरे के अंक में सिर रख कर सोते थे । किन्तु जानकीजी आप से पूर्व ही उठ बैठी कि, इसी बीच में अचानक एक कौए ने उड़ कर उनकी छाती में घाव कर दिया ॥३॥

पर्यायेण च सुप्तस्त्वं देव्यङ्के भरताग्रज ।
पुनश्च किल पक्षी स देव्या जनयति व्यथाम् ॥ ४ ॥

हे राम! जब आप देवी की गोद में सर रख कर सो गये, उस समय पुनः उस काक ने आकर जानकी जी को पीड़ा देना प्रारंभ कर दिया ॥४॥

पुनः पुनरुपागम्य विरराद भृशं किल ।
ततस्त्वं बोधितस्तस्याः शोणितेन समुक्षितः ॥ ५ ॥

उसने बार बार आकर अपनी चोंच से भयंकर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। उस घाव से रक्त बहने के कारण वह रक्त आप के शरीर पर गिरा और आप जाग गये ॥५॥

वायसेन च तेनैवं सततं बाध्यमानया ।
बोधितः किल देव्या त्वं सुखसुप्तः परन्तप ॥ ६ ॥

हे शत्रुहन्ता! जब कौए ने जानकीजी को लगातार इस प्रकार पीड़ा दी तब सुख से साये हुए आपको जानकी जी ने जगा दिया ॥६॥

तां तु दृष्ट्वा महाबाहो दारितां च स्तनान्तरे ।
आशीविष इव क्रुद्धस्ततो वाक्यं त्वमूचिवान् ॥ ७ ॥

हे महाबाहो ! जानकी जी की छाती में घाव देख कर आप साँप की तरह क्रुद्ध होकर फुफकारते हुए बोले ॥७॥

नखाग्रैः केन ते भीरु दारितं तु स्तनान्तरम् ।
कः क्रीडति सरोषेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना ॥ ८ ॥

हे भीरु ! किसने अपने नखो से तेरी छाती में घाव कर दिया है? क्रुद्ध पाँच फन वाले सांप के साथ कौन खेल रहा है ? ॥ ८॥

निरीक्षमाणः सहसा वायसं समदैक्षथाः ।
नखैः सरुधिरैस्तीक्ष्णैस्तामेवाभिमुखं स्थितम् ॥ ९ ॥

ऐसा कहकर जब आपने सहसा इधर उधर देखा; तब वह काक आप को दिखाई पड़ा, जिसके पैने नख रुधिर में भोगे थे और जो जानकी जी की ओर मुंह करके बैठा हुआ था ॥९॥

सुतः किल स शक्रस्य वायसः पततां वरः ।
धरान्तरचरः शीघ्रं पवनस्य गतौ समः ॥ १० ॥

पक्षियों में श्रेष्ठ वह काक निश्चय ही इन्द्र का पुत्र था। वह वायुदेव की तरह बड़ी तेज़ी से पृथिवी के नीचे पाताल में जा छिपा ॥ १०॥

ततस्तस्मिन् महाबाहो कोपसंवर्तितेक्षणः ।
वायसे त्वं कृथा: क्रूरां मतिं मतिमतां वर ॥ ११ ॥

हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ! हे महाबाहो! उस समय क्रोध के कारण आप की आँखें तिरछी हो गयीं। आपको उस कौए पर बड़ा क्रोध आया और आपने उस कौए को कठोर दंड देने का निश्चय किया ॥११॥

स दर्भसंस्तराद् गृह्य ब्रह्मास्त्रेण न्ययोजयः ।
स दीप्त इव कालाग्निर्जज्वालाभिमुखं खगम् ॥ १२ ॥

आपने नीचे बिछी हुई कुश की चटाई से एक कुश और निकाला और उसे ब्रह्मास्त्र के मंत्र से मंत्रित किया। वह कालाग्नि की तरह प्रदीप्त होकर उस कौए की ओर लक्ष्य किया ॥१२॥

क्षिप्त्वं प्रदीप्तं िक्षेप दर्भं तं वायसं प्रति ।
ततस्तु वायसं दीप्तः स दर्भोऽनुजगाम ह ॥ १३ ॥

जब आपने उस दहकते हुए कुश को उस कौए पर चलाया, तब वह दीप्तिमान दर्भ उस कौए का पीछा करने लगा ॥१३॥

स पित्रा च परित्यक्तः सुरैश्च स्महर्षिभिः ।
त्रिंल्लोकान्   त्रातारं नाधिगच्छति ॥ १४ ॥

आपके भय से, उस समय न तो उसके पिता ने और न अन्य किसी देवता ने और न देवर्षियों ने ही उस ब्रह्मास्त्र से उसकी रक्षा की। वह तीनों लोकों में चक्कर लगाता रहा। किन्तु उसे कोई भी रक्षक नहीं मिला। ॥१४॥

पुनरप्यागतस्त्वत्र त्वत्सकाशमरिन्दम ।
स तं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम् ॥ १५ ॥

हे अरिन्दम ! सब और से निराश होकर वह भयभीत काक फिर आपकी शरण में आया। शरणदाता! वह पृथिवी पर गिरकर आप के शरणागत हुआ ॥१५॥

वधार्हमपि काकुत्स्थ कृपया परिपालयः ।
मोघमस्त्रं न शक्यं तु कर्तुमित्येव राघव ॥ १६ ॥

हे काकुस्थ! यद्यपि वह काक वध कर डालने योग्य था, तथापि शरण में आने के कारण आपने उसकी रक्षा की। हे राघव ! वह अस्त्र अमोघ था अतः उसको से व्यर्थ नही किया जा सकता था ॥१६॥

भवांस्तस्याक्षि काकस्य हिनस्ति स्म स दक्षिणम् ।
राम त्वां स नमस्कृत्य राज्ञो दशरथस्य च ॥ १७ ॥

अत: आपने उसकी दहिनी आँख उससे फोड़ दी । हे राम! तव वह काक आपको और महाराज दशरथ को प्रणाम कर ॥१७॥

विसृष्टस्तु तदा काकः प्रतिपेदे स्वमालयम् ।
एवमस्त्रविदां श्रेष्ठः सत्त्ववाञ्छीलवानपि ॥ १८ ॥

और आपसे विदा लेकर, अपने घर चला गया। रघुनन्दन, इस प्रकार अस्त्रों के जानने वालों में श्रेष्ठ, पराक्रमी और शीलवान होकर भी॥१८॥

किमर्थमस्त्रं रक्षःसु न योजयति राघवः ।
न नागा न गन्धर्वा नासुरा न मरुद्गणाः ॥ १९ ॥

हे राघव! आप राक्षसों पर उन अस्त्रों का प्रयोग क्यों नहीं करते ? नागों, गन्धर्वो, न दैत्यों और मरुद्गण में से ॥१९॥

तव राम रणे शक्तास्तथा प्रतिसमासितुम् ।
तव वीर्यवतः कश्चिन्मयि यद्यस्ति सम्भ्रमः ॥ २० ॥

किसी में भी आपके सामने युद्ध में खड़े रहने की शक्ति नहीं है। अतः आप अत्यंत बल पराक्रम से संपन्न हैं। अत: यदि मेरे प्रति आपका कुछ भी आदर है ॥२०॥

क्षिप्रं सुनिशितैर्बाणैर्हन्यतां युधि रावणः ।

भ्रातुरादेशमाज्ञाय लक्ष्मणो वा परन्तपः ॥ २१ ॥

तो शीघ्र अपने पैने वाणों से युद्ध में रावण का वध कीजिए तथा अपने बड़े भाई की आज्ञा लेकर शत्रुओं को संताप देने वाले लक्ष्मण जी ही॥२१॥

स किमर्थं नरवरो न मां रक्षति राघवः ।
शक्तौ तौ पुरुषव्याघ्रौ वाय्वग्निसमतेजसौ ॥ २२ ॥

जो नरों में श्रेष्ठ हैं, हे राघव! वह मुझे क्यों नहीं बचाते। वह दोनों पुरुषसिंह वायु और अग्नि की तरह तेजस्वी और शक्तिमान हैं॥२२॥

सुराणामपि दुर्धर्षौ किमर्थं मामुपेक्षतः ।
ममैव दुष्कृतं किंचिन्महदस्ति न संशयः ॥ २३ ॥

तथा देवताओं के लिए भी दुर्जय हैं, फिर मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं। इससे तो यही संशय होता है कि, निस्संदेह मेरा हो कोई बड़ा अपराध अथवा पाप है ॥२३॥

समर्थो सहितौ यन्मां न रक्षेते परन्तपौ ।
वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साधुभाषितम् ॥ २४ ॥

जिस्नके कारण वह दोनों परन्तप भाई समर्थवान होकर भी मेरी रक्षा नहीं करते। हनुमान जी कहने लगे कि हे प्रभो! सीता जी के अश्रुपूर्ण नेत्रों से रोकर कहे हुए करुणपूर्ण वचनों को सुनकर ॥२४॥

पुनरप्यहमार्यां तामिदं वचनमब्रुवम् ।
त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन ते शपे ॥ २५ ॥

रामे दुःखाभिभूते तु लक्ष्मणः परितप्यते ।
कथंचिद् भवती दृष्टा न कालः परिशोचितुम् ॥ २६ ॥

मैंने उन सती साध्वी सीता से यह कहा-हे देवी! मैं शपथ पूर्वक सत्य सत्य कहता हूँ कि, श्रीरामचन्द्र जी तुम्हारे विरहजन्य शोक से अत्यंत दुःखी हो रहे हैं और उनको दुःखी देखकर लक्ष्मणजी भी, शोकसन्तप्त रहते हैं। हे देवी! मैंने किसी प्रकार आपका दर्शन कर लिया। अब यह समय शोक करने का नहीं है ॥२५-२६॥

अस्मिन् मुहूर्ते दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि भामिनि ।
तावुभौ नरशार्दूलौ राजपुत्रौ परन्तपौ ॥ २७ ॥

हे सुन्दरी! आप अब इसी मुहूर्त से अपने दुःखों का अन्त हुआ जानिये। सत्रुओं को संताप देने वाले वह दोनों पुरुषसिंह एवं अनिन्दित राज कुमार ॥२७॥

त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लङ्कां भस्मीकरिष्यतः ।
हत्वा च समरे रौद्र रावण सहबान्धवम् ॥ २८ ॥

आपके दर्शन के लिए उत्कंठित होकर, लंका को भस्म कर डालेंगे और युद्ध में भयंकर रावण को बन्धुवान्धव सहित मारकर ॥२८॥

राघवस्त्वां वरारोहे स्वां पुरीं नयिता ध्रुवम् ।
यत् तु रामो विजानीयादभिज्ञानमनिन्दिते ॥ २९ ॥

प्रीतिसञ्जननं तस्य प्रदातुं त्वमिहार्हसि ।
साभिवीक्ष्य दिशः सर्वा वेण्युद्ग्रथनमुत्तमम् ॥ ३० ॥

हे वरारोहे! निश्चय ही आपको अयोध्यापुरी ले जायेंगे। हे अनिन्दिते ! मुझे कोई ऐसी पहचान दे दीजिए जिसको देखकर श्रीराम चन्द्र जी मेरे ऊपर विश्वास करें और जो उनके मन को प्रसन्न करने वाला हो। तब उन्होंने इधर उधर देख वेणी में बाँधने योग्य यह चूडामणि ॥२९-३०॥

मुक्त्वा वस्त्राद् ददौ मह्यं मणिमेतं महाबल ।
प्रतिगृह्य मणिं दिव्यं तव हेतो रघुप्रिय ॥ ३१ ॥

हे महाबली! अपने आँचल से खोलकर मुझे दे दी। हे रघुनन्दन ! मैंने आपके लिये दिव्यमणि ले ली ॥ ३१॥

शिरसा तां प्रणम्यैनामहमागमने त्वरे ।
"गमने च कृतोत्साहं अवेक्ष्य वरवर्णिनी ॥ ३२ ॥

और सीता माता को प्रणाम कर मैं यहां आने के लिये जल्दी करने लगा। जब सुन्दरी सीता ने मुझे चलने के लिये उद्यत ॥३२॥

विवर्धमानं च हि मामुवाच जनकात्मजा ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना बाष्पसन्दिग्धभाषिणी ॥ ३३ ॥

और मुझे अपना शरीर बढ़ाये हुए देखा, तब जानकी जी अत्यंत दुखी हो गयीं, उनके मुख पर अश्रुओं की धारा बहने लगी और उनका कंठ गदगद हो गया॥३३॥

ममोत्पतनसम्भ्रान्ता शोकवेगसमाहता ।
हनुमन् सिंहसङ्काशौ तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
सुग्रीवं च सहामात्य सर्वान् ब्रूया अनामयम् ॥ ३४ ॥

क्योंकि मेरे वहां से चले आने से जानकी जी घबरायी हुई थीं और दुःखी हो रही थीं। वह कहने लगी-हे हनुमान ! सिंह के समान उन दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण से तथा मंत्रियों सहित सुग्रीवादि समस्त वानरों से मेरा कुशल समाचार कहना ॥३४॥

यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः ।
असमाद् दुःखाम्बुसंरोधात् तत् त्वमाख्यातुमर्हसि ॥ ३५ ॥

तुम ऐसा उद्योग करना जिससे वह महावाहु श्रीरामचन्द्र मुझे इस शोकसागर से शीघ्र उबारें ॥३५॥

इमं च तीव्रं मम शोकवेगं रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च ।
ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपं शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर ॥ ३६ ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! मार्ग तुम्हारे लिये मंगलदायी हो। तुम श्रीराम चन्द्र जी के पास जाकर मेरे इस तीव्र शोक तथा इन राक्षसियों द्वारा मेरे डराये धमकाये जाने का समस्त वृतान्त कह देना ॥३६॥

एतत् तवार्या नृप संयता सा सीता वचः प्राह विषादपूर्वम् ।
एतच्च बुद्ध्वा गदितं यथा त्वं श्रद्धत्स्व सीतां कुशलां समग्राम् ॥३७॥

हे नृपराजसिंह ! आपकी सती सीता ने दुःखी होकर यह सभी बात कहीं हैं। मेरे कही हुई इन सभी बातों पर विचार करके, समस्त पतिव्रताओं में अग्रगणी सीता जी के कुशलपूर्वक होने का विश्वास कीजिये ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के
सुन्दरकाण्ड का सड़सठवां सर्ग पूरा हुआ।

॥ श्री गणेशाय: नमः ॥
॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
श्रीमद् वाल्मीकि रामायणे
सुन्दरकाण्डे

॥अष्टषष्टितमः सर्गः अडसठवाँ सर्ग॥

सीतायाः सन्देशस्य स्वकर्तृकतन्निवारणस्य च वृत्तान्तस्य हनुमता वर्णनम् – हनुमान जी का सीता के संदेह और हनुमान जी के द्वारा उसके निवारण का वृतांत बताना

अथाहमुत्तरं देव्या पुनरुक्तः ससम्भ्रमः ।
तव स्नेहान्नरव्याघ्र सौहार्दादनुमान्य वै ॥ १ ॥

हनुमान जी कहने लगे: हे नरव्याघ्र ! सीता जी ने यह जान कर कि, मुझ पर आपका स्नेह हैं, शेष कार्य के सम्बन्ध में श्रादर पूर्वक मुझसे कहा ॥१॥

एवं बहुविधं वाच्यो रामो दाशरथिस्त्वया ।
यथा मां प्राप्नुयाच्छीघ्रं हत्वा रावणमाहवे ॥ २ ॥

हे कपे! तुम विविध प्रकार से दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र से अनेक प्रकार से ऐसे वचन कहना जिससे वह शीघ्र युद्ध में रावण का वध करके मुझे प्राप्त कर सकें ॥२॥

यदि वा मन्यसे वीर वसैकाहमरिन्दम ।
कस्मिंश्चित् संवृते देशे विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि ॥ ३ ॥

शत्रुओं का दमन करने वाले वीर ! यदि तुम ठीक समझो तो किसी गुप्त स्थान में एक दिन के लिए और ठहर जाओ और आज विश्राम करके फिर कल चले जाना ॥३॥

मम चाप्यल्पभाग्यायाः सान्निध्यात् तव वानर ।
अस्य शोकविपाकस्य मुहूर्तं स्याद् विमोक्षणम् ॥ ४ ॥

हे वानर तुम्हारे निकट रहने से मुझ मन्दभगिनी को भी कुछ देर के लिये तो इस शोक विलाप से छुटकारा मिल गया था ॥४॥

गते हि त्वयि विक्रान्ते पुनरागमनाय वै ।
प्राणानामपि सन्देहो मम स्यान्नात्र संशयः ॥ ५ ॥

तुम वीर पराक्रमी हो! तुम्हारे लंका से वहां जाने और वहां से फिर लंका वापस आने तक, निश्चय ही मेरे प्राणों के लिए भी संदेह उत्पन्न हो जाएगा ॥५॥

तवादर्शनजः शोको भूयो मां परितापयेत् ।
दुःखाद् दुःखपराभूतां दुर्गतां दुःखभागिनीम् ॥ ६ ॥

मैं इस दुर्दशा में पड़ी हूँ और दुःख पर दुःख सह रही हूँ। अतः मैं बड़ी अभागिनी हूँ। तुम्हारे चले जाने पर अथवा तुम्हारी अनुपस्थिति में मुझे पुन: अत्यंत भारी दुःख होगा ॥६॥

अयं च वीर सन्देहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः ।
सुमहांस्त्वत्सहायेषु हर्यृक्षेषु हरीश्वर ॥ ७ ॥

हे वीर! मुझे एक बात का बड़ा सन्देह है कि, तुम्हारे बड़े सहायक रीछों और वानरों में से ॥७॥

कथं नु खलु दुष्पारं तरिष्यन्ति महोदधिम् ।
तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ ॥ ८ ॥

कौन कौन अथवा किस प्रकार इस दुष्पार महासागर को पार कर सकेगें। वह रीछ वानरों की सेनाएं अथवा वे दोनों राजकुमार श्रीराम और लक्षमण किस प्रकार समुद्र को पार करेंगे॥८॥

त्रयाणामेव भूतानां सागरस्यास्य लङ्घने ।
शक्तिः स्याद् वैनतेयस्य वायोर्वा तव चानघ ॥ ९ ॥

हे अनघ! इस समुद्र को लांघने की शक्ति तीन ही जनों में हैं। या तो विन्तानंदन गरुड़ जी में अथवा पवन देव में, अथवा तुममें ॥९॥

तदस्मिन् कार्यनिर्योगे वीरैवं दुरतिक्रमे ।
किं पश्यसि समाधानं ब्रूहि कार्यविदां वर ॥ १० ॥

अतः हे कार्य करने वालों में श्रेष्ठ ! हे वीर! तुमने इस दुष्कर कार्य के करने का क्या उपाय स्थिर किया है ॥१०॥

काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने ।
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते बलोदयः ॥ ११ ॥

हे शत्रनिहन्ता! यद्यपि इसमें संदेह नही है कि तुम अकेले ही सहजता से इस काम को पूरा कर सकते हो, तथापि ऐसा करने से केवल तुम्हारे यश और बल का बखान होगा ॥११॥

बलैः समग्रैर्यदि मां हत्वा रावणमाहवे ।
विजयी स्वां पुरीं रामो नयेत् तत् स्याद् यशस्करम् ॥ १२ ॥

यदि श्रीरामचन्द्र जी रावण को उसकी सारी सेना के साथ मार कर एवं विजय प्राप्त कर मुझे अयोध्या ले चलें, तो उनके लिए यह यश की वृद्धि करने वाला होगा ॥१२॥

यथाऽहं तस्य वीरस्य वनादुपधिना हृता ।
रक्षसा तद्भयादेव तथा नार्हति राघवः ॥ १३ ॥

जैसे रावण ने वीरवर भगवान श्रीरामचन्द्र के आश्रम से, उनके भय के कारण उनके सामने न जाकर, मुझे छलवल से हरा था; उसी प्रकार से मेरा यहाँ से उद्धार करना श्रीरामचन्द जी के योग्य नहीं है अर्थात रावण वध उपरांत मुझे यहाँ लंका से ले जाना ही उचित है ॥१३॥

बलैस्तु सङ्कुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः ।
मां नयेद् यदि काकुत्स्थस्तत् तस्य सदृशं भवेत् ॥ १४ ॥

यदि शत्रु-सैन्य विध्वंसकारी श्रीरामचन्द्र जी अपनी सेना लाकर लंका को पददलित करके मुझे साथ ले जाएँ, तो यह कार्य उनके पराक्रम के स्वरूपानुरूप होगा ॥१४॥

तद् यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः ।
भवत्याहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥ १५ ॥

जो कार्य उन युद्धशूर महात्मा के योग्य हो और उनके पराक्रम को प्रकाशित करे, तुम्हे वैसा ही उपाय करना चाहिए ॥१५॥

तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम् ।
निशम्याहं ततः शेषं वाक्यमुत्तरमब्रुवम् ॥ १६ ॥

हे श्रीरामचन्द्र ! इस प्रकार से अभिप्राय युक्त, विनयपूर्ण और युक्तियुक्त सीता देवी के वचन सुनकर, मैंने इस प्रकार उत्तर देते हुए कहा ॥१६॥

देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः ।
सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नस्तवार्थे कृतनिश्चयः ॥ १७ ॥

हे देवी! रीछ और वानरों के अधिपति वानरश्रेष्ठ सुग्रीव बड़े पराक्रमी हैं। वह आपके उद्धार का संकल्प कर चुके हैं ॥१७॥

तस्य विक्रमसम्पन्नाः सत्त्ववन्तो महाबलाः ।
मनःसङ्कल्पसदृशा निदेशे हरयः स्थिताः ॥ १८ ॥

उन सुग्रीव की आज्ञा के वश में महापराक्रमी, वीर्यवान, महावली और इच्छागामी अनेक वानर हैं ॥१८॥

येषां नोपरि नाधस्तान्न तिर्यक् सज्जते गतिः ।
न च कर्मसु सीदन्ति महत्स्वमिततेजसः ॥ १९ ॥

ऊपर-नीचे, दायें-बाएं, किसी भी ओर जाने में उनकी गति नहीं रूकती । वह अमित तेजस्वी वानर बड़े से बड़े काम को करने में नहीं घबराते। ॥१९॥

असकृत् तैर्महाभागैर्वानरैर्बलसंयुतैः ।
प्रदक्षिणीकृता भूमिर्वायुमार्गानुसारिभिः ॥ २० ॥

उन महाबली महाभाग वानरों ने आकाशमार्ग से गमन कर कितनी ही बार पृथिवी की परिक्रमा की है ॥२०॥

मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः ।
मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसंनिधौ ॥ २१ ॥

मेरे बराबर शक्तिशाली और मुझसे भी अधिक वली और पराक्रमी वानर वहाँ है। मुझसे हीन पराक्रम वाला अर्थात् मुझसे कम शक्ति वाला तो एक भी वानर सुग्रीव के पास नहीं है ॥२१॥

अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः ।
न हि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः ॥ २२ ॥

जब मैं ही यहाँ आ गया, तब उन महाबलियों के यहाँ पहुँचने में तो संदेह होना ही नहीं चाहिए? आप जानती ही हैं कि दूत बनाकर तो वही भेजे जातें हैं जो निम्न श्रेणी के होते हैं, उच्च श्रेणी के लोग दूत बना कर नहीं भेजे जाते ॥२२॥

तदलं परितापेन देवि मन्युरपैतु ते ।
एकोत्पातेन वै लङ्कामेष्यन्ति हरियूथपाः ॥ २३ ॥

अत: हे देवी! आपको संताप करने की आवश्यकता नहीं है। आपको दीनता त्याग देनी चाहिए। वानरयूथपति एक ही छलांग में लंका में पहुँच जायेंगे ॥२३॥

ममपृष्ठगतौ तौ च चन्द्रसूर्याविवोदितौ ।
त्वत्सकाशं महाभागे नृसिंहावागमिष्यतः ॥ २४ ॥

हे महाभागे! वह दोनों पुरुषसिंह भी मेरी पीठ पर स्वर होकर, उदयांचल पर उदित हुए चन्द्र और सूर्य की की भांति यहाँ आ जायेंगे ॥२४॥

अरिघ्नं सिंहसङ्काशं क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् ।
लक्ष्मणं च धनुष्मन्तं लङ्काद्वारमुपस्थितम् ॥ २५ ॥

हे देवी! शत्रुहन्ता और सिंह की तरह पराक्रमी श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजी को आप हाथ में धनुष लिये शीघ्र ही लंका के द्वार पर आया हुआ देखोगी ॥२५॥

नखदंष्ट्रायुधान् वीरान् सिंहशार्दूलविक्रमान् ।
वानरान् वारणेन्द्राभान् क्षिप्रं द्रक्ष्यसि सङ्गतान् ॥ २६ ॥

तुम नख और दांतों को आयुध बनाये सिंह और शार्दूल की तरह पराक्रमी और गजराज तुल्य वानरों को शीघ्र ही लंका में एकत्रित देखोगी ॥२६॥

शैलाम्बुदनिकाशानां लङ्कामलयसानुषु ।
नर्दतां कपिमुख्यानां नचिराच्छ्रोष्यसि स्वनम् ॥ २७ ॥

पर्वताकार वानर वीरों का, लंका के मलयाचल के ऊँचे शिखरों पर, सिंहनाद भी आपको शीघ्र ही सुनाई देगा ॥२७॥

निवृत्तवनवासं च त्वया सार्धमरिन्दमम् ।
अभिषिक्तमयोध्यायां क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् ॥ २८ ॥

आप शीघ्र ही देखेंगी कि, वनवास की अवधि पूरी कर, शत्रुदमन कारी श्रीरामचन्द्र जी आपके साथ अयोध्या के राजसिंहासन पर आसीन हैं ॥२८॥

ततो मया वाग्भिरदीनभाषिणी शिवाभिरिष्टाभिरभिप्रसादिता ।
उवाह शान्तिं मम मैथिलात्मजा तवापि शोकेन तथाभिपीडिता
॥२९॥

हे रघुनन्दन ! उस समय आपके शोक से अत्यंत पीड़ित सीता जी इस प्रकार के शुभ और मंगलमय वचनों द्वारा सांत्वना प्राप्त कर प्रसन्न हुई। उनकी दीनता दूर हुई और उनके मन को कुछ शान्ति प्रपात हुई ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद् रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे
अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण के सुन्दरकाण्ड का अड़सठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

॥ इति सुन्दरकाण्डम समाप्तः ॥

॥ श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

॥ श्रीः॥

श्रीमद्रामायणपारायणसमापनक्रमः
श्रीवैष्णवसम्प्रदायः

एवमेतत्पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः।
प्रन्याहरत विस्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥ १॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदये सुप्रतिष्ठितः॥२॥

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भया ॥३॥

कावेरी वर्धतां काले काले वर्षतु वासवः ।
श्रीरङ्गनाथ जयतु श्रीरङ्गश्रीश्च वर्धताम् ॥ ४॥

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥५॥

मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणाब्धये ।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥६॥

वेदवेदान्तवेद्याय मेघश्यामलमूर्तये ।
पुंसां मोहनरूपाय पुण्यश्लोकाय मङ्गलम् ॥७॥

विश्वामित्रान्तरङ्गाय मिथिलानगरीपतेः।
भाग्यानां परिपाकाय भव्यरूपाय मङ्गलम् ॥ ८ ॥

पितृभक्ताय सततं भ्रातृभिः सह सीतया ।
नन्दिताखिललोकाय रामभद्राय मङ्गलम् ॥ ९ ॥

त्यक्तसाकेतवासाय चित्रकूटविहारिणे।
सेव्याय सर्वयमिनां धीरोदाराय मङ्गलम् ॥ १० ॥

सौमित्रिणा च जानक्या चापवाणासिधारिणे ।
संसेव्याय सदा भक्त्या स्वामिने मम मङ्गलम् ॥ ११ ॥

दण्डकारण्यवासाय खण्डितामरशत्रवे।
गृध्रराजाय भक्ताय मुक्तिदायस्तु मङ्गलम् ॥ १२ ॥

सादरं शवरीदत्तफलमूलाभिलाषिणे ।
सौलभ्यपरिपूर्णाय सत्त्वोद्रिक्ताय मङ्गलम् ॥ १३ ॥

हनुमत्समवेताय हरीशाभीष्टदायिने ।
वालिप्रमथानायास्तु महाधीराय मालम् ॥ १४ ॥

श्रीमते रघुवीराय सेतूललितसिन्धवे।
जितराक्षसराजाय रणधीराय मङ्गलम् ॥ १५ ॥ .

प्रासाद्य नगरों दिव्यामभिषिकाय सीतया ।
राजाधिराजराजाय रामभद्राय मङ्गलम् ॥ १६ ॥

मङ्गलाशासनपरैर्मदाचार्य पुरोगमैः।
सर्वश्च पूर्वराचार्यः सत्कृतायास्तु मङ्गलम् ॥ १७ ॥